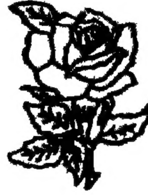
बोधि - सुमन

(आचार्य अमितगति कृत सामायिक पाठ पर दिये गये प्रवचनांश)



: प्रवक्ता :

आचार्य श्री १०८ पुष्पदन्तसागरजी महाराज

: सम्पादक :

मुनि श्री तरुणसागरजी

प्रकाशक

समस्त बीसा हूमड़ दि. जैन समाज

प्रतापगढ़ / बम्बई

बोधि सुमन
आचार्य श्री पुष्पदन्तसागरजी

प्रथमावृत्ति	—	२००१
प्रथम संस्करण	—	१९९१
मूल्य	—	ज्ञानदान १०१/- रुपया मात्र
प्रवचन स्थल	—	श्री १००८ आदिनाथ दिग. जैन नया मंदिर प्रतापगढ़
विशेष सहयोग	—	हीरालालजी अमृतलाल कोटडिया कान्तिलालजी शान्तिलालजी कोटडिया श्री राजकुमार जवेरलाल मीण्डा श्रीपाल जवेरलाल मीण्डा
संकलन कर्ता	--	श्री भरतवीर मींडा, प्रतापगढ़
पुस्तक प्राप्ति स्थान	—	श्री १००८ आदिनाथ दिगम्बर जैन नया मन्दिर, प्रतापगढ़ (राज.)
मुद्रक	—	**कॉलेज प्रिंटिंग प्रेस** नागर डेरा प्रतापगढ़ (राज.)

संपादकीय



मुनि श्री तरुणसागरजी

श्रमण जीवन साधना का जीवन हैं। सामायिक श्रमण चर्या का अभिन्न अंग है। सामायिक के मायने 'समत्व की साधना'। समत्व की साधना मुक्ति का प्रथम सोपान है। समत्व की साधना से जीवन स्तर उच्च से उच्चतम, उज्जवल से परमोज्जवल बनता हैं। समत्व की साधना श्रमणत्व की कसौटी है कोई भी आत्म साधक बगैर समत्व की साधना किए आत्मिक उन्नति नहीं कर सकता। आध्यात्मिक जीवन विकास के लिए समता / सरभाव / सामायिक / साधना पहली शर्त हैं। श्रमण चर्या के ही तरह श्रावक जीवन में भी तनावों से मुक्त होने का जैन-साधना पद्धति के अनुसार सर्वोपरि उपाय सामायिक साधना ही है।

गौतम स्वामी ने भगवान् महावीर से पूछा भंते ! सामायिक क्या है ? महावीर ने कहा-आत्मा ही सामायिक हैं आत्मा और सामायिक एक ही सिक्के के दो पहलू है। सामायिक के काल में द्वैत की स्थिति समाप्त हो जाती है। अद्वैत खड़ा हो जाता है। उस समय बूंद सागर में समा गई या सागर बूंद में समा गया, भेद मालूम नहीं पड़ता। साधना के दौरान आत्मा और परमात्मा का एकीकरण हो जाता है। यह उत्कृष्ट साधना है। प्रारंभिक अवस्था में सामायिक साधन और आत्मा साध्य रुप वर्णित हैं।

आज हम सामायिक के नाम पर पता नहीं क्या-क्या करते है ? आंख मूंदकर, आसन लगाकर बैठ जाना सामायिक नहीं है। इतनी जाप कर लेना और इतना पाठ कर लेना भी सामायिक नहीं है, यह सब औपचारिकताएं है। एक बुढ़िया घंटा भर बैठकर सामायिक करती है, पर उसका ध्यान मंत्र जाप पर नहीं बल्कि घर गृहस्थी की ओर रहता है। वह टुकुर-टुकुर कर देखती है कि बहु क्या कर रही है ? लड़की क्या कर रही हैं ? लड़का क्या

कर रहा है ? सामायिक होते ही वह बहु पर बरस पड़ती हैं। तूने ये नहीं किया। वो नहीं किया। ऐसा क्यों किया ? पास में खड़ा आधुनिक विचार धारा का युवक सोचता हैं माँ ने एक घंटे तक सामायिक की हैं या शिकायतों का रजिस्टर तैयार किया हैं ? अधिकांश लोगों की यही स्थिति हैं। वे सामायिक को किसी क्रिया कर्म, विशेष से जोड़कर उसकी वास्तविक पहचान को खो देते हैं। जबकि भगवान महावीर कहते हैं जितने अंशो में समता परिणाम हैं बस उतनी सामायिक हैं. शेष संसार हैं।

आज से कई शताब्दियों पूर्व जैन परम्परा में एक महान् प्रभावक आचार्य हुए हैं - आचार्य अमितगति । जो नाम के अनुरुप 'अमित' ज्ञान के भंडार और जिनकी लेखनी दर्शन, धर्म, अध्यात्म, न्याय, व्याकरण, भूगोल खगोल, साहित्य काव्य आदि विविध विधाओं में समान 'गति' से चलती थी। उनकी एक छोटी सी रचना हैं– द्वात्रिंशतिका जिसका अपर नाम सामायिक पाठ है। ३२ छन्द बद्ध श्लोकों में आचार्य अमितगति ने जैन धर्म के गूढ़तम रहस्यों के साथ साधना की गहनतम अनुभूतियों को भरकर 'गागर में सागर' की कहावत को चरितार्थ कर दिया। आचार्य अमितगति की यह रचना श्रमण और श्रावक के जीवन की एक अनिवार्य अ ग बन गई। सामायिक की आधार शिला होने से साधकों के लिए मंत्र रुप सिद्ध हुई। और तभी से ही इसका चिन्तन मनन होता आ रहा है।

अभी पिछले दिनों वर्षायोग में परम श्रद्धेय आचार्य श्री १०८ पुष्पदन्तसागरजी महाराज ने इस पर विशद व्याख्या की। एक माह तक अविरल रूप से जो अमृत की बौछार हुई उसी का सुखद परिणाम हैं प्रस्तुत कृति 'बोधि सुमन'। प्रवचन तात्कालिक होते हैं किन्तु उनको जब साहित्य का रुप मिल जाता है तब वे स्थायी हो जाते हैं। और दूर सुदूर की जनता जनार्दन उनसे लाभान्वित हो सकती हैं। इसी ध्येय को लक्ष्य में रखकर पूज्य श्री के प्रवचनों को टेप रेकार्ड से उतार कर उन्हें संपादित करके आप तक पहुंचा रहा हूं।

श्रमण संस्कृति के शुभ्रदर्पण, प्राणीमात्र के हितचिन्तक, स्नेह करुणा विवेक से आत्मास्थित व प्रबुद्ध चेता आचार्य श्री के लोकमंगलकारी इन प्रवचनों में धर्म / दर्शन / अध्यात्म / शांति और सद्भाव की बयार बहती है। बहुमुखी व्यक्तित्व एवं कृतित्व के धनी आचार्य श्री के मुख से निकला एक-एक वर्ण सदृश बहुमूल्य है। प्रवचन का हर अक्षर अक्षय की ओर ईशारा करता है, प्रस्तुत प्रवचनों को पढ़ने वाला पाठक स्वयं उनकी बहुश्रुतता, चिन्तनशीलता, दृष्टिव्यापकता और स्पष्टवादिता से साक्षात्कार कर सकेगा।

निःसन्देह पूज्य गुरुदेव एक अद्वितीय शब्द शिल्पी हैं, शब्द चितेरे हैं वाणी के डिटेक्टर हैं, शब्दों के जादूगर हैं। उन्होंने शब्दों को जिया, शब्द ब्रह्म से साक्षात्कार किया है, सत्य को भोगा है।

यहां एक बात और दिन के उजाले की तरह स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि इन प्रवंचनों में केवल वाणी का विलास नहीं वरन् जीवन का निचोड़ है। शब्दों का जाल नहीं बल्कि सत्य की अनुभूति है। शब्दो की अभिव्यक्ति नहीं, वरन् अन्तर आत्मा की अनुभूति है। परिभाषा नही प्रयोग है। निःसन्देह ये प्रवचन सूत्र दिग्मूढ़ और दिशाहीन मानव समाज को मार्गदर्शक का काम करेंगे एवं साधकों को आत्म अनुसंधान के लिए आह्वान करेंगे।

और हां प्रस्तुत कृति के सम्पादन में जिन्होंने मुझे पूरा सहयोग दिया, यहां उनका नामोल्लेख न करना शायद उनके साथ अन्याय होगा। सर्वप्रथम मैं गुरुभक्त ब्र. मनोरमा, भरतवीर मीण्डा, शोभा मीण्डा, मीना पाडलिया, लता दोशी, मीना जैन "रूप श्री" संगीता जैन, अरनोद को आशीर्वाद दूंगा जिन्होंने गुरु भक्ति से प्रेरित होकर बड़े यत्न व कठोर परिश्रम करके बहुआयामी इन प्रवचनों को टेप से आलेखित किया। साथ ही वर्षायोग के सूत्रधार ज्ञानचन्दजी मीण्डा एवं वर्षायोग समिति के प्रवक्ता मनसुखलालजी सेठ साधुवाद के पात्र हैं जिनके सतत् सहयोग से संपादन कार्य समय पर पूर्ण हुआ।

इस कृतज्ञता ज्ञापन में स्थानीय बीसा हूमड़ जैन समाज व विशेषकर हीरालालजी, कान्तिलालजी, राजकुमारजी, श्रीपालजी को नही भूल सकता जिनकी उदारशीलता के फलस्वरूप प्रस्तुत कृति का उत्कृष्ट प्रकाशन संभव हो सका।

साथ ही कॉलेज प्रेस के मालिक गुरुभक्त दीपक पाड़लिया को आशीर्वाद देना भी नही भूल सकता जिन्होने बड़ी लगन और तन्मयता के साथ मुद्रण कार्य सुसंपादित किया।

हमारा प्रयास आपके समक्ष है सुधि पाठक खुबियों-खामियों को नजर अन्दाज करते हुए इन प्रवचन सूत्रों के माध्यम से समत्व की साधना की दिशा में पहल करेंगे।

अन्त में अन्तस् की मूक श्रद्धा सहित पूज्य गुरुदेव के चरणों में प्रणत प्रणाम निवेदित करता हुआ अपनी कलम को विराम देता हूँ।

वीर निर्वाण
५ नवम्बर १९९१
प्रतापगढ़ (राज.)

मुनि श्री तरुणसागर

स्वप्नदृष्टा : आचार्य श्री पुष्पदन्तसागर

लेखक—मुनि श्री 108 तरुणसागरजी

अविच्छिन्न परम्परा :-

श्रमण संस्कृति के अग्रदूत महाश्रमण भ. महावीर स्वामी ने इस परिवर्तन शील सृष्टि में चार बातें अत्यन्त दुलभ बताई हैं। १. मनुष्य भव २. धर्म श्रवण ३. धर्म श्रद्धा ४. धर्माचरण ! देखा जाता है कि अधिकांश आदमी आकृति से तो मनुष्य सरीखे दिख पड़ते है, किन्तु प्रकृति से नररुप में भी वानर, नाहर, श्वान, सिंह जैसा निम्न पशु स्तर का जीवन जीते है ! मानव शरीर धारण करना एक बात है और मानवीय गुणों को जीवन में धारण, पालन करना दूसरी बात है ! विरले ही मनुष्य ऐसे होते है जो कथनी और करनी / चर्चा और चर्या / मन और मुख / आचरण और उच्चारण में एक रुप हो दिव्यता को प्राप्त करते हैं। भारत के इतिहास में ऐसे जीवन्त महापुरुषों की एक समृद्ध और अविच्छिन्न परम्परा रही है। इसी परम्परा की कड़ी में स्व-पर कल्याणरत आचार्य श्री १०८ पुष्पदन्त सागरजी महा. भी एक ऐसे ही महापुरुष है।

व्यक्तित्व : बाह्य/आन्तरिक :-

गौरवर्ण मंझलाकद छरहरा बदन, दर्पण सा टिमटिमाता दीप्त ललाट, पारदर्शी नयन, अधरों पर खिलती बाल सुलभ मन्द-मन्द स्मित मुस्कान, निर्द्वन्द मुख-मण्डल, शहद सी मीठी जुबान, धनुषाकार भौंहे, समचतुरस्त्रसंस्थान युक्त काया, दंत संरचना मानों मुंह में मोती की लड़ी हो, देखे तो कमल खिल उठे, बोले तो कोयल की सी कूंक गूंज उठे, चले तो धरती धन्य हो जाए, हंसे तो फूल झरे, नख ऐसे मानो नक्षत्र जड़ दिये हो, अंगुलियां जैसे कलियाँ फूट रही हो, सुराही सी गर्दन विस्तृत बक्षस्थल, मृणाल्ल सी बाहें, हित-मित प्रिय किन्तु बुलन्द स्वर संयमितसधी चाल और सतत उल्लसित सविंग-बस यही है आचार्य श्री पुष्पदन्तसागरजी का बाह्य व्यक्तित्व।

अप्रकंप संकल्प, सुदृढ़ निश्चय, महाप्रज्ञ, ज्ञान-ध्यान-तप में अहर्निश निरत स्वयं अनुशासित एवं अनुशासन के सजग प्रहरी, कवि हृदय, युवकों के चहेते, प्रवचन पटु, इष्ट के प्रति समर्पित समता, साधना और सरलता की प्रतिमूर्ति, महान तार्किक प्रखर चिन्तक, पर दुःख कातर, सरस्वती के वरद् पुत्र, बस यही हैं आचार्य श्री पुष्पदन्तसागरजी का आन्तरिक व्यक्तित्व।

प्रखर मेधा के धनी आचार्य श्री का व्यक्तित्व विद्वता और सरलता बुद्धिमत्ता और निश्छलता महानता और सहजता, कठोरता एवं कोमलता जैसे परस्पर विरोधी आयामों से समन्वित है। आचार्य श्री का हृदय नवनीत के समान मृदु एवं संकल्प चट्टान की तरह अटल है। चिंतन में हिमगिरी की-सी ऊँचाई और भावों में सागर के समान गहराई हैं।

अहिंसा के मसीहा / मानवता का सजग प्रहरी :-

सत्य और अहिंसा के इस मसीहा का विश्वास हैं कि "मनुष्य परमात्मा के हाथ का एक खिलौना नहीं, वरन् मनुष्य परमात्मा का एक बीज हैं। मनुष्य में वे सभी संभावनाएँ गर्भित हैं जिनके बलबूते वह न सिर्फ परमात्मा से साक्षात्कार कर सकता, अयुक्त अथक् पुरुषार्थ व सत् साधना से स्वयं ईश्वरमय हो सकता हैं।"

मानवता का यह सजग प्रहरी नगर-नगर-डगर-डगर बंजारों की भाँति घूम घूम कर लड़ते। झगड़ते, छीना-झपटी-मारकाट करते, खून बहाते-छुरे चलाते लोगों में विश्व शांति का तुमुल नाद कर रहा है। जनमानस में धर्म और अध्यात्म की अलख जगाकर मानव-मन में प्रेम का महामंत्र फूंक रहा हैं।

भौतिकता के तप्त झोंकों में झुलसित मानव मन आत्म शांति की भावना लिए जब द्वार द्वार भटकते भटकते इनके द्वारे दस्तक देता है, तब इनके तपो-पूत जीवन की सुखद छाया तले घड़ी दो घड़ी बैठ जिस अपूर्व शांति का अनुभव करता है। वह शांति निराश और कुण्ठित जीवन में एक नई उमंग। स्फूर्ति और उत्साह को भर देती हैं।

साधु संस्था और समाज :-

आज का आदमी विविध मुखौटो की दुनियां में जी रहा हैं। करुणा के वातायन शनैः-शनैः बन्द होते जा रहे है। भौतिकता की अंधी दौड़ में हर आदमी दौड़ रहा है, भ्रष्टाचार, शोषण छल-फरेब, चरित्रहीनता,

सांप्रदायिकता, अंध-विश्वास और आतंकवाद तथा अलगाववाद की मनोवृत्तियां उसके मन में बड़ी तेजी से घर करती जा रही हैं। कंप्यूटर और रोबट के इस युग में आदमी बोना होता जा रहा है ऐसी विकट संकट की घड़ी में मानव व मानवता को उभारने का एक मात्र उपाय है, आचार्य श्री पुष्पदन्त सागरजी जैसे संतो का समागम। समाज व राष्ट्र रूपी मदोन्मत्त गज को संत रूपी अंकुश से ही नियंत्रित किया जा सकता। संत समाज की धरोहर होते है समाज उनके नेतृत्व व मार्गदर्शन में ही अपनी सभ्यता और संस्कृति को सुरक्षित रख सकता हैं। साधु संस्था सामाजिक विरासत के रक्षक एवं मर्यादित जीवन पद्धति के पुरोधा हैं। जब-जब समाज संतों की उपेक्षा। अवज्ञा करती हैं, तब-तब सामाजिक और धार्मिक व्यवस्थाएँ पंगु हो जाया करती हैं।

युवकों के चहेते युवाचार्य श्री ने धर्म-विमुख भटकती युवापीढ़ी को धर्मोन्मुख कर एक नया कीर्तिमान स्थापित किया हैं। हजारों युवाओं ने आपकी पावन प्रेरणा से व्यसन मुक्त हो स्वस्थ्य व सादा जीवन यापन का पथ अपनाया हैं। आपका मंगल सानिध्य युवक / युवतियों / बालक / किशोरों के लिए शुभ शकुन सिद्ध होता हैं।

जन कल्याण की भावना से ओत-प्रोत मुनि श्री का मन व्यष्टि व समष्टि का कल्याण कब और किस विध हो, में अहोरात्र संलग्न रहता हैं। तभी तो कभी उद्‌बोधन के बहाने कारागृह में सजाकाट रहें कैदियों से मिलने जा पहुंचते हैं तो कभी शिक्षण प्रशिक्षण के बहाने भावी पीढ़ी को ज्ञानामृत पिला उनके संस्कारों को सुदृढ़ करते हैं। देश के विभिन्न अंचलों में हजारों मीलों की नग पांव पद यात्राएँ करते हुए मार्ग में समागत-लाखों लाखों को सत्य / अहिंसा / प्रेम / मानवता और भाई-चारे का पाठ पढ़ाकर मानवीय गुणों पर चलने का पुनीत संदेश सुनाया हैं।

स्वप्नदृष्टा : आचार्य श्री :-

स्वप्न दृष्टा आचार्य श्री हर दिन हर रात नये नये सपने देखते हैं और उन्हें आकार देकर क्रियान्वित करने के लिए सतत् कठोर परिश्रम करते हैं, कौन से हैं उनके सपने ? यही कि आदमी, आदमी किस तरह बने, शोषण विहीन और स्वतंत्र समाज की रचना कैसे हो ? श्रमण संस्कृति के सर्वमान्य सिद्धान्त अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह जन जन तक कैसे पहुंचाये जाये। विनाश की कगार पर कैसे बचाया जावे ? धर्म

और मजहब के नाम पर रक्त बहाने वालों का हृदय परिवर्तन कैसे किया जाये ? आक्रमण और हिंसा मूलक प्रवृत्तियों का शमन सामाजिक रुढ़ियों से बिलगाव, धार्मिक कुरीतियों व अन्ध विश्वासों का उन्मूलन कैसे किया जाये ? धार्मिक एकता, सहिष्णुता, सर्व धर्म समन्वय औरनैतिक तथा चारित्रिक मूल्यों की प्रतिष्ठा किस तहर की जाए।

हम परम पिता परमात्मा से विनम्र सादर सविनय सविधि प्रार्थना करते हैं कि स्वप्न दृष्टा आचार्य श्री के सभी सपने शीघ्र ही साकार होऐं ताकि सृष्टि के प्राणी मात्र का जीवन सुख और शांति से परिपूरित हों तथा पृथ्वी पर स्वर्ग के दर्शन हो सके !

हम सब एक जैसे हैं :-

आचार्य श्री पुष्पदन्तजी का व्यक्तित्व बहुमुखी है। चिंतन प्रखर और उदारपूर्ण है। एक धर्म विशेष के आचार्य होकर भी उनमें साम्प्रदायिकता का आग्रह नहीं है। आप समन्वयवादी विचारधारा के मुनि संत हैं। समूची मानवता को एकता के सूत्र में बांधने का जो सफल प्रयास कभी अपने समय में भ राम कृष्ण, महात्मा बुद्ध भ. महावीर, मोहम्मद, नानक, ईसा और गांधी जैसे महापुरुषों ने अपने त्याग, तप, साधना और बलिदान से किया था वही प्रयास आज आचार्य श्री अपनी औदारिक काया को तपा तपा कर रहे हैं।

आचार्य श्री सबके हैं और सब आचार्य श्री के हैं। कहीं कोई जातिगत भेदभाव नहीं हैं। ऊंच नीच की संकीर्ण भावना नहीं हैं। कारण कि प्रभु महावीर स्वामी को दिव्य उद्घोषणा 'अप्पा सो परमप्पा' आचार्य वर्य का जीवन सिद्धांन्त हैं। हिन्दू और मुसलमान, सिक्ख और ईसाई, जैन और बौद्ध ये सब संकीर्ण मनोवृत्ति के मनुष्यों के दिमाग को उपज है। सच्चे आत्मज्ञों और धर्माचार्यों की दृष्टि में शक्ति रूपेण प्राणी मात्र एक है। इसलिए तो 'हम सब एक हैं' इस लोक प्रचलित नारे को जैन सिद्धान्तानुसार संशोधित कर 'हम सब एक जैसे हैं' का रुप दिया गया है।

आज से सदियों पूर्व :-

प्राचीन इतिहास के अध्ययन से विदित होता है कि आज से सदियों पूर्व इस भारत वसुंधरा पर जिस प्रकार धर्म प्रभावना का डंका आचार्य समन्तभद्र, लोहाचार्य, अकलंक स्वामी, कुन्दकुन्द देव और विद्यानन्द मुनि

ने पीटा था, वही और वैसा ही डंका आज की तारीख में गुरुदेव पीट रहे है। यह 'जीवन्त तीर्थ' अपनी धूल-धुसरित दिगम्बर काया को लेकर अपने काफिला संग जिन-जिन, गलि-गलयारों, मार्ग चौराहों से गुजर जाता है वहां की धूल पवित्र आचरण युक्त चरण युगल के संस्पर्श से चंदन की उपमा को धारण कर लेती हैं। और जहाँ यह चलता फिरता तीर्थ चन्द दिनों के लिए ही सही पड़ाव डाल लेता है, सच मानों वहां के वातावरण को देखकर ऐसा लगता हैं मानों आदि ब्रह्म भ. ऋषभदेव का समवशरण ही लग रहा हो।

सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त तक और फिर देर रात तक धर्म-अनुष्ठान की जो एक लम्बी श्रृंखला प्रारंभ होती है उससे सारा वातावरण धर्ममय हो जाता हैं। आपके मंगल सानिध्य में व्यतीत हर दिन दशहरा का दिन और हर रात दीपावली की रात का रुप ले भक्तों के मन मयूर को अपार अपरम्पार खुशियां लुटा जाते हैं।

मक्खन नहीं चित्त चोर :-

पता नहीं आपकी इस काया में कौन सी माया समायी हैं। कौन सी 'मोहनीय विद्या' कर रखी हैं। जो भी आपके निकट एक बार भी भूला बिसरा भी आ जाता है, आपका 'अनन्यभक्त' होकर रह जाता हैं। फिर उसका मन हजार कोशिशों के बावजूद भी किसी और पर न्योछावर नहीं होता।

मुझे आचार्य अमित देव की वह उपमा-उक्ति स्मरण में आ रही हैं जहां (धर्म परीक्षा) उन्होंने मुनि को चोर कहा। आपको पढ़कर बड़ा आश्चर्य होगा कि अचौर्य महाव्रत धारी मुनि चोर कैसे, और चोर मुनि कैसे? जी हाँ! जल्दी मत करिये, मुनि धन चोर, मक्खन चोर नहीं, चित्तचोर है। आप जहाँ भी जाते है वहाँ लोगों से मीठी-मीठी धर्म चर्चा करके भक्तों के चित्त को चुराकर वहां से अन्यत्र विहार कर जाते हैं। वह भक्त जिसका चित्त चित्तचोर द्वारा चुरा लिया गया है आपके पीछे-पीछे भागता है, आपको ढूढ़ता फिरता। पागल सरीखा सा होकर।

मानवता का सौभाग्य :-

मानवता के लिए सबसे बड़ा सौभाग्य है कि उसे एक ही व्यक्तित्व में अनेक मौलिक प्रतिभाओं के दर्शन हो रहे हं। मुनि श्री न सिर्फ एक संत

साधक है, प्रत्युत वे एक सिद्ध हस्त लेखक भी हैं। प्रवचन कला में निष्णान्त भी हैं। एक कुशल कवि भी हैं। मणि-कांचन का ऐसा दुर्लभ सुयोग विरलों में ही कभी-कभार परिलक्षित होता है।

निःसंदेह इस जीवन शिल्पी में अनेक विशेषताएँ है जो संत समुदाय में आपकी अलग ही पहचान बनाये हुए है। आपका बाल मुनिवरों का संघ क्या कम आकर्षण का केन्द्र है? जो भी देखता बरबस कह उठता है अहो आश्चर्य! कहाँ यह कलिकाल विषम पंचमकाल और कहां ये सतयुगी सतण अहो हमारे शत्-शत् पुण्य जगे, इनका दर्शन, वन्दन से आज जीवन धन्य हो गया।

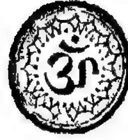
वरदान सिद्ध होगा :--

अंत में मैं इतना ही कहना चाहता हूं कि जहां वर्तमान के इश यंत्र युग में द्रुतगामी साधन वाहनों से विश्व की दूरी सिमटती जा रही है, और मानव मन से मानव मन की दूरी बढ़ती जा रही हो, मनुष्य अपने निजी स्वार्थ के कारण अलग-अलग खेमों में बटता जा रहा है, धर्म धर्मान्धता। साम्प्रदायिकता का रुप ले रहा हो, आदमी व्यापक जीवन दर्शन को छोड़कर छोटे-छोटे कटघरों में कैद हो गया हो ऐसी विषम परिस्थितयों में युग प्रमुख आचार्य श्री पुष्पदन्तसागरजी के दर्शन, प्रवचन और मार्गदर्शन निश्चित रुप से मंगलप्रद और वरदान सिद्ध होगा।

मैं परम प्रभु अर्हत् देव से करबद्ध प्रार्थना करता हूं आचार्य श्री रत्नत्रय का पालन करते, करवाते हुए स्वस्थ लाभ और दीर्घायु होवे ताकी उनकी छात्र छाया में बैठ सृष्टि के प्राणी अंधकार से प्रेम की ओर मृत्यु से जीवन की ओर, विष से अमृत की ओर, घृणा से प्रेम की ओर, अधर्म से धर्म की ओर जाने की कला सीख सके और सुखद भविष्य का निर्माण कर सके? एक बार पुनः।

नमन! नमन! नमन!

हर क्षण! हर पल!



नया मन्दिर कार्यकारिणी

स्थानीय (प्रतापगढ़)

१. श्री मोतीलाल सोनी, अध्यक्ष
२. " मनसुखलाल सेठ सचिव
३. " ज्ञानचंद गाँधी कोषाध्यक्ष
४. " राजकुमार मीण्डा सदस्य
५. " धनपाल मीण्डा "
६. " राजेन्द्रकुमार डोटीया "
"
७. " राजकुमार डोड "

बम्बई

१. श्री मोहनीचन्द्र कोटडीया अध्यक्ष
२. " ज्ञानचंद सेठ उपाध्यक्ष
३. " डॉ. सुरेन्द्रकुमार कोटडीया सचिव
४. " बलभद्र डोटीया, कोषाध्यक्ष
५. " धनपाल डोटीया सदस्य
६. " सुरेन्द्रकुमार अमृतलाल कोटडीया "
७. " रमेशचन्द्र कोटडीया "
८. " शांतिलाल सेठ "
९. " कमलसेन कोटडीया "
१०. " निर्भयकुमार डावड़ा "



प्रेस से............ दो शब्द ... ...

परम श्रद्धेय पाठकगण,

आचार्य श्री एवं मुनि संघ के चरणों में शत्-शत् नमन ! आपको सादर जय जिनेन्द्र !

प्रस्तुत "बोधि सुमन" आचार्य श्री पुष्पदंतसागरजी कृत आपके हाथों में हैं । इस पुस्तक का हर पहलू आपके हृदय को छू लेगा । कवि हृदय आचार्य श्री द्वारा प्रवचनांश की यह कृति मुद्रणाकर बीसा हूमड़ जैन समाज प्रतापगढ़ / बम्बई के सहयोग से आप तक पहुंच रही हैं ।

इसके सम्पादन में मुनि श्री तरुणसागरजी द्वारा काव्यों का लेखन प्रुफ रीडिंग एवं आचार्य श्री द्वारा पुस्तक को सुन्दर बनाने के सुझाव अति सराहनीय, मनमोहक व मेरे मार्गदर्शक रहे है । समय– समय पर प्रवचनों को लाने व प्रुफ ले जाने वाले सकलन कर्ता श्री भरतवीर मिण्डा भी इस सहयोग के लिये बहुत ही धन्यवाद के पात्र है । समय-समय पर श्री मनसुख सेठ द्वारा जो सुझाव एवं विचार दिये गये उनके लिए उनका मैं आभारी हूं ।

इस पुस्तक के कम्पोजिंग, मेटींग, प्रिन्टिग एवं बाइन्डिग कार्य में श्री शब्बीर हुसैन. कमल रावत, निलेश पालीवाल राजेश सौलंकी एव ओमप्रकाश पालीवाल का विशेष सहयोग रहा है जिन्होने पुस्तक को सुन्दरता प्रदान करने एवं द्रुत गति से कम्पोज करके मुझे सहयोग दिया है साथ ही इस पुस्तक मुद्रण में मुझे प्रत्यक्ष या परोक्ष रुप से जिनने भी सहयोग दिया है उनका भी मैं हृदय से आभारी हूं ।

अनेक सावधानियां रखते हुए भी बहुत सी गलतियां होना निश्चित है आप उस पर ध्यान न देते हुए प्रस्तुत कृति से धर्म लाभ लेवें । अपने सुझाव एवं त्रुटियों से अवगत करावें ।

मुझे आशा ही नहीं बल्कि पूर्ण विश्वास है कि आप अपना स्नेह एवं सहयोग यथावत बनाये रखेंगे ।

आपका ही

जय गुरुदेव !

दीपककुमार पाड़लिया

प्रो. कॉलेज प्रिंटिंग प्रेस

नागर डेरा

प्रतापगढ़ (राज.)

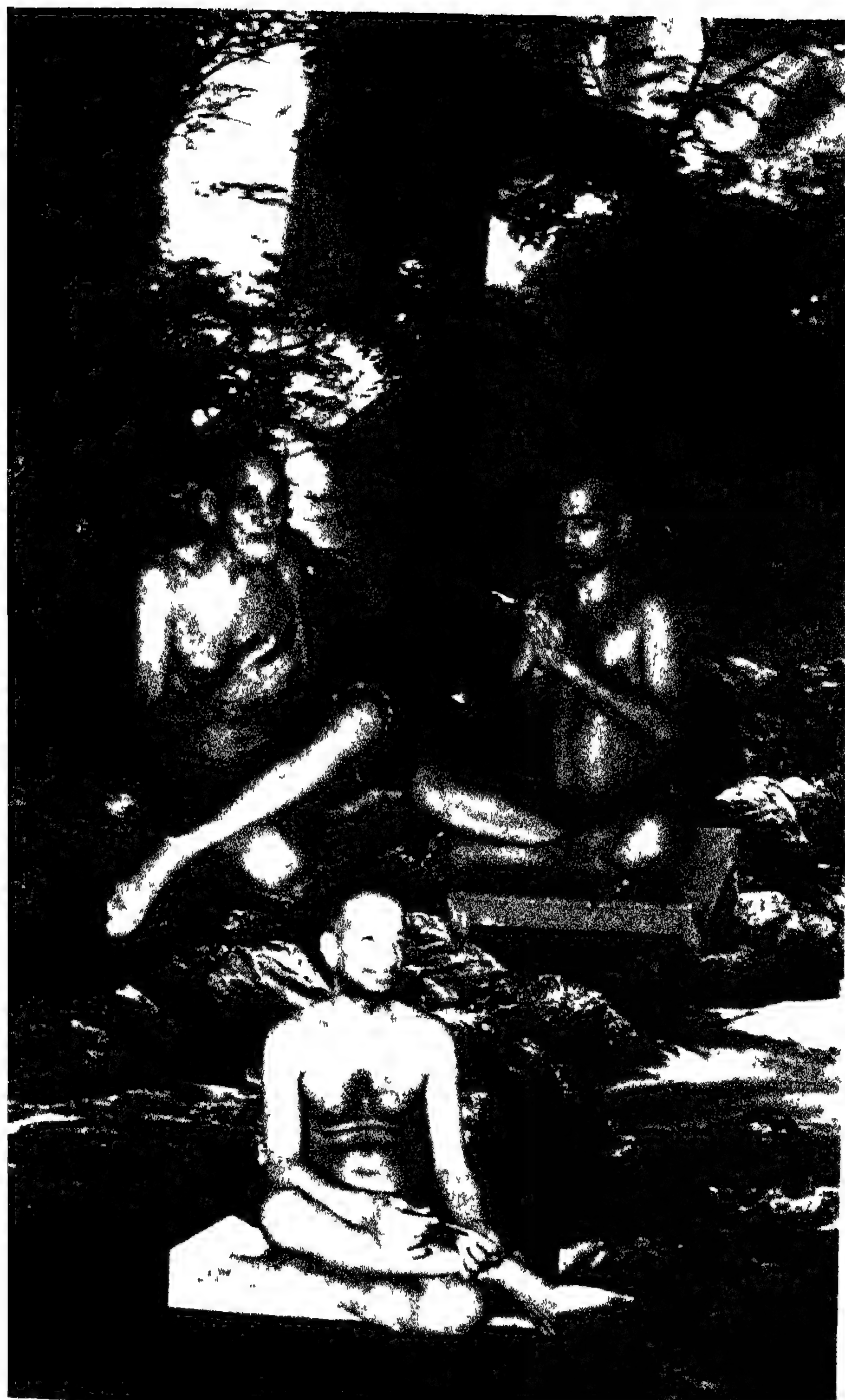
अनुक्रमणिका



कान्तिलालजी कोटड़िया



हीरालालजी कोटड़िया [जवेरी]



सामायिक :

लोहे से पारस की यात्रा

चतुरावर्तत्रितम श्चतुः प्रणाम स्थितो यथाजातः ।
सामायिको द्विनिषद्य-स्त्रियोर शुद्धस्त्रि सन्ध्यमभिवन्दी ॥ १३९ ॥

जो चारो दिशाओं में तीन-तीन आवंत और एक-एक कायोत्सर्ग तथा चार प्रणाम कर मुनि के समान यथाजात (नग्न मुद्रा) मुद्रा से खड्गासन या पद्मासन लगाकर काय को शुद्ध रखकर सुबह-दोपहर संध्या के समय सामायिक करने वाला तीसरी प्रतिमा का धारक श्रावक कहलाता है ।

किसी ने एक दिन पूछा था ? सामायिक से क्या लाभ है ? मैं लोगों से कहता हूं कि यह पूछो कि सामायिक ध्यान न करने से क्या हानि है ?

सामायिक :

लोहे से पारस की यात्रा

एक घटना आपसे कहूं-एक सम्राट को खबर मिली कि नगर के बाहर सदियों पुरानी झील में पारस-पत्थर है। तो राजा झील पर गया, उसका निरीक्षण, सर्वेक्षण किया। झील काफी चौड़ी और काफी गहरी थी। पानी भी बहुत था। राजा ने काफी श्रम किया, पुरूषार्थ किया, पारस-पत्थर को खोजने में। झील में उसने हाथियों के पैरों में लोहे की जंजीरे बंधवाकर चलवाया-क्योंकि झील गहरी है, हाथी ही चल सकते थे। हाथी चले। एक हाथी की जंजीर सोने की होकर वापस लौट आयी। तो, इतना तो पक्का हो गया कि झील में पारस-पत्थर है, मगर उसको खोजे कैसे? बहुत हाथी चलाये, एक हाथी की जंजीर छू गयी संयोगवशात्। उस झील तक न मालूम कितने लोग पारस-पत्थर की खोज में सदियों से आते रहे हैं।

सम्राट स्वयं झील में नहीं गया, अगर गया होता तो पारस-पत्थर खोज लाता। आप स्वयं सामायिक-ध्यान नहीं करते, सामायिक-ध्यान करने वालों की मदद करते रहते हैं, इसलिए सन्तगण परमात्म-तत्त्व को उपलब्ध हो जाते हैं। सामायिक पारस-पत्थर है जो इसमें प्राणपण से डूबता है, वह स्वर्ण हो जाता है, पवित्र हो जाता। कामना-वासना का कालापन, लोहापन नष्ट हो जाता है। संसार में अर्जित किये पाप ध्यान-सामायिक से धुल जाते है, विलीन हो जाते हैं।

भगवान महावीर कह रहे हैं अभी तुम लोहा हो, लेकिन सोना हो सकते हो। जागो तो सोना हो जाओ। बल्कि मैं तो यहां तक कहता हूँ तुम

स्वयं पारस-पत्थर हो । उसके ऊपर काम-क्रोध-लोभ-मोह के वस्त्र पड़े हुए हैं। सामायिक में गहरे उतरो और अपने पारस-पत्थर को पहिचानो । उसके एक एक आवरण को खोलो । यह क्षमता आपके भीतर है । अगर सामायिक में गहरे उतरने की क्षमता आ जाये तो तुम भी पारस हो सकते है ।

किसी ने एक दिन पूछा था सामायिक से क्या लाभ है ? मैं लोगों से कहता हूँ कि यह पूछो कि सामायिक-ध्यान नहीं करने से क्या हानि है ? आप लाभ के बारे में क्यों पूछते हैं । अभी आपके पास बनियां का दिल है, भक्त का दिल नहीं हैं । धर्म कोई सौंदा थोडे न है कि तय कर लिया और लाभ हुआ तो खरीद लिया । धर्म को समझने की कोशिश करो, लाभ-हानि की भाषा छोड़ो । समर्पण की भाषा सीखो । जो स्वयं को खो देता है, वह स्वयं को पा लेता है । समर्पण की भाषा में हानि भी, लाभ हो सकता है, कांटे भी फूल हो सकते हैं । लाभ-हानि की गणित की भाषा छोड़ो । गणित धर्म से बहुत दूर है, पूजा-भक्ति-समर्पण की भाषा सीखो, वह धर्म के बहुत निकट है । बाजार मैं रहने दो, दुकान की भाषा दुकान में रहने दो । बाजार की भाषा वही चलती है, धर्म में नहीं, प्रार्थना में नहीं । अभी तो दो प्रेमियों में भी समर्पण की भाषा नहीं चलती, वहां भी गणित, वहां भी हिसाब, वहां भी लाभ-हानि कुरूप-सुरूप की चर्चा चलती है । मां-बेटे के बीच भी वही लाभ-हानि की चर्चा चलती है, भाई-भाई के बीच भी वही चर्चा चलती है, पंडित और पुजारियों के बीच भी वही चर्चा लाभ-हानि की चलती है, मित्र-मित्र के बीच भी यही चर्चा चलती है । हमने तो सारी जिन्दगी को बाजार बना दिया है । हमने तो हर चीज को दुकान बना दी है । इसलिए मंदिर में भी, धर्म में भी बाजार घुस आता है । इसलिए धर्म को समझने में असमर्थ हो गये हैं । हमारी पहिचान खो गई हैं । और वो समर्पण को समझने में असमर्थ है, सामायिक को समझने में असमर्थ है वो पारस-पत्थर को, परमात्मा को न पायेगा । क्योंकि परमात्मा परम समर्पण है ।

यह अस्तित्व है, परम सत्य है परमात्मा इस समर्पण के अस्तित्व में छिपा हुआ है । यू समझे ···· ····। आकाश से गिरती हुई बून्दों की टपटप इसमें आपको अगर पानी ही पानी दिखाई पड़े एच, टू, ओ - तो आपको परमात्मा कहां मिलेगा ? पानी का कितना ही विश्लेषण करो, एच. टू. ओ तो मिलेगा, परमात्मा नहीं मिलेगा । लेकिन एक और तरीका है छप्पर पर गिरती हुई बून्दों को सुनने का । एक और दृष्टि हैं, एक और भाव-दशा हैं- तल्लीन होने की, तन्मय होने की, तब इस बून्दाबांदी में छुपा संगीत पकड़ में आयेगा । तब इस बून्दाबांदी में आप अनुभव करेंगे कि कुछ H_2O के पार,

विज्ञान के पार। तब आपको इस पृथ्वी की प्यास भी दिखाई पड़ेगी, और आकाश की उत्कण्ठा भी, पृथ्वी की प्यास को बुझाती नजर आयेगी। और गहराई में जाओगे तो पाओगे कि जगत में सारा पुद्गल परमाणुओं का परिणमन रूप खेल हैं। सारा अस्तित्व एक-दूसरे में जुड़ा हुआ हैं। जो अनेक रूपों में अभिव्यक्त हो रहा है। विज्ञान से हटो, बनिया बुद्धि से ऊपर उठो, तर्क को त्यागो, समर्पण में पगो, श्रद्धा-भक्ति में उतरो, ध्यान-सामायिक में डूबो तो अपने अस्तित्व का, परमात्म अस्तित्व का अनुभव पा जाओगे। परमात्मा के मंदिर में प्रवेश की तीन सीढ़िया हैं, सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान, सम्यक् चारित्र या ज्ञान-ध्यान-सामायिक का ग्रहण और मिथ्या श्रद्धा, तर्क, विज्ञान से छलांग लो और श्रद्धा-भक्ति समर्पण में डूबो।

तो मैं कहता हूं कि सोना हो सकता हैं लोहा; लोहा पारस भी हो सकता है। मगर आप तो हैं वह लोहा जिसमें पूर्वाग्रह की जंग लगी हैं। सत्संग करो तो सोना हो जाओ। सत्संग पूरा हो जाये, यानि अन्तरंग-बहिरंग परिग्रह का पूर्णतया त्याग हो जाये तो पारस भी हो सकते हो। पारस होना तुम्हारी संभावना हैं। लेकिन मिथ्या परम्पराओं से ऊपर उठना होगा, सत्संग करना होगा, सम्यक् आचरण अपनाना होगा, ध्यान-सामायिक को अंगीकार करना होगा। सामायिक की यात्रा लोहे से पारस तक की यात्रा है। बस इस यात्रा के लिये समर्पण चाहिए, दीवानापन चाहिए। बुद्धि तो भ्रम पैदा करती हैं, हृदय चाहिए, उर की भावुकता चाहिए इस यात्रा के लिए। बुद्धि यानि तथ्य की सीमा। हृदय यानि सत्य में प्रवेश।

समर्पण का, प्रेम का मार्ग पकड़ो। तर्क का नहीं, प्रीति का मार्ग पकड़ो। गहन श्रद्धा की गांठ बांधो। प्रेम के फेरे यानि आचरण के फेरे जब तक नहीं लोगे तब तक आत्मा से, परमात्मा से, धर्म से कोई सम्बन्ध न हो सकेगा। परमात्मा के साथ फेरे सामायिक के काल में ही संभव हैं।

सामायिक और ध्यान अध्यात्म के प्राण हैं। धड़कन के बिना प्राण और प्राण के बिना शरीर का अस्तित्व नही हैं, महत्व नहीं हैं। प्रकाश के बिना ज्योति का, तथा ज्योति के बिना दीपक का महत्व नहीं हैं। बस इसी प्रकार सामायिक और ध्यान के बिना तपश्चरण का महत्व नहीं है। ये निवृत्ति के मार्ग हैं। साधक पूर्ण निवृत्ति को उपलब्ध हो जाता हैं तो स्वयं में स्वयं के द्वारा पारस-पत्थर का, परमात्मा का अनुभव करने लग जाता हैं।

सामायिक की भूमि में ही समता के अंकुर उगते हैं। सामायिक का अर्थ हैं समत्व भाव की साधना, समतापूर्ण आचरण, विषम भाव का अभाव

मानसिक ज्वर की उपशांति, ईर्ष्या, द्वेष, विग्रह, कलह आदि का उपशमन हो जाना सामायिक है। वैसे सामायिक का व्युत्पत्ति, अर्थ है—सम+अय= समाय अर्थात समभाव की आय, आमदनी या उपार्जन जिस साधना से हो उसी का नाम सामायिक है।

श्रावक के लिए सामायिक करना अनिवार्य है और श्रमण के लिए ज्ञान-ध्यान आवश्यक है। इसीलिए श्रावक शब्द की निष्पत्ति श्रम से हुई है। जो अपनी आत्मोपलब्धि के लिए श्रम यानि पुरुषार्थ करता है, वही श्रमण और श्रावक है। इसलिए जैन धर्म में, दोनों को समता का धारी बताया है। क्योंकि दोनों ही समभाव के आराधक-उपासक होते हैं। श्रमण शब्द का दूसरा अर्थ होता है समता में रम रहा है मन जिसका, वही है श्रमण। अर्थात जिसका मन समता के नीर से भरा हुआ है वही श्रमण है।

श्रावक सामायिक के माध्यम से आत्मिक संस्कार डालता है, पुण्यास्रव करता है और श्रमण ध्यान के माध्यम से पाप की निर्जरा करता है। इतना अवश्य है कि श्रावक को ध्यान की सिद्धि नहीं होती। क्योंकि ध्यान का बाधक तत्व है परिग्रह, और श्रावक में उसका सद्भाव होता है और मुनि में परिग्रह का पूर्ण अभाव होता है। इसलिए मुनिराज ही ध्यान के अधिकारी होते हैं।

अमितगति आचार्य ने श्रावकों को, गृहस्थी को पापारंभ से बचाने के लिए, आत्मिक-संस्कार डालने के लिए सामायिक करने को कहा। यदि एक श्रावक प्रतिदिन नियमित् रूप से सामायिक करता है, आत्म-चिन्तन करता है तो उसके जीवन मे निश्चित ही सन्यास घटित होता है। उसकी आस्था प्रगाढ़ होती है। गृहस्थाश्रम में समता के बीज के लिए सामायिक का विधान है और मुनिपद में आत्म-स्वभाव में स्थिर होने के लिए ध्यान का विधान है। अगर एक गृहस्थ मात्र स्वाध्याय करता है, सामायिक आदि नहीं करता तो उसके जीवन में समता का जागरण नही होता। आत्मिक संस्कार डालने के लिए गृहस्थाश्रम में सामायिक करना अनिवार्य है। इस सम्बन्ध में रत्नकरण्ड श्रावकाचार में आचार्य समन्तभद्र कहते है

चतुरावर्त्त त्रितयश्चतु: प्रणामा स्थिति यथाजात:
सामायिको द्विनिषद्य-स्त्रियोग शुद्ध-स्त्रिसंध्य मभिवन्दी ॥ 139॥

जो चारों दिशाओं में तीन-तीन आवर्त और एक-एक कायोत्सर्ग तथा चार प्रणाम कर मुनि के समान यथाजात (नग्न मुद्रा) मुद्रा से खड्गासन या पद्मासन लगाकर, काय को शुद्ध रखकर, सुबह-दोपहर संध्या के समय सामायिक करने वाला तीसरी प्रतिमा का धारक श्रावक कहलाता है।

आचार्य कह रहे हैं कि सामायिक कब और कैसे करना चाहिए, तथा सामायिक करने का अधिकारी: पात्र कौन है ? आपका प्रश्न हो सकता है कि ध्यान और सामायिक तो सहज क्रिया है, उसके लिए बन्धन कैसा ?

ध्यान और सामायिक उनके लिए सहज है, स्वाभाविक है जिसने अपने मन को वश में कर लिया है, वासनाओं को पूर्णतया जीत लिया है। समता ही जिनकी जीवन चर्या बन गई है। आचार्य तो आपके ऊपर सामायिक के संस्कार डालने के लिए, पाप क्रिया से मुक्त कराने के लिए समय का निर्धारण कर रहे हैं। जिसका मन चौबीसों घण्टे आरंभ-परिग्रह में संलग्न है उससे मुक्त कराने के लिए, यथाजात मुद्रा का स्वाद चखाने के लिए समय से बांध रहे हैं। काटा निकालने के लिए काटे को स्वीकार करना पड़ता है। **बच्चू** को प्रारंभ में स्कूल पहुचाने के लिए बिस्कुट, चाकलेट का प्रलोभन देना पडता है, ताकि उस प्रलोभन में स्कूल-आने-जाने की आदत पड जाये। आदत पड जाने पर वह बिना बिस्कुट, चाकलेट के स्कूल चला जाता है। तो श्रावक को प्रारभिक अवस्था मे बांधने के लिए आचार्य ने समय का विधान और सामायिक की विधि का विधान किया है। अहकार को तोडने के लिए, चार कषाय से मुक्त होने के लिए चार चार प्रणाम करने को कहा। मिथ्या दर्शन-मिथ्याज्ञान-मिथ्या-चारित्र से मुक्त करान के लिए तीन-तीन आवर्त करने को कहा है। परमात्मा परम-पावन, परम-शुद्ध है इसलिए मन वचन-काय को शुद्ध रखने का इशारा किया है।

आत्म-गुणो के विकास का इच्छुक श्रावक उत्साह पूर्वक अपने को धन्यभागी समझते हुए सामायिक को अगीकार करता है। सामायिक करने के पूर्व वह सविनय चारों दिशाओ मे स्थित जिनालयों व पच परमेष्ठीयों को तीन-तीन आवर्त पूर्वक प्रणाम करता है। तथा प्रत्येक दिशा में नौ-नौ बार णमोकार मत्र पढकर कायोत्सर्ग करता है। और समस्त विकल्पों का त्यागकर सामायिक में डूब जाता है। आगम का कथन है कि अगर एक बार भी, एक समय को भी सामायिक मे डूब जाता हैं तो उसका जीवन धन्य हो जाता है। श्रावक का अमूल्य धन सामायिक है। सामायिक में स्थित होने के लिए अमितगति आचार्य ने सामायिक पाठ की रचना की हैं। श्रावक सामायिक मे क्या चिन्तन करे, ? कैसा चिन्तन करे, ? तथा किस बात का चिन्तन करे, ? इन्ही समस्त बातो का उल्लेख सामायिक पाठ में किया गया है।

आत्म-उत्थान कैसे हो, अहिंसा का समीचीन पालन कैसे हो, परमात्म मंदिर में, जीवन-मदिर मे प्रवेश कैसे हो, इन सब प्रश्नो का समाधान

सामायिक पाठ में किया गया हैं। जीवन-विकास के मूल सूत्रों का वर्णन किया गया हैं। ये सूत्र है-**भावना, आत्म शुद्धि, उपासना, आत्म साधना**

सामायिक की लेबोरेट्री में जाकर ही श्रावक आत्मा की चिकित्सा और उपचार करता है। स्वयं ही मरीज और स्वयं ही डाक्टर होता है। चार प्रकार की औषधि का सेवन करता हैं।

प्रथम सूत्र है भावना : जिन्हें बार-बार, पुन-पुनः भाया जाये उन्हें भावना कहते हैं। अस्वस्थ्य आत्मा को स्वस्थ्य बनाने के विचारों को भी भावना कहते हैं। प्रथम परिच्छेद में चार भावनाओं का वर्णन किया गया हैं, उसके पश्चात् विषमताओं और अनुकूलताओं में समता रखने की प्रेरणा दी हैं। समता कैसे आये ? इसके लिए श्रद्धा का दीपक जलाकर आत्मा की अनन्त शक्ति का ज्ञान कराया हैं, तथा उसकी पूर्ति हेतु हृदय वेदी पर परमात्म चरण को स्थापित करने का निर्देश दिया हैं। कामनाओं की तमिस्रा को नष्ट करने और समता का सूर्योदय हो इसके लिए प्रथम भावना को रखा हैं।

दूसरा सूत्र आत्म शुद्धि : साधक की आत्मा अपावन हैं और परमात्मा पावन हैं, कही परमात्मा का अपमान अनादर न हो जाए, इसलिए उसके सम्मान के लिए स्वच्छ, पवित्र आसन के सृजन की बात कह दी। मिथ्यात्व का वमन और कामना-वासना का विरेचन कराना आवश्यक हैं। इसलिए आत्मा में स्थित दोषों के पहाड़, भूलों की नाली से अतिचारों के कीटाणुओं को बाहर निकालने के लिए प्रायश्चित की बुहारी के द्वारा आत्म-आलय को साफ करने का निर्देश दिया हैं। आलोचना, निन्दा, गर्हा, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, क्षमायाचना द्वारा आत्म-गन्दगी को दूर करने की विधि बतलाई हैं।

तीसरा सूत्र उपासना : गन्दगी से मुक्तात्मा में परमात्मा की आराधना-उपासना, पूजा-भक्ति की विधि का वर्णन किया हैं। ताकि परमात्मा की उपासना से शेष रही-सही गन्दगी भी साफ हो जाये। साधक अपने-आत्म-मंदिर में परमात्मा को विराजमान कर, परम श्रद्धा-भक्ति से स्वयं को समर्पित करके भक्ति करने का निर्देश दिया हैं। यहां साधक की साधना का फल प्राप्त होता हैं। तृतीय औषधि आत्म रुग्नता को समाप्त कर आत्मिक आनन्द को लाती हैं, निरोग बनाती हैं।

चौथा सूत्र आत्म साधना : कभी कभी साधक मोह वश, चारित्र मोह के उदयवशात् आत्म-स्खलित हो जाता हैं। परिवार का व्यामोह वापस संसार में बुला लेता हैं, इसलिए चौथी औषधि का सेवन कराते हुए संसार

शरीर और मोहीजनों की वास्तविक स्थिति से परिचय कराकर उनसे सदैव के लिए ममत्व छुड़ाते हैं। आत्म-स्थिति के बाहर चलने वाले विकल्पों से मुक्त कराते हैं। ये संयोग-वियोग तेरे नहीं हैं। कषायों और परभावों की तूफानी हल-चल से अपनी नौका को सुरक्षित रख, जीवन नौका में मन और इन्द्रिय के द्वार से विषय-सलिल को प्रवेश मत करने दे। बाह्य उपकरणों से भी ममत्व भाव को छोड़कर स्वयं के आत्म-प्रांगन पर स्थित हो जा और निर्मल परिणामों की हवा का आनन्द ले और आत्म-रस को भी इस बात का निर्देश किया है।

सामायिक पाठ में समता योग की परम चिकित्सा द्वारा साधक को जन्म-मरण के दुख से मुक्त कराया है। सामायिक की गहराई में ले जाकर स्वयं की पारस मणि से परिचय कराया है। आप भी अपने लोहे को स्वर्ण ही क्यों पारस-पत्थर बना सकते है। अगर प्रतिदिन सामायिक पाठ की सूक्ष्म यात्रा में, रसपान में शामिल होते आते रहे तो तुम्हारी पहिचान पारस-पत्थर से होगी, उसकी कसौटी तुम्हारे हाथों से होगी। पता नहीं कब जीवन की यात्रा में ये लोह-चरण पारस-पत्थर के निकट से गुजर जाये और तुम पारस-पत्थर को पहिचान भी न सको। कम से कम पारस-पत्थर की पहिचान करना सीख लो, उसे पहिचानने की कला जान लो। ताकि कभी अवसर आये तो यह लोहा भी पारस की यात्रा पर निकल सके।

बस आज इतना ही

आदिनाथ दिगम्बर जैन नया मंदिर
प्रतापगढ़ (राज.)

दि. ४-८-९१,
रविवार

१

प्रेम की फुहार

....धर्म की अनुभूति का द्वार है–मैत्री । परम प्रेम । धर्म की अनुभूति होती ही नहीं किसी और ढंग से । धर्म बुद्धि नहीं, हृदय है और हृदय तर्क की नहीं, समर्पण की, प्रेम की, मैत्री की भाषा समझता है । हृदय तर्क के नीर को प्रवेश ही नहीं देता । हृदय तो समझता है प्रेम को, प्रीति को, मैत्री को । प्रेम की तरंगे वहां तक पहुंच जाती है । तर्क तो पत्थरों की भाँति बोझिल हैं, भारी है। उठ ही नहीं पाता । प्रेम में पंख हैं । प्रेम उड़ान भर सकता हैं । तभी तो प्रेमी और प्रेयसी जरा दैहिक प्रेम में चाँद तारों की उड़ान भरने लगते है । प्रेम शरीर के भीतर छिपी आत्मा हैं । तेरे मेरे के अहंकार रुपी अस्त्र उतारोगें तो मैत्री से पहिचान होगी और वह पहचान द्वार है परमात्मा का ।

....सामायिक का अर्थ हैं जो समय भौतिकता को, संसार को नहीं दिया गया, बल्कि आत्मा को दिया हैं; स्वयं को दिया हैं, उसका नाम है सामायिक । सामायिक एक कसौटी हैं जिस पर स्वयं को कसा जाता है ।

मूलपद्य — सत्वेषु मैत्री गुणिषु प्रमोदं
क्लिष्टेषु जीवेषु कृपा-परत्वम् ।
माध्यस्थ्य-भावं विपरीत-वृत्तौ,
सदा ममाऽऽत्मा विदधातु देवः ॥ १ ॥

हिन्दी पद — हो मैत्री भाव मेरा सब प्राणियों पर,
प्रमोद भाव हो नित्य गुणी जनों पर ।
कारुण्य भाव हो दीन दुःखी मनों में,
मध्यस्थ भाव धारूं मैं विरोधियों पर ॥

अन्वयार्थ :		
देव	—	हे भगवन्
मम-आत्मा	—	मेरा आत्मा
सदा	—	सदा
सत्वेषु	—	सर्व प्राणियों पर
मैत्रीम्	—	मैत्री भाव को
गुणिषु	—	गुणी जनों पर
प्रमोदम्	—	प्रमोद भाव को
क्लिष्टेषु जीवेषु	—	दुःखी जीवों पर
कृपा-परत्वम्	—	करुणा भाव को
विपरीत-वृत्तौ	—	और विपरीत वृत्ति वाले
माध्यस्थ्य-भावम्	—	मध्यस्थ्य भाव को
विदधातु	—	धारण करे

भावार्थ — हे जिनेन्द्र ! मेरा सब प्राणियों पर सदा मैत्री भाव रहे गुणी जनों को देखकर प्रमोद भाव उत्पन्न हो. दुःखी जीवों पर करुणा भाव रहे और विपरीत आचरण करने वाले लोगों पर माध्यस्थ भाव रहे। हे देव ! मुझे ये चारों गुण दीजिए ।

१

प्रेम की फुहार

एक घटना आप से कहूं, सर्दी का मौसम था, एक दम्पत्ति को अकेलापन अखर रहा था। वह अपनी पत्नी को लाने के लिए ससुराल के लिए रवाना हुआ। जंगल का मामला था। पैदल ही जाना पड़ता था। बेचारा ठिठुरा ठिठुरा सा चल रहा था। रास्ते में सर्दी से ठिठुरा हुआ और अकड़ा हुआ उसे एक सांप दिखाई पड़ा। पथिक करूणावान था, दयालु था। सांप को देखते ही द्रवित हुआ करूणा का स्रोत बह पड़ा। उसने उसे कम्बल में लपेटा और बगल में दबा चल पड़ा। सांप की सर्दी दूर हुई। गर्मी पहुंची। स्फूर्ति आ गई। यह देखकर पथिक ने उसे जमीन पर छोड़ दिया। लेकिन सांप फुफकारता हुआ उसके सामने आया और बोला .. मैं तुम्हे डसूंगा। पथिक ने कहा भाई मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है जो तुम मुझे डसोगे? बल्कि मैंने तुम्हें मरने से बचाया है, तुम्हारे ऊपर दया की है और तुम उस उपकार का बदला इस प्रकार से चुकाना चाहते हो।

सांप ने कहा, मैंने तुमसे कब दया की भीख मांगी थी? मैंने कब दया की याचना की? तुमने अपना कर्तव्य निभाया है, अब में अपना फर्ज निभाऊँगा। बिना काटे तो मैं नहीं रहुँगा।

अन्ततोगत्वा पथिक ने कहा, वैसे तुम्हें काटना तो नहीं चाहिए, यदि काटना ही है तो ससुराल जाकर आने दे। लौटते समय काट लेना।

सांप ने यह बात स्वीकार कर ली। पथिक ससुराल पहुंचा, मगर वह मन ही मन उदास और खिन्न था उसने इस सम्बन्ध में किसी से कुछ भी नहीं कहा, और कुछ दिन ठहर कर पत्नी को साथ लेकर लौटा। सांप तो उसका इन्तजार कर ही रहा था। पथिक ने सर्प से कहा, लो मैं आ गया हूँ, तुम अपना फर्ज निभाओ, अपनी प्यास पूरी करो, लो काटो मुझे।

अप्रत्याशित दुदृश्य देखकर पत्नी घबड़ा गई । उसने सर्प को हाथ जोड़कर कहा हे नागदेव ! मैं छोटी हूँ ये ही मेरे स्वामी है, इनके बिना मैं कही की भी नहीं रहूँगी। आप मुझ पर दया करे, और मेरे पति को ना काटे।

हे नागदेव ! मैं आपका जीवनभर उपकार मानुंगी । प्रतिदिन आपकी पूजा करूँगी।

सांप ने कहा मैं तुम्हारा प्रबन्ध किये देता हूँ। पति के अभाव में भी तुम्हें जरा भी कष्ट नहीं होगा। मैं तुझे एक जड़ी बूटी दूंगा, जिससे दुनियां तुझे पूजेगी।

पत्नी ने कहा, पति ही पत्नी का सुख है सौभाग्य है। उसके बिना सारा संसार बेकार है। क्या तुम्हारी बूंटी मुझे इस भयंकर कष्ट से बचा सकती है ?

सांप ने स्त्री की बात सुनी—अनसुनी कर दी और वह बूटी लेने चल दिया। थोड़ी सी देर में वह बूंटी लेकर आ गया। उसने स्त्री को बूंटी देते हुए कहा, जो तेरा कहना न माने, उसी पर यह डाल देना। वह तुरन्त भस्म हो जायेगा।

स्त्री समझदार थी। उसने सांप से बूंटी लेकर कहा, तुझ से बड़ा मेरा दुश्मन और कौन होगा ? और उसने सांप पर ही वह बूंटी डाल दी। उसी समय सांप भस्म हो गया।

आइये अब कहानी क्या कहती है, उसे सुने, उसके इशारे को समझे। हर प्राणी अपने कर्म का फल पाता है। जो जैसा करता है, वैसा फल पाता है। जो दूसरों का भला करता है, और एवज में पुरस्कार नहीं चाहता, निश्चित ही उसका भी भला होता है। मैत्री, प्रमोद, करुणा जीवन के लिए महामंगल है। कहानी चार रुपों में चार रंगों में अपने सुमन खिला रही है कि पथिक के भीतर मैत्री का भाव था, गुण ग्रहण का प्रमोद भाव था, दुखी के प्रति करुणा का भाव था और दुश्मन के प्रति माध्यस्थ भाव था। पथिक ने अपनी मित्रता का लोभ नहीं किया, सर्प के दुर्व्यवहार के प्रति मध्यस्थ रहा। और सर्प अपनी दुर्जनता के

सारे असूल निभाता रहा । अन्त में नुकसान किसका हुआ ?

आचार्य अमितगति भी इस पद्य के माध्यम से, आत्मविकास के हेतुओं को उजागर कर रहे है । विश्व बन्धुत्व, विश्व प्रेम की भावना के ये बीज है । इन्ही के भीतर से परम प्रेम, विश्व प्रेम, परमात्म प्रेम का वृक्ष उत्पन्न होगा ।

मैत्री प्रमोद करुणा और माध्यस्त भाव ये आत्म विकास के चार आयाम है । चार पायदान है, चार दर्पण है । परमात्व तत्व को उपलब्ध करने वाले के लिए इन चारों पथों से, मार्गो से गुजरना अनिवार्य है । इन चार सुमनों की सुगन्ध लेने वाला ही विश्व में एकता को कायम रख सकता है । विश्व प्रेम के जल के सिंचन से ही आत्म-सौन्दर्य का उपवन महकता और पल्लवित होता है । ये चार गुण आचरण-वान के भीतर, ध्यान-सामायिक करने वाले के भीतर प्रकट होते है ।

प्रथम सूत्र है-मैत्री । यह बहुत प्यारा शब्द है, इसका कोई अपोजिट, विरोधी शब्द नहीं है । मित्रता शब्द का अपोजित है शत्रुता, मैत्री शब्द एलॉन अकेला है प्रेम और मैत्री में अन्तर है । मैत्री पानी से भरे बादल है और प्रेम बरसा हुआ पानी है । वैसे अभी आप प्रेम की परिभाषा नहीं जानते है । आपका किसी व्यक्ति के साथ जो सम्बन्ध है वह प्रेम नहीं है । अह मात्र रिलेशन है सम्बन्ध है । प्राणी मात्र के प्रति प्रेम होता है । जिसे मैत्री भी कह सकते है । मैत्री यानि परम अहिंसा । पातंजलि योगदर्शन में अहिंसा की परिभाषा स्पष्ट करते है कि

"अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधो वैर त्यागः"

जिसके हृदय में अहिंसा प्रतिष्ठित हो जाती है उसके सान्निध्य में आने वाले कितने भी क्रूर जीव क्यों न हो, परम विरोधी हो वैरभाव भूल जाते है । किसी ने मैत्री शब्द का अर्थ किया है "परहितचिन्ता मैत्री" दूसरो के हित के बारे में सोचना विचार करना दूसरों का उत्थान कैसे हो, अन्य प्राणी का कल्याण कैसे हो अन्य प्राणी सुखी कैसे हो, ऐसे विचार करना मैत्री भाव है । धर्म संग्रह ग्रन्थ में लिखा है "सुखचिन्ता मता मैत्री" दूसरे प्राणियों के वास्तविक सुख की भावना करना मैत्री भाव है । तत्वार्थ राजवर्तिक ग्रन्थ में आचार्य अकलंक देव लिखते है :-

"परेषां दुखानुत्पत्याभिलाषा मैत्री" दूसरों को दुख न हो, मेरे कारण किसी भी प्राणी का अहित न हो ऐसी अभिलाषा रखना मैत्री है ।

प्रेम के सम्बन्ध में जिसस के दो वचन है । अपने शत्रु को अपने ही तरह प्रेम करो, और एक है कि अपने पड़ोसी को भी अपने ही तरह प्रेम

करो। बात बड़ी महत्वपूर्ण है-शत्रु से प्रेम करना आसान है. लेकिन पड़ौसी से प्रेम करना बहुत कठिन हैं। बहुत मुश्किल है । उससे तो प्रतिस्पर्धा है। उससे प्रेम ? उससे तो ईर्ष्या है । उससे प्रेम ? उससे तो छाती जलती है। उससे प्रेम ?

इसीलिए तो आचार्य कह रहे है सबके प्रति मैत्री, सबके प्रति प्रेम चाँद-तारों से प्रेम, सूरज से प्रेम, पहाड़ों से प्रेम, नदियों से प्रेम वृक्षों से प्रेम, पक्षियों से प्रेम, पशुओं से प्रेम, मनुष्यों से प्रेम, अपनों से प्रेम, परायो से प्रेम। जितना प्रेम सन्तो-भगवन्तों के प्रति हैं उतना प्रेम समस्त प्राणियों के प्रति हो जाए। फैलाओं अपने प्रेम को । समष्टि के प्रति प्रेम हो जाए, तो प्रार्थना बन गया, भजन बन गया, आराधना बन गया, पूजन बन गया, भक्ति बन गया, ध्यान बन गया, सामयिक बन बन गया । बस इसी मैत्री और प्रेम के पात्र में परमात्मा का अमृत बरसेगा ।

धर्म की अनुभूति का द्वार है-मैत्री । परम प्रेम । धर्म की अनुभूति होती ही नही किसी और ढ़ग से । धर्म वृद्धि नहीं हृदय है और हृदय तर्क की नहीं, समर्पण की, प्रेम की, मैत्री की भाषा समझना है। हृदय तर्क के ओर को प्रवेश ही नही देता ! हृदय नो समझता है। प्रेम की प्रीति को मैत्री को। प्रेम की तरगें वहां तक पहुंच जाती है। तर्क तो पत्थरों की भांति बोझिल है, भारी है उठ ही नही पाता । प्रेम में पख है, प्रेम उड़ान भर लेता है। तभी तो प्रेमी और प्रेयसी जरा से दैहिक प्रेम में चांद-तारों की उड़ान भरने लगते है । प्रेम शरीर के भीतर छिपी आत्मा है। तेरे-मेरे के अहंकार रूपी वस्त्र उतारोगें तो मैत्री से पहिचान होगी। और वह पहचान द्वार है परमात्मा का ।

अभी तो आपका प्रेम खेत में खड़े धोखे के आदमी के समान है। दूर से आदमी जैसा लगता है, अगर पास जाकर देखो तो आदमी का पुतला है। पास जाकर उनके कपड़े उतारों। चुड़ीदार पायजामा खीचो तो कुछ भी न पाओगे गाधी टोपी के नीचे सिर्फ काली हडी । वह भी जो बेकार हो चुकी है, किसान के काम की नही रही। वैसा ही आप सबका काम चलाऊ, मोहजन्य, वासनाजन्य स्वार्थपूर्ण प्रेम है। जो लोक-व्यवहार का है। बाजार में उपयोगी है । मनुष्य और मनुष्य के बीच संवाद के लिए जरूरी है । लेकिन संवाद होता कहां है ? विवाद ही होता है । इसलिए आचार्य कह रहे कि मैत्री भाव को उपलब्ध हो जाओ । छोड़ो यह छल-कपट यह बहुरूपियापन। अब हृदय में मैत्री के सागर को, प्रेम की लहरों को जन्म दो। तुम्हारी आंखे, तुम्हारे हाथ, तुम्हारे चरण प्राणी-मात्र को प्रेम बांटने

आतुर हो जाये तो समझना मैत्री का जागरण हो गया, समत्व का जागरण हो गया।

दूसरा सूत्र है "गुणिषु प्रमोदं" संसार के गुणी जनों के प्रति सदा आनन्द भाव रखना, गुण-ग्रहण का भाव रखना। आपके शरीर में आंखे है। वह प्रमोद भाव की प्रतीक है। जब आप चलते है तो आँख ऊबड़-खाबड़ कटीले पथों से बचाती है और साफ-सुथरे, सीधें-सरल, समतल मार्ग को बताती है, जिस पर चलना उसको सुगम होता है। आँख द्वारा बताया साफ-सुथरा-सुगम-समतल मार्ग शीघ्र गन्तव्य पर पहुंचा देता हैं। प्रमोद भावना का भी यही अर्थ है राग-द्वेष ईर्ष्या—जलन. अवगुण दुर्गुण के कंटका–पूर्ण मार्ग को छोड़कर समतल मार्ग को, समत्व मार्ग ग्रहण करो और उस पर चले। अन्यथा दृष्टि–विहिन मनुष्य के समान ठोकरे खाते रहोगे।

मैत्री भावना समस्त प्राणियों के प्रति आत्मीयता-आत्मोपम्य का भाव होना। प्रमोद भावना गुण-सम्पन्न, चरित्र वान आत्म-साधको के प्रति, उनके चरित्र के प्रति, गुणों के प्रति चित्त में आदर का भाव होना, उन्हें देखकर मन गद्गद हो जाए, हृदय तरंगित हो जाए, मन का कोना कोना प्रफुल्लित हो जाए। उनके गुणों को अपने मन में प्रतिष्ठा दी जाए। स्वपर कल्याण साधक मुनियों के प्रति तो गुण ग्राहक दृष्टि होनी ही चाहिए। भगवन्ती आराधना में लिखा है

"मुदिता नाम यतिगुण चिन्ता, यतयो हि विनीता,
विरागा, विभया,विमाना, विरोषा, विरोमा इत्यादिका :।"

संयमी साधुओं के गुणों का विचार करके उनके गुणों के प्रति आल्हाद उत्पन्न होना, उनक प्रति विनयवन्त होना मुदिता भावना है। मुनियों में विनम्रता वैराग्य, निर्भयता, निरभिमानता, रोग-दोष रहितता और निर्लोभता आदि गुण रहते है सर्वार्थ-सिद्धि ग्रन्थ में पुन्यपाद स्वामी लिखते हैं कि ......

"वदन प्रसादादिभिर भिव्यज्यमानान्तर्भा वितराग प्रमोदः।" मुख की प्रसन्नता आदि के द्वारा अन्तर में भावित भक्ति और अनुराग की अभिव्यक्ति होनां प्रमोद हैं।

प्रमोद भावना का बड़ा व्यापक रूप हैं—गुणाधिक व्यक्तियों चाहे वे किसी भी जाति-कुल-सम्प्रदाय, देश, समाज के क्यों न हो, उनके प्रति आदर का भाव रखना, ही प्रमोद भावना हैं। आपका आचरण तो मोर की भांति होना चाहिए जैसे बादलों की गर्जना और वर्षा के आगमन

की संभावना देखकर मोर एकाएक बोल उठते हैं, अपने पंख फैलाकर नाच उठते हैं, उसी प्रकार आप भी गुणीजनों को, धर्मात्मा पुरूषों को, समाज के निष्ठावान एवं व्रतिजनों को देखकर प्रेम से उमंगित-तरंगित हो जाइये, प्रसन्नता से अपने मुख-कमल को खिलाइये।

प्रत्येक संसारी आत्मा में गुण अवगुण, अच्छाई बुराई दोनों हैं। लेकिन इसे भी सच मानिये की गुणविकास आत्मोत्थान की सुख सुविधाओं में वृद्धि होती हैं और अवगुण दर्शन से विकास रूकता हैं, जीवन का ह्रास होता है। अगर अच्छाई दिखाई पड़े चुपचाप ग्रहण कर लेना चाहिए। धूल शोधक यंत्र मिट्टी में से सोना निकाल लेता हैं। क्योंकि उसकी दृष्टि सोने पर रहती हैं। गुण दृष्टि वाला व्यक्ति भी अवगुणो में भी गुण खोज लेता है।

प्रमोद भावना से ओत-प्रोत व्यक्ति भी दूसरे के जीवन की दुर्गन्ध आने नहीं देता बल्कि उनमें से गुणों की सुगन्ध को खोज लेता हैं। गुणग्राही की दृष्टि चींटी की भांति हैं। जैसे चींटी धूल मिश्रित शक्कर में से शक्कर के कण पृथक कर लेती हैं। चुम्बक के आस-पास अनेक प्रकार की वस्तुयें पड़ी होने पर भी वह अपनी ओर मात्र लोहे को ही खींचता है। बस यही स्थिति गुण ग्राही व्यक्ति की हैं। दूसरे व्यक्ति में अहंकार के कण, क्रोध के कण, अज्ञान के पत्थर छल-कपट के कंकर-पत्थर होने के बावजूद भी उनमें से एक को भी ग्रहण नही करता, और उनमें गुण का एक कण भी होगा तो अपना लेना। अपनी ओर खींचकर हृदय से लगा लेगा।

आचार्य द्रोण ने अपने शिष्य दुर्योधन को पास के गांव में जाकर गुण-सम्पन्न व्यक्तियों की जानकारी करने को भेजा। लौटने पर दुर्योधन ने कहा, सारे गांव में एक भी व्यक्ति गुण-सम्पन्न नही हैं। सभी में दुर्गुणो का भण्डार भरा हैं। इसी कार्य के हेतु जब युधिष्ठिर को भेजा तो उन्होंने लौटकर गांव की, गांव के रहवासियों की गुण-गरिमा की काफी प्रशंसा की। दोष तो उन्हें दिखाई भी न पडे। यह सब दुर्योधन की दोषदर्शी वृति एवं युधिष्ठिर की गुणग्राही वृति के कारण हुआ। गुणग्राही दृष्टि के सम्पन्न होते ही जीवन का विकास प्रारंभ हो जाता हैं। गुणग्राही दृष्टि से सबसे बड़ा लाभ यह होता हैं कि आत्म-शान्ति का विकास होता है और आपसी प्रेम प्रगाढ होता है। सन्त-आस्था गहरी होती है, वैराग्य पैदा होने लगता है, ज्ञान बढ़ने लगता है। क्षुद्रता दीनता का नाश होने लगता है। आत्म-शक्ति और क्षमता का विकास होता है। दोष-दर्शन से मात्र आत्मा-

हानि और अशांति का विकास होता है। स्वयं की सौन्दर्य-संवेदना का विकास रुक जाता है। प्रमोद भावना एक ऐसा पराग है जो जीवन-सुमन में सौरभ भरता है और चारों ओर अपनी महक फैलाता है। आप भी अपने भीतर प्रमोद भावना को जन्म दीजिये, कली की भांति खिलियें मुस्कराईये और अपनी सौरभ फैलाईये।

तीसरा सूत्र है 'करुणा'-करुणा हृदय का स्पन्दन है, दिल की धड़कन है। हृदय के अभाव में मनुष्य मृत है। वीणा से संगीत उसके तारों से पैदा होता है। और मनुष्य के अन्दर संगीत करुणा के तारों से पैदा होता है। जिस जीवन के पास हृदय खो जाता है, वीणा के तार खो जाते है, वह हृदय क्षीण हो जाता हैं। फिर उसके पास जो भी सत्य है, जो भी श्रेष्ठ है, जो भी उत्तम है वह सब मर जाता है, विलीन हो जाता है। अगर आप चाहते हैं कि आपके जीवन में परमात्मा का संगीत पैदा हो सत्य-सुन्दर-शिव जीवन में प्रविष्ठ हो तो बिना करुणा के तारों को वापस संजोये कोई रास्ता नहीं हैं। इसलिए मैं करुणा को प्रार्थना भी कहता हूँ, करुणा को प्रभू प्राप्ति का मार्ग भी कहता हूं। करुणा को परमात्मा भी कहता हूं। करुणा के अभाव में प्रार्थना-पूजा-जप-तप, स्वाध्याय सब झूठा हैं। करुणा के अभाव में परमात्म-द्वार मिलता ही नहीं है, करुणा के अभाव में मोह का ताला खुलता ही नहीं है। करुणा सूत्र है-हृदय की वीणा को संगीत पूर्ण बनाने का।

करुणा को समझ लेना जरूरी हैं-हम सब यह सोचते हैं कि हम सब करुणा को जानते हैं। यह भ्रम इतना घातक है कि जिसका कोई हिसाब नही, क्योकि जो चीज जानि-पहिचानी हुई रहती हैं, तो उस दिशा में हमारे कदम नही उठते हैं। उसकी साधना का हम कोई प्रयास नहीं करते हैं। मनुष्य जाति में बड़े से बड़े भ्रम विद्यमान हैं। उनमें एक भ्रम यह भी है कि हम करुणा को जानते है, हम करुणावान है। हर आदमी को यह भ्रम है कि वह करुणा को जानता है। लेकिन उसे यह पता ही नहीं कि जो करुणा को उपलब्ध हो जायेगा, वह परमात्मा बनने की क्षमता को उपलब्ध हो जायेगा, वह परमात्मा बनने की क्षमता को उपलब्ध हो जायेगा। अगर हम करुणा को भली-भांति जानते है तो जीवन में कुछ भी जानना शेष नहीं रह जाता, लेकिन जीवन में सभी कुछ जानना शेष है। जिस दया को हम करुणा समझते हैं, वह कुछ और है, आपसी लोक-लॉज का व्यवहार है। हमने चित्त की किसी और दशा को करुणा-संज्ञा दे दी है। जब तक यह भ्रम न टूटे, तब तक करुणा

की खोज असम्भव है। आचार्य करूणा का स्वरूप बता रहे है, करूणा का प्रारम्भ कैसे हो इसका उपाय बता रहे हैं कि

'क्लिष्टेषु जीवेषु कृपा परत्वम्"

हे भगवन ! मेरी आत्मा पीड़ित जीवों पर सदा करूणा परायण बनी रहे। कितनी सुन्दर भावना है कि संसार के सारे प्राणियों को दुख से मुक्त कर सकूं। उनकी पीड़ा का हरण कर सकूं। और संसार में दुख एक ही है जन्म और मरण का। भ्रमित प्राणी को सम्यक् मार्ग पर लाना, मिथ्यात्व का वमन कराकर सम्यक् दर्शन की औषधि का पान कराना, स्वास्थ्य लाभ पहुंचाना ही करुणा है। करुणा असीम है, उसका कोई पारावार नहीं, उसकी कोई सीमा नहीं। करुणा किसी पंथ से, जाति से, सम्प्रदाय से बन्धी नहीं है। जैसे नीर सबकी प्यास बुझाता है वैसे ही करुणा सबको अपने गले लगाती है, सबके घाव मिटाती है।

करुणा यानि हृदय का जागरण, प्रेम का जागरण, बदलियों का पानी से भर जाना और भूमि पर बरस पड़ना, तृषितो की प्यास बुझाना। मैत्री अकारण है, करुणा सकारण है, प्रमोद भाव में ग्रहण है और माध्यस्थ भाव में मौन का वरण है। चारों का अपने आप में महत्व है। करुणा के सम्बन्ध में एक, विचारक ने कहा है कि

"मुझे किसी पीड़ित मनुष्य से यह पूछने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती कि वह अपने में क्या अनुभव कर रहा है, या कैसा लग रहा है ? बल्कि में स्वयं उसी की भांति पीडित हो उठता हूँ और उसकी वेदना को अपने भीतर महसूस करने लगता हूँ।" यह गुण करुणा पूर्ण मानवता का एक विशेष लक्षण है। दूसरे की वेदना को अनुभव कर सकना, दुख से करुणार्द हो जाना, मानवता के अधिकार में है, धर्मात्मा की परिधि में है। मनुष्य के अलावा अन्य प्राणियों में यह विशेषता नही पाई जाती। पशु दूसरे का दुख-दर्द अनुभव नही कर पाते, कदाचित कर भी ले, तो वे उससे उसे मुक्त नहीं करा सकते। पर मनुष्य ही ऐसा प्राणी है, जो दूसरो के दुख-दर्द में हमदर्द बनता है और उसे दूर करने का प्रयास करता है। मदन मोहन मालवीय के जीवन की एक घटना है —

मालवीयजी किसी अत्यन्त आवश्यक कार्य से जा रहे थे। सड़क के किनारे उन्हें एक बिमार बुढ़िया कराहती हुई पड़ी नजर आई। उन्होंने अपनी गाड़ी रुकवाई और बुढ़िया को अपनी गाड़ी में बिठाकर अस्पताल पहुचाया। साथी वकील ने पूछा-ऐसे मामूली काम के लिए आपको अपना बहुमूल्य समय नष्ट नहीं करना चाहिए था ?

मालवीयजी ने उत्तर दिया-पीड़ितों की सहायता से भी बढ़कर और कौन सा महत्वपूर्ण और आवश्यक कार्य हो सकता है ?

करुणा प्रकाश है, करुणा विकास है, करुणा संगीत है, करुणा निर्द्वन्द है, करुणा निःस्वार्थ है, करुणा में मधुरता है, करुणा में तरलता है, करुणा आत्मीय घटना है।

कारुण्य भाव यानि दुखियों को, कष्टियों को देखकर हृदय सरोवर में करुणा का स्रोत बहने लग जाये । करुणा का स्रोत ही बहकर अन्ततोगत्वा सागर में मिल जाता है।

चौथा सूत्र है माध्यस्थ भाव, यह श्लोक की तृतीय पंक्ति का अन्तिम सूत्र है "माध्यस्थ भाव विपरीत वृत्तौ सदाममात्मा विदधातुदेवः ।" हे जिनेन्द्र देव ! जो जीव धर्म से विपरीत आचरण करने वाले हैं, पापी या दुष्ट है, दुराचरण करने वाले है, जो मेरे प्रतिकूल हैं, मेरे दुश्मन हैं, मेरा अहित करने वाले हैं, उनके प्रति सदा मेरी आत्मा राग-द्वेष रहित माध्यस्थ भाव को धारण करे।

आचार्य कहना चाहते हैं कि जो मेरा बुरा चाहता हो, उसके प्रति भी मेरे हृदय में गलत भाव न आवे। अन्तिम सूत्र कसौटी है मैत्री-प्रमोद और करुणा भाव की । हो सकता है आपकी करुणा अपनों के प्रति बहे, मित्रों के प्रति बहे, अपने सम्बन्धी को देखकर आकर्षित हो जाओ, तो यह सब अधूरी भावना है, अभी इसमें स्वार्थ छिपा है, सीमा में बन्धा हुआ है। अपनी करुणा की परीक्षा करो, उसे कसौटी पर कसो, अपना बुरा करने वाले के प्रति भी मन में बुरा भाव न आये। सदा ममता बनी रहे, राग द्वेष रहित भाव बने रहे।

'मध्यस्थः समः य आत्मानभिव परं पश्यति ।" मध्यस्थ का अर्थ सम है, राग और द्वेष से रहित, अपनी आत्मा की भांति दूसरों को देखना है। तत्वार्थ राजवार्तिक और सर्वार्थसिद्धि ग्रन्थ में लिखा है कि —

"राग द्वेष पूर्वक—पक्षपाताभावो माध्यस्थम्"

किसी के प्रति राग-द्वेष पूर्वक पक्षपात न करना माध्यस्थ भाव है अनुकूल निमित्त मिलने पर उसके प्रति मन में राग उत्पन्न न हो और प्रतिकूल निमित्त मिलने पर उसके प्रति मन द्वेष भाव का उत्पन्न न होना ही माध्यस्थ भावना है।

नीग्रो नेता डा. मार्टिन लूथर किंग के सिर पर किसी ने पत्थर मारा सिर फट गया, सिर से रक्त बहने लगा। घाव धोकर थोड़ी दवाई लगाई और आफिस में जाकर कार्य करने लगे। न किसी को भला बुरा

कहा, न किसी के प्रति रोष प्रकट किया। एक पत्रकार ने पूछा, श्रीमान आप जानते थे कि उपद्रवी हिंसक रुप धारण कर सकते हैं। फिर आप उधर गये ही क्यों? क्या आपको संकटों से ही प्यार हैं?

नीग्रोनेता ने कहा—में चाहता हू कि लोग अपना क्रोध मुझ पर ही निकालते रहे और मैं समता के सागर में डुबकी लगाता रहा रहूं, मैं माध्यस्थ भावना में टिका रहूं। यह है माध्यस्थ भावना का अनुकरण अनुशरण। विषय परिस्थितियों से आत्म-परिणामों को बिगड़ने से रोकना ही पुरुषार्थ हैं। मनुष्य को कम से कम इतना तो अवश्य करना चाहिए कि दूसरो की भावना का यदि आदर न कर सके तो, उसका अनादर भी न करे। यदि आप प्रतिद्वन्दी के प्रनि रोष प्रकट करते है तो कषाय भाव बढ़ते हैं। मन असंतुल्लित होता है, विक्षिप्त हो जाता है। द्वेष के कारण कषाय की ग्रन्थियां प्रगाढ़ हो जाती हैं। जो जन्म-जन्म तक नहीं छूटती और ना ही टूटती हैं। सामाजिक जीवन का स्तर भी गिर जाता हैं, सोचने-समझने का स्तर भी गिर जाना हैं। इसलिए प्रतिकूलताओं में जीना और समत्व भाव रखना ही जीवन का सम्यक् पुरुषार्थ है।

मनुष्य का अधिकांश जीवन वृक्षों के आश्रित हैं। सारा जगत उनका तिरस्कार करता है, उन्हें, जलाता है. फल-फूल पत्तियाँ तोड़ता है, पत्थर मारता है, फिर भी वे सुन्दर-सुन्दर मीठे-मीठे, फलों का दान करते है और मानव की क्षुधा को शांत करते है। और मानव तो वनस्पति से भी गया बीता हैं कि उपकार का बदला अपकार से देता है. ईट का जबाब पत्थर से देता हैं। मनुष्य को अपने पास लौटना होगा, स्वयं में ठहरना होगा और उसके अन्दर जो करुणा का मैत्री का, प्रमोद का, प्रेम का, ममता का झरना सूख गया है पुन: द्रवित करना होगा उसका उपाय सामायिक करे, स्वयं के पास बैठे, स्वयं से पहिचान करे। यह सब भाव सामायिक के समय ही संभव है। आपका प्रश्न हो सकता है कि सामायिक किसे कहते हैं?

सामायिक का अर्थ है जो समय भौतिकता के संसार को नहीं दिया गया बल्कि आत्मा को दिया है स्वयं को दिया है, उसका नाम सामायिक है। सामायिक एक कसौटी है जिसमे स्वयं को, अपने आपको कसा जाना है।

सामयिक साधक की साधना का प्राण है। जिस प्रकार दीपक से प्रकाश को निकाल दिया जाय तो दीपक का महत्व खो जाता है। इसी प्रकार साधक की साधना मे से ध्यान सामयिक निकाल दिया जावे तो

उसकी साधना मृत हो जाती है। ज्ञान-ध्यान के अभाव में साधक पंगु हैं। ध्यान के अभाव में साधक पंगु हैं। ध्यान के अभाव से ज्ञान अहंकार का जन्मदाता बन जाता है। जैसे सुगन्ध के अभाव में फूल बेकार है वैसे ही ध्यान के अभाव में साधक बेकार हैं।

समायिक कर्मगिरि को हिला देती हैं। यदि किसी गहरे गढ़े हुए खम्भे को उखाड़ना है, तो रोजाना थोड़ा-थोड़ा हिलाना होगा। पश्चात एक दिन खम्भा उखड़ जाएगा। उसी प्रकार कर्म रुपी पहाड़ बड़े कठोर है, बहुत गहरी है उनकी जड़े। इन्हें भी अब थोड़ा-थोड़ा सामायिक के माध्यम से हिलाना होगा।

भगवान महावीर ने श्रावक और मुनियों के लिए सामायिक का काल निश्चित किया है। एक साधक को कम से कम एक अन्तमुहूर्त यानि ४८ मिनट ध्यान सामायिक तो करना ही चाहिए। यह समय बड़ा वैज्ञानिक है। स्कूलों-कॉलेजों में भी पढाई का समय अधिकतम चालीस मिनट रखा हैं। चालीस मिनट के बीच में एक क्षण ऐसा आयेगा कि विद्यार्थी का मन विषय के प्रति सावधान हो जायेगा। साधक के अड़तालिस मिनट के काल में एक समय ऐसा आयेगा कि उपयोग आत्मा में ठहर जायेगा। वह एक समय का आत्मोपयोग अनन्तगुणी निर्जरा में कारण बन जायेगा।

जब आत्मा में सामयिक के वृक्ष लहरायेगे और उन पर मैत्री-प्रमोद करूणा-माध्यस्थ भाव के सुन्दर-सुन्दर सुकोमल-सुवासित पुष्प खिलेगे तो आत्मा सुरभित हो उठेगी। सारा जगत आनन्दित हो उठेगा।

अन्त में आप से कहूं — अपनी इन सांसों का थोड़ा उपयोग कर लो। इन सांसों में दौडती गरमी का कुछ उपयोग कर लो। इनमें प्रेम करूणा-प्रमोद-समता को भर लो यह जो खून हैं दौड़ता हुआ इसका कुछ सदुपयोग कर लो यह जो धड़कन हैं इसका कुछ उपयोग कर लो, यह जो चेतना का दिया तुमसे जल रहा है इसका कुछ उपयोग कर लो। उसके प्रकाश में प्राणियों के दुख दर्द, समेट लो, और प्रेम करुणा से उनका क्षमन भर दो। सांसो का कुछ भरोसा नही, जल्दी ही सब खाक हो जायेगे। चेतना उड़ जायेगी देह यही पड़ी रह जायेगी। अभी कान हैं अभी कुछ कर लो। सुनने की कला सीख लो। श्रवण की कला सीख लो प्रभु के गीत गालो: कुछ उनके गुण की प्रशंसा कर लो। अभी आँखे हैं देखने की कला सीख लो, परमात्मा का रुप निरख लो, सन्तो की छवि निहार लो। अभी पांव है चलने की कला सीख लो। तीर्थो की यात्रा कर लो, तीर्थ वन्दना

कर लो, सन्तों के साथ विहार कर लो ताकि मोक्ष यात्रा के संस्कार पड़ सके।

बस इतना समझने का प्रयास करो-जो दूज का चांद नहीं बना वो पूर्णिमा का चांद क्या बनेगा। जो प्रेम-करुणा-प्रमोद समता की फुहार न कर सका वो. क्या परमात्मा को पायेगा। मैत्री-करुणा-प्रमोद-समता ये परमात्मा मंजिल की सीढिया हैं इन पर चलकर ही परमात्मा तक पहुंचा जा सकता हैं। जीवन को गति दो, लक्ष्य दो और अपने प्रेम-नीर से जग को नहला दो।

बस आज इतना ही

नया मदिर, प्रतापगढ

"पद्मप्रभु भगवान की जय"



"दूसरों को नहीं, स्वय को बदलो" यह ज्ञानी का लक्षण हैं।



किसी चीज को बनाना बहुत कठिन है पर मिटाना बहुत आसान है। जैसे वीणा बजाना बहुत कठिन है पर उसे तोड़ना बहुत आसान है।



हृदय के तारों को तोड़कर नहीं झंकृत कर देखो परमात्मा का संगीत प्रस्फुटित होगा।

(प्रज्ञा प्रसून से)

२

तुम्हारे प्रसाद से

आप यह मत सोचना कि आप ही परमात्मा को ढूंढ रहे है, परमात्मा भी तुम्हारी तलाश कर रहा है ! वह भी तुम्हें खोज रहा है ! यानि कि स्वयं तुम्हारा परमात्मा तुमसे मिलने को आतुर है ! लेकिन तुम उसकी पुकार सुनते कहां हो। सूफी फकीरों का कहना है कि शिष्य ही गुरु की तलाश नही करता बल्कि गुरु भी शिष्य की तलाश करता है !

किसी ने पूछा कि परमात्मा सिद्धालय में क्या कर रहा हैं ? मैंने कहा कि परमात्मा आपका इंतजार कर रहा है ! आप आखिर कब तक वासना की गन्दी नालियों में जन्मते-मरते रहोंगे ! संसार वीथियों में कब तक बटकते रहोगें ?

मूल पद्य :- शरीरतः कर्तुमनन्त-शक्तिम्
विभिन्नमात्मानमपास्त-दोषम् ।
जिनेन्द्र ! कोषादिव खड्ग-यष्टिम्,
तव प्रसादेन ममाऽस्तु शक्तिः ॥ २॥

हिन्दी पद्य :- करके कृपा हे भगवन् वह शक्ति दीजिए,
गतदोष आतम अरु तन भिन्न कीजिए ।
तलवार कोष से हैं ज्यों भिन्न करते,
दीजिए हमें ये वर हम चरणन-विचरते ॥

अन्वयार्थ :-

जिनेन्द्र	–	हे जिनेन्द्र देव
कोषात्	–	म्यान से
खड्ग-यष्टि इव	–	तलवार के समान
अनन्त-शक्तिम्	–	अनन्त शक्ति वाले
अपास्त-दोषम्	–	सर्व दोषों से रहित
आत्मानम्	–	अपने आत्मा को
शरीरतः	–	शरीर से
विभिन्नम्	–	विभिन्न
कर्तुम्	–	करने के लिए
तव	–	आपके
प्रसादेन	–	प्रसाद से
मम	–	मेरी
शक्तिः	–	शक्ति
अस्तु	–	हो

भावार्थ :— हे जिनेन्द्र ! आपके प्रसाद से मुझमें ऐसी शक्ति प्रगट हो कि जिससे मैं अनन्त शक्ति वाले और सर्व दोषों से रहित अपने आत्मा को शरीर से इस प्रकार पृथक् कर सकूं, जैसे कोई म्यान से तलवार को निकाल कर पृथक कर देता है ।

२

तुम्हारे प्रसाद से

धर्म प्रेमी भव्यात्माओं !

एक घटना आपसे कहता हूं एक सेठ गणेशजी का अनन्य भक्त था। प्रातः उठना स्नान करके मंदिर जाना और घण्टों उनकी मूरत के सामने उनकी पूजा करना। एक दिन अचानक एक घटना घट गई–एक चूहा आया और लड्डू खाने लगा। सेठ विचार में पड़ गया। उसने सोचा यह क्या मामला है। गणेशजी एक चूहे को भगाने में समर्थ नहीं हैं। इनसे शक्तिशाली तो यह चूहा है। अन्य धर्मों में शक्ति की पूजा ज्यादा होती है। उनके यहां गुणों की बनस्पत शक्ति का ज्यादा महत्व है। जो जितने ज्यादा अभिशाप देता हो, दूसरों का संहार करता हो, उसकी पूजा-उपासना उतनी ज्यादा होती है। इसलिए इनके अधिकांश भगवान शस्त्रों से सुसज्जित है। अगर भगवान को ही अस्त्र–शस्त्र की आवश्यकता पड़ती है, तो ....? अस्त्र-शस्त्र तो वह रखता है जिसके अन्दर भय विद्यमान रहता है। वह द्वार पर पहरा लगवाता है जो भीतर से डरा हुआ होता है। उस सेठ ने चूहे को प्रणाम किया और अपनी उपासना का पात्र चूहे को बना लिया। प्रतिदिन मंदिर आता, चूहे के सामने मोदक रख देता। चूहा आराम से मोदक खाता रहता, सेठ उसकी पूजा-भक्ति में संलग्न रहता। धीरे-धीरे चूहे का भय निकल गया, वह सेठ के पास आ

जाता, कभी उसके ऊपर चढ़ जाता और खेलने लगता। एक दिन सेठ चूहे को घर ले गया। काफी उसका स्वागत किया, मिष्ठान आदि अर्पण किया। चूहा वहीं सेठ के यहा रहने लगा। घर में स्वतंत्र विचरण करने लगा।

एक दिन अचानक पुनः घटना घट गई, घर में बिल्ली का आगमन हुआ। चूहा बिल्ली को देखते ही डरा और छुपने को भागा। बिल्ली भी चूहे पर झपट पडी। सेठ असमंजस मे पड़ गया, उसकी श्रद्धा बदल गई। श्रद्धा के बदलते ही उपास्य भी बदल गया। बुद्धि जन्य श्रद्धा तो ऐसी ही हुआ करती है। हृदय से जन्मी श्रद्धा स्थायी होती है, फलदायी होती हैं, सुखदायी होती है। घर मे बिल्ली की आव-भगत होने लगी, पूजा-सम्मान होने लगी। चूहे की भांति बिल्ली भी घर मे स्वतंत्र विचरने लगी। बिल्ली पर लाल रंग पोत दिया गया, सुन्दर वस्त्र पहना दिये, माथे पर टिका लगा दिया। मात्र उसके के परिवर्तन से तो कोई साधु नही हो जाता। साधु बनने के लिए तो अन्तस् का रूपान्तरण आवश्यक है। अगर अन्तस् मे रूपान्तरण है, अन्तस् में परिवर्तन है तो निश्चित ही बाह्य मे भी परिवर्तन होगा। ऐसा सिद्धान्त है कि अन्तस् बदलते ही बाह्य भी बदल जाता है। लेकिन बाह्य के बदलने से अन्तस् बदले भी और ना भी बदले। उसमें बिल्ली को रंग दिया, टीका लगा दिया। बिल्ली का अन्तस् तो वैसा का वैसा था, पूर्ण हिंसा से भरी थी।

एक दिन अचानक फिर घटना घट गई, घर मे कहीं से कुत्ता घुस आया। बिल्ली पर झपटा। वह डर कर भागी। डर स्वाभाविक था। कोई भगवान तो थी नही। पूजा उपलब्ध करने से कोई अमर तो हो नही जाता। अमर होने के लिए अमरो की उपासना और वैसा ही आचरण करना होता है। बिल्ली डरकर भागी, सेठ देखता रह गया। उस समय वह बिल्ली की पूजा कर रहा था। उसके विचार बदल गये। बिल्ली के स्थान पर कुत्ता आ गया। कुत्ता पूजा जाने लगा, उसकी उपासना प्रारंभ हो गई।

एक दिन फिर वही घटना घट गई। कुत्ते ने अपना स्वभाव दिखाया पास में रखा हुआ सारा दूध चाट गया। सेठ की पत्नी से कुत्ते का यह कृत्य सहन नही हुआ, और उसने आवेश मे, क्रोधावेश में कुत्ते को मार दिया। कुत्ता जोर से चिल्लाता हुआ भागा। सेठ ने देखा दंग रह गया। उसे अपनी भूल पर पछतावा हुआ, कि मैं कैसा मूर्ख हूँ व्यर्थ जानवरों को पूजता रहा। घर में ही देवी विद्यमान थी। अपनी पत्नी को देवी मानकर

उसकी उपासना शुरु कर दी। पत्नी भी आश्चर्य में पड़ी। पति की मुर्खता पर हंसी। लेकिन अपनी पूजा-उपासना से कौन प्रसन्न न होगा ? अभी तो उसने जाना था कि पति परमेश्वर होता है, चाहे वह कितना भी पापी क्यों न हो। लेकिन आज संस्कृति की धारा बदल कर राधा हो गई। पति पत्नी का भक्त हो गया। पत्नी देवी और पति पुजारी हो गया।

आप तो जानते ही है जरा सा मान-सम्मान जीवन की धारा को बदल देता हैं, जीवन में मद पैदा कर देता है। स्त्री अहंकार से भर गई। आसमान की यात्रा पर निकल गई। पति के प्रति उदासीन हो गई। पति उससे परेशान हो गया। अपनी देवी से परेशान हो गया। जैसे हर भक्त अपने स्वनिर्मित भगवान से परेशान है, और भगवान भी उनसे परेशान है। पति कुछ कर तो सकता नहीं था। क्योकि पत्नी उसके लिए भगवती स्वरुपा थी। प्रतिदिन पत्नी के पाद-प्रक्षाल करता, उसकी पूजा करता, आरती उतारता।

एक दिन सेठ ने पत्नी से कहा, मुझे आवश्यक काम से बाहर जाना है, दुकान पर नौकर भी नहीं है, इसलिए आज भोजन शीघ्र बना देना। सेठ इतना कहकर दुकान पर चला गया। सुबह दस बजे लौटा दुकान से घर आया तो देखा पत्नी लेटी हैं, देवी आराम फरमा रही है। भोजन वगैरह कुछ तैयार नहीं किया। सेठ का पारा चढ़ गया। सत्य उजागर हो गया। पारा तो तभी चढ़ता हैं जब किसी के बुखार को प्रकट करना होता है। सेठ ने आव देखा न ताव, पत्नी पर बरस पड़ा। आवेश में उसे एक झापड़ मार दिया। पत्नी चीख उठी, अपमान के डंक से कराह उठी। सेठ के चरणों में गिर पड़ी। पत्नी को चरणों में गिरता हुआ देखा कि सेठ का विवेक जाग्रत हुआ। पत्नी को चरणों में पड़ा देख अपने देवत्व का खयाल आ गया, अपनी शक्ति का खयाल आ गया। स्वयं की आंखे खुल गई। मैं स्वयं अपना परमात्मा हूं, मैं स्वयं शक्ति मान हूं। मैं व्यर्थ दूसरों की उपासना कर रहा हूँ।

आचार्य देव परमात्मा से कह रहे हैं, कि मैं आपके सामने शक्तिहीन हूँ, आकिंचन्य हूँ। अब आप ही मेरी शक्ति को जगाइये। आप अपना चमत्कार दिखाइये। मैं तो आत्मा परमात्मा के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं जानता। आपने ही अपने उपदेश में कहा हैं, कि तुम्हारे भीतर शक्ति रुप से परमात्मा बैठा हैं। उसे जगाने, प्रगट करने, उजागर करने ही तुम पैदा हुए हो। आपका उपदेश मुझे आपके पास ले आया हैं। उपदेश बड़ा प्यारा शब्द हैं। अभी तो लोग इसका ठीक-ठीक, सहीं-सही अर्थ भी

नहीं जानते हैं। आप समझते हैं कि साधु मुख से हितकारी दो वचनों का निकलना ही उपदेश हैं। यह तो उपदेश का ऊपरी अर्थ हैं। उपदेश का अर्थ होता है, पास बिठाना। इसका मतलब भाषण, व्याख्यान, चर्चा नहीं चर्चा, भाषण, व्याख्यान अपनी जगह शायद पास बुलाने के आकर्षित करने के बहाने है। उपदेश का अर्थ हैं पास बिठाना। किसके पास ? सत्य के, स्वयं के, धर्म के, सन्त के परमात्मा के पास बिठाना। उप का अर्थ है-पास, नजदीक, करीब, निकट, नियर और देश का अर्थ है स्थान। पास और पास और पास ले आना। ताकि सत्य के पास बैठते-बैठते पास हो जायें। जीवन की सब संगति टूट जाये। सत्य के पास बैठते-बैठते सत्य की प्यास पैदा हो जाये, सत्य की आकांक्षा पैदा हो जाये। उपदेश का अर्थ हैं जो आपके अन्दर परमात्मा की प्यास जगा दे, उपदेश के शब्द आपके इतने निकट पहुंच जाये कि तुम्हारी श्वांस-श्वांस में धड़कने लगे और तुम्हें परमात्म आलिंगन को उकसाने लगे, बस यही सम्यक उपदेश हैं।

भक्त भगवान से कह रहा हैं कि यह मरीज डाक्टर के पास आ गया है, अब आप ही इसे रोग से मुक्त करे। आप ही बीमारी को भगाइये। बीमारी के जाते ही स्वास्थ्य लाभ अपने आप हो जायेगा।

काव्य में बड़ा प्यारा शब्द आया है "तव-प्रसादेन" आपके प्रसाद से, आपके आशीर्वाद से, आपकी असीम अनुकम्पा से, मेरी शक्ति जाग जाये, मेरा परमात्मा जाग जाये। आचार्य के भीतर एक ही धुन है, वह भी उनकी अपनी नहीं, परमात्मा की है, कि जगाएं, सोये हुए लोगों को उठाएं स्वप्न में खोये हुए लोगों को, उनके स्वप्न से, दुख स्वप्न से मुक्त करें। आचार्य देव का पूर्ण समर्पण बोल रहा है। निमित्त की मुख्यता से कथन हो रहा है। पूर्ण कृतज्ञता-धन्यता प्रगट की जा रही है। परम-प्रेम की स्थिति बन गई है। जैसे बच्चू अपना सारा जीवन माँ पर छोड़ देता है। आचार्य देव ने भी सब कुछ परमात्मा पर छोड़ दिया है। आप ही मेरी शक्ति को जगा दो। आप ही सोचिए, भला कोई परमात्मा क्यों आकर जगायेगा ? परमात्मा को क्या गरज पड़ी है, जो पास आये और जगाये ? सच है परमात्मा पृथ्वी पर नहीं आयेगा, लेकिन जब भी कोई परमात्मा भक्ति से, कृतज्ञता से, धन्यता से, परमात्म-प्रेम से भरता है तब अपने आप उनके अन्दर सत्य के द्वार खुल जाते है। शक्ति जाग जाती हैं, शुभ का आगमन हो जाता हैं, पुण्य की बरसा हो जाती हैं।

भक्त का दीवानापन, पागलपन कह रहा हैं, कि मुझे पाप-पंक से ऊपर उठा दें। ये सब आत्म-गहराई की परम आस्था की घोषणायें हैं,

ऐसी घोषणायें वही भक्त कर सकता हैं, जिसने परमात्मा को जाना हैं, जो परमात्मा के साथ जिया हैं, भक्त की आँखे उससे चार हुई हैं। कबीर ने तो यहाँ तक कहाँ कि "मैं राम की दुलहनियाँ।" कबीर ने परमात्मा को अपना प्रेमी बनाया है। परमात्मा की तरंगे तो समर्पण के उपरान्त ही उठती हे। श्रद्धा भक्ति-समर्पण के क्षण में ही ज्ञान उतरता है, आत्मा जगती हैं। और यही वह घड़ी है जब ज्ञान की वर्षा होती है। और भक्ति के माध्यम से स्वयं का दर्शन पा जाता है। इसे यू समझे समर्पण और भक्ति की भूमि पर ज्ञान बरसता है। ज्ञान की वर्षा में परमात्मा का साक्षात्कार होता है। अश्रद्धा परमात्म भक्ति में बाधक है। जैसे आँख में पड़ा हुआ छोटा सा तिनका भी विशाल पर्वत को ओझल कर देता है। आँख की छोटी सी पलक आँख और जगत के बीच में आ जाती है। तो जगत छिप जाता है। इसी प्रकार जब हृदय की आँख में अश्रद्धा का तिनका पड़ जाता है तो परमात्मा की भक्ति ओझल हो जाती है, परमात्म दर्शन में पर्दा पड़ जाता है, आचरण विलीन हो जाता है इसलिए हम आत्म-दर्शन से वंचित रह जाते हैं। अश्रद्धा या शका का तिनका आँख में पड़ जाये तो बढ़ते हुए कदम रुक जाते है।

अगर परमात्मा को जानना है तो परमात्मा के साथ एक होना पड़ेगा, उसके पहले दिगम्बर गुरु के साथ एक होना पड़ेगा। और स्वयं को जानना है तो स्वय के साथ एक होना जरूरी है सौन्दर्य के सृजन के लिए सौन्दर्य के सृष्टा के चरणों में झुकना अनिवार्य हैं। इस सदर्भ में कवि सुरेश वेरागी की पंक्तियाँ बहुत सुन्दर है

> हमने देखा सागर भी चलकर प्यासे तक आता हैं
> भाग्यहीन ही होगा जो फिर भी प्यासा रह जाता है
> प्रभू अर्पित पुरुषार्थ करे वो भवसागर तिर जाता हैं
> वही यहां सब कुछ पाता जो दोनों हाथ लुटाता है ॥
> अगर प्रकाशित होना चाहे तो रवि को अर्घ प्रदान करे
> हो गई माटी चन्दन जिनको उन चरणों का ध्यान करे ॥

अगर प्रकाशित होना चाहे तो रवि को अर्घ प्रदान करे, उसकी पूजा करे, अर्चना करे, उसके सामने अपनी प्यास जाहिर करे, उसके सामने प्रार्थना करे। अपनी कुटियां से झोपड़ी से, अहंकार के महल से बाहर निकल आयें। और कुछ नही करना हैं, सिर्फ अपने-अपने भवनों से बाहर निकलकर मैदान में आना है। मात्र बाहर निकल आओ। फिर याचना नहीं करोगे तो भी वो तुम्हें प्रकाशित कर देगा। तुम्हारा अन्धकार दूर कर

स्वीकार किये है । लेकिन एक बात निश्चित है कि सन्त और भक्त आग दोनों तरफ लगी है । यह खोज अकेले-अकेले नहीं हैं । इसलिए यह बात तय है कि उससे हमारा मिलन निश्चित है । परमात्मा संतों के रूप में प्रगट हो रहा है. तभी तो अन्य दर्शनकार कहते है कि "परमात्म के कारण संत लिया औतार" । परमात्मा संतों के रूप में उपकार करने को अवतार लेता हैं । यह बात अलग हैं कि जैन-दर्शन अवतारवाद को नहीं मानता । और यह मान्यता सत्य भी हैं । लेकिन ये सब कथन भक्तों को संतोष देने हेतु कहे गये हैं । जैन-दर्शन में अवतार शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है, वास्तव में अवतार किसका ? किसलिए ? भगवान महावीर तीर्थंकर है, अवतार नहीं । जिन हैं, सिद्ध हैं. बुद्ध हैं अवतार नहीं । अपने पुरुषार्थ से परमात्मा बने है । अवतार का अर्थ होता है अवतरण । ऊपर से नीचे की तरफ आना । और तीर्थंकर का अर्थ होता है नीचे से ऊपर की ओर जाना । तीर्थंकर का अर्थ होता है, जैसे कीचड़ से कमल उठे । और अवतार का अर्थ होता है, जैसे चाँद से चाँदनी नीचे की ओर आती हैं ।

आचार्य कहते है "तव प्रसादेन" आपके आशीर्वाद से यानि इसका अर्थ हुआ कि मुनियों को साधारण आदमी ही मत समझना, नहीं तो भूल हो जायेगी । सभी यही कहते है, सभी तीर्थंकर भी यही कहते है कि तुम साधु को आदमी ही मत समझना, नहीं तो भूल हो जायेगी । पांच परमेष्ठी में उनका स्थान है, उनका नाम हैं, साधु है सिद्ध पुरुष । है तो मनुष्य ही लेकिन अपने पूर्ण विकास को उपलब्ध हुआ, जागरुप हुआ, पांच महाव्रत को उपलब्ध हुआ, सारी वासनाओ-कामनाओ को त्याग दिया है । सारा अन्धकार काट डाला हैं । तप-त्याग के दिये को जला लिया है । आत्मवान हुआ । इसलिए भक्त गुरु को अपना परमात्मा समझता है । यह बात निश्चित हैं कि मुनि सिद्ध नही हैं, लेकिन सिद्ध बनेगे । सिद्धत्व तो परमात्मा का अन्तिम विकास हैं ।

इसे यू समझे .... जैसे गिलास पानी से आधा भरा हुआ हैं, और कोई कहता हैं कि आधा खाली है-वह भी सच है, और कोई कहता हैं, आधा भरा हैं -वह भी ठीक हैं, दोनों ठीक हैं । लेकिन दोनों के पास पूरी बात नहीं हैं । पूरी बात तो यह हैं कि गिलास आधा भरा, आधा खाली हैं । यह गिलास के सम्बन्ध में पूर्ण कथन होगा ।

साधुओं के सम्बन्ध में, मैं कहना चाहता हूं कि आधा भरा, आधा खाली । आधा मनुष्य की परमोपलब्धि, आधा परमात्मा की असीम कृपा । मनुष्य इसलिए कि हमारे जैसी उनकी कियाएँ है, और परमात्मा इसलिए

देगा।

हमने देखा सागर भी प्यासे तक चलकर आता है ।
भाग्यहीन ही होगा जो फिर भी प्यासा रह जाता है ॥

आप यह मत सोचना कि आप ही परमात्मा को ढूँढ रहे हैं, परमात्मा भी तुम्हारी तलाश कर रहा है, वह भी तुम्हें खोज रहा है । यानि कि स्वयं तुम्हारा परमात्मा तुमसे मिलने को आतुर है । लेकिन तुम उसकी पुकार सुनते कहाँ हो । सूफी फकीरों का कहना है कि शिष्य ही गुरू की तलाश नहीं करता, बल्कि गुरु भी शिष्य की तलाश करता है । इसीलिये तो जीवन भर गुरु योग्य शिष्य की तलाश करता रहता हैं, जैसे ही योग्य शिष्य मिल जाता है तो वह उसे अपनी अध्यात्मिक सम्पदा सौंप देता है । आचार्य धरसेन को योग्य शिष्यों की तलाश थी, तभी तो उन्होंने अन्य संघ से आचार्य पुष्पदन्त, भूतबलि दो मुनियों को बुलाया था । प्रथम श्लोक में एक बड़ा सुन्दर वाक्य आया था—"क्लिस्टेषु जीवेषु कृपा-परत्वम्" दुखी प्राणियों के प्रति करुणा का भाव होना । और आप जानते है, कि करुणा का क्या अर्थ हैं मात्र दुखी ही परेशान नहीं हैं, सन्तों का अस्तित्व भी आपका दुख दूर करने को उत्सुक हैं, आपके प्रति उनका अस्तित्व उदास नहीं हैं, उनका अस्तित्व आपके प्रति उपेक्षापूर्ण नही है। उनका अस्तित्व आपकी मदद करने को उत्सुक हैं। उनका अस्तित्व आपको सहारा देने को आतुर है । आप ही नहीं खोज रहे है सन्तों को । करुणा का अर्थ है कि सन्त भी आपको खोज रहे है । यह आग एक तरफ नहीं लगी हैं । यह प्रेमाग्नि दोनों तरफ जल रही हैं । परमात्मा परम-प्रेमी है । और भक्त प्रेयसी हैं, या भक्त प्रेमी हैं और परमात्मा प्रेयसी हैं। परम सुख को देने वाली है, मोक्षलक्ष्मी है। तभी तो आचार्य समंत भद्र कहते है, कि ....

सुखयतु सुख भूमि कामिनं कामिनीव

विषय सुख की भूमि कामिनी, कामी को सुखी करती हैं उसी प्रकार सम्यक्दर्शन की लक्ष्मी मुझे भी सुखी करे।

"नीतस्तमयाति पतिच्छयेव, सर्वार्थ सिद्धि स्त्रिषु विष्टयेषु"

जैसे पति की इच्छा रखने वाली कन्या को सब कुछ मिल जाता है। मात्र एक पुरुष से शादी करने पर तो क्या भक्ति करने पर मोक्षलक्ष्मी नहीं मिलेगी ? अतः अवश्य मिलेगी। इस देश के भक्तों ने परमात्माओं को अनेक रुपों में चाहा और पुकारा है । सूफी कहते हैं कि परमात्मा प्रेयसी हैं और हम प्रेमी है । अन्य भक्तों ने कहा, परमात्मा प्रेमी हैं और हम प्रेयसी हैं। वह कृष्ण है और हम उसकी गोपियाँ है। भक्तों ने दोनों ही रूप

कि उनका आचरण परमात्मा जैसा है। इसलिए तो आचार्य देव को कहना पड़ा कि आप ही मेरी शक्ति को जगा दो। यह सब कब संभव हैं ? जब पूर्ण श्रद्धा का, भक्ति का, समर्पण का जागरण हो। बिना झुके संसार की कोई भी उपलब्धि नहीं होती। चाय की केटली भी प्याले को तभी भरती हैं, जब वह उसकी टोंटी के नीचे आता हैं। सुराही पैमाने को तभी भरती है जब वह उसके चरणों में आता है इसी प्रकार मनुष्य भी परमात्मा तभी बनता है जब वह निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुनियों के चरणों में अर्पित-समर्पित हो जाता है। उसके बाद सन्त अपना काम करते है। सन्तों के तीन काम है, चलाना, सुनाना और जगाना। परमात्म पथ पर चलाना, समीचीन ज्ञान का उपदेश सुनाना, परमात्म भक्ति सिखाना या जगाना। संत जीवन भर यही कहते है, कि लोग भटके हैं। लोग उल्टे चल रहे हैं। जैसा होना चाहिए था, वैसा नहीं है कुछ के कुछ हो गये है। कृत्रिम हो गये है, झूठे हो गये है। गधे ने शेर की खाल ओढ़ ली है। गहन पाखण्ड सबकी आत्मा में समा गया हैं, इसलिए संत झकझोरते हैं, खींचते है। सम्यक पथ की ओर, उपदेश सुनाकर लुभाते है। अनेकों उपाय करते है, अनेकों विधियाँ खोजते है, कि आपको उस मार्ग पर ले आये, जो मार्ग परमात्मा तक जाता है। जहाँ तुम्हारे तार परमात्मा के तारों से जुड़ जाये और तुम्हारे भीतर परमात्मा का संगीत पैदा हो सके।

मौलिक रूप से श्रद्धा की पराकाष्ठा प्रेम करना, भक्ति करना सिखाती हैं। प्रेम तदनुरुप आचरण करना सिखाता है। परमात्म प्रेम ही ऊपर उठाता है। इसलिए हृदय में संतों के प्रति प्रेम पैदा करें। प्रेम एक तपश्चर्या है, एक साधना है, जीवन की क्रांति है, जीवन का महत्वपूर्ण रुपान्तरण है, विशेष परिवर्तन है। प्रेमाग्नि से गुजर कर ही तो स्वर्ण पाषाण शुद्ध होता है, पवित्र होता है। परमात्म-प्रेम में डूबा हृदय ही तो परमात्मा बनता है। यह बात भी सच है, मनुष्य प्रेम का अर्थ भी नहीं जानता है, इसलिए उसका जीवन इतना अर्थहीन है, जड़तापूर्ण है, वेरस और ऊबाने वाला है। मनुष्य ने परमात्मा से प्रेम करना छोड़ दिया है, तथा सन्तों की उपेक्षा करने लगा हैं। जिनसे प्रेम का पाठ सीखा जाता हैं उनकी ही उपेक्षा और निन्दा पर उतर आया है। भक्ति के चिराग बुझ गये हैं। श्रद्धा की दीवारें ढह गई और विश्वास की खिड़कियाँ बन्द हो गई है, और त्याग के आंगन में कामना के विषय-वासना के नागफणी के वृक्ष उग आए हैं इसीलिए तो मनुष्य का चित्त अशांत है। ऐसी स्थिति में मात्र घृणा ही पैदा होगी। और जहाँ घृणा है वहाँ प्रेम कैसे हो सकता है ? जबकि

परमात्मा तो प्रेम की आँखो से ही देखा जा सकता है। प्रेम से भरी आँखे ही तो परमात्मा के प्रति, सन्तों के प्रति कृतज्ञता प्रगट करती है। और सहज ही भक्त की आत्मा कह उठती है। ------ हे भगवन ! जो वात्सल्य आपके अन्दर है, वही तो मैं मांग रहा हूं। अतः आप मेरी शक्ति को जगाओ। आपने जिस प्रकार अपनी शक्ति को जगाया है, वही साधना, वही उपाय, वही तरीका मुझे भी बताये और आत्मा के करीब ले जाये।

आचार्य देव कहना चाहते है कि मनुष्य मात्र स्वाध्याय करके, ग्रन्थ पढ़के सुखी नहीं हो सकता। मनुष्य केवल रोटी से नहीं रह सकता। उसे जीवित रहने के लिए प्रेम आवश्यक है। परमात्मा बनने के लिए परमात्म प्रेम, भक्ति-श्रद्धा आचरण जरुरी है। जीवन में जो गति है, जो विकास है, जो अच्छाई का स्पर्श है, वह सब सन्तों-भगवन्तों के आशीर्वाद से है। जिन्हें जीवन में आत्मा का अनुभव करना है, परमात्म दर्शन करना है, भव सागर से पार होना है, तो स्वयं के हृदय में परमात्म-प्रेम के जन्म देना होगा, श्रद्धा को पैदा करना होगा। विषय भोग से कलुषित चित्त को सामयिक ध्यान के नीर से धोना होगा, स्वच्छ करना होगा। तभी आत्मा बन्धन में है। आत्म तलवार देह की म्यान में कैद है, परतंत्र है, अशुद्ध है। अब उसे शुद्ध करना है, पवित्र करना है, बन्धन मुक्त करना है। निर्बन्ध होने की योग्यता विद्यमान है। बस यह बीज आपकी असीम अनुकम्पा का इंतजार कर रहा है। अभी अपने आपको परम मत समझ लेना। अभी तुममें और परमात्मा में बहुत अन्तर है तुममें और सन्त में बहुत अन्तर है। तुम मिथ्या दर्शन, मिथ्या ज्ञान, मिथ्या चरित्र की रस्सी से बन्धे हो तमो रजो सतो गुणों में पड़े हो। सन्त मुक्त है। शक्ति रूप से भगवान तुम भी हो, और सन्त भी परमात्मा है। तुम सोए हो, वह जागे है। तुम्हारे हाथों में जजीर है, वह मुक्त है। तुमने अपने चारों ओर एक कारागृह बना लिया है, माया का, मोह का, ममता का, लोभ का, काम का, क्रोध का। उसने सारी दीवारे गिरा दी है, वह स्वतंत्र है। तुम बन्धन में हो।

किसी ने पूछा कि परमात्मा सिद्धालय में क्या कर रहा है ? मैंने कहा कि परमात्मा आपका इंतजार कर रहा है। आप आखिर कब तक वासना की गन्दी नालियों में जन्मते मरते रहोगे, संसार वीथियों में कब तक अपना परिवेश बदलते रहोगे ? परमात्मा कह रहा है उठो, ऊपर ऊठो, आकाश से भी उपर उठो। और आओ मेरे में समा जाओ, ताकि तुम्हारा रोना-धोना सब मिट जाये। जैसे म्यान से तलवार मुक्त हो जाती है। तुम भी काम-क्रोध-लोभ-मोह से मुक्त हो जाओ। शरीर से श्वास को, तिल

से तेल को, फ्रेम से फोटो को अलग कर लेते है । उसी प्रकार तुम भी संसार से स्वयं को मुक्त करो । यह सब काम होगा गुरु के प्रसाद से, परमात्मा के प्रसाद से ।

बस आज इतना ही

आदिनाथ दिगम्बर जैन नया मंदिर, प्रतापगढ (राज.)

दि. ५/८/९१
सोमवार

३

ममता नहीं समता

....जिसे मौत आकर छुड़ाती है उसे तुम मौत के आने के पहले ही छोड़ दो। यहां पर तो हम चन्द दिनों के मेहमान है। कुछ समय के लिए अपने-अपने घोंसलों में ठहरे हुए है। जब यहां से कुछ दिन बाद जाना ही है, तब इनसे व्यर्थ में मोह क्यों करें ?

....ममता का छप्पर गिर जाये तो राग-द्वेष के लिए जगह नहीं बचती। राग-द्वेष जीते है, ममता की छाया में और ममता जीती हैं मोह की गोदी में !

"जब बुद्धि से भ्रम का, अज्ञान का पर्दा उठता है तो सन्तों के प्रति श्रद्धा पैदा होती है। जीवन की सच्चाई का ज्ञान होता है, तब सन्यास फलता है। सन्यास एक जागरूकता है ? स्वयं की वह समझ का फूल है। वह श्रेष्ठ भवितव्यता का प्रसाद है। वह सातिशय पुन्य की भेंट है। जैसे सांसारिक भेंट थी पुन्य की भोग सामग्री। अब आखरी भेंट है पुन्य की दिगम्बर दीक्षा। यह मनुष्य के जीवन की प्रोढ़ता की सूचना है कि वह जाग गया है। और परमात्मा की याद उसे सताने लगी है।

मूल पद्य :- दुःखे-सुखे वैरिणि बन्धु-वर्गे,
योगे-वियोगे भुवने वने वा ।
निराकृताऽशेष-ममत्व - बुध्देः, ॥
समं मनो मेऽस्तु सदाऽपि नाथ ॥

हिन्दी पद्य :- समता रखूं हे भगवन् सुख औ दुःखों मैं,
योग-वियोग अरू मित्र-अरि जनो मैं ।
वन हो भवन सदा में समता विचारु,
देवाधिदेव तव चरणन चित्त धारू ॥

अन्वयार्थ :-

नाथ	-	हे स्वामिन्
निराकृताशेषममत्व	-	समस्त पर-पदार्थो से ममत्व बुद्धि को
बुद्धे	-	दूर करने वाले ऐसे
मे मन	-	मेरा मन
दुःखे	-	दुःख में
सुखे	-	सुख में
वैरिणि	-	शत्रु में
बन्धु-वर्गे	-	बन्धु वर्ग में
योगे	-	संयोग में
वियोगे	-	वियोग में
भवने	-	भवन में
वनेवा	-	और वन में
सदा अपि	-	सदा ही
समम्	-	समान
अस्तु	-	रहे

भावार्थ :- हे नाथ ! मेरा मन दुःख में, सुख में, शत्रु जनों पर और वन्धु वर्ग पर, अनिष्ट संयोग या इष्ट वियोग में वन में या भवन में, राग द्वेष और ममत्व बुद्धि छोड़कर सदा समान रहे ।

३

ममता नहीं समता

धर्म प्रेमी भव्यात्माओं !

एक सम्राट को वैराग्य उत्पन्न हो गया। वह सन्यास को उपलब्ध हुआ। दिगम्बर मुद्रा को धारण कर एक वन में तपस्यारत हो गया। सम्राट का तन और मन दिगम्बर हो गया। साधना की चरम ऊंचाईयों को छूने लगा। आत्म पंछी, स्वतंत्र आकाश के आनन्द में डूब गया। साधक को पता ही न चला, कब सुबह और कब शाम हुई। कब तारे घिरे और सूर्य का प्रकाश नीचे उतरा ? कब कौन आया प्रणाम कर गया, कब कौन अपमान कर गया। साधक मान-सम्मान-अपमान, पुरस्कार-तिरस्कार से ऊपर उठ गया। समत्व भाव को, साक्षी भाव को उपलब्ध हो गया। एक डाकुओं का गिरोह पुलिस से भयभीत हो, वहाँ से निकला। मुनिराज के निकट जाकर डाकुओं के सरदार ने पूछा ऐ साधू ! क्या यहाँ से पुलिस वाले निकले है ? मुनिराज ध्यानस्थ थे। अपने आप में लीन थे। उन्हें खबर भी न थी कि कोई कुछ पूछ रहा हैं। डाकू अनाप-सनाप बक-बकाकर चले गये।

कुछ समयोपरान्त मुनिराज की माँ, पत्नी बच्चें दर्शनार्थ आ गये। माँ भावावेश में उबल पड़ी। मुनिराज से काफी मनुहार की, राज्य का प्रलोभन दिया, महल में चलने का आग्रह किया। लेकिन महाराज ने आँख खोलकर भी नहीं देखा। उनके मन में जरा भी ममता का भाव पैदा नहीं हुआ। यह भी नहीं सोचा कि जंगल का मामला हैं, एकान्त स्थान है, मेरे

प्रेम में यहाँ तक खिचें आ गये हैं। चलो थोड़ी सी वार्ता कर लूं, सुख-दुख की चर्चा कर लूं। राज्य के समाचार पूंछ लूं। राज्य कैसा चल रहा हैं? प्रजा मुझे याद करती हैं या नहीं? उनके मन में जरा भी विकल्प नहीं उठा। उसने पलक उठाकर भी किसी को क्या अपनी पत्नी, बच्चों तक को भी नहीं देखा।

अन्ततोगत्वा माँ ने कहा, बेटा अगर हम सब से बातचीत नहीं करना हैं तो कोई बात नहीं, कम से कम इतना तो बता दे कि हम कौन से मार्ग से वापस जाये? जंगल में कहीं कोई खतरा तो नहीं हैं। डाकूओं का भय तो नहीं है। मुनिराज मौन रहे। माँ ने पुनः कहा खैर कोई बात नहीं, मौन होगा आपका, अगर बोल नहीं सकते, तो कम से कम आँख के इशारे से ही मार्ग बता दो। आँख का इशारा करने से तुम्हारा क्या बिगड़ता हैं। लेकिन मुनिराज ने आँख से इशारा भी नहीं किया। माँ परिवार सहित निराश होकर लौटने लगी।

अचानक डाकुओं ने परिवार को रोक लिया। उन्हें धमकाया और कहा जो भी तुम्हारे पास हैं, शीघ्र सामने रख दो, जो आभूषण पहने हो उतार दो।

मैं नगर के सम्राट की माँ हूँ, और ये सम्राट की पत्नी। याद रखो अगर गलत व्यवहार किया, तो तुम सबकी खैर नहीं, लगता हैं तुम्हारी मौत तुम्हारा इंतजार कर रही है। डाकुओं के सरदार ने कहा, मेरी मौत जब आयेगी तो आयेगी। लेकिन तुम्हारी मौत तो सिर पर मंडरा रही है। अभी तुम सम्राट की मां नहीं हमारे फन्दे में फंसी सोने की चिड़िया हो। हम किसी सम्राट मम्राट को नहीं जानते। हम इस जंगल के सम्राट हैं। सम्राट की मां आवेश में आ गयी और अपने बेटे मुनि को अनाप शनाप बकने लगी। काश मुझे पहले मालूम होता कि मेरा बेटा इतना निर्मोही और कठोर निकलता, तो क्यों उसका लालन-पालन करती? मेरा ही पुत्र मुझे दगा दे गया। कम से कम इतना तो अवश्य कह सकता था कि माँ उस तरफ से मत जाओ, वहाँ से डाकू गये है। मैं इतनी दूर से चलकर आई, लेकिन मेरे बेटे ने आँख उठाकर भी नहीं देखा, जरा भी इशारा नहीं किया। काश ऐसे बेटे को पैदा होते ही मार देती तो अच्छा होता। कम से कम आज ये दिन तो देखने को नहीं मिलता? आज मेरा ही बेटा मेरा दुश्मन हो गया। जो अपनी माँ को डाकुओं से नहीं बचा सका, वो क्या जगत का उपकार करेगा। जिसे जंगल का मार्ग नहीं मालूम, वो मोक्ष का मार्ग कैसे जान सकता हैं?

डाकुओं का सरदार ध्यान से माँ के शब्दों को सुन रहा था, उसने अपने साथियों से कहा, इसे छोड़ दो। उससे पूछा, यह सब तुम किसके बारे में बोल रही हो ? मां ने कहा, उस पापी का नाम मत पूछों । आज उसका नाम लेते हुए मुझे शर्म आ रही हैं । जिस मां ने नौ माह की गर्भ की पीड़ा सही हैं, बेटे को पाल-पोष कर बड़ा किया है । स्वार्थ सिद्धि के अभाव में वही बेटा, आज दुश्मन बन गया हैं, पापी बन गया हैं । डाकुओं के सरदार ने पुनः पूछा, मां आखिर वह बेटा कौन हैं ? माँ ने खिसकते हुए कहा, इस वन में जो वह नंगा बाबा बैठा हैं, वह मेरा बेटा हैं। पुत्र व्यामोह में मां को मुनि का पद भी नजर नहीं आया । और मुनि के प्रति अपशब्द का प्रयोग करने लगी ।

डाकुओं का सरदार तत्क्षण विचारों में डूब गया । उसके सामने मुनि का समत्व भूल गया। वह भी मुनिराज के पास गया था, मार्ग पूछा था। उत्तर के अभाव में वह भी क्रोधित हुआ था । साधु को गाली दी थी । लेकिन उस समय भी महाराज मौन थे । उनके शरीर में जरा हलन चलन, स्पन्दन नहीं हुआ था । यह तो साधु की माँ थी । ऊन्हें मार्ग बता सकता था। कह सकता था कि इस मार्ग से मत जाना। यहाँ से डाकू गुजरे हैं। लेकिन यह साधु नहीं कोई सिद्ध पुरूष हैं । इसकी समता महान है, इनका साक्षी भाव अगम्य हैं । इनकी साधना महान है, वास्तव में ये इस पृथ्वी के भगवान है। जिसकी प्रगाढ़ साधना में समता उतर आई हो, उससे बड़ा साधक और कौन हो सकता है ।

माँ की ममता, साधु की समता और डाकू की क्षमता ने अद्भुत प्रभाव दिखाया । वह डाकू अपने साथियों सहित मुनिराज के चरणों में नतमस्तक हो गया । साथियों सहित दिगम्बर मुनि हो गया। ये सामने बैठे डाकू भी समझ जाये तो इनके भी जीवन में सन्यास घटित हो सकता है । वह डाकू तो समझ गया और समझते ही अपने भीतर उतर गया । मां की ममता देखती रह गई । समता की विजय हुई ।

आदमी जब निर्दोष होता हैं तो अमृत की वर्षा अपने-आप होने लगती हैं। अगर भक्त झुके, गिरे तो परमात्मा का आनन्द बरस जाता हैं और जीवन की परम सम्पदा का मालिक हो जाता हैं । और न झुके तो सूखता जाता है, जड़े टूटती जाती हैं । एक दिन जीर्ण-शीर्ण जर्जर खण्डहर सा रह जाता हैं ।

जब बुद्धि से भ्रम का, अज्ञान का पर्दा उठता हैं तो सन्तों के प्रति श्रद्धा पैदा होती हैं। जीवन की सच्चाई का ज्ञान होता हैं । तब सन्यास

फलता हैं। सन्यास एक जागरुकता हैं स्वयं की, वह समझ का फूल है, वह तो भवितव्यता का प्रसाद हैं, वह साति-काय पुण्य की भेंट हैं। जैसे सांसारिक भेट थी पुण्य की, भोग सामग्री। अब आखिरी पुण्य भेंट है की दिगम्बर दीक्षा। यह मनुष्य के जीवन की प्रौढ़ता की सूचना हैं कि वह जाग गया है और परमात्मा की याद उसे सताने लगी।

धारा में लहरें उठ आई, हर लहर हुई तूफानी
मोह के बन्धन तोड़, प्रिय से मिलने चली जवानी
प्रतिकूलता के बीच मग्न हैं, यह संयम की दीवानी ।।
धारा में लहरें... ....

पवित्र मन ही सार्थक है, अपवित्र मन क्या जाने
स्वच्छ नीर को ढक लेते हैं हरी काई के ताने-बाने
कूल सिन्धु पाने उमड़ पड़ी हैं यह प्यास पुरानी ।।
धारा में लहरें. . . . .

क्षण भंगुर सांस गति है, सोच न हिम्मत हारू
श्रद्धा की अदम्य-गर्जना को कैसे आज बिसारु ।।
प्रलय तने चाहे जितना भी, नहीं रूकेगी मस्तानी
धारा में लहरें उठ आई, हर लहर हुई तूफानी

जीवन सरिता की धारा में वैराग्य की लहरें उठ आई हैं त्याग के तूफान ने घेर लिया है। अब यह तटों के बन्धनों को तोड़ती हुई अपने प्रिय से मिलने जा रही है, सागर से मिलने जा रही हैं। यह जवानी मचल उठी है।

प्रतिकूलता के बीच मगन है यह संयम की दीवानीं पतझर में भी मधुमास का आनन्द ले रही हैं। परमात्मा की लौ जाग गई हैं। संयम की मधुर-मिठास की यह दीवानी अब प्रतिकूलताओं को भी अनुकूलता में बदल लेगी। प्रतिकूलता-अनुकूलता तो मात्र मन के विकल्प हैं। मन के अनुरुप कार्य अनुकूल प्रतीत होता है और इच्छा के विरुद्ध काम प्रतिकूल महसूस होता है। पवित्र मन के सामने क्या प्रतिकूलता और क्या अनुकूलता। प्रतिकूलता-अनुकूलता तो अपवित्र मन की विडम्बनायें है। मन की, आत्मा की, पवित्रता को नष्ट करने वाले, इन्द्रिय भोग है। भौतिक सुख है। भौतिक

वैभव की काई, आत्म सरोवर को ढक देती है, गन्दा बना देती है। लेकिन अब जगती का कोई भी आकर्षण मेरी जीवन सरिता को नहीं रोक सकता है। यह प्यास बहुत पुरानी है, आज प्यास को सहारा मिल गया, सम्यक् नीर का पता चल गया है। ममता के इस सम्राट ने प्यास को जगा दिया है। अब जो सुलझ गया, जो जाग गया, उसे सोये लोग सुला नहीं सकते। श्रद्धा बड़ी प्रीतिकर होती हैं और अश्रद्धा बड़ी कष्टपूर्ण। अश्रद्धा के साथ बहुत कष्ट झेले है लेकिन अब मेरी प्यास श्रद्धा के आगोश में पलेगी फूलेगी-फलेगी।

अब श्लोक का रहस्य देखे... ... .अमित गति आचार्य इस कारिका में बड़ी ही सुन्दर बात कह रहे हैं। भक्त को इशारा कर रहे हैं, परमात्मा को पाने के पहले एक शर्त लगा रहे हैं कि यदि तुम परमात्मा को पाना चाहते हो, तो.. ... ... ?

"निराकृताऽशेष--ममत्व बुद्धे:"

समस्त पदार्थों से ममत्व बुद्धि को त्याग दो यही ममता तो संसार का कारण है, पापों की जननी हैं। इसी के कारण तो संसार का परिभ्रमण चल रहा है। हे आत्मन् ! जरा स्वयं में चिन्तन करो, अनन्तानंत वर्षो के बाद, अनन्तानंत जन्मों के बाद, चौरासी लाख योनियों में भटकने के बाद, कितनी आकांक्षाये, कितनी अभिलाषाओं के बाद, कितनी चेष्टाओं के बाद यह सौभाग्य का अवसर आया है और इससे भी सौभाग्यशाली अवसर आया है, परमात्म-भक्ति का। अब संसार के सारे विकल्पों को छोड़कर पदार्थ के प्रति निर्ममत्व भाव रखो, समता भाव रखो। अब जीवन में ऐसे जीना है कि प्रत्येक पल अमृत की वर्षा हो। क्षण चला जाए किन्तु उसका निचोड़, जीवन का आनन्द रह जाय। गन्ना चला जाय उसका रस हाथों में रह जाये। बर्फ गल जाये लेकिन उसकी शीतलता रह जाये। चन्दन घिस जाये, लेकिन उसकी सुगन्ध रह जाय। जीवन चला जाय लेकिन परमात्मा का द्वार खोलता जाय। इसलिए समता को जगाओ तथा साक्षी भाव को उपलब्ध हो जाये। अब वन में और भवन में भेद नहीं करना। दुख में सुख में समता रखना खेद खिन्न नहीं होना। संयोग-वियोग में आंसू नहीं बहाना। अपने-पराये में हर्ष-विषाद नहीं करना।

साक्षी समस्त शास्त्रों का सार है। समता समस्त शास्त्रों का निचोड़ हैं। समता समस्त कहीं गयी उपदेशनाओं का सार है। बस साक्षी होने का, समता धारण करने का भाव इतना ही है कि आप दृश्य से छूटते जाये और दृष्टा में डूबते जाये। जो बाहर दिखाई पड़े, जानता अलग है, भिन्न है,

पृथक है। जो देखने जानने वाला है, यही मैं हूँ। और धीरे-धीरे उस जगह आ जाना, जिसके पार जाने का उपाय न हो। मात्र जहाँ दृष्ट-ही-दृष्टा बचे। देखने को कुछ न बचे। मात्र जहाँ साक्षी ही साक्षी बचे। जहाँ एक ही स्वाद बचे आपके भीतर साक्षी का। जैसे सागर का जल खारा हैं, कहीं से भी चखो।

एक शिष्य अपने गुरू के निकट काफी समय से अध्ययन कर रहा था। अध्ययन उपरान्त भी वह खाली का खाली था, कुछ भी नहीं सीख पा रहा था। अर्थात् उसके अन्दर सांसारिक भोगों के प्रति आकर्षण ज्यो का त्यो बना हुआ था। जरा भी उदासीनता नहीं आ पा रही थी। गुरू उससे काफी परेशान हो चुका था। एक दिन वह शिष्य किसी वृक्ष के नीचे बैठा था, कि उसी समय एक सूखा पत्ता वृक्ष के नीचे गिरा। बस वह खड़े होकर नाचने लगा, और गुरू के आश्रम की ओर भागा। गुरू ने पूछा कि आज इतने मग्न क्यों हो ? आज तुझे क्या मिल गया है ? उसने कहा, जो आप मुझे दस वर्षो में नहीं दे पाये, वह आज एक वृक्ष ने सीखा दिया। वृक्ष से एक सूखा-पत्ता गिरते देखकर मैंने सब कुछ सीख लिया। गुरू ने कहा, अरे पागल ! वृक्ष से सूखे पत्ते गिरते हुए रोजाना मैं भी देखता हूँ। लेकिन मुझे तो अभी तक कुछ नहीं हुआ है। शिष्य ने कहा, कि जैसे ही वृक्ष से पत्ता गिरा, वैसे ही मेरे भीतर भी सूखे पत्ते की भांति कुछ गिर गया। और मुझे लगा कि आज नही तो कल मुझे भी इसी प्रकार गिर जाना है। जब मुझे भी इसी प्रकार गिरकर मिट जाना है, अस्तित्वहीन हो जाना हैं, तब मैं व्यर्थ क्यों भोगों में फसू और नाहक क्यों अपना जीवन बरबाद करूँ ? इतना अकड़ कर क्यों चलूं ? सूखा पत्ता हवा की ठोकर से गिर गया, इधर-उधर उड़ने लगा। क्या एक दिन मौत भी मेरे साथ यही बर्ताव नहीं करेगी ? आज नहीं तो कल मैं भी गिरकर सो जाऊंगा और राख का ढेर बन जाऊंगा। हवायें राख को इधर से उधर उड़ायेगी। इससे अच्छा तो यही हैं कि मौत आने के पहले ही जीवन को सुधार लूं।

जिसे मौत आकर छुड़ाती हैं, उसे तुम मौत के आने से पहले ही छोड़ दो, यहां पर तो हम सब चन्द दिनों के मेहमान है। कुछ समय के लिए अपने-अपने घोंसलो में ठहरें हुए हैं। जब यहाँ से कुछ दिन बाद जाना ही हैं, तब इनसे व्यर्थ में मोह क्यों करें ?

यह जीवन दो क्षण का जीवन को चहल-पहल दो क्षण की, दो क्षण का जगत्। पानी के बुलबुले की भांति हैं। इनसे बहुत मोह-ममता न करो। इनसे अपने को बाँधो मत, अन्यथा टूटेगा, तो बहुत पीड़ा होगी, इसीलिए

आचार्य देव कह रहे हैं कि समत्व भाव को उपलब्ध हो जाओ, साक्षी भाव को उपलब्ध हो जाओ।

समत्व भाव का अर्थ है—न छोड़ने का भाव, न पकड़ने का भाव, न मेरा कुछ हैं, तो छोड़े कैसे ? न मेरा कुछ है तो पकड़ूं कैसे ? जब अपना कुछ भी नहीं है तब पदार्थों में हर्ष-विषाद क्यों करूं ? अनुकूलता में फूलना नहीं, और प्रतिकूलता में फूलना नहीं। दोनों के बीज समता भाव ही धर्म हैं।

निराकृताऽशेष ममत्व बुद्धे :- समस्त पदार्थों से ममत्व बुद्धि को त्याग दो। ममत्व का अर्थ हैं कुबुद्धि, एक बेहोशी, जिसका स्वयं को पता नहीं चलता, कि हम क्या कर रहे है। हम क्यों कर रहे हैं, इसका भी पता नहीं चलता। ममत्व भाव का अर्थ हैं एक तरह का नशा, मोह का नशा।

मोह किसे कहते है ? मोह शब्द का अर्थ बड़ा सुन्दर है। मोयानि मोक्ष का, है यानि हन्ता, मोक्ष का हन्ता, मोक्ष का हनन करने वाला। मोक्ष से तोड़ने वाला और संसार से जोड़ने वाला। तुम्हारे और संसार के बीच सेतु बनाने वाला। मोह सेतु है, जिससे आप पर की यात्रा पर, बाहर की यात्रा पर निकलते है, आसक्ति की, ममत्व की यात्रा पर निकलते हैं। समार की दौड़ में शामिल होते है।

मोह टूटता है तो हम समता भाव को उपलब्ध होते है और परमात्मा से जुड़ते है। जैसे मोह जोड़ता है संसार से, वैसे ही समता जोड़ती हैं परमात्मा से।

मोह अंधकार का विस्तार है और समता आत्म जागरण का। सम्यक् समता वही है जो तोड़ती है गलत से और जोड़ती है सही से।

ममता दूसरे से जोड़ती है, अन्य से, पराये से, अपने से, भिन्न से। पति हो या पत्नि हो, बेटा हो, बेटी हो, मित्र हो, धन हो शरीर हो राज्य हो। स्वय के अतिरिक्त जो जोड़ने वाला तत्व है. वह है मोह या ममता। बस इतना समझो मोह यानि मौत।

काव्य का दूसरा विशेषण है "सम मनो मेस्तु सदाऽपि नाथ" मेरा मन सदा समता में रमता रहे। यानि समता आत्म का स्वभाव हैं। स्वभाव का विस्मृरण कभी न हो। जो समता की निधि मिली हैं कभी न छूटे। समता के सम्बन्ध में एक गीत कहता हूँ ------

"गायक के अधरो पर देखो
ऐसा गीत रचा गया हैं

युग-युग गाया सबने फिर भी
अब तक वह तो बचा हुआ है"
"तन उपवन में भी तो देखो,
ऐसा फूल गढ़ा गया है,
पतझर बीच झड़े हैं सारे
फिर भी वह तो खिला हुआ हैं
"सांसों के सागर में भी देखो
इक सांस रची हैं अनहोनी,
काल बली भी जिसके आगे
नहीं खेल सकता आँख-मिचौनी"
"मिट्टी की काया ने भी तो
ऐसा स्वप्न संजोया हैं
उसके ज्ञानाभाव में मानव
भटका—चीखा—रोया हैं"
"मौन निशा में मुनि दशा में
तप-ध्यान में लख पाया हैं,
जिसने समता साधी अपनी
निज चेतना को पाया है"

आपके भीतर भी वह गीत छुपा हैं, उसे खोजो अपने भीतर, जिसके पार आप जा सको। जिसके मिलन में मौत न छू सके। आँख बन्द करो, अपने शरीर को देखो। हाथ हिलाओ, हाथ हिलता दिखेगा। सिर में दर्द हो, देख सकते हो, भीतर सिरदर्द हो रहा हैं। आप अलग है, शरीर अलग हैं, दर्द अलग हैं। देखने वाला साक्षी हैं अब इस साक्षी से आप दूर नहीं हट सकते। साक्षी के साक्षी को भी देखोगे तो भी आप साक्षी रहोगे। साक्षी से नहीं हट सकते। बस यही जीवन का परम सूत्र है-वो गीत मिल गया, जिसे गायक गाते आ रहे हैं। लेकिन तुम अभी तक उसे नहीं पकड़ पाये।

"तन उपवन में भी तो देखो
ऐसा फूल गढ़ा गया है"
पतझर बीच झड़े है सारे
फिर भी वह तो खिला हुआ है।

तन के उपवन में एक ऐसा फूल खिला हैं, जिसे काल का पतझर मुरझा नहीं सकता। काल जिसका स्पर्श नहीं कर सकता। वही तुम्हारा

साक्षी है। वही साक्षी भाव सभी सन्तों की मालाओं का सूत्र है। उस साक्षी भाव के समक्ष सारे विरोध सारे ममत्व भाव शून्य हो जाते हैं। उस समत्व भाव में अन्धेरा और प्रकाश दोनों शून्य हो जाते है। क्योंकि दोनों से ममत्व भाव विदा हो गया है। शुभ और अशुभ दोनों शांत हो जाते है। इसलिए आप उठे–बैठे, सोये, जागे, बोले, न बोले घर में, मंदिर में, बाजार में, पर्वत पर वन में, भवन में कहीं भी रहें, आपका स्वाद साक्षी का हो जाए, समता का हो जाए ।। बस समझना हाथ में आ गया मोक्ष। पकड़ ली राह, उठ गया पहला कदम। और इस जगत में सम्यक् प्रथम कदम ही अन्तिम कदम भी है।

"समंमनो मेऽस्तु" मैंने समता का नया मकान बना लिया है। स्वयं को ममता की सीमा से तोड़ लिया है। सारी पृथ्वी उसका आंगन है, अनन्त आकाश उसका छप्पर है, चारो दिशायें उसकी दीवार है। अब मुझे इन सीमित दीवारों में रहकर इष्ट-अनिष्ट की कल्पना नहीं करना। मैंने समता को अपना लिया है। अब मेरे आँगन में ममता के लिए कोई भी स्थान नहीं रहा है। सामायिक में विवेक जाग्रत हो गया है। वैराग्य की आंधि आ गई है, राग-द्वेष का पुराना घर गिर गया है। उसके छप्पर स्वयं गिर गये, जमीन पर आ गये है, अहंकार के खम्बे गिर गये है।

ममता का छप्पर गिर जाये तो राग-द्वेष को रहने के लिए जगह नहीं बचती। राग-द्वेष जीते है, ममता की छाया में और ममता जीती हैं मोह की गोदी में। ममता राग-द्वेष का आधार हैं। ममता के कारण ही हम कैसे भी कृत्य करने को उद्यत हो जाते हैं। जानते हुए भी, समझते हुए भी कि राग-द्वेष करना गलत है, हानि कारक है, फिर भी करते है। क्या करे ममता करवा लेती है।

हमारा ससार द्वैत पर टिका हुआ है। जब तक वस्तु के प्रति राग द्वेष है, तब तक समता का जागरण असभव है। जन्म-मरण, संसार परिभ्रमण का क्रम अनवरत कायम रहेगा। आप चाहे किसी भी गति में रहे, रहना तो पड़ेगा ससार में ही। यदि राग-द्वेष में से किसी एक का भी अभाव हो जाता है तो न "मैं" बचता है, न "तू" बचता हैं। सब उसी समय छूट जाते है। सब खेल समाप्त हो जाता हैं, संसार का व्यवहार बन्द हो जाता हैं।

समता के अभाव में व्यक्ति दो मुंह वाले सांप के सामने खड़ा हैं। दो मुख वाले खम्बे पर मकान खड़ा हैं। उस खम्बे का नाम है ममता। ममता के दो मुंख है। एक तरफ उसका नाम है राग और एक तरफ उसका नाम है द्वेष। किसी एक को भी चुन लो। तो तत्क्षण पाओगे कि उसका

दूसरा विपरीत हिस्सा भी बिना बुलाये आपो आप आ गया।

जब तुम किसी से राग करोगे, तो द्वेष भी करोगे। प्रेम करोगे तो घृणा भी करोगे। सौन्दर्य दिखाई पड़ेगा, तो कुरूपता भी दिखाई पड़ेगी। शुभ दिखाई पड़ेगा, तो अशुभ भी दिखाई पड़ेगा। जब तुम किसी पर भरोसा करोगे तो संदेह भी करोगे। दोनों साथ ही रहेंगे, दोनों साथ-साथ चलेंगे। बस उनमें एक मुख्य और एक गौण रहेगा। द्वैत पर ही सारा संसार टिका हैं। राग-द्वेष संसार साधने वाले द्विमुखी खम्बे हैं।

आचार्य अमित गति कह रहे है कि अगर तुम संसार से पार होना चाहते हो, तो वन और भवन में भेद मत करना। शत्रु और मित्र में भेद की रेखा मत खीचना। सुख और दुख में अन्तर की दीवार खडी मत करना। संयोग और वियोग में हर्ष--विषाद मत करना। दोनों के प्रति समता भाव रखना।

आप किसी वातानुकूलित, एयरकंडिशन मकान में ठहरे हुए है, कोई आपको रोकने वाला नही है। और आप भी जानते है कि यहाँ पर रूकना ठीक नहीं है। अन्तःकरण बार बार दोहराये चला जाता है। यह मकान अपना नहीं हैं। लेकिन मोह भाव सोचता है यहाँ कोई भी तो रहने वाला नहीं है। यहां रुक जाने में क्या हर्ज हैं? मोह कहता है कि कई दिनों की मुराद आज पूरी हुई है। कब से सोच रहा था, एयरकंडिशन मकान का आनन्द लेना है। मकान मिलते ही सब सपने एकदम साकार होने लगते है। पता नहीं उस एकान्त में बने, खाली पड़े मकान में, न मालूम कितनी राग की तृप्ति छिपी मालूम पड़ती है, कितनी आकांक्षाये छिपी मालूम पड़ती है।

अंतः करण की आवाज मद होती चली जाती है। अन्तःकरण कहता है मत रुको. यहां बिना पूछे रूकना पाप है। लेकिन मोह का जादू असर दिखाने लगता है। उस मकान के पीछे अनेकों अव्यक्त संभावनायें व्यक्त होने लगती है। मन कहता है यह सब पाप है, बिना पूछे नहीं रुकना चाहिए। दूसरा मन कहता है कि सीधे से जो कोई रुकने भी नहीं देता है। यहाँ पर अनेकों तो आकर ठहरे हुए है, मैं कौन सा अकेला रुका हूं? मैं कोई नया तो नहीं हूं। मोह जाल बुनता है राग का, और ममता उसमें चित्रकारी करती है। इसलिए अन्तःकरण की आवाज मंद होती जाती है। ममता का बाजार विकसित होना जाता है। लेकिन आवाज तो तब भी गूंजती है, किन्तु ममता के कारण सुनाई नही पड़ती। आवाज इतनी धीमी हैं कि सुनने के लिए समता का, शांति का यंत्र चाहिए और ममता उतनी शांति नहीं देती, समता को आने नहीं देती।

आचार्य अमित गति कह रहे हैं कि अद्वैत की आराधना करे, समता को जगाये। ममता का त्याग करे। साक्षी बनकर चले फिरे, उठे-बैठे, खाये पिये, रोये-गाये पदार्थ को देखने का प्रयास करे। समता ही जीवन है, साक्षी भाव ही परमात्मा है। समता की सीढियों से और साक्षी भाव के द्वार से परमात्मा प्रवेश करता है।

आचार्य वन और भवन को माध्यम बनाते हुए कह रहे है कि जरा इसकी यथार्थता का ज्ञान करो। ये वन भी मिटेंगे, ये भवन भी गिरेंगे और तुम्हारा यह शरीर भी गलेगा मिटेगा। मन भी मरेगा। शरीर भी पुद्गल परमाणुओं का जोड़ है, और मन भी पुद्गल परमाणुओं के उधार विचारों का, वासनाओं का सगठन है। दोनों पिघल जायेगे. दोनों नष्ट हो जायेगे, दोनों खो जायेगे। दोनों में से एक भी शाश्वत नहीं है। तुम्हारा होना न तो शरीर में है, न मन में है। तुम्हारा होना तो उसमें हैं जो शरीर और मन के पार खड़ा हो जाता हैं। दोनों को देख लेना है। शरीर और मन का साक्षी हो जाना है। बस यही तो शाश्वत है, वही तो तुम हो, उसे पाने ही तो तुम साधक बने हो। अब दृष्टि को कर्म जन्म तुच्छ पदार्थों में अटकाना नहीं, भटकाना नहीं, बस समता को धारण करना, साक्षी पूर्वक देखना ताकि तुम्हारी साधना तुम्हें पुरूस्कार देकर जाये, तुम्हारा सम्मान करके जाये। समस्त शास्त्रों का सार समता से मिलकर जाये।

बस एक कला सीख लो जीते जी ऐसे हो जाओ जैसे नहीं हो। यही सामायिक का सार है। यही ध्यान का निचौड़ है। इस भव सागर से पार होने का अगर कोई उपाय है तो समता की नाव है। बस इस पर चढ़ो और पार उतर जाओ।

बस आज इतना ही।

आदिनाथ दिगम्बर जैन नया मन्दिर
प्रतापगढ़ (राज.)

दि. ६/८/९१
मंगलवार

४

वह तो आने को तैयार है

.......व्यक्ति बनो। अगर धर्मात्मा बनना है तो? भीड़ से मुक्त छोड़ो! अब न हिन्दु होने की जरुरत है; न मुसलमान होने की जरुरत है। न ब्राह्मण होने की जरुरत है न शूद्र होने की जरुरत है। न सिक्ख होने की जरुरत है न जैन होने की जरुरत है। बस आदमी होना ही काफी है। आदमी से भी नीचे गिरना है तो मुसलमान बनों, ईसाई बनों, हिन्दु बनों, जैन बनों, और आपस में संघर्ष करो...।

हम तो बहुमत के आधार पर तय करते है कि सत्य क्या है? जैसे सत्य भी बहुमत से पैदा होता हो। अगर बहुमत से ही पैदा होता तो फिर तपस्या करने की; स्वभाव में ठहरने की जरुरत क्या थी? सच तो यह है कि सत्य की खबर तो सन्तों से ही मिलती है। सन्तों का आचरण ही सत्य का परमात्मा का प्रमाण है। लेकिन जिनके पास आंखे होती है उन्हे हम अन्धा कहते है। जो ज्ञानी है उन्हे पागल कहते हैं।

मूल पद्य :- मुनीश ! लीनाविव कीलिताविव,
स्थिरौ निखाताविव बिम्बिताविव ।
पादौ त्वदीयौ मम तिष्ठतां सदा,
तमोधुनानौ हृदि दीपकाविव ॥४॥

हिन्दी पद्य :— तम राशि को है जैसे दीपक हटाते,
अज्ञान तम को तव पाद कमल नशाते ।
प्रति बिम्ब सम मम हिय में अब हो लीन.
कीलित के तुल्य उस पर होना आसीन् ॥

अन्वयार्थ :-

मुनीश	-	हे मुनीश्वर
तमो	-	अन्धकार के
धुनानौ	-	विनाशक
दीपकौ इव	-	दो दीपकों के समान
पादौ त्वदीयौ	-	आपके चरण द्वय
मम हृदि	-	मेरे हृदय में
लीनौ इव	-	लीन हो गये के समान
कीलितौ इव	-	कीलित हुए के समान
स्थिरौ	-	स्थिर हो गये के समान
निखातौ इव	-	उत्कीर्ण कर दिये गए के समान अथवा
बिम्बितौ इव	-	प्रतिबिम्बित के समान
सदा	-	सदा
तिष्ठताम्	-	विराजमान् रहें ।

भावार्थ :- हे मुनीष ! अज्ञान अन्धकार को विनाश करने वाले आपके चरण कमल मेरे हृदय में लीन हुए के समान या दिए के समान स्थिर और प्रतिबिम्बित होते हुए दीपक के समान सदा प्रकाश करते हुए विराजमान रहे

४

वह तो आने को तैयार है

ओम नमः सिद्धेभ्यः + ३
धर्मप्रेमी भव्यात्माओं !

एक घटना आपसे कहूं-एक अन्धा दरिद्र भिखारी अपनी दरिद्रता मे काफी परेशान था। उसने अपने जीवन में सुख देखा ही न था। उसके पास आँख तो थी नही भीख मांगते हुए एक मंदिर के द्वार पर पहुच गया। मदिर के द्वार पर पुकारा, हाथ फैलाया और मांगा कि मुझे कुछ मिल जाये। मदिर से दर्शन कर लौटते हुए लोगो ने कहा कि पागल ! यह ऐसा घर नही है जहाँ भीख मिल सके। यह तो मदिर है, यहां कोई रास्ता नही, तुम कहां भीख मांग रहे हो यहा कुछ भी नही मिलेगा, आगे बढो। वह भिखारी हंसने लगा और उसने कहा, अगर भगवान के घर कुछ नही मिलेगा तो फिर कहाँ मिलेगा? यह तो अन्तिम घर आ गया। मेरी किस्मत आज मुझे ठीक स्थान पर ले आयी। इन पैरो को धन्यवाद देता हूँ जो मुझे सही स्थान पर ले आये भले ही मै यहां भूल से आ गया हूँ, लेकिन सही स्थान पर आ गया हूँ। अब यहां से कैसे हटूं और हटूं तो कहाँ जाऊ, क्योंकि इसके आगे कोई घर नहीं है। अब मैं और कही नही जाऊगा, यही रुकूगां और यहां से लेकर ही हटूंगा। लोग हसने लगे, उन्होंने कहा, पागल, यहां कोई रास्ता नही है, और न कोई देने वाला है। मंदिर मे तो पाषाण की मूर्तियां है, तुझे देगा

कौन ? वह जोर से खिल-खिलाकर हंसने लगा। उसने कहा, मैं पागल हूँ या तुम सब ? अगर मंदिर में पाषाण की मूर्ति है, पत्थर का भगवान है, तो तुम सब पागल रोजाना यहाँ क्या कर रहे हो ? मुझे तो कम से कम दिखाई नहीं पड़ता हैं, मेरे पैर धोखे से यहाँ मुझे ले आये हैं, लेकिन तुम सब तो आँख वाले हो । तुम सब रोजाना यहाँ क्यों आते हो, अगर वह कुछ देता ही नहीं हैं। आप सब कह रहे हैं कि अरे पागल ! यहाँ तुझे कौन देगा ? उसने कहा, यह सवाल नहीं हैं। लेकिन भगवान के द्वार से अगर खाली हाथ लौटना पड़ेगा तो फिर ये हाथ कहां भरेगे ? फिर तो हाथ कहीं नहीं भरे जा सकेंगे। परमात्मा देता हैं या नहीं देता, इसकी फिकर मत करो, अपने को उसके योग्य पात्र बनाने की चिन्ता करो । अपात्र को परमात्मा क्या साधारण मनुष्य भी भिक्षा नहीं देता हैं। फिर तो यह परमात्मा का द्वार है, पात्रता का निर्मित होना जरुरी है। मैं तो अब आ ही गया हूँ इस द्वार पर, खाली हाथ तो जाने से रहा, अब तो हाथ भर के ही लौटूंगा । वह वहीं रुक गया और तीन माह तक उसके हाथ वैसे ही फैले रहे और गाँव के लोग उसे पागल कहने लगे। कहने लगे कि तू नासमझ हैं, कहाँ हाथ फैलाये हुए बैठा है ? यहाँ कुछ भी मिलने का नहीं हैं। आप भी सन्तों को, सन्यासी पुरूषों को नासमझ समझते है, उन्हें पागल समझते हैं उनकी मजाक उड़ाते है। जब परमात्मा के प्रति आस्था में कमी होती हैं या अनास्था होती है तो सन्त पागल नजर आते है। जब मीरा को कृष्ण के प्रति प्रगाढ़ प्रेम हुआ, तो लोगों ने उसे पागल घोषित कर दिया । उसके दीवानेपन की प्रशंसा नही की, बल्कि निन्दा की, उसका सम्मान नहीं, अपमान किया ।

वह भिखारी कह रहा है कि यह अन्तिम द्वार आ गया है, और भगवान महावीर और अमित गति आचार्य कह रहे है कि मनुष्य भव भी परमात्मा बनने का अन्तिम द्वार है। अगर इस द्वार से, इस भव में परमात्मा नहीं मिला, तो परमात्मा अन्य किसी भव से नही मिलेगा। एक अंधे भिखारी ने द्वार पहिचान लिया है, तुम आँख वाले हो, जैन कुल में श्रावक बन गये हो, अब अपने परमात्मा को जगा लेना ।

वह भिखारी वही ठहर गया । वही बैठा रहा और तीन माह बीत जाने के बाद उस गांव के लोगों ने देखा कि उस भिखारी को कुछ मिल गया है । उसके चेहरे की रौनक बदल गई है । उसके चारों तरफ शांति का आभा मण्डल बनने लगा है, शांति के परमाणु बिखरने लगे है, आनन्द की सुगन्ध फैलने लगी है। वह भिखारी नाचने लगा, आनन्द से भर गया।

उसकी आँखो में जहां आँसू थे, वहां मुस्कुराहट आ गयी। वह तीन माह में मुर्दा हो चुका था, पुनः उसके प्राण खिल उठे। वह नाचने लगा। लोगों ने उसकी खुशी का कारण पूछा, कि तुम्हें क्या मिल गया? उसने कहा बताना तो असंभव है। क्योंकि जो मैने चाहा था उससे कई गुना ज्यादा मिला है। मैंने जिस शरीर के लिए रोटी चाही थी और आत्मा के लिए भी रोटी मिल गयी। मैंने तो शरीर की भूख मिटानी चाही थी और मेरी आत्मा की भी भूख मिट गयी। लोगों ने पूछा कि तुम्हें मिला कैसे? उसने कहा, कि मैने अपने हृदय में परमात्मा के चरणों को स्थापित कर लिया, और श्रद्धा का दीपक जलाकर भक्ति प्रारंभ कर दी। बस मैंने पूर्ण समर्पण और संकल्प से उसकी आराधना की और मेरा काम हो गया। मेरा पूरा संकल्प था, मेरी प्यास पूरी हो गयी। मैं उस जगह पहुंच गया जहां वह पानी मिल जाता है, जिसके पीने से कोई प्यास नहीं रह जाती है।

लेकिन लोगो ने उस पर विश्वास नही किया और उसे पागल कहा, उसकी खुशी, उसका आनन्द, उसका नाचना पसन्द ना आया। दरअसल बात यह हैं जब कोई परमात्मा की सम्पदा, को लेकर पृथ्वी पर खड़ा होता हैं, तो सारे दीन-दरिद्र(अधर्मात्मा धर्मरहित)उसके विरोध में हो जाते हैं। सारे आत्मिक दृष्टि से हीन लोग बेचैन हो जाते है, उसकी निन्दा पर उतर आते हैं, उसे मिटाने को आतुर हो जाते हैं। क्योंकि उनका जीवन ऐसे कामो में बीता है, श्रेष्ठ काम किये नही है इसलिए मन जल्दी ईर्ष्या से भर जाता है। सन्तों की मौजूदगी उनकी हीनता का बोध कराती हैं। सन्तों की रोशनी मे उनकी आँखे चकाचौंध जाते है, वे अन्धे हो जाते है। इसलिए अब उनके दो ही काम हो सकते है या तो धर्मात्मा की निन्दा करके स्वयं को धर्मात्मा घोषित करे, या स्वयं को बदल ले। स्वयं को बदलना तो बहुत कठिन है। आसान तरीका तो यही है कि सन्तों की निन्दा करके उन्हें यहाँ से हटा दें। सन्तों की मौजूदगी से अधर्मात्माओं का जीवन अस्त-व्यस्त हो जाता है।

वह भिखारी परमात्मा का अनन्य भक्त बना, दिल से प्रभू का पुजारी बना, परमात्म-प्रेम का दीवाना हुआ। दुनियाँ उसे पागल समझने लगी। दुनियां तो वैसे भी दीवानों को पागल समझती है। दुनियां के पास सन्तों को तोलने का उपाय नही है, कोई तराजू नहीं हैं, कोई कसौटी नहीं हैं, कोई पैमाना नहीं हैं। एक साधु से मिलने एक पंडित गया। उसने साधु से पूछा, तुम इतनी प्रभु की महिमा गाते हो, उनके गीत गाते हो, क्या वास्तव में उससे तुम्हारा मिलना हुआ है, या यू ही

कोरी बातें करते हो ? मैं भी रोजाना मंदिर आता हूँ, शास्त्र पढ़ता हूँ, लेकिन वो तो आज तक मुझसे नहीं मिला । अगर परमात्मा है तो उससे हमें भी मिलाओ । अन्यथा मैं समझूंगा तुम व्यर्थ बोलते हो, तुम मात्र दिखावा करते हो, लोगों को मूर्ख बना रहे हो ।

साधु ने कहा, मैंने सुना है, एक सुनार, एक बार फूलों की बगियां में पहुंच गया । माली अपने काम में व्यस्त था, मस्त था, बसंत आया था, मधुमास था । फूल ही फूल खिले थे । अनेक रंग के फूल थे, अनेक प्रकार की गंध थी । सारी बगिया दुल्हन सी सजी थी । जैसे आकाश से तारे उतर आये हो, ऐसे वृक्ष सजे थे । लेकिन सुनार कहने लगा, मैं तो जब तक कसूं न फूलों को, सोने की कसौटी पर, तब तक मानूंगा नहीं । और उसने फूलों को कसना शुरू किया, सोने की कसौटी पर । सोने की कसौटी पर फूल कसे नहीं जाते, कसे भी जाये तो फूल सोना नहीं है । एक फूल तोड़ने लगा और कसने लगा, फैंकने लगा, क्योंकि कोई सोना न था । और सुनार को भी समझ में न आया कि सोने के अतिरिक्त भी सोना हैं ।

यहां जो लोग परमात्मा के प्रेम में दीवाने हैं, परमात्मा के रंग में रगे हैं संसार तो उन्हें पागल समझेगा ही । उनके पास तो कसौटी की एक ही चीज हैं, कितना धन हैं आपके पास, कितना पद हैं आपके पास, कितनी प्रतिष्ठा हैं आपके पास, कितना सम्मान है आपके पास, कितना वैभव हैं आपके पास ? संसार तो सिर्फ अंहकार को तौलने की तराजू जानता था, अंहकार को नापने का मीटर जानता था । निरहंकार को तौलने और नापने की उसके पास कोई सुविधा नहीं है । संसार तो पदार्थ को देख सकता है, परमात्मा के प्रति अंधा हैं । लेकिन कौन अपने को अन्धा माने । और फिर जहां पर अन्धो की भीड़ हो, अन्धो की जमात हो, अन्धो का बहुमत हो, वहाँ बहुत ही मुश्किल हैं समझना । क्योंकि इनका मन कहता है कि क्या करोड़ो—करोड़ों लोग अंधे हो सकते है । ये सन्त पड़ गये होंगे वहम में, खा गये होंगे कोई धोखा, खो गये होंगे किसी सपने में, बाते करने लगे धर्म की, परमात्मा की । लेकिन इतने करोड़-करोड़ लोग, इन्हें न तो कोई परमात्मा दिखाई पड़ता, न कोई रोशनी दिखाई पड़ती, न कोई सत्य का अनुभव होता उसके बावजूद भी धारणा है कि हम गलत नहीं हैं ।

हम तो बहुमत के आधार पर तय करते है, कि सत्य क्या हैं । जैसे सत्य भी बहुमत से पैदा होता है । अगर बहुमत से ही पैदा होता, तो फिर तपस्या करने की, स्वभाव में ठहरने की जरूरत क्या थी । सच तो यह है कि सत्य की खबर तो सन्तों से ही मिलती है । सन्तों का आचरण ही

सत्य का, परमात्मा का प्रमाण है। लेकिन जिनके पास आँखे है उन्हें हम अन्धा कहते हैं। जो ज्ञानी है उन्हें पागल कहते हैं।

धर्मात्मा पुरूषों ने, भक्तों ने, सन्तों ने शराब पी ली हैं। लेकिन यह शराब कोई अंगूर और महुआ से नहीं बनती और ना ही बाजारों में बिकती हैं। यह शराब श्रद्धा से, भक्ति से, समर्पण से आत्मा में बनती हैं, भीतर ही भीतर निर्मित होती हैं, स्वयं में स्वयं के द्वारा ही बनाई जाती हैं। यह शराब बेहोशी नहीं लाती, होश लाती हैं, यह शराब सुलाती नहीं, जगाती हैं। इसलिए उनकी मस्ती पागलपन नहीं, बुद्धिमानी हैं। यह बात भी सच हैं, सन्तों के पास देखने योग्य सम्पदा भी नहीं हैं, लेकिन उनके पास अदृश्य सम्पदा हैं, जो श्रद्धा की आँख से दिखलाई पड़ती हैं, जिसे मौत भी नहीं छीन सकती।

इसलिए अमितगति आचार्य ने अपने अनुभव से कहा कि अपने हृदय-आसन में परमात्मा के द्वय चरण-कमल जो दीपक के समान हैं, आत्मा को प्रकाशित कर रहे हैं। चोर तो घर में घुसते हैं जहाँ अन्धकार होता है, मौत उस पर आक्रमण करती हैं जिसका कोई स्वामी नहीं होता हैं, मालिक नहीं होता हैं। मैंने परमात्मा को अपना स्वामी, अपना मालिक बना लिया है। अब मौत मेरी सम्पदा का हरण नही कर सकती। जो परमात्मा के चरणों में झुक गया, जो परमात्मा के चरणों में समर्पित हो गया, जो परमात्मा के रंग में रंग गया हैं। जिसने अपने अंहकार को हर तरह से विसर्जित कर दिया हैं, जो मात्र परमात्मा का सेवक बनकर रह गया हैं :- म्हाने तो चाकर राखो जी ! .... जिसने कहा कि मुझे तो बस नौकरी में रख लो, आपकी सेवा करता रहूँगा। ऐसे व्यक्ति के द्वार पर मौत दस्तक नहीं देती हैं। मगर लोग परमात्मा के सामने भी झुकने को तैयार नहीं हैं। मन में कहीं गहरी आकांक्षा छुपी रहती हैं कि परमात्मा ही झुके, सन्त ही झुके। भले ही आप कहे चाहे न कहें, पर यथार्थ यही हैं, कि पहले सन्त झुके, मुस्कुराये, आपका अहंकार यही चाहेगा। अगर कहीं रास्ते पर सन्त जा रहे हैं। तो लगता हैं पहले इशारा वो ही करे, पहले वो ही मुस्कायें। आप नमस्कार करने में भी कंजूसी कर जाओगे। और आचार्य देव कह रहे हैं कि परमात्मा की सम्पदा वही पा सकता हैं, जो झुकने को तैयार हैं, अंहकार विसर्जित करने को तत्पर हैं, जो पूर्ण समर्पण को उत्सुक हैं, लालायित हैं।

परमात्मा के विराट अस्तित्व में मारने के लिए बेशर्त झुकना अनिवार्य हैं। मात्र दर्शक बनने से, यानि स्वाध्याय करने से काम नहीं

चलेगा, राह के किनारे खड़े होने से काम नहीं चलेगा, तट पर बैठे रहने से भी काम नहीं चलेगा। ऐसे में कुछ भी न पा सकोगे। खाली आये, खाली ही जाओगे। उतरना होगा ध्यान सामायिक के सागर में। यह कहने से काम नही चलेगा कि समय अनुकूल नहीं हैं, सच्चा त्याग वर्तमान में संभव नही हैं। मोती हैं सागर की गहराई में, लेकिन गोता-खोरों को मिलते है। हा इतना अवश्य हैं किनारों पर चाहो तो शंख, सीपियां, रग-बिरंगे पत्थर बीनना और उन्हीं से खेलते रहना। वैसे भी लोग उन्हीं से खेल रहे है-रग-बिरंगे पत्थर शख सीपियों से रेत के घर बना रहे हैं और उन्हें ही महल समझ रहे हैं, सुरक्षा के स्थान समझ रहे हैं। पत्थर महल भी आखिर रेत के ही महल हैं। सब पत्थर एक दिन रेत हो जायेंगे, मिट्टी में मिल जायेंगे। दिखते पत्थर है लेकिन है रेत का ही संगठन। उनकी असलियत को जानो और परमात्मा की भक्ति में डूबो, परमात्म-मस्ति में डूबो, पर परमात्म भक्ति की मदिरा पिओ, मोह मदिरा तो बहुत पी चुके हो।

संसार में बहुत प्रकार की शराब है। वैसे मुख्य तो तीन प्रकार की है। तीन प्रकार की मादकताए है। एक शराब है जो गम भुलाने को, ऐय्यासी करने को पी जाती है। दूसरी शराब है स्वयं को, परमात्मा को, सन्तों को, त्याग को भुलाने के लिए पी जाती है, जिसे मोह मदिरा कहते है। और तीसरी शराब है परमात्म-भक्ति की, परमात्म-स्मरण को जब स्वयं की याद सताती है तब की जाती है। उसका सेवन त्याग पूर्वक होता है।

सब अपनी शराब पीकर घूम रहे है। सबने अपने को मदहोश कर रखा है। यह शराब स्वयं ने पी है; किसी ने जबरन पिलाई नहीं है। हम खुद ही तैयार है विषाक्त, जहरीली, औषधियाँ पीने को। बल्कि ऐसी औषधियों को सब श्रम भी खूब करते है। बल्कि शराब पर पाबन्दी तो सभी लगाते है। मत पिओ सब कहते है। क्या शराब में खाक नशा है, सांझ पिओ और सवेरे उतर जाता है। इससे आत्मा, शरीर पवित्र होता है, प्रतिष्ठा गिरती है। लेकिन लोग तो ऐसी शराब पी रहे है, जिससे आत्मा पतित हो रही है। जिसका नशा भव से भवान्तर तक साथ चल रहा है। जिस पर समाज, परिवार, माता पिता कोई भी पाबन्दी नहीं लगाता। जिसका नशा उतरता है तो वह प्रभु-भक्ति में डूब जाता हैं। हर इंसान ने ऐसी शराबें पी रखी है, जिसका नशा उतरता ही नहीं है, पद की, सत्ता की, अंहकार की। जिसका नशा उतरना मुश्किल है। इस नशे से मुक्त कराने में एक मात्र औषधि ही सक्षम है परमात्म आस्था।

परमात्म श्रद्धा-भक्ति का विराट नशा सांसारिक सभी नशों को दबा देता है ।

अंगूरों से, महुओं से बनने वाली शराब-शराब खानों में मिल जाती है । और दूसरे प्रकार की शराब पंचेन्द्रिय-विषयों के सेवन से मिल जाती है । इसका शराब खाना स्वयं में ही स्थित है और अनादि काल से पीते चले आ रहे हैं । जन्म से मरण पर्यन्त सब इसका ही सेवन करते हैं । "मोहमहामद पीओ अनादि, भूल आपको भरमत आदि । बस एक पवित्र शराब का सेवन नहीं किया है । अगर पीना चाहते हो निर्ग्रन्थ मुनि की शरण में आओ ।

जैसे पहली और दूसरी शराब का नशा देखा जा सकता है उसी प्रकार तीसरी शराब का भी नशा देखा जा सकता है । प्रथम शराब पीने वाले की चाल-ढ़ाल सब बदल जाती है, किसी से पूछना भी नहीं पड़ता इसने शराब पी है कि नहीं । उसकी चाल बताती है कुछ पूछना नहीं पड़ता यद्यपि शराबी स्वयं को छिपाता है, तो भी उजागर जो जाना है, कुछ भी नहीं छिपा पाता ।

परमात्म-भक्ति, परमात्म-प्रेम की शराब को भी कोई आज तक छिपा नहीं पाया । जब बाहर की शराब नहीं छिपती है तो भीतर की क्या छिपेगी ? जो क्षण भंगुर नशा है जब वह भी नहीं छिपता तो शास्वत का नशा कैसे छिपेगा ?

आप स्वयं ख्याल कीजिये, कभी आपने किसी शराबी को भेद-भाव करते देखा है कि तुम हिन्दू हो कि मुसलमान ईसाई हो कि पंजाबी ? पीने वाला सभी भेद - भाव को भूल जाता है, कुछ क्षणों को । शराब की भी यही स्थिति है, शराब में कुछ केमिकल है, जो नशा लाते हैं, अफीम में भी कुछ है जिसने नशा चढ़ता है । शराब चाहे हिन्दु को पिलाओ, चाहे मुसलमान को पिलाओं, चाहे ईसाई को तीनों को नशा पकड़ेगा । शराब जाति पाति का भेद नहीं करती । धर्म की स्थिति भी यही है, परम अहिंसा धर्म का नशा चढ़ने पर भी सारे भेद भाव मिट जाते है । अज्ञान का पर्दा गिर जाता है । हिन्दू-मुसलमान, सिक्ख-ईसाई, तेरे-मेरे का सारा भेद-भाव मिट जाता हैं । जो स्वयं से जुड़ जाता है फिर वह अन्य किसी से नहीं जुड़ता है । क्योंकि जो सुगन्ध स्वयं के भीतर है, वही तो सबके भीतर है । जो झरना स्वयं के भीतर बह रहा है, वही तो सबके भीतर विद्यमान है । लेकिन मोह की शराब भेद उत्पन्न करती है, आपस में लड़वाती हैं, तभी तो तथाकथित धर्मात्मा आपस में लड़ते है, साम्प्रदायिक दंगों को हवा देते है ।

हनुमान के भक्त को हनुमान के सामने नशा चढ़ेगा, राम भक्त को राम के मन्दिर के सामने नशा चढेगा। पैगम्बर के भक्त को मस्जिद के के सामने नशा चढेगा, और जीसस के भक्तों को जीसस के नाम पर नशा चढ़ता है और किसी को नशा नही चढ़ता है। तथाकथित धर्म भेद-भाव पैदा कर रहे हैं। लेकिन सम्यक् धर्म भेद-भाव से परे है। उसकी करुणा तो सबकी ओर बहती है। जब शराब ही भेद-भाव नहीं करती, तब धर्म कैसे भेद-भाव करेगा ?

मोह की शराब ज्यादा खतरनाक हैं, इंसान से इंसान को तोड़ती है, आपस में संघर्ष कराती है। एक शराब कुछ समय के लिए स्वय को भुलाने को पी जाती है। वह भी खतरनाक है. त्याज्य है। और एक शराब है. जो स्वयं को जगाने के लिए पी जाती है। बस मैं उसी परमात्म-भक्ति रूपी शराब की पीने की बात कर रहा हूँ। बाहर की शराब पीने वाला नीचे गिरता है और परमात्मा की शराब पीने वाला ऊपर उठता हैं। यह होश की शराब हैं. आत्म-जागरण की शराब है, आत्म उत्थान की शराब है।

आचार्य देव परमात्मा के गुणःस्मरण की महिमा का महत्व बताते हुए कह रहे हैं कि हे परमात्मा! आपके चरण कमल की अचिन्त्य महिमा है। ये तो अज्ञान अन्धकार को तिरोहित करने वाले दो दीपक है। वे मेरे हृदय में हमेशा-हमेशा को स्थित हो गये है। जब से आपके चरण कमल मेरी हृदय भूमि पर पड़े है तब से कर्म लुटेरे भाग गये है, अब आप इस हृदय से कभी मत जाना।

इतनी बड़ी उद्घोषणा तो वही कर सकता है. जिसका मोह गल गया हो. परमात्म प्यास का जागरण हो गया हो. स्वयं के परमात्म-दर्शन में खो गया हो. स्वयं के परमात्मा का अनुभव कर लिया हो, स्वयं की परम स्वतंत्रता का संवेदन हो गया हो आत्म पंछी परमात्म-आकाश में विचरण करने लगा हो। जब तक मोह मदिरा का नशा चढ़ा है तब तक तो प्यास असंभव है। परमात्मा पर आस्था पैदा नहीं तो परमात्मा को पुकारोगे कैसे ?

रामायण में एक प्रसंग आता है कि राम स्वर्णमृग के पीछे गये; उधर रावण ने नकली आवाज में लक्ष्मण को पुकारा कि बचाओ, मैं मुश्किल में हूँ। लक्ष्मण सीता को छोड़कर जाना नहीं चाहते थे, तो सीता ने कुछ ऐसी चोट की बात कह दी कि लक्ष्मण तिलमिला गये। अभद्र बात कह दी। तुम चाहते हो कि किसी तरह राम समाप्त हो जायें, तो तुम मुझ पर अधिकार कर लो। तुम्हारी इच्छा यही है तुम क्या जाओगे,

बड़ा भाई मुश्किल में पड़ा है और तुम बहाने खोज रहे हो कि मेरी रक्षा के लिए रुके हो ! जाओ । यह चोट ऐसी थी कि लक्ष्मण को जाना पड़ा ।

एक भक्त भी परमात्म-भक्ति में ऐसी ही चोट करके कह रहा है कि आपके बिना तो मेरा उद्धार हो ही नहीं सकता है, आप तो दीपक हैं, अन्धकार का हरण करने वाले हैं। आपके पांव तो हाथी के समान हैं, टमाटर यदि उसके नीचे आ जाये, तो उसका कचुमर निकल जाता हैं । इसी प्रकार हे भगवन ! आपके चरण-कमल हृदय भूमि में पड़ते ही कर्मों का कचूमर निकल गया है, उनका दम निकल गया है ।

परमात्मा के प्रति यदि हृदय में कृतज्ञता न हो तो भक्ति कैसे जन्मे ? कृतज्ञता, विश्वास, श्रद्धा की भूमि पर ही भक्ति का जन्म होता हैं, और भक्ति के जल से आत्मा प्रक्षालित होकर पावन बनती हैं । अमितगति आचार्य परमात्मा के प्रति अपनी गहन भक्ति को, आस्था को प्रगट कर रहे है। भक्त-भक्ति सीढियों पर चढकर ही परमात्मा के प्रसाद में प्रवेश करता है ।

तातै मेरे नाम की महिमा अपरम्पार
जैसे तिनका अनल को सघन बनौ दे जार

हे परमात्मा ! आपके नाम की महिमा अपरम्पार हैं। जैसे तिनका अनल को......... जैसे एक छोटी सी चिनगारी, "सघन बनौ दे जार' सघन वन को जला देती हैं । ऐसे तेरे नाम की जरा सी चिनगारी भी मेरे अन्तस् के गहन अन्धकार को जला देती हैं मेरे कर्मों के समस्त वन जल जायें। मेरे सारे बन्धन, मेरे सारे अनन्त-अनन्त जन्मों की भूले सब जल जाय । तुम्हारी कृपा का एक छोटा सा दीपक मेरे हृदय में जल गया है, जो अब कभी भी बुझने वाला नहीं है ।

परमात्मा ऐसे ही नही मिलता ! संयम धारण करना होता है, तूफानों से टक्कर लेनी ही होती हैं, उपसर्गों को सहन करना ही पड़ता है । व्यक्तित्व की आग ऐसे ही नही जलती. भीड़ का त्याग करके ध्यान की साधना से जलती है । अगर भीड़ के अंग बने रहेंगे तो राख में ही दबे रहेगे । व्यक्ति बनों, अगर धर्मात्मा बनना है तो ? भीड़ से मुक्त हो जाओ । अब न हिन्दू होने की जरूरत है न मुसलमान होने की जरुरत हैं, न ब्राह्मण होने की जरुरत है, न शुद्र होने की जरूरत है, न सिक्ख होने की जरूरत है, न जैन होने की जरूरत है, बस आदमी होना काफी है । आदमी से भी नीचे गिरना है तो मुसलमान बनो, ईसाई बनो, हिन्दू बनो, जैन बनो, और आपस में संघर्ष करो । इन सम्प्रदायों से ऊपर उठो, धर्मात्मा बनो, ध्यान

करो, सामायिक करो। अन्यथा मुट्ठी भर खाक रह जाओगे। अब प्रेम करो परम अहिंसा धर्म से। अब प्रेम करो अज्ञात से। अब प्रेम करो ध्यान सामायिक से। अब प्रेम करो स्वयं से तभी जिन्दगी पूज्य बनेगी, ऊपर उठेगी, परमात्मा से मिलेगी।

अगर परमात्मा से, धर्म से, स्वयं से प्रेम होगा तो जीवन में दान और त्याग घटित होगा। अगर परमात्मा सुरक्षा हैं, तो चलो उसकी शरण चले, उसे अपने हृदय में विराजमान करे? अगर परमात्मा धन हैं, तो हम और धन के पीछे क्यों दौड़े? अगर परमात्मा परम-पद हैं, तो सब पद छोटे हें, ओछे हैं। व्यक्ति बनने को, धर्मात्मा बनने को मात्र इतना ही काफी है, दोनों घुटने जमीन पर टेक दो, गिरा लो आंसू उसकी प्रीति में समर्पित हो जाओ तो तुम्हारा अस्तित्व उभर आयेगा। लोग नदी के किनारे भी पहुंचकर प्यासे रह जाते है, यानि मनुष्य बनकर भी परमात्मा से वंचित हैं, क्योंकि झुके नहीं है, हाथ को अंजली नहीं बनाया है। शायद उन पागलों की भाँति पुरूषार्थहीन होकर बैठे है कि जब काललब्धि आयेगी तो स्वयं परमात्मा मिल जायेगा। नदी किनारे भी एसी अपेक्षा से खड़े हैं कि नदी ही छलांग लगाए और कंठ तक पहुंचे। नदी तैयार है, मगर झुकना होगा, हाथ की अंजुली बनानी होगी। झुकना-समर्पण है अंजुली बनाना, चरित्र लेना, ध्यान करना है बस फिर तृप्ति तुम्हारा आलिगंन करेगी और परमात्मा तुमसे प्रेम करेगा, तुम्हारे अन्तस् में वास करेगा।

अगर परमात्मा को पाना है, तो किनारे का मोह छोड़, पुरानी परम्पराओं का मोह छोड़। अज्ञान की यात्रा पर निकलना हैं तो धर्म की नाव है, और चारित्र की पतवार है। धर्म चुनौती है तूफानों को स्वीकार करने की यानि तप—त्याग को स्वीकार करना और जो तप त्याग को स्वीकार करता है तो उसके अन्दर बहुत निखार आता है उसकी आत्मा में, उसके प्राणों में। आत्मा उज्जवल होती है, उसमें ज्ञान की चमक पैदा होती है, एक दीप्ति आती है, एक ज्योति जगती है।

ध्यान सामायिक से जोड़ो स्वयं को बस उसे छोड़ने का नाम ही परमात्म निमंत्रण है। सेतु बनाओ और परमात्मा के बीच सामायिक का। सेतु बनाओ अपने और परमात्मा के बीच ध्यान का। फूल खिलाओ अपने परमात्मा के बीच सेतु बनाओ। वह तो आने को तैयार है, तत्पर है, तुम जरा अपने हृदय को खोलो।

बस आज इतना ही दिनांक ८-८-९१ गुरुवार

आदिनाथ दिगम्बर जैन नया मंदिर, प्रतापगढ़ (राज.)

५

पाप स्मरण नहीं, पाप प्रक्षालन कहो

देख पाप का रूप सुहाना करना न उनसे प्यार।
बटोही उनसे ले विश्राम ॥

तेरा काम है बचते रहना,
पाप काम से डरते रहना,
जीवन अनुभव से करते रहना, उनका काम तमाम।
बटोही उनसे ले विश्राम ॥

चाहे फूलों सा आकर्षण हो,
चाहे सावनसा आमंत्रण हो,
मोह के कारण उनमें फसना नहीं तेरा काम।
बटोही उनसे ले विश्राम ॥

अगर तेरे अब पांव भी चूमे,
साथ-साथ धरती पर घूमे,
पाप त्याग के भाव जगा, सन्तों सा करना काम।
बटोही उनसे ले विश्राम ॥

मूल पद्य :- एकेन्द्रियाद्या यदि देव ! देहिनः,
प्रमादतः संचरता इतस्ततः ।
क्षता विभिन्ना मिलितानिपीड़िताः,
तदस्तु मिथ्या दुरनुष्ठितं तदा ॥५॥

हिन्दी पद्य :- एकेन्द्रियादि को कष्ट यदि दिया हो,
प्रमाद से क्षत-विक्षत पीड़ित किया हो ।
कर जोड़ मैं क्षमा उनसे माँगता हूँ,
हो पाप मेरे मिथ्या वर चाहता हूं ॥

अन्वयार्थ :-

देव	–	हे देव !
इतस्ततः	–	उधर-इधर
सचरता (मया)	–	संचार करते हुए मेरे द्वारा
यदि	–	यदि
एकेन्द्रियाद्याः	–	एकेन्द्रिय आदि
देहिनः	–	प्राणी
	–	विनिष्ट हुए हों
विभिन्नाः	–	छिन्न-भिन्न कर दिए गए हो
मिलिता	–	परस्पर में मिला दिए गए हो
निपीड़िताः	–	पीड़ित किए गए हों
तदा	–	तो
तत् (मे)	–	वह मेरा
दुरनुष्ठितम्	–	दुराचरण-पाप
मिथ्या	–	मिथ्या (निष्फल)
अस्तु	–	हो

भावार्थ :— हे देव ! यदि प्रमाद से इधर—उधर चलते हुए एकेन्द्रिय आदि जीव क्षत-विक्षत पीड़ित-सम्मिलित या छिन्न—भिन्न हो गये हो तो मेरा यह दुष्कृत मिथ्या निष्फल हो ।

५

पाप स्मरण नहीं, पाप प्रक्षालन कहो

ओम नमः सिद्धेभ्यः
धर्म प्रेमी भव्यात्माओं !

एक घटना आपसे कहता हूँ...... ! एक सन्त का समाधिमरण हुआ तो मरणोपरान्त स्वर्ग पहुंचा । वहां का वातावरण बहुत सुन्दर था। चारों तरफ मधुर संगीत बरस रहा था, सुवासित वायु बह रही थी । बड़े बड़े भवन थे, स्फटिक मणी से निर्मित थे, स्तम्भ भी स्फटिक मणी के बने थे तथा उन पर सुन्दर-सुन्दर फूलों के बन्दनवार लटके हुए थे, और भवन के भीतर बाहर चन्दन की मशाले जल रही थी । उसने भवन में प्रवेश किया, तो एक सुकोमल शय्या पर एक व्यक्ति को लेटे पाया, जिसके आस पास दो-चार अफसरायें सेवा में संलग्न थी । वह उसके पास गया और कंधे पर हाथ रखकर बोला, मित्र तुम्हारा जीने का यह ढ़ग कैसा है ? क्या यही जीवन है । वह युवक उसकी ओर मुड़ा और उसे पहिचान कर बोला, हे प्रभु ! लेकिन मैं तो पहले दुखी था, रोगी था; कोढ़ी था आपने ही तो स्वस्थ्य होने का उपाय बताया था, पूर्व पापों का प्रायश्चित करना सिखाया था। उसका ही पुरस्कार मुझे मिला है, अब मैं इस सम्पदा का, इस जीवन का क्या करूं ? इसे कैसे व्यतीत करूं ? जीवन जीने का और कोई ढ़ंग तो मैं जानता नहीं हूँ।

वह सन्त उस भवन से बाहर लौट आया। वह थोड़ा उदास था। उसने अपने शिष्य से ऐसी अपेक्षा न की थी। वह और आगे बढ़ा, तो एक स्त्री जो भौतिक लिबास में थी और पांव में घुंघरु बंधे थे। एक युवक उसका पीछा एक शिकारी की तरह कर रहा था। युवक ने दो रंगी कमीज पहन रखी थी। स्त्री का मुख एक मूर्ति की भांति अत्यन्त सुन्दर था और नवयुवक की आँखों में वासना का सागर लहरा रहा था। सन्त ने द्रुतगति से उसका पीछा किया और पास जाकर कहा, भाई मेरे, तुम स्त्री की ओर क्यों देख रहे हो और इस तरह क्यों घूर रहे हो? आँखे क्या रूप देखने के लिए बनाई गयी हैं? आंखे क्या क्षुद्र को देखने के लिए बनाई गयी हैं? नवयुवक पलटा और उसने सन्त को पहिचानकर कहा, मेरे मालिक पहले मैं तो अन्धा था, आपने ही तो मुझे दृष्टि दी, मंत्र आराधना सिखाई थी, उसका ही यह पुरस्कार है, तुम्हारी कृपा से ही दृष्टि मिली है, अब मैं किस तरह निहारूं? अब मैं इन आँखो का क्या करूं? जिम्मेवार हो तो तुम जिम्मेवार हो। मेरा कसूर क्या है?

सन्त ने दौड़कर स्त्री को रोका और कहा, बहिन, क्या पाप के अतिरिक्त कोई और मार्ग नही है? औरत ने उसे पहिचाना नमस्कार किया और कहा, पर प्रभु मेरे! तुमने ही तो उस दिन मुझे बचाया था, और मेरे पाप क्षमाकर दिये थे। दूसरे किसी मार्ग का मुझे पता भी तो नहीं है यह मार्ग अच्छा लगा, सुखकर लगा, दूसरों को मूर्ख बनाने का इससे अच्छा मार्ग और कौन सा होगा? क्या आप मुझे भूल गये हैं। मैं वही तो हूँ जिसे लोग पत्थर मारने नदी के किनारे ले गये थे, और आपने उन लोगों से कहा था; वही पत्थर मारे जिसने अपने जीवन में न कभी पाप किया हो और न पाप की आकांक्षा की हो। और फिर वे सारे लोग पत्थरो को फेंककर चुपचाप वहाँ से चले गये थे; क्योंकि उनमें कोई भी ऐसा न था जिसने कोई भी पाप न किया हो, और कोई भी न था जिसने पाप विचार भी न किया हो। तब हम दोनों ही नदी तट पर अकेले रह गये थे। सांझ होने लगी थी, रात घिरने लगी थी और तारे निकल आये थे और मैंने आपसे कहा था, हे मेरे प्रभु! मेरे पापों की सजा दो। उस समय आपसे कहा कि मैं सजा देने वाला कौन होता हूँ? मैं तुम्हें क्षमा करता हूँ। और तब से मैं ऐसे ही जी रही हूँ, तुम्हारी क्षमा ने मुझे स्वर्ग में पहुंचा दिया, लेकिन पाप से मुक्त नहीं करा सकी। अगर पाप का प्रायश्चित कर लेती तो दुबारा करने का विचार ही मन में पैदा न होता।

साधु बहुत उदास हुआ। वह और आगे बढ़ गया। वह स्वर्ग नगरी के बाहर चला आया। जब वह नगर के बाहर आ गया तो एक पर्वत के नीचे एक नवयुवक को बैठे रोते देखा। वह युवक वृक्ष से रस्सी बांधकर आत्मघात की व्यवस्था कर रहा था। वह उसके पास गया और उसके कंधे को छूकर बोला, प्रिय आत्मन्। तुम रोते क्यों हो? और यह अपनी ही मृत्यु का आयोजन कैसा? जीवन जैसे बहुमूल्य हीरे को क्या ऐसे ही फेंका जाता है? नवयुवक ने सिर उठाया और उसे देखा पहचानकर बोला, महाप्रभू! मैं तो मर चुका था और तुमने मुझे फिर से जीवन दान दिया। अब मेरी समझ में नहीं आता है, कि मैं इस जीवन का क्या करुं? मैं रोऊ नहीं तो भला और क्या करुं? और रोता भी तो कब तक रहूं? और रो-रो कर जीने से फायदा भी क्या है? इसलिए मैंने मर जाने का निश्चय किया है।

क्या पता यह कहानी सच भी है या नहीं लेकिन इस कहानी की घटना हमारे अतीत और वर्तमान का स्पर्श अवश्य करती है कि पहले हम क्या थे और अब क्या है। पुण्य पाप क्या चीज है, और पाप प्रायश्चित का फल क्या है। कहानी की अन्तर्दृष्टि बहुत पैनी है, उससे अध्यात्म की गहराई को सूक्ष्म दृष्टि से छुआ है। उसने अन्य दर्शनों पर एक प्रश्न चिन्ह लगा दिया है, कि लोगों को आँखे देना काफी नहीं है, उन्हें देखने का तौर-तरीका भी तो सिखाना होगा। मात्र क्षमा करना ही काफी नहीं है, पाप का प्रायश्चित करना और हमेशा को मुक्त कराने की कला भी सीखानी होगी। लोगों को जीवन देना ही काफी नहीं है, क्योंकि जीवन तो सबके पास है- और प्रत्येक उसे गवां रहा है। उन्हें जीने की कला सीखानी है। उन्हें जीने की कला सीखानी है, जीवन का सदुपयोग करना सीखाना है नहीं तो मुक्त जीवन मिलने वाले ऐसे ही नृत्य करते रहेंगे?

आप स्वंय सोचे? मुर्दों को जिन्दा करना, यह चमत्कार नहीं है, असली चमत्कार है जीवित को जीने की कला सीखा देना, परमात्मा की राह पर चलना सीखा देना, जीवन का सदुपयोग करना सीखा देना। और अन्धे को आंख देना कोई बड़ा रहस्य या चमत्कार नहीं है, असली रहस्य की बात तो यह है कि आंख वाले को देखने की कला सीखा देना, परमात्मा-दर्शन की कला सीखा देना, सन्त-दर्शन की कला सीखा देना। सभी तो जी रहे हैं और जीकर भी क्या कर रहे हैं? क्या परमात्मा को, सन्तों को देख रहे हैं? आंखें पाकर भी प्रतिदिन गिर रहे है। लंगड़ो को, पैर दे दो, वे जायेंगे कहां? क्या तीरथ करने? परमात्म-दर्शन करने मंदिर? वे वैश्यालयों में, क्लबों में शराब

खानों में पहुंच जायेंगे। मुर्दों को जिन्दा कर दो, वे फिर अपनी मर गयी वासनाओं को पुनरुज्जीवित कर लेंगे और भोग के बाजारों में एकत्रित हो जायेंगे। मुर्दों को जलाना यानि उनकी वासनाओं को जलाना है। अंधों को आंख देना यानि उनकी वासना को पैर देना है। और वासना के पैर हों, कामना की आख हो। भोग को जीवन हों तो नर्क ही निर्मित होगा, स्वर्ग नही। और भूल से स्वर्ग भी पहुंच जायेगा। तो वहां भी ऐसे ही मधुशालायें और वैश्यालय आदि खोजेगा।

जिसे अपने पाप का बोध होने लगता है, गहरी प्रतीति होने लगती है फिर उसके लिए पाप का प्रायश्चित अवश्यभावी है वह प्रायश्चित किये बिना चरित्रशुद्धि किये बिना नही रह सकता क्योकि पाप से बचने का एक ही उपाय है, वह है पाप का दर्शन, पाप का बोध। पाप सिन्धु से पार ले जाने वाली एक ही नौका है, वह प्रायश्चित है चारित्र-शुद्धि है, पाप के पार आखो को परम वीतरागता के परमात्मा के दर्शन करा देने वाला अगर कोई द्वार है तो वह पाप-प्रायश्चित चारित्र-शुद्धि है।

आचार्य देव कह रहे है, एक बात का ध्यान रखना, पाप कितने ही सुहावने हो, मनोहारी हो, सुखदायी प्रतीत हो, प्यारे लगते हो तब भी उनके आकर्षण मे मत फस जाना। अनादिकाल से वही कुकृत्य करते आ रहे हो, तभी तो तुम्हारा जन्म-मरण हो रहा है। अब इससे ऊपर उठो, प्रायश्चित की नौका मे बैठो और पार हो जाओ। पाप आकर्षित करता है, स्वर्ग के आश्वासन देता है, फिर भी पाप, पाप ही है, उनसे बचना।

देख पाप का रुप सुहाना करना न उनसे प्यार ।
बटोही उनसे ले विश्राम ।।
तेरा काम है बचते रहना ;
पाप काम से डरते रहना ;
जीवन अनुभव से करते रहना, उनका काम तमाम ।
बटोही उनसे ले विश्राम ।।
चाहे फूलों सा आकर्षण हो,
चाहे सावन सा आमत्रण हो,
मोह के कारण उनमें फंसना नही है, तेरा काम ।
बटोही उनसे ले विश्राम ।।
अगर तेरे अब पांव भी चूमे,
साथ-साथ धरती पर घूमे,

पाप-त्याग के भाव जगा, सन्तों सा करना काम ।
बटोही उनसे ले विश्राम ।।

भले ही सांसारिक पूण्य जगह-जगह पग-पग पर भोग सामग्री बिखेर दे तो भी उनका स्वाद न चखना। भले ही भोग चरण चूमने दौड़ा आ रहा हो, जैसे नदिया सागर से मिलने जाती है तो भी तुम उनके आकर्षण में मत फंसना। अभी तुम एक यात्री हो, और तुम्हें बहुत लम्बी यात्रा तय करनी है। काफी लम्बी यात्रा करते हुए आ रहे हो, पता नहीं यात्रा के दौरान कौन–कौन नहीं मिला ? इन्हीं मिलने वालो ने, भोग आकर्षणों ने तो गुमराह किया है, भटकाया है, रोका है, और जीवन सम्पत्ति को लूटा है तथा पाप का बोझ पीठ पर लाद दिया है। इतना बोझ लाद दिया है कि अब चलना भी दुश्वार हो रहा है। राह का परिचय ही परिग्रह बन गया है।

जरा, विचार करो, चिन्तन करो, मनन करो, तुम इस संसार में नये नये नहीं हो। युग-युगान्तरों से, जन्म-जन्मान्तरों से नाना योनियों का स्वाद चखने आ रहे हो और उनमें अपनी मालकीयत की निशानी छोड़ते, घर बनाते आ रहे हो। पता नहीं अपनी दैहिक प्यार के पीछे, कितनों के घर उजाड़े होंगे कितने घोंसले तोड़े होंगे। अपने सुख के खातिर कितनों की जान ली होगी ? कितनों के हाथ-पांव तोड़ होंगे ? इसलिए उन पापों का प्रायश्चित करो। उन सबसे क्षमा माँगो। क्योंकि ऐसा सिद्धान्त है कि परमात्म-अमृत से अपने पात्र को भरने के पहले उसे क्षमा के जल से, प्रायश्चित के नीर से धोलो, साफ कर लो, पवित्र कर लो, प्रक्षालित करो। गन्दे पात्र में अमृत भी विष हो जाता है, अच्छा दूध भी फट जाता है। इसलिए पात्र का साफ होना आवश्यक है।

आप कह रहे हैं कि पापों का प्रायश्चित करना अनिवार्य है तो क्या यह पापों का स्मरण करना नही है ? जो पाप हो गये हैं विस्मृत हो गये है, प्रयश्चित के माध्यम से क्यों याद करना ? उनका स्मरण भी तो एक प्रकार से पाप है ?

लगता है आपको किसी ने भ्रमित कर दिया है। पाप प्रायश्चित पाप स्मरण नहीं है, पाप प्रक्षालन है। जो पाप संस्कार आत्मा और मन पर पड़ गये, उनके जो दाग लग गये हैं, उन्हें साफ करने का उपाय है प्रायश्चित। अगर पुराने संस्कार आत्मा में विद्यमान रहे तो मनुष्य उनकी दुर्गन्ध में बार-बार पाप करेगा। उनसे मुक्त नहीं हो सकेगा। उस समय का पाप कृत्य जरुर गुजर गया है। लेकिन पाप विचार तो ज्यों के त्यों कायम है। उसी स्त्री को

साधु ने क्षमा कर दिया, पापियों के जाल से मुक्त भी करा दिया था, फिर भी उसने पाप करना नहीं छोड़ा । क्योंकि उसके अन्दर पाप संस्कार कायम थे । वेही प्रायश्चित को पाप स्मरण कहते हैं, जो कि स्वयं भ्रमित है और अन्य को भी भ्रमित करते हैं । अग्नि को बुझाने के लिए नीर की आवश्यकता पड़ती है । राख को साफ करने के लिए बुहारी की जरुरत पड़ती है । प्रायश्चित पाप स्मरण नहीं, पाप प्रक्षालन है । आप यू समझे अगर किसी पात्र में दही रखा है और आपने दही उसमें से निकाल लिया । पात्र खाली है, उसमें जरा भी दही नहीं है, तो क्या उसमें दूध सुरक्षित रह सकता है ? नहीं, क्योंकि दही की खटास के संस्कार तो कायम है जो दूध को विकृत करने में कारण बने हुए हैं । इसलिए पापों का प्रायश्चित को पुनः नये पाप न हो इसलिए पापों का प्रायश्चित करना तथा प्रत्याख्यान करना अनिवार्य है । पाप प्रायश्चित को पुनः पाप स्मरण मत कहो, पाप प्रक्षालन कहो, आत्म-मरण, अज्ञान-जागरण है और पाप संस्करण है ।

आचार्य कह रहे हैं कि हे देव ! यदि प्रमाद से, इधर-उधर चलते हुए एकेन्द्रिय आदि जीव क्षत-विक्षत, पीड़ित-सम्मिलित या छिन्न-भिन्न हो गये हो तो मेरा यह दुष्कृत निष्फल हो ।

यह सामायिक पाठ का पांचवा काव्य रहस्यमय है, और संख्या भी रहस्यमय है । पाप पांच होते हैं तथा विनय के भेद भी पांच होते है । व्रतों के अतिचार भी पाँच होते है । प्रतिक्रमण के अक्षर भी पांच है । पांच इन्द्रियों के विषमों से ऊपर उठने के लिए एकेन्द्रियादि से क्षमा मांगना और पांच व्रतों का अनुपालन करना अनिवार्य है । पाँच पाप का त्याग करना जरुरी है ।

प्रतिक्रमण का अर्थ क्या है ? प्रतिक्रमण का अर्थ है स्वयं के प्रति आक्रमण । स्वयं की कामनाओं, वासनाओं पर आक्रमण, स्वयं के क्रोध मान-माया-लोभ पर आक्रमण करना । स्वयं को उनसे मुक्त करना, पृथक कराना। प्रतिक्रमण में दो शब्द है "प्रति और क्रमण ।" शब्द शास्त्र की दृष्टि से इसका अर्थ होता है वापस लौटना, अथवा उल्टे लौटना ।

प्रतीपं क्रमणम् प्रतिक्रमणम्, अयमर्थः शुभयोगेभ्योऽ शुभयोगान्तंर क्रान्तस्थ शुभेष्वेच क्रमणा र् प्रतीपं क्रमणम् ।

उल्टे लौटना प्रतिक्रमण है । अर्थात-शुभयोगों से अशुभयोगों में गये हुए स्वयं के भावों को पुनः शुभ योगों में लौटा लाना प्रतिक्रमण है भगवती आराधना में प्रतिक्रमण की बाबत लिखा है..........."स्वकृता दशुभयोगद् प्रति निवृत्तिः प्रतिक्रणम्"

अपने द्वारा किये गये अशुभयोग से परावर्त होना-लौटना अर्थात-मेरा

अपराध-दुष्कृत मिथ्या हो, ऐसा कहकर पश्चाताप करना प्रतिक्रमण है ।

गोम्मटसार ग्रन्थ में नेमिचन्द आचार्य ने प्रतिक्रमण का बडा सुन्दर वर्णन किया है कि............

"प्रतिक्रम्यते प्रमादकृत् दैवसिकादि दोषो निराक्रियते अनेनेति प्रतिक्रमणम् ।"

प्रमादवश दैवसिक, रात्रिक आदि में लगे हुए दोषों का जिसके द्वारा निराकरण किया जाता है, उसे प्रतिक्रमण कहते हैं ।

सुबह का भूला सांझ घर लौट आये तो भूला नहीं कहलाता क्योंकि उसे कम से कम अपने घर की याद तो है । इसी प्रकार साधक के ग्रहण किये व्रतों में प्रमादवश दोष भी लग जाये तो वे दोष, दोष नहीं रह जाते, क्योंकि साधक उनसे मुक्त होने के लिए प्रतिक्रमण को तत्पर है । साधक के अन्तरंग में दोषों के प्रति आस्था नहीं है तभी तो वह प्रतिक्रमण करता है और दोषों से मुक्त हो जाता हो जाता है ।

नियमसार में कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, कि वचन रचना छोड़कर रागादि भावों का निवारण करके जो आत्मा का ध्यान करना है, वह प्रतिक्रमण है जो साधक विराधना को छोड़कर अराधना में प्रवृत्त होता है, वह प्रतिक्रमण है । अर्थात अनाचार को छोड़कर आचार में, उन्मार्ग का त्याग करके सन्मार्ग में, शल्य भाव को छोड़कर नि:शल्य भाव में, अगुप्ति भाव को छोड़कर त्रिगुप्ति गुप्त भाव में और आर्त रौद्र ध्यान को छोड़कर धर्म या शुक्ल ध्यान में, मिथ्यादर्शन को छोड़कर सम्यग्दर्शन में प्रवृत्त होना प्रतिक्रमण है । आचार्य देव के कहने का अभिप्राय यह है कि सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चरित्र रुप मोक्ष मार्ग की साधना करते समय साधना में जो अतिचार-अनाचार, दोष आदि मन-वचन काय के प्रमाद से लगे हैं उनका परिमार्जन करना, अपनी भूल का सुधार करना प्रतिकमण है और आगे ऐसी भूल नहीं करने का संकल्प लेना प्रत्याख्यान है ।

आगम में प्रतिक्रमण के दो भेद हैं...........द्रव्य प्रतिक्रमण और भाव प्रतिक्रमण । द्रव्य प्रतिक्रमण कारण और भाव प्रतिक्रमण कार्य है, मात्र द्रव्य प्रतिक्रमण उपादेय नहीं है । लेकिन भाव प्रतिक्रमण भी द्रव्य प्रतिक्रमण पूर्वक ही आपके मन में प्रश्न उठ सकता है कि द्रव्य और भाव प्रतिक्रमण क्या है ।

द्रव्य प्रतिक्रमण का अर्थ बिना आत्म भावना के, बिना उपयोग के, बिना लक्ष्य के औपचारिक रुप से प्रतिक्रमण के पाठ का शाब्दिक उच्चारण लेना या दिखाने के लिए ऊपर मन से प्रतिक्रमण कर लेना, या गुरु के भय कर से प्रतिक्रमण करना, देखा देखी, शर्मा-शर्मी से प्रतिक्रमण करना,

तथ प्रतिक्रमण के पश्चात उन्हीं-उन्हीं दोषों को करना द्रव्य प्रतिक्रमण है। द्रव्य प्रतिक्रमण से आत्मा की शुद्धि नहीं होती हैं। बल्कि द्रव्य प्रतिक्रमण से मात्र कई बार मायाचारी का दोष लगता है, जिससे आत्मा और अशुद्ध हो जाती है।

भाव प्रतिक्रमण का अर्थ है, मन-वचन-काय से, अपने विगत पापों का प्रायश्चित करना तथा आगामी काल में उन्हीं दोषों की, गलतियों की पुनरावृत्ति नहीं करना। और पुनः अपने स्वभाव में लौट आना। भाव प्रतिक्रमण में दोष- प्रवेश की जरा भी गुंजाइश नहीं रहती है। पापाचरण का पूर्णतया अभाव हो जाता है और आत्मा अपनी शुद्ध स्थिति में आ जाती है। भगवती आराधना में भाव-प्रतिक्रमण की बाबत लिखा है ....

आर्त-रौद्र मित्यादयोऽशुभपरिणामाः पुण्यास्रव भूताश्य शुभ परिणामा इह

भाव शब्देन गृह्यन्ते, तेभ्यो निवृत्तिः भाव प्रतिक्रमणमिति।

आर्त रौद्र इत्यादि अशुभपरिणाम एवं पुण्यास्रव के कारण भूत शुभ परिणाम भाव कहलाते है, इन दोनों प्रकार के शुभा-शुभ भावों से निवृत्त होकर शुद्ध भावों में स्थित होना भाव प्रतिक्रमण है यह कथन तो निश्चय की अपेक्षा से किया गया है। कथन दो प्रकार से होता है:- निश्चय कथन और व्यवहार कथन यानि प्रतिक्रमण और व्यवहार प्रतिक्रमण। वैसे प्रतिक्रमण के पांच व सात भेद है-दैवसिक, रात्रिक, पाक्षिक, चातुर्मासिक और सांवत्सरिक। तथा मूलाचार ग्रन्थ में ईर्यापथिक और ऊत्तप्रार्थ सहित सात प्रतिक्रमण हैं।

यह काव्य आचार्य देव ने ईर्यापथिक प्रतिक्रमण को लक्ष्य करके लिखा हैं कि हे भगवन्! गमनागमन, शयन, भोजन, मलमूत्र विपर्जन स्वप्न में आत्मा विस्मरण जागरण-प्रमादवरण, उठना-बैठना, प्रमार्जन-प्रतिलेखन स्वाध्याय, पठन-पाठन इत्यादि के समय एकेन्द्रिय से लेकर पञ्चेन्द्रिय तक के जीवों में से किसी भी जीव को पीड़ा पहुचाई हो, उसके विषय में गलत विचार उठे हो, हानि-क्षति पहुंचाई हो, मारा-पीटा या सताया हो, कुचला-मसला हो, कटूवचन बोले हो, उनका मार्ग रोक दिया हो, दूसरे के द्वारा उनकी हिंसा कराई हो, हिंसा करते हुए की अनुमोदना की हो, तो मेरे सभी पाप मिथ्या होवे, दुष्कृत्य नष्ट होवे। आत्मा को पवित्र बनाने का कितना सुन्दर तरीका है। आचार्य देव मात्र हिंसा का ही निषेध नहीं कर रहे बल्कि आत्मा से वक्रता को हटाकर ऋजुता-सरलता का रोपण भी कर रहे हैं। और एक श्रावक किस प्रकार नीति न्याय से चले उसका बिधान कर रहे हैं। नीति न्याय पर चलने

का तरीका बता रहे हैं । श्रावक को सामायिक के काल में अपने पापों का स्मरण कर उनको नष्ट करने की विधि बता रहे हैं ।

और किन-किन कारणों से पाप हुए हैं । उनके नाम गिना रहे हैं ।

'प्रमादतः संचारता इतस्ततः प्रमाद से इधर-उधर चलते हुए एकेन्द्रिय आदि जीवों की विराधना हुई हो..........? हिंसा में, दोष में, अतिचार में मूल कारण प्रमाद है। रोग का निदान जरुरी है । निदान के उपरान्त रोग का उपचार सरल हो जाता है । हिंसा का मूल कारण क्या हैं ? चारित्र की विराधना का मूल कारण क्या हैं ? प्रमाद प्रमाद समस्त पापों का मूल हैं। जो आत्म - अन्वेषण के प्रति मूर्च्छित होगा, वह अन्य जीवों की कीमत नहीं कर सकता, उनका मूल्यांकन नहीं कर सकता । जो अपनी आत्मा को नहीं बचा सका, वो अन्य की आत्मा को क्या बचा सकेगा । प्रमादी चारित्र का पालन नहीं कर सकता, आत्म-शुद्धि नहीं कर सकता । आगम में प्रमाद के पन्द्रह भेद बताये हैं ।

प्रमाद का अर्थ-निरूत्साह पूर्वक कार्य करना, रोते-रोते काम करना, मजबूरी में काम करना । प्रमादी काम तो करेगा लेकिन कार्य तो करता हैं लेकिन उत्साह से रहित होकर करेगा । कार्य के प्रति उत्साह का न होना ही प्रमाद है और यही प्रमाद आत्म-हिंसा, प्राणी हिंसा में कारण है । यही संसार का कारण हैं, यही पाप का कारण है । मार्ग पर चलते रहे लेकिन ईर्या समिति का पालन करके नहीं चले, इसलिए निश्चित ही मेरे चलने-फिरने, उठने-बैठने से जीवों की हिंसा हुई होगी, जीवों को कष्ट पहुंचा होगा । इसलिए मेरे वे सभी पाप, सभी अपराध क्षमा को प्राप्त होवे । हम लोग प्रतिक्रमण के समय बोलते है... ......पडिक्कमामि भंते । मव्वस्स, सव्वकालियाए, इरिया समिदीए, भाषा समिदीए, सव्वमिच्छा चरियाए इत्थ मे जो कोई देवसिओ आईचारो अणाचारो तस्स मिच्छा मे दुक्कडं ।

मैं प्रतिक्रमण को उपलब्ध होता हूँ, दिवस के काल में ईर्या समिति भाषा समिति में जो अतिचार-अनाचार लगा हो, मिथ्या—आचरण किया हो वह सब मिथ्या होवे; तस्स मिच्छामि दुक्कडं वह पाप, वह दुष्कृत मिथ्या हो, यानि समाप्त हो, नष्ट हो । आचार्य पूज्यपाद लिखते है.......''मिथ्या दुष्कृताभिधानादभिव्यक्त प्रतिक्रियं प्रतिक्रमणम ।'' मिथ्या दुष्कृत कहकर अपने मन में कृतपापों के प्रति पश्चाताप या आत्म-निन्दा के रूप में अपनी मनः स्थिति को व्यक्त करना ही प्रतिक्रमण हैं । यदि आत्म-साधक आत्म ग्लानि से भरकर ''तस्स मिच्छामि दुक्कडं'' शब्द को बोलता है तो पाप नष्ट हो जाता हैं । और यदि बार—बार उन्हीं पापों को दोहरा रहा और

तस्स मिच्छामि दुक्कड भी कह रहा हैं तो साधक पाप मुक्त नहीं होगा। इस सम्बन्ध में एक घटना कहता हूँ... ....।

एक गुरु अपने शिष्यों के साथ विहार करते हुए एक गांव में पहुंचे। उपाश्रय के पास ही एक कुम्हार का घर था। द्वार के सामने स्वच्छ भूमि पर उसने कुछ मटके सूखने को रख दिए थे। गुरु ने एक दिन पढ़ाते समय अपने शिष्यों को बताया था कि यदि साधक से प्रमादवश कोई पाप आदि हो जाये तो उसे तस्स मिच्छामि दुक्कडं कहने से पाप नष्ट हो जाते है। एक शिष्य चपल और कौतुक प्रिय था। उसने सोचा पाप तो लगता ही नही है, अगर लगेगा तो क्षमा मांग लूंगा। शिष्य कंकर का निशाना लगाता और एक मटका फोड़ देता। कुम्हार ने पास जाकर समझाया कि ऐसा करने से अनर्थ-दण्ड नाम का पाप लगता है, तो उसने कहा, मुझे तो पाप लगता ही नही हैं। मेरे गुरू ने बताया है कि कैसा भी पाप लगा हो "तस्स मिच्छामि दुक्कडं" कहने से वह मिट जाता हैं। वह एक मटका फोड़ता और मिच्छामि दुक्कड कह देता। यह क्रम लगातार चलता रहा। आखिर कुम्हार को भी गुस्सा आ गया। उसने एक डण्डा उठाया और उसके सिर पर मार दिया, वह पीड़ा से चिल्ला उठा.......अरे यह क्या कर रहे हो? कुम्हार ने कहा "तस्स मिच्छामि दुक्कडं।" और फिर एक डण्डा मार दिया। शिष्य के कहने पर कुम्हार मिच्छामि दुक्कडं कह देता। अन्त में शिष्य को अपनी भूल का एहसास हुआ और अपने व्यर्थ के कृत्य को रोकना पड़ा।

प्रतिक्रमण के पीछे मूल रहस्य यह है कि जब तक साधक हृदय से अपने पाप स्वीकार न करे, और पश्चाताप से नहीं भरेगा, तब तक पाप नष्ट होने वाले नही है। और प्रतिक्रमण भी कार्यकारी नहीं है। प्रतिक्रमण तो उस समय कार्यकारी है जब उन पापों की पुनरावृत्ति करने का संकल्प न हो और मन पापों के प्रति ग्लानि से भरा हो। मात्र प्रतिक्रमण ही नहीं करना हैं, केवल शब्दों को ही नहीं दोहराना हैं बल्कि अपने पाप कृत्यों के प्रति आत्म निन्दा से भरना हैं और वर्तमान में दुष्कृत्यों से दूर हटना हैं, मुक्त होना हैं। महाभारत के शांति पर्व में कृतपाप नष्ट करने हेतु पापो का प्रकटीकरण एवं पश्चाताप आवश्यक बताया हैं।

धनंजय! कृते पापं कल्याणेनोपहन्यते।
ख्यानेनानुतापेन दानेन तपस्यापि वा॥

हे अर्जुन! किया हुआ पाप कल्याण कार्य से, प्रगट करने से,

पश्चाताप से, दान और तप से नष्ट होता हैं ।

साधक के व्रतो में कारणवश अनजाने या लाचारी में दोष लग गया हैं तो मन में पश्चाताप का भाव लेकर, पापाचार के प्रति घृणा भाव व्यक्त करते हुए प्रतिक्रमण करने से व्रत शुद्धि, आत्म-शुद्धि हो जाती हैं । प्रतिक्रमण प्रत्याख्यान के सम्बन्ध में एक घटना कहता हूँ....।

एक सम्राट था। उसके एक मात्र पुत्र था। पुत्र छोटा था, राज्य बड़ा था और सम्राट वृद्ध था। मौत द्वार पर दस्तक दे रही थी। कभी कभी उसके हल्के—फुल्के झौके सम्राट को चेताने आ जाते। सम्राट चिन्तित हो जाता, लेकिन चिन्ता से तो समस्या का, मौत का समाधान नहीं होता। उसने अपने पुत्र को बड़े लाड़ प्यार से पाला। उसकी देख रेख में जरा भी कभी नहीं रखीं। पुत्र के स्वास्थ्य की चिन्ता सम्राट को ज्यादा रहती थी। राजपुत्र कदापि अस्वस्थ्य न हो। इस सम्बन्ध में सलाह लेने, उसने अपने राज्य के कुशल अनुभवी वैद्यों को बुलाया। सम्राट ने उनसे कहा, आप कोई ऐसी औषधि बताइये, जिससे राजपुत्र हमेशा प्रसन्न और स्वस्थ्य रह सके ।

तीन वैद्य आये थे, उनमें से एक ने कहा, राजन् ! मेरी औषधि बहुत श्रेष्ठ है, मैंने इस औषधि से अनेकों का उपचार किया है। यदि शरीर में पहले का कोई रोग होगा, तो औषधि शीघ्र उसे नष्ट कर देगी, लेकिन पहले का शरीर में यदि कोई रोग नहीं होगा और औषधि का सेवन कर लिया जायेगा, तो कोई न कोई नया रोग पैदा हो जायेगा, जो मरण भी करा सकता है ।

सम्राट ने सुनते ही कहा, बस मेहरबानी करके आप अपनी दवा लेकर यहां से शीघ्र पधारिये। मुझे राजकुमार को ऐसी औषधि पिलाकर मौत को आमंत्रण नहीं देना है ।

फिर दूसरे वैद्य ने कहा-राजन् ! राजकुमार के लिए मेरी दवा उत्तम रहेगी। अगर शरीर में कोई रोग होगा तो वह नष्ट कर देगी, और यदि कोई रोग नहीं होगा तो भी यह न लाभ करेगी, न हानि पहुंचायेगी।

सम्राट ने कहा, ऐसी दवा से भी क्या फायदा ? आपकी दवा भी कोयले पर साबुन घिसने के समान बेकार है। रहने दीजिये ।

तीसरा वैद्य कहने लगा राजन् ! राजकुमार के लिए मेरी दवा ही सर्वोपयोगी सिद्ध होगी । इसमें यह गुण है कि यदि कोई बीमारी होगी तो उसे शीघ्र ही मिटा देगी, अगर बीमारी न हुई तो भविष्य में नई बीमारी पैदा न होने देगी, बल्कि इस दवा के सेवन से शरीर की कांति,

शक्ति-स्वस्थ्यता दिन प्रतिदिन बढ़ेगी, वृद्धिगत होगी ।

सम्राट ने तीसरे वैद्य की औषधि पसन्द की । राजकुमार को वही औषधि दी गई । उसके नियमित प्रतिदिन सेवन से उसका शरीर दिव्य हो गया, शक्ति सम्पन्न हो गया, सदा को निरोग-स्वास्थ्य सम्पन्न हो गया।

यह तो मात्र एक कहानी है लेकिन इसके तथ्य को देखे, इससे सार-सार निचौड़ लें। दोष एक प्रकार का रोग हैं, काम-क्रोध-लोभ-मोह माया ये सब रोग है । इनसे मुक्त कराने में प्रतिक्रमण—प्रत्याख्यान प्रायश्चित की औषधि ही सक्षम है । प्रतिक्रमण अचूक महाऔषधि है । साधक को दिन में तीन बार प्रतिक्रमण करने का विधान हैं । भगवान महावीर इस सृष्टि के परम वैज्ञानिक हैं । उन्होने आत्मा पर रिसर्च की हैं । आत्मा और उसके रोगों का अन्वेषण किया हैं और रोग से मुक्त कराने वाली औषधि की खोज की हैं । साधक के व्रतों में चाहे दोष लगे या न लगे लेकिन प्रतिक्रमण तो करना ही चाहिए । प्रतिक्रमण से आत्मा स्वस्थ्य होती हैं, अंहकार ममकार के रोगो से मुक्त होती हैं । आत्म-शक्ति का विकास होता है, शरीर क्रांति-वान होता हैं ।

साधक को प्रतिक्रमण के उपरान्त सामायिक-ध्यान अवश्य करना चाहिए । ताकि आत्म - विशुद्धि, समता बढ़ती रहे । मात्र क्षमा नहीं करना हैं, पाप से मुक्त कराने की कला भी सिखानी हैं । अगर अन्य दर्शनकारों की तरह अपराधी को मात्र क्षमा करते रहे और पापों का प्रायश्चित नही कराया तो साधक भटक जायेगा, कभी भी पाप मुक्त नही हो सकेगा । मात्र पुण्य ही नही कमाना हैं, संचित पापों के मल को भी धोना हैं । अतीत के पापों की बाबत प्रतिक्रमण किया जाता हैं तथा भविष्य में पाप-निरोध के लिए प्रत्याख्यान किया जाता हैं और वर्तमान का आनन्द लूटने के लिए सामायिक-ध्यान के हेतु सम्यक् पुरूषार्थ किया जाता हैं ।

जीवन की इस लम्बी यात्रा में अभी स्वयं का स्वयं से मिलन नहीं हुआ । क्योंकि स्वयं के पापों के अपराधों के प्रति कभी भी उदासीन नहीं हुए, आत्म-ग्लानि से नही भरे । भाव प्रतिक्रमण नही किया, भावात्मक क्षमा से भी स्वयं का मिलना नहीं हुआ । जिस दिन यह बटोही अपने पापों का प्रतिक्रमण करके भाव-ध्यान-सामायिक में डूबेगा, स्वयं में स्वयं से मिलेगा तब समग्र जीवन पर अमृत की वर्षा होगी । अभी तो जीवन में कामना—वासना के, मृत्यु के ही दाग हैं । पता नहीं कितनी बार इन भोगों का सेवन किया हैं, और पता नहीं

कितनी बार जन्म-मरण किया हैं। अभी तो तुम सब एक भोगी के बाजार और मरघट की भांति हो। पता नहीं यह जीवन कितनी अर्थियों का जोड़ हैं, और पीछे कितनी अर्थियों की कतारे लगी हैं। आगे-पीछे अर्थियों की कतारें की कतारें हैं। अभी तो सब जीवित मुर्दे हैं। इतनी बार भोग-भोग चुके हैं, कि एक बम्बई का बाजार लग जाये। इतनी बार जन्म-मरण कर लिया है एक बम्बई जैसा महानगर बस जाये, मात्र आपकी अतीत की लाशों से। ऐसा है अतीत का इतिहास। इसलिए आचार्य देव को कहना पड़ा कि अब संसार की गांठ खोलो, बैर की गांठ खोलो और सबसे, सभी जीवो से क्षमा याचना करके तथा उन्हें क्षमा करके अपना मार्ग प्रशस्त करो।

धन्यभागी है वे जो जीवन में क्षमा मांग पाते है और सब को क्षमा कर पाते है, तथा अपने दुष्कृत्यों के प्रति प्रायश्चित से भर पाते हैं। मृत्यु से वे ही बच सकेंगे जो प्रायश्चित के, प्रतिक्रमण के सागर में डूबे होंगे। प्रभु आपको साहस दे कि आप सबको क्षमा कर सके और सबसे क्षमा मांग सके।

बस आज इतना ही।

आदिनाथ दिगम्बर जैन नया मंदिर,
प्रतापगढ़ (राज)

दिनांक ९/८/९१
शुक्रवार

६

रंगाई के पहले धुलाई

आदर्श थोते है
आईने रोते है
अपनो चलाकर रहेंगे
आप कौन होते हैं ।

आंख के अंधे
नाम नयन सुख ।
सूरज के दर्शन
जिन्हे कभी नहीं होते है
वे सूरज के पोते हैं
अपनी चलाके रहेंगे
आप कौन होते है ।

दर्द बे हिसाब
कल्पनाएं बेबुनियाद
सुख का सूरज उगता नहीं
पड़े—पड़े रोते है ।
मनमानी जरा भी चलती नहीं
फिर कल्पना के बीज बोते है ।
आप कौन होते है ।

मूल पद्य :- विमुक्ति-मार्ग—प्रतिकूल-वर्तिना,
मया कषायाऽक्ष—वशेन दुर्धिया ।
चरित्र— शुद्धेर्यदकारि लोपनं,
तदस्तु मिथ्या मम दुष्कृतं प्रभो ॥६॥

हिन्दी पद्य :- सन्मार्ग भिन्न यदि मैंने पद लिया हो ।
पन्चेन्द्रियों कषायों में मन दे दिया हो
मुझ बुद्धिहीन ने यदि चारित्र खोया
वह पाप मिथ्या होवे चरणन में सोया

अन्वयार्थ :-

प्रभो	– हे नाथ !
विमुक्ति मार्ग प्रतिकूल	– मोक्षमार्ग के प्रतिकूल आचरण करके
वर्तिना	– वाले
दुर्धिया	– दुर्बुद्धि वाले
मया	– मेरे द्वारा
कषायाऽक्ष-वशेन	– कषाय और इन्द्रियों के वश होकर
चारित्र-शुद्धेः	– चारित्र की शुद्धि का
यत् लोपनम्	– जो विलोप
अकारि	– किया हो वह
मम	– मेरा
तत्	– वह
दुष्कृतम्	– दुष्कृत
मिथ्या	– मिथ्या
अस्तु	- हो

भावार्थ :- हे प्रभो ! मुक्तिमार्ग से प्रतिकूल आचरण करके विषय अथवा कषाय वश होकर मुझ दुर्बुद्धि ने यदि चरित्र की शुद्धि का विलोप किया हो तो मेरा दुष्कृत मिथ्या हो ।

६

रंगाई के पहले धुलाई

ओम नमः सिद्धेभ्यः ×3
धर्मप्रेमी भव्यात्माओं !

एक योगी सम्राट अपनी योग साधना में काफी विख्यात था। गुरु के पास ही साधनारत था। उसकी योग साधना को देखने दूर-दूर से काफी लोग आया करते थे। बुद्ध की एक शिष्या विद्वता और पांडित्य में चर्चा का केन्द्र बनी हुई थी। राज्य के कोने-कोने में दोनों की ख्याति हवा की तरह फैल रही थी। कुण्डलकेशा के पास प्रतिदिन हजारो जिज्ञासु धर्मिक प्रश्नों का समाधान करने आते और प्रसन्नचित्त हो लौटते थे। सम्राट आत्मशोधन को महत्व देता था। और कुण्डलकेशा ज्ञान को, पाँडित्य को महत्व देती थी। योगी सम्राट एकान्त में रहकर अपनी साधना करता और कुण्डलकेशा हजारों के बीच में अपने ज्ञान का पांडित्य का प्रदर्शन करती योगी सम्राट की योग साधना की चर्चा कुण्डलकेशा के कानो तक पहुंची। उसके अहंकार को चुनौति मिली। उस दिन उसने योगी सम्राट का एकाकीपन भंग करने का चक्रव्यूह रचा। और कुछ सीखने की आकांक्षा के बहाने से प्रतिदिन योगी सम्राट के पास आने लगी। उसके अन्दर पाँडित्य का अहंकार तो था ही साथ ही नारीसुलभ सौन्दर्य का अभिमान भी था। उसका ऐसा सोचना था कि आखिर बकरे

की मां कब तक दुआ मनायेगी ? एक दिन तो बलि का बकरा बनेगा ही। योगी सम्राट यानि पतंगा एक न एक दिन तो दीपशिखा पर अपनी आहुति देगा प्रेम-पारा में बन्धेगा। किन्तु योगी सम्राट का उज्जवल चरित्र अडिग वैराग्य, सतत् जागरूकता की साधना, आत्म-शोधन का सुदृढ़ प्रयास डीग न सका, ओस बून्द की तरह मिट न सका। कुण्डलकेशा एक सन्यासिनी, साध्वी होती हुई भी उसका मन विजय सुख से, इन्द्रिय सुख से उपर तो न था। वह ऊपर से जितनी सुन्दर थी, भीतर से उतनी ही कुरुप - असुन्दर थी। योगी सम्राट के पास धर्म क्रिया करने के बहाने काम पिपासा पुरी करने आती, लेकिन योगी सम्राट पर उसके यौवन का रूप लावण्य का जादू न चला। बल्कि वह समझ गया कि कुण्डलकेशा मेरे पास योग साधना को सीखने की प्यास लेकर नहीं, काम पिपासा की कामना लेकर आती है। योगी सम्राट ने अपनी चरित्र की पताका को बरकरार रखा, जरा भी झुकने नहीं दिया।

जब योगी सम्राट कुण्डलकेशा के रूप जाल में नहीं फंसे तो उसका अहंकार बिफरी नागिन की तरह जाग गया। प्रतिशोध की भावना अन्दर ही अन्दर धधक उठी। उसने अपने पांडित्य से पराजित करने की योजना बना ली। वृहत् विचार गोष्ठी का आयोजन किया और ऐसे तार्किक प्रश्न फेंके, सामान्य व्यक्ति को जिनका उत्तर देना असंभव था। मगर योगी सम्राट का शाब्दिक ज्ञान के बनस्पत आन्तरिक ज्ञान प्रगाढ़ था। इसलिए उसके सारे तर्क पराजित हो गये। योगी सम्राट कुण्डलकेशा की मनोभावना को समझ गया, कि उसके सारे प्रश्न जिज्ञासा के गर्भ से नहीं जन्मे हैं बल्कि अहंकार की चिनगारियों का रूप लेकर पैदा हुए हैं इनसे सावचेत रहना अनिवार्य है। अगर कोई सायकल चालक कितना भी चतुर होशियार चालक है और कोई जानबूझ कर टकराने आ जाये तो बेचारा चालक क्या करे? सावधानी रखे, ब्रेक पर हाथ रखे और गाड़ी धीरे-धीरे चलाये। योगी सम्राट भी दूरदर्शी था, उसने दीर्घकाल के लिए मौनधारण कर लिया। और कुण्डलकेशा के हर प्रश्न का उत्तर मौन में देने लगा।

भाग्यगति विचित्र है। कर्मोदय किसी को नहीं छोड़ता। अग्नि स्वयं जलती है और ईन्धन को भी जला डालती है। स्वयं का पाप स्वयं को छलता है। स्वयं का अहंकार स्वयं को डसता है। कुण्डलकेशा को संग्रहणी बीमारी हो गई। उसका सारा सौंदर्य रोग निगल गया। शरीर कृश, दुर्बल काला पड़ गया। अब कोई भी उसके पास क्षणभर

के लिए भी रुकने को तैयार न होता। एक दिन नगर में तथागत बुद्ध का पधारना हुआ। उन्होंने कुण्डलकेशा के बारे में काफी सुन रखा था। नगर में आते ही उन्होंने अपनी इच्छा व्यक्त की कि मैं कुण्डलकेशा को देखना चाहता हूँ। लेकिन कौन जाता उसे समाचार सुनाने ? सभी मुंह फेरकर खड़े हो गये। केवल योगी सम्राट ऐसा था जिसके मुख पर घृणा का भाव न था। वह चुपचाप उठा और कुण्डलकेशा के यहां पहुंच गया।

जाकर कहा तथागत आये हैं तुम्हें याद कर रहे हैं कुण्डलकेशा। एक विनम्र स्वर सुना कुण्डलकेशा ने। आश्चर्य देखा योगी सम्राट स्वयं उसे लेने आये हैं। कुण्डलकेशा का पांडित्य और रुप-अहंकार पारे की तरह बिखर गया। उसकी काम वासना पलायन कर गयी। आँखों से पश्चाताप की अश्रुधारा का वेग उमड़ पड़ा। योगी सम्राट के चरणों मे नमन कर क्षमा याचना की। योगी सम्राट ने कहा, मैंने कभी तुम्हारी भूलों पर ध्यान नहीं दिया हैं इसलिए अपने दोषों का निवेदन तथागत के चरणों में करके प्रायश्चित लेकर आत्मशुद्धि करना। कुण्डलकेशा ने बुद्ध के समक्ष अपना दोष व्यक्त किया और प्रायश्चित लेकर व्रतों की अशुद्धि को दूर किया।

चरित्र जीवन की सम्पक्ष हैं। मोक्षमार्ग का प्रधान अंग हैं इनके द्वारा ही कर्मो का क्षय होता हैं। इसके द्वारा ही परमात्मा बनते हैं। "चरति भक्षयति अष्ट कर्माणीति चारित्रम्" जो ज्ञानावरणादि अष्ट कर्मो को चर जाता हैं। नष्ट कर देता हैं वह चरित्र हें।

"असुहादो विणिवित्ति सुहे पवित्तिय जाग्ग चारितं" अशुभ से निवृति और शुभमे प्रवृत्ति को चरित्र जानो। सम्यक् चरित्र का जीवन में अर्थ समझो। समस्त पापों से निवृति और शुभ कार्य में चरित्र का वही स्थान हैं जो सारे शरीर में पैरो का हैं। इसलिए तो चरण से आचरण बना हैं। आचरण अच्छा होता है तो लोग चरण छूते है। चरण गति के, प्रगति के प्रतीक हैं। चलने की शिक्षा देते हैं शरीर को अपने ऊपर संभाले रखते हैं। परमात्मा भी आचरण के पैरो से चलकर आता है। कोरा ज्ञान कोरा स्वाध्याय कार्यकारी नहीं हैं। जरा इसे यूं समझे........।

एक व्यक्ति ऐसा हैं जिसका मस्तिष्क बहुत ज्ञान से भरा है, नये नये विचारों का उत्पादक हैं। वह सिद्धान्तों पर गहन से गहन चिन्तन करता हैं। सिद्धान्तों को सरलता से प्रस्तुत करता हैं वाक्य पटुता बहुत सुन्दर हैं। हृदय की काम क्षमता भी बहुत अच्छी है, वह सारे शरीर में

रक्त फैंकता रहता हैं। मन भी कार्य खूब करता है। धर्म पर श्रद्धा भी रखता है। आँखों के पास देखने की क्षमता भी अच्छी हैं। कानों के पास सुनने की क्षमता बहुत है। लेकिन पैरों के पास चलने की क्षमता नहीं है। एक कदम भी चलने में असमर्थ है। ऐसा व्यक्ति अपाहिज की भाँति पीठ और सिर पर ज्ञान और श्रद्धा का भार लेकर बैठा है। वह दूसरों को विपत्ति से मुक्त नहीं करा सकता, तथा स्वय की भी रक्षा नहीं कर सकता। अन्य प्राणियों की भी रक्षा नहीं कर सकता। और शास्त्रों में उसने रक्षा के बाबत बहुत कुछ पढ़ा है। लेकिन स्वयं आचरण नहीं करता तो उसके ज्ञान का क्या महत्व है। "ज्ञानं भार: क्रिया बिना।" क्रिया के बिना, आचरण के बिना ज्ञान बोझ है। अगर किसी व्यक्ति को पैरो से लकवा मार जाये तो उसका मन और मस्तिष्क शांत नहीं रह सकता तथा जिसका आचरण अच्छा नहीं है, तो उसका मन उसकी आत्मा शाँत नहीं रह सकती। और अशांत मन तो खुरापात ही करता है। और जिसका भोजन विकृत है। और जिसका स्वाध्याय विकृत हो, तो फिर कहना ही क्या ? कोढ़ में खाज है। स्वय पीड़ित होगा और अन्य को भी पीड़ित करेगा।

आदर्श थोते हैं
आइने रोते हैं
अपनी चलाके रहेंगे
आप कौन होते है ?

आँख के अंधे
नाम नयन सुख।
सूरज के दर्शन
जिन्हें कभी नहीं होते हैं
वे सूरज के पोते है
अपनी चला के रहेंगे
आप कौन होते है ?

दर्द बेहिसाब
कल्पनाये बेबुनियाद है
सुख का सूरज उगता ही नहीं
पड़े-पड़े रोते हे
मनमानी जरा भी चलती नहीं
फिर भी कल्पना के बीज बोते है

आप कौन होते हैं ?

थोते-कोरे आदर्शो के सामने तो आईने भी लाचार हो जाते हैं। जिन्हें आचरण करना ही नहीं है, उनके सामने सन्तों का दर्पण व्यर्थ है। ये अपनी कमजोरी को ढाकने के लिए अपनी बुद्धि कौशल से नया मार्ग खोल देगे नया पंथ गढ़ देगे। सत्य को लांछित करेगे और असत्य का, मिथ्या मार्ग का समर्थन करेंगे। कहीं आपने भी तो अतीत में गलत मार्ग का अनुकरण किया हो, अनुमोदना की हो, स्वयं ने अहंकारवश मिथ्या मार्ग का अन्वेषण किया हो तो अब अपने पाप की निन्दा कर लो, अपनी भूल का सुधार कर लो। ताकि चरित्र का निरतिचार पालन कर सको ! चरित्र का अनुशरण करने के पूर्व, अपनी भूल को स्वीकार करके, दोषों का शुद्धिकरण कर लो ताकि चरित्र पालन में विघ्न-बाधा न आ सके।

आचार्य अमितगति इस श्लोक में बड़ी सुन्दर बात कह रहे है कि तुमने एकेन्द्रिय आदि से क्षमा मांग ली है, फिर भी हो सकता है तुम्हारे मन में मान सम्मान की भावना हो। उपर से क्षमा माँगकर साधु बन गये हो, और अन्तरंग में वैराग्य न हो या भय के, अहम् के वशीभूत होकर कोई सरल सा, सस्ता सा मार्ग घोषित कर दिया हो, जबकि वह सच्चा मार्ग न रहा हो। इसलिए अपनी पुरानी भूलों का स्मरण करो और परमात्मा के चरणों से या निर्ग्रन्थ दिगम्बर सतों के चरणों में जाकर क्षमा मांगो। अपने मिथ्या चरित्र के दुष्कृत को साफ करो।

साधना का प्रारम्भ आत्म शोधन से, स्वयं से प्रारम्भ होता है। मान लो कोई वस्त्र गन्दा है और आप उसे रगवाना चाहते है, तो सर्व प्रथम उसकी धुलाई बाद में रंगाई। मैंले कुचेले वस्त्रों पर रंग नहीं चढ़ता। और कोई प्रयास भी करता है तो रंग और श्रम व्यर्थ जाता हैं। इसलिए साधना की शुरुआत आत्मशोधन एवं आत्मपरिस्कार से ही होना चाहिए। यह उपासना का प्रथम चरण है। अगर प्रथम चरण ही गलत है तो मंजिल पर पहुँचने का सवाल ही नहीं उठता। आचार्य देव कह रहे है कि पहले आत्मशोधन करो, बाद में आत्म वर्द्धन की बात करना, अन्यथा तुम्हारा स्वाध्याय, तुम्हारी साधना मिथ्या कहलायेगी पहले भूमि को जोतों हल चलाओ. कंकर-पत्थर निकालकर फेको झाड़-झंकड़ अलग करो उसके बाद में बीज बोना, खाद-पानी देना तब फसल अच्छी आँयेगी। पहले बीज बाद में चीज। पहले छोटा बाद में पौधा।

अन्न को पकाने के पूर्व उसकी सफाई की जाती है. तथा चौके की,

बर्तनों की धुलाई की जाती है। इसी प्रकार अध्यात्म की प्रयोगशाला में भी पहले उपकरणों की, आत्म परिणामों की सफाई धुलाई बहुत जरुरी हैं। गन्दे नाले में थोड़ा सा गंगाजल डालने से कुछ न होगा। जल तो साफ नहीं होगा बल्कि गंगाजल भी गन्दा हो जायेगा। विषय–कषायों की नाली में पड़े रहो, भोगों की पूर्वाग्रह की सरिता में डुबकी लगाते रहो और चाहो कि आत्मा की चर्चा मात्र से परमात्मा बन जाये, आत्मा शुद्ध हो जाये तो ऐसा असंभव है।

क्या आपने कभी विचार किया, डाक्टर रोगी का उपचार करने के पूर्व उसके अन्दर की सफाई करता है, घाव को धोता है पश्चात् घाव पर मल्हम लगाता हैं। औषधि अपना प्रभाव तभी दिखाती जब पूर्व-संचित मल का शोधन हो जाता हैं। आत्म – अभिवर्द्धन भी तभी होता है। जब आत्मिक विकारो, विषय कषायों का कल्मष आत्मा से अलग कर दिये जाते हैं। डाक्टर रोग को दूर करने वाले को पहले औषधि देता हैं बाद में स्वास्थ्य लाभ के लिए टांनिक देता हैं। आचार्य देव भी पहले संचित पापों का, भूलों का, दोषों का, अपराधों का विरेचन वमन करा रहे है।

विमुक्ति मार्ग—प्रतिकूल वर्तिना
मया कषाया क्षवशेन दुर्धिया

मुझ दुर्बुद्धि के धारक ने, कषाय और भोगों के वशीभूत होकर गलत मार्ग को सही मार्ग बताकर लोगों को गुम राह किया हो, तो मुझे क्षमा करे। अब मैं अपने चारित्र की शुद्धि के लिए क्षमा चाहता हूँ। यानि मैंने यदि दिगम्बर पंथ का निषेध किया हो और दिगम्बर मुनियों का अनादर किया हो, तो क्षमा करे। मैं अपनी भूल को सुधारना चाहता हूँ। आदमी ऐसी भूले जल्दी कर लेता है। क्योंकि भोगों को छोड़ना नहीं चाहता है, इसलिए भोग को भी योग का कारण, मुक्ति का मार्ग घोषित कर देता है। विषय भोग में डूबने वाले ऐसे अनेक विचारक है ,तथा कथित पुरूष है जो अपने आपको सद्गुरू, सत् पुरूष, परम गुरू, अध्यात्म पुरुष कहलवा रहे हैं, जो सम्यक् मार्ग से दूर हैं तथा विपरीत मार्ग पर है, उन्मार्ग पर है फिर भी अपने आपको सम्यक् मार्गी बतला रहे है। खोटा सिक्का असली सिक्के को चलने के बाहर कर देता है। नकली लोग, गलत लोग; मिथ्या मार्गी लोगों को भटका देते है। वे अपने तर्क बल से, बुद्धि कौशल से सत्य को असत्य और असत्य को सत्य सिद्ध कर देते है। यही है उनकी बुद्धि का चमत्कार। तो आचार्य देव कह रहे है कि मैंने भी पूर्व में, अतीत में अगर ऐसे चमत्कार दिखाये हों तो अब मुझे क्षमा करना। आपने सुनी होगी एक कहावत..........

करो तो किसी और मनोरंजन की जरूरत नहीं है। मनुष्य का पूरा जीवन मनोरंजन पूर्ण हैं। जो घरों में हैं वे भी डर के मारे रुके हैं और जो मंदिरों की तरफ, जंगलों की तरफ भाग रहे हैं वे भी डर के कारण भाग रहे हैं जीवन में काफी पाप कमा लिया हैं, कहीं नरक न चले जायें, इसलिए थोड़ा दान कर लो, भक्ति कर लो, ताकि पुण्य पल्ले पड़ जाये। एक व्यक्ति इसलिए संन्यासी नहीं बन रहा कि लोग क्या कहेंगे, समाज क्या कहेगी कुटुम्बी क्या कहेंगे? युवक इसलिए मंदिर नहीं जा रहे कि मित्र क्या कहेंगे? युवक इसलिए पानी छान कर नहीं पीते, धोती-दुपट्टा नहीं पहनते कि साथी क्या कहेंगे? मजाक उड़ायेंगे, हंसी निकालेगे। युवक मित्रों से डरकर धर्म से दूर भाग रहे हैं, और गृहस्थ इसलिए मंदिर की ओर भाग रहे कि पाप भार बढ़ रहा है, मन्दिर ही माध्यम हैं कम करने का। कुछ ऐसे भी लोग हैं जो भय से परे, परमात्म-प्यास से भरे जन्म-मरण से पार होने साधु बनते हैं। ये ही सम्यक् साधु हैं, सच्चे धर्मात्मा है। जो भय के कारण धर्म से जुड़े है वे मात्र पुण्य कमा रहे है। भगवान महावीर का कहना हैं डर को जीवन का आधार मत बनाओ डर तो मारता है, मिटाता है, बनाता नहीं। भय तो विध्वंसक है, इसलिए भागना नहीं, जागना है, डरना नही, समझना है। डर कर धर्म नही करना है, आत्म-प्यास से भरकर धर्म करना है। पाँचों पाण्डवों ने सोचा पाप पंक को धोने के लिए तीर्थ स्नान कर आना आवश्यक है।

नारायण श्री कृष्ण के पास जाकर सविनय अपनी मनोव्यथा व्यक्त की। कृष्ण तो तत्वज्ञ थे ही। उन्होंने सोचा पाप लगा कहाँ है? और धोने कहां जा रहे है? उन्हें उपरीं तौर पर समझाने की दृष्टि से श्री कृष्ण ने कहा-हाँ पाप-पंक को धोना अनिवार्य है, अगर तीर्थ स्नान का सोचा है तो अवश्य कर आए। परन्तु मेरी ओर से एक तुम्बी भी लेते जाये। हर तीर्थ में पहले उसे स्नान कराए बाद में आप लोग करे।

पांडवो ने उन्हें प्रणाम करते हुए कहा; हम आपकी इस तुम्बी को आपकी ही प्रतिनिधि मानकर उसे पहले स्नान करायेगे।

पांचों पांडवों ने तुम्बी सहित विदा ली और सभी तीर्थों में तुम्बी सहित स्नान करके लोटे। श्री कृष्ण ने उनका स्वागत किया, कुशल मंगल पूछा। फिर पूछा मेरी तुम्बी को भी सभी तीर्थों में स्नान कराकर लाये है न?

पाँडवों ने कहा, बेशक! हमने आपकी तुम्बी को सभी तीर्थों में पहले स्नान कराया है, उसको भी अपने साथ पूर्ण पवित्र करके लाये है।

श्री कृष्ण ने अपने सेवकों को आदेश दिया कि इस पवित्र तुम्बी को बारीक पीसकर इसका चूर्ण बना लो। आज भोजनोपरान्त सबको इसका प्रसाद बांटा जायेगा। सेवकों ने आज्ञा का पालन किया। तुम्बी का चुर्ण बना लाये। भोजनोपरान्त श्री कृष्ण ने स्वयं पांडवो को अपने हाथ से चूर्ण दिया और फांकने को कहा, किन्तु ज्योही मुंह में डाला, सभी कडुवा कहकर थू-थू करने लगे। भला सोचो ! प्रेम का प्रसाद भी कभी कडुआ लगता है ? श्री कृष्ण नें कहा, सभी तीर्थो में स्नान करने वाली तुम्बी में कडुवापन तो शेष रहना ही नहीं चाहिए। सबने कहा, भगवन। कडुवापन तो इसके भीतर था और इसे स्नान कराया गया है बाहर से, भला इसका कडुवापन कैसे जायेगा।

श्री कृष्ण ने पांडवो से प्रति प्रश्न पूछते हुए कहा, अजी ! आपके पाप कहां लगे थे ? आत्मा के भीतर थे या बाहर, शरीर के बाहर थे या भीतर ? पाँडवों ने कहा, पाप तो भीतर लगे थे, आत्मा में थे। तब शरीर को स्नान कराने से आत्मा के पाप-पंक कैसे धुल गये तुम्हारे ? श्री कृष्ण ने पूछा।

तब पांडवों को अपनी भूल का एहसास हुआ और उन्होंने पुन: श्री कृष्ण से पूछा, कि हम अन्तरात्मा के पाप-मल को कैसे धोये ? हमारे मन में उन पापों के कारण बहुत अशान्ति है, ये पाप हमें बहुत छलते है, बहुत खटकते है। तब श्री कृष्ण ने कहा था –

आत्मा नदी संयमतोय पूर्णा,
सत्योदका शीलतटा दयोर्भिः।
तत्रभिषेक कुरु पाण्डुपुत्र ।
न वारिणा शुद्धयति चान्तरात्मा ॥

पांडु पुत्रों ! देखिये, आत्मा रुपी नदी है, जो संयम रुपी जल से परिपूर्ण है, जिसके सत्यरूपी प्रवाह है, शील रूपी तट है, जिसमें दया रूपी लहरें उछल रही है। ऐसी आत्मा रूपी नदी में स्नान करिये। पानी से अन्तरात्मा शुद्ध नही होती।

सभी दर्शनकारों मे आत्म-शुद्धि पर जोर दिया है, शरीर शुद्धि तो बाहर की शुद्धता की प्रतीक है। पहले शरीर शुद्धि करो पश्चात् आत्म शुद्धि करना। पहले मन्दिर आदि जाने के संस्कारों डालो, शरीर को भोग से दूर रखकर शुद्ध करो उसके बाद मन को शुद्धि करना। या बाह्य शुद्धि प्रतीक है अन्तरात्मा की। शरीर शुद्ध के माध्यम से आत्म-शुद्धि की प्रेरणा दी गई है।

पूर्ण रूप से नहीं पका है और कच्चे ही घर से भाग आये है तो ऐसा सन्यासी भ्रष्ट हो जाएगा। स्खलित हो जायेगा। जैसे कच्चा घड़ा एक ही पानी के झोके में वह जाता है। कच्चा सन्यासी भी हल्का सा भोग का आकर्षण मिलते ही फिसल जाता है। और अपनी कमजोरी को आच्छादित करने का नया मार्ग खोल देता है विषयों में आसक्ति रखने वाला हमेशा स्त्रियों को ताकता रहेगा, उनकी नजरों से नजरे मिलाएगा उनकी तरफ आँखे फाड़-फाड़कर टकटकी लगाकर देखेगा। इन्द्रिय-लोलुपी मनुष्य चरित्र की शुद्धि रख ही नहीं सकता। ऐसा साधक अपने चरित्र से सर्वथा स्वलित होता है। नये नये पंथ, नये-नये आध्यात्मिक मार्ग कषाय और इन्द्रियासक्ति के कारण ही निर्मित हुए है। सब पन्थ क्या हैं अहंकार और स्वयं की कमजोरी की सन्तान है।

आचार्य देव कह रहे है कि फूटे एवं गन्दे बर्तन में दूध दूहने से कुछ भी पल्ले नहीं पड़ेगा। पशु पालने और दूहने का श्रम व्यर्थ चला जायेगा। कामना-वासना के, दोषों के छिद्र वाले पात्र में संयम का दूध नहीं ठहर सकेगा। इसलिए यदि दूध का स्वाद लेना चाहते है। तो पहले अपने पौत्र को स्वच्छ करो, और छिद्रों से रहित करो, अन्यथा सन्यास पेट भरने में तो कारण बनेगा लेकिन मोक्ष जाने में नहीं। दोषों दुर्गुण एवं पापों के रहते परमात्म– दर्शन, आत्म—दर्शन असंभव है। मगर दीवार बीच में हो, तो उसके पीछे जलने वाला दीपक अति समीप रहने पर भी उसका प्रकाश नहीं मिल पाता, तथा दीपक भी दिखाई नहीं पड़ता। इसी प्रकार चरित्र को अशुद्ध बनाने वाली विषय—कषायों की दीवार भी आत्म– दर्शन में परमात्म-मिलन में अवरोध पैदा करती है।

तुम्हारे अतीत के दुष्कर्मो के कचरे से, कुसंस्कारों से आत्मा गंदी हैं और मलीन है। ये ही परते अन्तराय कर्म का काम कर रही हैं, ये ही मोक्ष मार्ग में रोड़ा अटका रही हैं। पांवों में जंजीरों का काम कर रही हैं, बस उन्हीं परतों को हटाने का नाम ही चरित्र शुद्धि. आत्म शुद्धि हैं। आत्म-शोधन, चरित्र शुद्धि के अभाव में अच्छे-अच्छे विचारक गुमराह हुए हैं कुछ पंक्तियाँ कहता हूँ।

एक ज्ञानी, ज्ञान में
आगे बढ़ गया
नये पंथ गढ़ गया
आगे जाकर देखा तो

तड़फ-तड़फ कर मर गया
सड़ गया गल गया।

और कुछ पंक्तियां आप से कह रहा हूँ

मैं भी पंचम काल में
निश्चित
आदिनाथ-महावीर
पुष्पदन्त-भूतबलि
कुन्द-कुन्दाचार्य की तरह
दिगम्बर मुनि बन जाता
लेकिन काल दोष है
इसलिए
सन्यास को वस्त्र मान कर पहन न सका
क्योंकि मैं महावीर नहीं था
मेराहीन संहनन था
मैं विशेष स्वाध्याय प्रेमी था
तन मन में जड़ चेतन में
कहीं भी परमार्थ नहीं था
भोग छोड़ न सका
महत्वाकांक्षा से स्वयं को मोड़ न सका
क्योंकि इतना पुरूषार्थ नहीं था।
परमार्थ की आड़ में
समय सार के प्यार में
परम-शुद्ध निश्चय नय की धार में
सिद्धान्त जाये भाड़ में
अपने स्वार्थ-रथ पर बैठे
तप त्याग—संयम से अनजान बन निकल पड़ा
महत्वाकांक्षा के, भोग के राजपथ पर
घोड़ों के स्थान पर जोती
मैंने अपनी इन्द्रिया
और सारथी की जगह मेरा अहकार
नया पथ बनाते हुए
नये द्वार खड़े करते हुए
नये पत्थर गाढ़ते हुए

मैं बढ़ता गया
पुराने पत्थरों को
पुराने द्वारों को तोड़ता गया
प्राचीनतम पथों को ढांकता गया
नये-नये प्रलोभन देता बढ़ता गया
पीछे आती हुई
अन्ध भक्तों की भीड़ देख
नित् नये करता रहा चमत्कार
त्याग का बन्द करते हुए द्वार
मेरी आत्मा प्रलोभन से भर गई
जीती जागती आत्मा मर गई
पता नहीं, भीतर ही भीतर
क्या क्या कल्पना कर गई
बिना तप त्याग के पूज्य बन गया
मैं मुनि से भी उपर हो गया
अन्धों का राजा काना बन गया
मैंने कहा, रे मन सारथी
मुझे अब कहीं नहीं जाना है
ना ही संयम को अपनाना है।
बस यही तीर्थंकर बन के नाम कमाना है
इसलिए एक नया पंथ बनाना है
उसमें से मुनि आस्था को
तप-त्याग को हटाना हैं
भोगियों के लिए सुलभ
खाते-पीते नया मार्ग खुलवाना हैं
पहले मुझे लोगों को जगाना हैं
स्वाध्याय करना सिखाना हैं
आत्मा को समझाना हैं
घर-घर समयसार पहुंचाना हैं
मुमुक्ष मण्डल का सदस्य बनाना हैं
मुनि आस्था से गिराना हैं
पूजा-भक्ति को हेय बताकर
उससे दूर हटाना हैं

सारथी अब कहीं नहीं जाना है।
अपने लक्ष्य की घड़ी हाथ में ले
दूध-धुले कपड़ों पर
शुद्ध-बुद्ध का इत्र छिड़क
परम-शुद्ध, निश्चयनय के गहने
आत्मार्थी के ईर्द – गिर्द
शागिर्दी के घेरे
मधुर शब्दों की, कण्ठ में माला पहने
आंखों में अहंकार का नशा लिए
प्रलोभन देकर फंसा लिए
भक्तों के बीच से गुजरते हुए
प्रशंसा की घास चरते हुए
अपनीं ढपली अपना राग भजता रहा
महत्वाकांक्षा को करने पूरी बढ़ता रहा
और कहता रहा
सारथी अब रथ रोक दो
मुझे अब कही नहीं जाना है।
लोगों की निगाहे मुझे परखने लगी
भीतर ही भीतर आत्मा कापने लगी
अगर ये आँखे खुली रही
तो कही मेरा अन्धापन खुल न जाए
मेरे प्रति आस्था का स्तम्भ खुल न जाए
इसलिए... ... ... आँखो पर
काल दोष का चश्मा लगा लिया है
और कही सुकुमार मुनि की भांति
मुनि बन घर से भाग न जाऊं
इसलिए पंचमकाल में मुक्ति द्वार बन्द है
कहकर भीतर से ताला लगा लिया है
अब कही नहीं जाना है, ठान लिया है।
अपने थकेमादे अस्तित्व को
महत्वाकांक्षा के रथ में
घसीटता सा
इन्द्रिय-घोड़ों को पुचकारता, पुकारता

दुलारता । संभालता सा
क्षय के रोगी सा निस्तेज कमजोर
बढ़ रहा था लक्ष्य की ओर
मगर काल के बलिष्ठ हाथ देख
अपने चारों ओर घेराव देख
मैं घबड़ा उठा
उपचार के लिए
डाक्टर को पुकार उठा
कि अब मुझे कहीं नहीं जाना
बस अब अस्पताल है जाना
'जसलोक से परलोक' है जाना

ऐसे रागियों ने ही सन्यास को बदनाम किया है, मोक्ष मार्ग को लांछित किया है । योगी-विषयासक्तों में वैराग्य नहीं दिखाई पड़ सकता है। ऐसे कपितय झूठें ज्ञानियों ने ही सन्यास के ऊपर दाग लगा दिये है । त्याग ही इनके कारण निंदित, अपमानित, लांछित हुआ है । अगर सन्यास का सही सही आनन्द लेना है तो चरित्र की शुद्धि बहुत जरुरी ही । अगर मोदत मार्ग को तरोताजा रखना है, स्वस्थ्य रखना है तो प्रत्येक आत्म साथक को चारित्र-शुद्धि का ख्याल रखना होगा । क्योंकि चरित्र जीवन का, मोक्ष मार्ग का परम फूल है । जिस दिन इस पृथ्वी से तप—त्याग का सन्यास का, चरित्र का फूल विदा हो जायेगा, तो उस दिन इस पृथ्वी पर रहने योग्य कुछ भी न रह जायेगा चरित्र जीवन का काव्य है, गरिमा है, गौरव है ।

लेकिन गुजरना होता है निन्दा-गर्हा, भूल स्वीकार की अग्नि से तो चरित्र-शुद्ध होता है, गुजरना होता है, उपसर्गो की घाटीयों से तो चरित्र का शुद्ध फूल खिलता हैं । तूफानों से गुजरने पर ही नौका किनारे लगती हैं । तुफान कसौटी है । निज भूल स्वीकार करना, सन्त चरण में क्षमा याचना करना चरित्र को निमंत्रण देना हैं ।

स्वयं में स्वयं की भूल सुधारना ही चरित्र शुद्धि हैं । और यही मोक्ष मार्ग हैं ।

बस आज इतना ही ।

आदिनाथ दिगम्बर जैन नया मन्दिर
प्रतापगढ़

दिनांक १०/८/९१
शनिवार

७

आओ लौट चलें

... असल में परमात्मा की बात छेड़ने वालों को लोग समझते है कि यह फालतू आदमी है। बेकार आदमी है। उबाने वाला आदमी है। धार्मिक लोगों से लोग बचते है। नजरें चुराते है। अगर आपको परीक्षा करना है तो जाओ अपने मित्रों के पास, अपने परिजनों के पास और एकदम से परमात्मा की बात छेड़ दो। सब आश्चर्य में पड़ेगे। तब बड़े चौकेंगे कि यह क्या बात कर रहा है। बल्कि कुछ शंका करने लग जायेंगे कि कहीं पागल तो नहीं हो गया, कहीं किसी साधु के चक्कर में तो नहीं फंस गया........।

दार्शनिक सुकरात को भी जिनने जहर पिलाया था वे भी समाज के समादृत, प्रतिष्ठित लोग थे। जो समाज पर हक किए बैठें थे। समाज जिनको सुनती थी। समाज के मुखिया उन्होंने सुकरात को जहर दिया था। क्या कारण है? क्या अड़चन हो गई थी? गरीब सुकरात था, सुकरात के पास असली सिक्के थे और इन सब के पास नकली सिक्के थे। नकली सिक्के असली सिक्कों को बर्दाश्त नहीं करते। इसलिए ऐसा नियम है कि नकली सिक्के असली सिक्कों को चलन से बाहर कर देते है।

मूल पद्य :- विनिन्दनाऽलोचन गर्हणैरहम्,
मनो-वचः काय-कषाय-निर्मितम् ।
निहन्मि पापं भव-दुःख-कारणं,
भिषग् विषं मन्त्र-गुणैरिवाऽखिलम् ॥७॥

हिन्दी पद्य :- चारों कषाय मन वच तन पाप कीने,
संसार दुःख हेतु सुख हेतु विहीन ।
मैं मारता हूँ आलोचन– निन्दना से,
हैं मारता भिषक ज्यों विषमंत्रणा से ॥७॥

अन्वयार्थ :-

भिषक	– वैद्य
मंत्र–गुणैः	– मंत्र गुणों के द्वारा
अखिलं, विषम् इव	– जैसे समस्त विष को नष्ट कर देता है, उसी प्रकार
अहम्	– मैं
विनिन्दनाऽऽलोचन गर्हणैः	– निन्दा, आलोचना और गर्हा के द्वारा
मनो-वचः काय कषाय	मन, वचन, काय और कषाय से
निर्मितम्	– उपार्जित
भव दुःख कारणम्	– संसार के दुःखों के कारणभूत
पापम्	– पाप को
निहन्मि	– नष्ट करता हूँ ।

भावार्थ :- हे भगवन् ! मैंने मन, वचन, काय और कषाय के द्वारा भव दुःख का कारण जो पाप संचित किया हैं, उसे अपनी निन्दा गर्हा और आलोचना के द्वारा उसी प्रकार से नष्ट करता हूँ जैसे वैद्य मन्त्र के गुणों द्वारा समस्त विष को नष्ट कर देता हैं ।

७

आओ लौट चलें

ओम नमः सिद्धेभ्यः 3 ×

धर्म प्रेमी भव्यात्माओं !

पांडवों के जीवन की एक घटना आपसे कहता हूँ-महाभारत का युद्ध समाप्त हो चुका था। चारों ओर शांति का वातावरण था, लेकिन युद्ध जीतने के बावजूद भी पांडवों के मन में शान्ति नहीं थी। युद्ध में हुए नरसंहार के प्रति, भाईयों की हत्या के प्रति उनके भीतर आत्म—ग्लानि थी। बाह्य शांति तो शक्ति के बल पर अर्जित कर ली थी, लेकिन अन्तरंग शांति का अभाव था। अन्तरंग की शांति शक्ति और धन के बल पर उपलब्ध नहीं होती। उसके लिए तो आत्मिक पुरूषार्थ की जरूरत होती हैं। पांडवों के मन में एक ही बात खटकती थी कि हमसे बहुत बड़ा पाप हुआ हैं। हमने जर-जोरु-जमीन के लिए मात्र अपने भाईयों को ही नहीं मारा बल्कि अपने गुरुओं को भी मौत के घाट उतारा हैं। बहुत बड़ा पाप हमारे सिर पर हैं। पाप का बोझ हल्का करना जरुरी है, पाप-दाग को धोना आवश्यक हैं, पाप-पंक से मुक्त होना अनिवार्य हैं।

आदमी भय के कारण धर्म करता हैं, इसलिए वह दान-पूजा स्वाध्याय करके पुण्य तो कमा लेता हैं लेकिन परमात्मा नहीं बन पाता हैं। बड़ी आश्चर्य की बात हैं, आदमी बड़ा अद्भुत हैं। इसका गौर से निरीक्षण

एक गधे ने शेर की खाल ओढ़ी
महज एक कहावत जोड़ी
वैसे यह एक मुहावरा है ।
शिक्षा से भरा हुआ हैं
एक बात बता दूं
सत्य से पर्दा उठा दूं
एक गहन रहस्य समझा दूं
यह मुहावरा मनुष्य पर होता है लागू
उसके वस्त्रों को खींचने पर
भीतर छिपे
सर्प-दर्प
सियार-बिलार
चील-कौआ-गिद्ध
राक्षसों को काम का पाओगे विस्तार
हिंसा-झूठ-चोरी का खुला द्वार
पांडित्य की खाल
असंयमियों-अज्ञानियों
बदमाशों-चालबाजों ने पहन ली है
सच की आड़ में
असत्य ने चाल चल दी है

ऐसी कहावत है कि गधे ने शेर की खाल ओढी और सबको डराने धमकाने लगा । लेकिन गधों में इतनी अकल कहां है कि शेर की खाल ओढ़ लें ? गधा शब्द अपने अर्थ को, अपनी कमजोरी को स्वयं बता रहा है । "ग यानि गलत, धा यानि धारणा. गलत है धारणा जिसकी, वह गधा है जिसकी धारणा मुनियो के प्रति गलत है, धर्म के प्रति गलत है । जिसकी धारणा मुनियों के प्रति, सन्तों के प्रति गलत है वह गधा है । गधे के चार पांव हो यह नियामक नहीं है, या गधे ने शेर की खाल ओढ़ी हो यह भी सत्य नहीं है तो सत्य क्या है ? और यह लोकोक्ति किस पर लागू होती है ? अब इसे समझिये ! गधे में शेर की खाल पहनने की अकल न हो लेकिन मनुष्य में इतनी अकल जरूर है कि गधे और शेर की खाल ओढ़ ले । पाँडित्य का आचरण ओढ़ ले, ज्ञानी का, परमगुरु, सद्‌गुरु होने का आवरण ओढ़ ले । लेकिन आवरण-आवरण ही है । और गधा शेर की खाल पहन भी ले तो क्या

होता है ? मौके बे मौके रेक देगा । बस, सब पोल पट्टी खुल जायेगी । जरा इन नकली तथा कथित पंडितों को, सद्गुरूओं को, ज्ञानियों को खरोंचो-और प्रलोभन देकर उनके भीतर के जानवर को, चील कोओ को जगाओ, तो उनकी आवाजे बाहर सुनाई पड़ने लगेगी । तथा कथित पंडित और असंयमी सद्गुरू खाल ओढ़े गधे से भी बदतर है । मात्र शास्त्रीय ज्ञान से कोई ज्ञानी नहीं होता । ज्ञानी बनने के लिए आचरण की अग्नि से गुजरना पड़ता है । अध्यात्म का कथन है, तथा जीवन का नियम है कि आग से गुजरे बिना सोना कुन्दन नहीं होता है ।

इसलिए आचार्यदेव को कहना पड़ा कि अपनी भूल को स्वीकार करके चरित्र के मार्ग पर, संयम के मार्ग पर आरूढ़ होना । व्यक्ति दो कारणों से उन्मार्ग पर गमन करता है, या मिथ्या मार्ग का द्वार खोलता है । प्रथम कारण है कषाय की वशीभूत होकर के और दूसरा कारण है भोगो की आसक्ति के कारण, इन्द्रियो की दासता के कारण से ।

कषाय जो आत्मा को कसती है, आत्मा को डसती है, वो कषाय है । इसके चार भेद हैं क्रोध—मान -माया —लोभ । क्रोध-प्रीति का, मान विनय का, माया-मैत्री का और लोभ सर्वस्व का नाश कर देता हैं । क्रोध के आते ही चारित्रिक सम्पत्ति अहिंसा-प्रेम-करुणा आदि का सफाया हो जाता है, चरित्र से स्खलित हो जाता है चरित्र में अशुद्धि आ जाती हैं । दूसरा कारण है विषय लम्पटता, इन्द्रियों की आसक्ति, यह सबसे बड़ी कमजोरी हैं, विषय लम्पटी चरित्र ग्रहण नहीं कर सकता । बल्कि संयमी की, चरित्रवान की निन्दा में निपुण होता है, और त्याग का, तप का आलोचक बन जाता है । अपनी स्वयं की कमजोरी के कारण भोग मिश्रित मार्ग का अन्वेषक-समर्थक बन जाता हैं नदियों में पाये जाने वाला घडियाल जितना क्रूर होता है, उतना चालक भी । शिकार के लिए वह नदी या सागर के तट पर इस तरह निश्चेष्ट पड़ा रहता हैं । जैसे कोई पत्थर शिला पड़ी हो लेकिन जैसे ही कोई मछली पास से गुजरती हैं, उसे पलक झपकते ही खा जाता हैं । यही स्थिति इन्द्रिय लोलुपी व्यक्तियों की हैं । वह भी इतना ही धूर्त होता हैं । सामान्यत: वह बड़ा भोला-भाला सीधा दिखाई पड़ता हैं । लेकिन भीतर भोग आग। पलती रहती हैं । जैसे वह बौद्ध कुण्डलकेशा के भीतर कामना की अग्नि जलती रहती थी । वह ऊपर से सन्यासिनी थी ज्ञानी थी लेकिन भीतर काम पिपासिनी थी, अज्ञानी थी । जब मन भोगों से पूर्णतया उदास हो जाता हैं, तो सम्यक् सन्यास फलित होता हैं । अगर कोई देखा देखी साधु बन जाता हैं, वैराग्य

आचार्य देव भी इस श्लोक में आत्म शुद्धि की बात कह रहे है कि जिस मन-वचन-काय की प्रेरणा से आत्मा पंकिल हुई है, अब मन-वचन काय के पूर्ण समर्पण से स्वयं की निन्दा, गर्हा, आलोचना करके आत्मा को शुद्ध बनाओ। अगर स्वयं के सामने सच्चाई से उपस्थित न हो सके तो आप कितनी भी तीर्थ यात्रा कर लें; चाहे कितना भी स्वाध्याय कर ले, चाहे कितना भी मन्दिर में कितना ही माथा पटक लो, पूजा कर लो, काशी कावा की यात्रा पर निकल जाओ उससे क्या फर्क पड़ेगा ? जाने वाले, यात्रा करने वाले तुम वही के वही हो। भीतर विष भरा है। तो तुम्हारे पात्र में अमृत भी विष हो जायेगा। तुम्हारे हाथ में सोना भी मिट्टी हो जायेगा। और मैं यह किसी सिद्धान्त की बात नहीं कह रहा हूँ, तुम्हारे स्वयं का भी यही अनुभव है। तुमने जों छुआ, वही मिट्टी का हो गया।

जब तक तुम न बदलो, तुम्हारा अन्तस् न बदले, तब तक कुछ भी न होगा। जब तक तुम्हारी आन्तरिक क्रियाएं बदले, आन्तरिक विचार न बदले, तुम्हारे भीतर की रसायन—विद्या न बदले; तुम्हारा अहंकार न बदले, जब तक कुछ भी न होगा। जब तक स्वयं की निन्दा-गर्हा-आलोचना न करो तब तक कुछ न होगा। हाँ स्वयं के प्रति सच्चे हो जाओ तो लोहा भी छुओगे तो सोना हो जायेगा। जहर भी पीओगे तो अमृत हो जायेगा। ऐसी अद्भुत कला का नाम है चरित्र शुद्धि, स्वयं के सामने सच्चाई से खड़े होना, जिससे तुम पारस हो जाओ, जिससे तुम्हारे भीतर की कामनायें बदल जाए, तुम्हारे भीतर की रसायन बदल जाये। अगर अन्तस् नही बदला तो साधक की सारी साधना व्यर्थ चली जायेगी।

आचार्य देव कह रहे है कि अतीत में अहंकार वश लोगों को मिथ्या मार्ग पर चलाया होगा, लोगों को चारित्र की गलत सूचना दी होगी। जब लोगो की प्रज्ञा जगी होगी, और तुम्हारी मूढ़ता का पर्दा उठ रहा होगा तो लोगों को दिखाने के लिए ऊपर से क्षमा मांग ली हो, उनके सामने झुक गये हो, अपनी भूल यह सोचकर स्वीकार कर ली हो कि मैं झुकूंगा तो लोग समझेंगे कि मैंने मिथ्या-मार्ग छोड़ दिया है, पाप कृत्य छोड़ दिया है, इसलिए मुझे पुनः सम्मान मिलने लगेगा, आदर मिलने लगेगा। आचार्य कहते है कि बात तो अधूरी हैं. अभी कमी हैं। तुमने उपर से, डर के कारण क्षमा मांगी है। अन्तस् वैसा हैं। भीतर की मूढ़ता वैसी की वैसी हैं। अब भीतर की वक्रता-जड़ता को दूर करने अन्तरंग से क्षमा मांगो। अगर बाहर से लोगों को दिखाने तुमने क्षमा मांग ली और स्वयं की निन्दा का भाव पैदा नहीं हुआ तो तुम्हारी क्षमा झूठी हैं, चारित्र शुद्धि असम्भव हैं।

आचार्य देव आत्म-शुद्धि के तीन उपाय बता रहे हैं— पहला-उपाय आत्म निन्दा, स्वयं की निन्दा, खुद में खुद की निन्दा करना सीखो पर की निन्दा करते-करते कई युग बीत गये, मिला कुछ भी नहीं; मात्र खोया ही खोया है। आदमी दूसरे की निन्दा में रस लेता है, बहुत आनन्द लेता है। लोग दूसरों की निन्दा में रस इसलिए लेते हैं कि मन को सुख मिलता है कि मैं अकेला ही नहीं हूँ और भी लोग है, फंसे है इस कार्य में। मुझसे भी ज्यादा फंसे है, मुझसे भी बुरी तरह फंसे है। मैं तो कुछ नहीं हूँ। अपनी तो किन पापियों में गिनती है। बड़े-बड़े पापी पड़े है। महापापी पड़े है। दूसरो की निन्दा करते समय या सुनते समय स्वयं के पाप नगण्य नजर आते है बल्कि दूसरों की निन्दा करते समय स्वयं के पाप ढ़क जाते है। इसलिए आदमी दूसरों की निन्दा करते समय गलतियों को बढ़ा-चढ़ाकर बोलता है। चिन्दी का सांप बनाकर बताता है, राई को पर्वत बनाकर बताता है। खुद की आंख में पहाड भी पड़ा हो तो राई जैसा और दूसरों की आँख में राई भी पडी हो तो पहाड जैसी। इसके पीछे गणित है। अहंकार का सीधा गणित है।

यह संसार बड़ा विचित्र है। इसे अपनी चिन्ता नहीं है। पराई चिन्ता में जलता है। इसे जरा भी अपनी फिक्र नहीं है। जितनी देर दूसरों की निन्दा करता है उतनी देर धर्म की चर्चा नहीं करेगा। धर्म की चर्चा के लिए कहो तो लोग कहते है ज्ञान कहाँ है ? समय कहां है ? और जरा किसी निन्दा की बात करो तो कहने लगते है, आगे कुछ और बताइये फिर क्या हुआ ? लोगो से धर्म की बात करो, तो लोग कहते है कहाँ की बात उटा दी कैसी चर्चा छेड़ दी ? अभी धार्मिक चर्चा का समय नहीं आया। यह बुढ़ापे का टाँनिक है समय काटने को बुढ़े पीते है। वैसे भी अध्यात्म की बात कोई शिष्टाचार से सुन लें तो सुन ले, वैसे कोई सुनना नहीं चाहता। असल में परमात्मा की बात छेड़ने वालों को लोग समझते है कि यह फालतू आदमी है, बेकार आदमी है, उबाने वाला आदमी है, बोर करने वाला आदमी है। धार्मिक लोगों से लोग बचते है, नजरे चुराते है। अगर आपको परीक्षा करना है, तो जाओ अपने मित्रों के पास, अपने परिजनों के पास और एकदम से परमात्मा की बात छेड़ दो। सब आश्चर्य में पड़ेगे ! बड़े चौकेंगे कि यह क्या बात कर रहा है। बल्कि शंका करने लग जायेंगे कि कहीं पागल तो नहीं हो गया है, कहीं किसी साधु के चक्कर में तो नहीं फस गया। अगर सांसारिक चर्चा छेड़ दो कि फलाँ-फलाँ आदमी उसकी पत्नी को लेकर भाग गया है, तो लोग पास

सरक आयेंगे और बड़े गौर से बात को सुनेंगे । ऐसी बातें सबको स्वीकृत है ऐसी बातों में लोग रस भी लेते है, और खोद खोदकर पूछते है ।

आप जरा ख्याल करना जिस फिल्म में हत्या न हो, आत्म हत्या न हो, व्यभिचार न हो, बलात्कार न हो, प्रेम-संवाद न हो उस फिल्म को कोई पसन्द नही करता । उस फिल्म को देखने कोई नहीं जाता । आप जरा ऐसी फिल्म तो बनाकर देखे, जिसमें ये चीजे भर न हो । शुभ हो कि भक्त बैठे है, भगवान की भक्ति ही भक्ति हो रही है, पिटाई हो जायेगी सिनेमा के मैनेजर की । आग लगा देगे लोग फिल्म में । कि यह क्या मामला है ? लोग चिल्लायेगे कि हम यह देखने नहीं आते. हमने इसलिए टिकट नहीं खरीदी । लोग तो गन्दगी के कीड़े हैं उसमें ही उनका रस हैं ।

बड़ा विचित्र संसार हैं और बड़े अद्भुत लोग है, दूसरों की चिन्ता में ही जल रहे है । रात लोग सोते भी नहीं है । अपनी चिन्ता करने वाले लोग तो बहुत ही कम इने-गिने लोग है लेकिन आश्चर्य तो तब होता हैं कि भोगी निन्दा करें तो करे अब तो साधु-संन्यासी भी निन्दा पर उतर आये हैं । जिनको तुम तथाकथित स्वाध्याय प्रेमी, या धर्मात्मा कहते हो वे भी इसी में उलझे हुए हैं । किसी साधु का यश फैलने लगे तो दूसरे साधुओं को बड़ी बेचैनी पैदी होती हैं । वे सब उसके पीछे पड़ जायेंगे । उसके दुश्मन हो जायेगे । सब उसकी निन्दा पर उतर आयेंगे । उसके शिष्यों को प्रलोभन देकर फोड़ने का प्रयास करेंगे । अपने पास बुलाने का प्रयास करेंगे । क्योंकि उनके अहंकार को चुनौती मिलती हैं, अहंकार को चोट पहुँचती हैं ।

जब अपना ही कोई साधर्मी ऊपर उठता हैं, आकाश को छूने लगता हैं, तो पीड़ा होने लगती हैं, मन कराह उठता हैं, आत्मा में घाव बन जाता है और उस घाव की मवाद को दूसरों के कानों में डालने लगते हैं । दूसरों के भीतर वही घाव पैदा करने लगते है । साधारण धर्म से अपरिचित जितनी निन्दा नहीं करता, उतनी निन्दा तथाकथित धर्मात्मा करता है । आप इतिहास उठाकर देखिये । क्या आप ऐसा सोचते हैं कि जीसस को जिन लोगों ने सूली पर लटकाया था, वे बुरे लोग थे, बदमाश लोग थे ? तो आप गलत सोचते है । बुरे लोग नहीं थे वे चोर, बदमाश लुच्चे-लफंगे नहीं थे वे, अपराधी–पापी नहीं थे वे । तथाकथित सज्जन थे, समदृत थे, प्रतिष्ठित थे, धर्म गुरु, पंडित, पुरोहित थे । धर्म पुरुषों, की जमात थी जिसने जीसस को सूली दी थी । अगर किसी चोर—बदमाश ने जीसस को मारा होता तो मनुष्यता पर कलंक का टीका न लगता ।

लेकिन जिन्होंने मारा वे आपकी दृष्टि में भले लोग थे। जिन्होने एक संत को फाँसी पर लटकाया उन्हें आप भले लोग कहते हैं, सज्जन कहते हैं। यह आपके पास सज्जनता का पैमाना है! अगर आप जीसस को सूली लटकाने वालों के भीतर झाँककर देखेंगे तो संसार के सबसे बड़े अहंकारी पायेगे? जीसस की उपस्थिति से उनके अहंकार को चोट पहुँचती थी।

दार्शनिक सुकरात को भी जिन ने जहर पिलाया था, वे भी समाज के समद्धत, प्रतिष्ठित लोग थे, जो समाज पर हक किये बैठे थे, समाज जिनकी सुनती थी। समाज के मुखिया, सरपंच उन्होंने सुकरात को जहर दिया था। क्या कारण है, इनको क्या अड़चन हो गयी थी? गरीब सुकरात इनका क्या बिगाड़ता था। जरूर उसकी उपस्थिति से कुछ बिगड़ रहा था। सुकरात के पास असली सिक्के थे और इन सबके पास नकली सिक्के थे। नकली सिक्के असली सिक्कों को बर्दाश्त नहीं करते। इसलिए ऐसा नियम है कि नकली सिक्के असली सिक्कों को चलन से बाहर कर देते हैं। और यही सिद्धान्त सामाजिक-व्यवहारिक आध्यात्मिक जीवन पर भी लागु हो रहा है।

आपने कभी ख्याल किया, आपके पास दो दस-दस के नोट हो, अगर उनमें एक असली और एक नकली है, तो आप पहले किसको चलायेगे असली या नकली? पहले आप नकली जितनी जल्दी चल जाये, उतना अच्छा। और जिसके पास नकली जायेगा और उसे भी पता चलेगा, तो वह जितने जल्दी पास से चला जाय, उतना अच्छा।

एक दिन पप्पू घर लौटा, बड़ा प्रसन्न था। अपने पिता से बोला, आज मैंने तीन आदमियों पर उपकार किया है। पिता ने कहा, तुमने और उपकार। यह बात तो बड़े आश्चर्य की है. तू और उपकार करके आये। पप्पू ने कहा, पिताजी आप सच मानिये मैने तीन आदमियों पर उपकार किया है। पिता ने कहा, जरा विस्तार से समझाओं तो मैं समझू। तो पप्पू ने कहा, वह जो आपका नकली दस रुपये का नोट था न, एक मिठाई वाले के यहां चला दिया। पांच रुपये की मिठाई खरीद ली। सुबह से बैठा था बेचारा कोई ग्राहक नहीं आया था, बोहनी ही नहीं हुई थी। एकदम प्रसन्न हो गया। सो उसका उपकार किया।

पास में ही एक भिखमंगा खड़ा था। सो थोड़ी मिठाई उसे दे दी। वह भी चमत्कृत हो गया। एकदम पैर छू लिये और कहाँ, हे परमात्मा! बहुत दाता देखे, मगर तुम जैसा दाता नहीं देखा! पिता ने कहा, चलो ठीक हैं, यह तो दो का उपकार हुआ, तीसरा? और तीसरे आप। वह जो दस के नकली

नोट से आप परेशान थे, सो आपकी भी परेशानी दूर कर दी यह तीसरा उपकार हुआ। जीवन के जगत में भी ऐसा ही चल रहा हैं। सब नकली सिक्कों से उपकार कर रहे हैं और असली सिक्कों को चलन के बाहर निकाल रहे हैं। जो नकली हैं उन्हें असली की मौजूदगी चुभती हैं, तीर की भांति चुभती है दीन-हीन बनाने लगती हैं, भीतर हीनता का भाव उठने लगता हैं। वर्षों पुराना अहंकार जीर्ण-शीर्ण होने लगता हैं, इसलिए उसकी सुरक्षा के लिए नकली सिक्के निन्दा पर उतर आते हैं।

अब तो संन्यासी भी इसी चिन्ता की आग में जल रहे हैं कही दूसरा मुझसे ऊपर न उठ जाए, इसी फिक्र में डूबे हैं, कहीं दूसरा आगे न निकल जाए इसी चिन्ता में मर रहे हैं। श्वेताम्बर-दिगम्बर साधु के प्रति सोच रहा हैं, हिन्दू संन्यासी, मुसलमान फकीर का विरोध कर रहा हैं, निश्चयवादी व्यवहारी के खिलाफ लगा हुआ हैं, साधु हो गये हैं, सन्यासी हो गये हैं, महात्मा हो गये है मगर सारा काम वही का वही चल रहा है। वही निन्दा रस। पता नहीं नौ रसो में निन्दा-रस क्यों नहीं गिना गया ? क्योंकि नौ रसों में और किसी रस में किसी का तो कोई रस नहीं है, निन्दा-रस सार्व लौकिक है, सार्वभौमिक है।

चौरासी लाख योनियों में भटकते आ रहे हैं। अभी तक पार नहीं हुए ? कब से डुबकियाँ लगा रहे हैं, कब से डूबते आ रहे है ? कितने समय से डूब रहे है ? कितने समय से उभर रहे है ? सागर ही सागर है, अथाह सागर है कहीं कोई किनारा दिखाई नहीं पड़ता। सोचो इतना धर्म, कर्म, इतनी पूजा-भक्ति, दान-तप-त्याग के बाद भी परमात्मा-दर्शन क्यों नहीं ? कहीं कोई बड़ी मौलिक भूल हो रही है ! तुम पराई चिन्ता में पड़े हो, पर निन्दा में दुबले हुए जा रहे हो। एक अपने को छोड़कर तुम्हें सारे संसार की फिक्र है। और आचार्य कह रहे है कि जिसने अपनी फिक्र कर ली, जिसने अपनी चिन्ता कर ली, जिसने अपनी निन्दा कर ली, वह पार हो गया। और पार होने लगता है, या पार हो जाता है, वह संसार को भी पार होने का रास्ता बता सकते है। जो अपनी निन्दा करके आत्मा में डूब जाते है तो वे परम - ज्ञान को, निर्वाण को, परमात्मा को उपलब्ध हो जाते है।

पहले मैं भी ऐसे ही जल रहा था, ऐसी ही मूढ़ता से डूबा था, व्यर्थता में उलझा था लेकिन परमपूज्य गुरुवर आचार्य विद्यासागर और आचार्य विमलसागर की ऐसी कृपा हुई कि मुझे भी राग द्वेष-मोह के संसार की दल–दल से बाहर निकाल लिया, खींच लिया। स्वयं पर सोचने

की, स्वयं पर ध्यान देने की प्रेरणा दी। यही बात आचार्य देव कह रहे अरे पागल ! अपनी सोच, अपना ध्यान कर । दूसरों की दूसरे जाने । उनका जीवन उन्हें जैसा जीना जिए । वह उनकी मर्जी हैं उनकी स्वतन्त्रता हैं । तू क्यों उनके चिन्ता में पड़ा-पड़ा अपना समय खो रहा हैं ? व्यर्थ क्यों उनकी निन्दा करके पाप कमा रहा हैं । अपने पापों का फल स्वयं भोगेंगे, उनके पापों के लिए तुझे दण्ड नहीं मिलेगा । और न उनके पुण्यों के लिए तुझे पुरुस्कार मिलेगा, तूअपनी फिक्र कर, तू अपनी चिन्ताकर, तू अपनी खोज खबर ले, तू अपनी निन्दा करके अपने पांपों से मुक्त हो जा । पर को पाप से मुक्त कराने की चिन्ता छोड़ । तब जिन्दगी में एक नये जीवन का अविर्भाव होगा ।

इस मोह-सिन्धु के अथाह में
तप—त्याग की इस राह में
आत्म-ध्यान की प्रिय चाह में
मुझको मिली जो यातना
वो ही मेरा उपहार हैं
वो ही मेरा शृंगार हैं

कुछ पुण्य पाने के लिए
स्वयं के निकट आने के लिए
प्रभुता निज की जगाने के लिए
मुझसे जगी जो भावना
जीवन का वही सार हैं
वो ही मेरा शृंगार हैं

निन्दकों के मझधार में
सुख—दुख—भरे संसार में
मोह-बीथि के प्रतिकार में
मुझको मिली जो वेदना
उसमें ही मेरा उद्धार हैं
वो शक्ति जागरण-द्वार है

साधक जब आत्म निन्दक हो जाता हैं तब निन्दा भी उपहार मालूम पड़ने लगती हैं आलोचना करे तो उपहार, गाली भी दे तो उपहार। वही है बुद्धिमान इस जगत में जो निन्दा-अपवाद-आलोचना, अपमान,

अवसाद की सीढ़ी बना ले । जो हर कठिनाईयों को, मार्ग के अवरोधों को सीढ़ी में बदल दे, जो जहर को भी औषधि बना ले । बस वही हैं बुद्धिमान ज्ञानी इस जगत में ।

अज्ञानी–निन्दक आत्म–दर्शी, आत्मसाधक ज्ञानियों को चोट नहीं पहुंचा सकते, मात्र घाव पैदा कर सकते हैं, मार सकते हैं, पीड़ा नहीं दे सकते । मिटा सकते है, मगर आनन्द नहीं छीन सकते । अगर अन्तचक्षु खुल जाये तो कोई भी शत्रु नहीं हैं । शत्रु भी मार्ग साफ करता नजर आयेगा । निन्दक भी तुम्हें धोता–निखारता नजर आयेगा । मात्र अपनी स्वयं की निन्दा करने की कला सीख जाओ, तो समता उतर आयेगी ।

निन्दा का बड़ा प्यारा अर्थ है-निज के दर्पण के सामने जिन्दा खड़ा हो जाना, और गर्हा का अर्थ है–जो गरिष्ठ है, बड़े है, गुरू है उनके दर्पण के सामने आकर अपने पापों को उजागर कर देना, अपनी कमियों को व्यक्त कर देना । और आलोचना का अर्थ हैं समूह के सामने अपने पाप स्वीकार कर लेना ।

निन्दा का अर्थ हैं कि मैने जो अज्ञानता में नीच कार्य; बुरे कार्य किये । अब पुन: उन कार्यो को नहीं करूंगा । अब मेरा बोध जाग गया हैं, मैं स्वयं के पापों से शर्मिन्दित हूँ, लज्जित हूँ । मेरी आत्मा मुझे धिक्कारती है कि तुमने अपने दैहिक स्वार्थ के लिए ऐसे घिनौने काम किये थे, जो तुम्हारे योग्य नहीं थे । निन्दा का अर्थ हैं स्वयं के समक्ष सच्चाई पूर्वक खड़ा हो जाना और उन पापों से मुक्त होने का, उनके संस्कारो को धोने का प्रयास करना ।

स्वयं की सच्चाई प्रगट करने के लिए स्वयं की निन्दा को रखा है और अहंकार को तोड़ने के लिए गुरू के सामने गर्हा करने को कहा है, तथा सामूहिक लोगों की भ्रांति को, आक्रोश को मिटाने के लिए आलोचना को रखा हैं । हो सकता हैं गुरू के दर्पण के सामने दबाव वश, लोभवश, अपना प्रति बिम्ब दिखाया हो । उस प्रतिबिम्ब में धोखा हो, छल हो, कपट हो, सज संवर कर गये हो । ताकि गुरू जल्दी पिघल जाये । गुरु के सामने जब कोई प्रायश्चित लेने, अपने पाप प्रगट करने जाता हैं तो, वहाँ पर भी सोचता हैं कैसे बोलेगे, मुंह कैसे बनायेगे ? कितना भाव व्यक्त करेंगे, तो कितना प्रायश्चित मिलेगा । तो आचार्य कहते हैं वहां पर भी कुछ माया हो सकती है । इसलिए आचार्य देव कह रहे हैं कि गुरु के दर्पण के सामने सच्चाई पूर्वक जाना अपनी पाप व्यथा की कथा इत्मीनान से सुनाना । यदि सुनाने में कुछ भूल चूक हो गई हो, कहीं कोई पाप बताना भूल गये हो,

घबड़ाहट के कारण उस समय याद न आये हो, तो रोना मत. अब स्वयं के गुरू के सामने अपने आप निवेदन कर देना और भविष्य में पाप न करने का संकल्प कर लेना। बस यही तुम्हारी सम्यक् निन्दा है।

किसी ने पूछा था क्या आत्म निंदा के बिना आत्म-साधना नहीं हो सकती ?

यह भाषा तो अहकार की समर्थक हैं। और अहंकार किसी के सामने झुकने नहीं देता हैं। लालटेन का शीशा अगर मलीन हैं. तो बाहर प्रकाश का ठीक-ठीक प्रभाव नहीं पड़ता हैं। चाहे उसमें तेल कितना ही भरा हो, बत्ती और प्रकाश चाहे जितना अच्छा हो, फिर भी बाहर प्रकाश नहीं पड़ेगा। लालटेन का शीशा साफ होने पर ही उसका प्रकाश बाहर पड़ सकता हैं। अगर अन्तरात्मा के ऊपर अहकार की मलिनता विद्यमान है तो वह साधक चाहे कितना ही बड़ा तपस्वी क्यों न हो किन्तु परमात्म-तत्व को प्रकाशित नही कर सकता। याद रखो आत्म-शुद्धि, आत्मिक परिस्कार स्वयं ही करना पड़ता हैं। दूसरे के भरोसे आत्म-शुद्धि असम्भव हैं। जैसे अपने आपको बिगाड़ना अपने हाथ में है, वैसे ही अपने आपको सुधारना अपने ही हाथ में है। अगर आपने पाप किये हैं तो आपको ही प्रायश्चित करना होगा।

स्वयं के रोग को भगाने के लिए स्वयं को ही दवा खानी पड़ती हैं। अगर पाप का प्रायश्चित न किया तो...."भव दुःख कारणम्" भाव भव भव में दुख का कारण बनता रहेगा। पापाचरणं बहुत खतरनाक है। पाप संस्कार कितने आत्म-घातक हैं इसे मार्कण्डेय ऋषि से सुनो............

> पादन्यासकृतं दुःख कष्टकोत्थं प्रचच्छति
> तत्प्रभूतर स्थुल शंकु कीलक सम्भववम् ।। 25 ।।
> दुख यच्छति तदवच्च शिरो रोगादि दुःसहम् ।
> अपथ्याशन शीतोष्ण श्रमतापादि कारकम ।। 26 ।।

पैर में कांटा लगने पर तो एक ही जगह पीड़ा होती है, परन्तु पाप कर्मों के फल से तो शरीर और मन में निरन्तर शूल उत्पन्न होते रहते हैं। कांटे की पीडा तो स्थान विशेष पर होती है लेकिन पाप संस्कार से तो आत्मा की शांति ही नष्ट हो जाती है और भव-भवान्तर तक पीड़ा का भार वहन करती रहती है। इसलिए स्वयं की आत्म-निन्दा बहुत सरल उपचार है। उससे बचने का उपाय मत करो। इसी संदर्भ में महाभारत के वनपर्व में कहा है...........

विकर्मणा तप्तमानः पावाद विपरिमुच्यते ।
न तत् कुर्या पुनरिति द्वितीयात् परिमुच्यते ।।

जो मनुष्य पाप कर्म बन जाने पर सच्चे हृदय से पश्चाताप करता है, वह उस पाप से छूट जाता है। तथा पुनः ऐसा कर्म नहीं करुंगा, ऐसा दृढ़ संकल्प कर लेने पर आगामी पापों से भी बच जाता है। इसी बात की बावत शिवपुराण में लिखा है............

पश्चातापः पापकृता निष्कृतिपराः ।।
सर्वेषां वर्णितं सद्भिः सर्वपाप विशोधनम् ।।

पश्चाताप ही पापों की परम निस्कृतिः है, इसलिए सन्तजनों ने पश्चाताप से सब पापो की विशुद्धि होना बताया है।

पश्चाताप का अर्थ है आत्मा-निन्दा करना, रोना नही शोक नहीं करना बल्कि आत्म-ग्लानि से भरना कि मेरे से कैसा दुष्कृत्य हो गया। मैंने स्वयं अपनी आत्मा को मलीन बना लिया। अब इसका फल भी मुझे भोगना पडेगा, इसलिए अब कभी भी ऐसा पाप नही करुंगा।

आपने ख्याल किया कि निन्दा के बाद गर्हा को क्यों रखा हैं ? जो अपनी आत्म-निन्दा को पाप-विमोचन को तैयार होगा। तो भव-भव की पाप मवाद से मुक्त होने के लिए, उपाय पूछने जानकर के पास, ज्ञानी पुरूष के पास आत्मज्ञ सन्तों के पास अवश्य जायेगा। गर्हा में सधाक गुरू के समक्ष अपने पापों को वैसे ही उजागर कर देता है जैसे रोगी पुरूष डाक्टर के सामने अपने रोग को खोलकर रख देता हैं। निन्दा में स्वयं के समक्ष पाप खोलना होते हैं और गर्हा में गुरु के समक्ष अपराध स्वीकार करना पड़ते हैं। खुले दिल से अपने हृदय की गांठो को घावों को खोलकर रखना होता है। निन्दा की वनस्पत गर्हा ज्यादा महत्वपूर्ण है। इसके लिए अत्याधिक आत्म-बल और साहस की जरुरत रहती है। एकान्त में स्वयं के सामने स्वय के पाप स्वीकार करना आसान है, लेकिन दूसरे के सामने प्रतिष्ठित,पूज्यनीय व्यक्ति के समक्ष अपने दोष, अपने अपराध या अपनी चरित हीनता को प्रकट करना बहुत कठिन काम है।

अहंकार दूसरों के समक्ष झुकने नहीं देता। युद्ध के पूर्व रावण के मन में स्वयं की निन्दा का भाव उठा था कि मैंने 'पर नारी' का अपहरण करके पाप किया है, यह दुष्टकर्म मेरी प्रतिष्ठा पर दाग लगाने वाला है। इसलिए सीता को राम को संपने का कई बार विचार तो उत्पन्न हुआ लेकिन अहंकार के कारण सौंप न सका। अपनी झूठी प्रशंसा के दल दल में फंसकर रह गया, मिट गया लेकिन सीता को वापस न लौटा सका।

इसलिए गर्हा के लिए विशेष आत्मबल और साहस चाहिए। कमजोर साहसहीन आत्म-समर्पण नहीं कर सकता। गर्हा तो जीवन की बहुत बड़ी घटना है गर्हा करने से साधक हल्का हो जाता है। मनुस्मृति में लिखा है—

यथा-यथा नरोऽधर्मं स्वयं कृत्वाऽनुभाषते।
तथा-तथा त्वचेवाहिस्तेनाऽधर्मेण मुच्यते॥

जैसे-जैसे मनुष्य अपना अपना अधर्म लोगों के समक्ष ज्यों का त्यों प्रगट करता है, वैसे-वैसे ही वह अधर्म से उसी प्रकार मुक्त होता जाता है, जैसे साँप केंचुली से।

सांप जब तक केचुली से बन्धा है, केंचुली से जुड़ा है तब तक उसको स्पष्ट दिखाई नहीं पड़ता और ना ही वो ठीक से चल-फिर सकता है। सांप जैसे ही केचुली का त्याग करता है उसके अन्दर गति आ जाती है, वह निर्बन्ध हो जाता है, हल्का हो जाता है। यही स्थिति साधक की है जैसे ही अपने पापों की केंचुली को उतारता है तो एकदम हल्का हो जाता है। पारासार स्मृति ग्रन्थ में इसी संदर्भ में लिखा हैं..........

कृत्वा पापं न गुह्येत् गुह्यमानं विवर्धते।
स्वल्पं वाऽथ प्रभूतंवा धर्मविदेतन्निवेदयेत्॥
ते हि पापे कृते वेद्या हन्ताश्चैवपाप्मनाम्।
व्याधितस्य यथावैद्य बुद्धिमन्तो रूजापहाः॥

पापाचरण हो जाने पर उसे छिपाना नहीं चाहिए। छिपाने से वह बढ़ता हैं। पाप छोटा हो या बड़ा किसी धर्मज्ञ (सन्तजन) के समक्ष अवश्य प्रगट कर देना चाहिए। इस प्रकार पाप प्रगट कर देने से वे आध्यात्मवैध उसी प्रकार पापों को नष्ट कर देते हैं जैसे बुद्धिमान वैद्य से रोगी द्वारा चिकित्सा करा लेने पर उसके रोग को समूल नष्ट कर देते है। पाप छिपाने से बढ़ता है और प्रगट करने से घटता हैं, नष्ट होता है। महाभारत में पापों को छिपाने का निषेध किया है।

तस्मात् पापं न गुह्येत् गुह्यमानं विवर्धयेत।
कृत्वा तत् साधुभ्य एवमेतुवैत् ते तत शमयन्त्युत॥

अपने पाप को न छिपाये। छिपाया हुआ पाप बढ़ता हैं। यदि कभी

पाप बन गया हो तो उसे साधु-पुरूषों से कह देना चाहिए। वे उसका शमन कर देते हैं।

अहो आश्चर्य ! पाप को छिपाये तो बढ़ता है और प्रगट करे तो घटता है और पुण्य को छिपाये तो घटता है तथा प्रगट करे तो बढ़ता है अगर ऋण को दबा कर रह जाये, अदा न करे तो कर्ज बढ़ता जाता हैं। ऋण को छोटा समझकर टालना नहीं चाहिए उसे तुरन्त अदा कर देना चाहिए, तुरन्त चुका देना चाहिए। घाव छोटा ही क्यों न हो उसका तुरन्त उपचार कर लेना चाहिए अन्यथा नासूर बनकर पीड़ा देगा। इसीं प्रकार पाप को साधुजनों के समक्ष तुरन्त प्रगट कर देना चाहिए ताकि वह नष्ट हो जाए।

जैसे पारा खा लेने पर वह पचता नहीं है, तथा शरीर के विभिन्न अवयवों से, अंगो से फोड़े-फुंसी का, घाव का, वृण का रूप लेकर प्रगटता है, निकलता है, ठीक उसी प्रकार आंशिक पाप संस्कार, पापाचार भी वट वृक्ष के समान आत्म-भूमि पर प्रगटता है और जीवन के अस्त-व्यस्त, क्षत विक्षत नष्ट कर देता है।

आचार्य कह रहे है कि निन्दा-गर्हा-आलोचना की औषधि के द्वारा स्वयं का उपचार करो। रोग तुम्हारा हैं, तुमने ही उसे जन्म दिया है, इसलिए अब तुम्हें ही उसका उपचार, इलाज करना है। तुम्हें स्वयं ही अपना डाक्टर, अपना वैद्य बनना है।

"भिषग् विषं मंत्र गुणैरिवारिवलम्"

जिस प्रकार कुशल वैद्य मंत्र के द्वारा अग—अंग में व्याप्त विषको दूर कर देता है। उसी प्रकार आत्म—ज्ञाता, आत्म—पिपासु, निन्दा गर्हा आलोचना की औषधि का सेवन कर काम—भोग, विषय-कषाय, जन्म मरण के रोगों को समाप्त कर देता है।

निन्दा—स्वयं के समक्ष स्वयं के पापों की स्वीकृति निन्दा कहलाती है। गर्हा—गुरू के समक्ष अपने अपराधों को व्यक्त करना गर्हा कहलाता है। आलोचना-जन समूह के बीच अपने पापों का वमन करना और पुन; पाप नहीं करने का संकल्प आलोचना कहलाता है। काफी समय बीत गया है, पाप-संस्कार से बोझिल होकर घूमते-घूमते, आओ अब स्वयं की शरण में, मुनियों की शरण में ताकि पाप से मुक्त हो सके। आओ स्वयं अपना निदान करे, अपने चिकित्सक बने। आओ स्वयं के निकट लौट चले।

अन्त में आपसे इतना ही कहना चाहता हूँ कि यह जीवन बहुत रहस्य पूर्ण है अज्ञात हैं। अगर आप अपने पाप की, अपनी निन्दा की

स्वीकृति का साहस करेंगे तो निश्चित शुभ जीवन में उतरने लगेगा। और अज्ञात से पर्दा उठने लगेगा। इसलिए आओ लौट चले अपनी ओर, और चोट करे पापों पर।
बस आज इतना ही

आदिनाथ दिगम्बर जैन नया मन्दिर
प्रतापगढ़ (राज.)

दिनांक ११-८-९१
रविवार

८

चारित्र के अवरोधक है

अगर अब साधक बने हो तो बस इतना ही पुरूषार्थ करना कि समता जाग जाये। अगर परमात्मा से प्रार्थना में कुछ मांगना हो तो इतना ही मांगना कि हे भगवन्! प्रतिकूलता-अनुकूलता में सुख में-दुःख में समता रखने की क्षमता दो। भोगों के प्रति न ममता हो।

आचार्य देव कह रहे है-संसार में रहकर संसार से तिरने का; संसार को नष्ट करने के लिए तुमने जो हृदय की वेदी पर ध्यान का दीया, जलाया है; उसे बुझाने के लिए हवा के झोंके आयेगें, आंधियाँ आयेगी, बड़े-बड़े तूफान आयेगें और वे तुम्हारी ज्योति को बुझाने का प्रयास करेगें। इसलिए दृष्टि को बाहर जाने ही मत देना, स्वयं पर ही टिकाकर रखना।

मूल-पद्य — अतिक्रमं यं विमतेर्व्यतिक्रमम्
जिनाऽतिचारं सुचरित्र कर्मणः ।
व्यधामनाचारमपि प्रमादतः
प्रतिक्रमं तस्य करोमि शुद्धये ॥८॥

हिन्दी पद्य — चारित्र में है मैंने अतिक्रम लगाया,
अज्ञान आदि से है व्यतिक्रम लगाया ।
अतिचार अनाचार हुए मुझ से प्रभो जो,
करता प्रतिक्रमण में अपराध न हो ॥ ८ ॥

अन्वयार्थ —

जिन	– हे जिनेन्द्र भगवान !
(अहम्)	– (मैंने)
सुचरित्र कर्मणः	– उत्तम चरित्र के अनुष्ठान का
प्रमादतः	– प्रमाद से
यम्	– जो
अतिक्रमम्	– अतिक्रम
व्यतिक्रमम्	– व्यतिक्रम
अतिचारम्	– अतिचार और
अनाचारम् अपि	– अनाचार भी
व्यधाम्	– किया
तस्य	– उसकी
शुद्धये	– शुद्धि के लिए
प्रतिक्रमम्	– प्रतिक्रमण
करोमि	– करता हूं

भावार्थ — हे जिनेन्द्र ! मैंने ग्रहण किये हुए चारित्र के पालन करने में जो प्रमाद और कुबुद्धि अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार और अनाचार किया हैं उसकी शुद्धि के लिए मैं प्रतिक्रमण करता हूं ।

८

चारित्र के अवरोधक है

ओम नमः सिद्धेभ्यः ३
धर्मप्रेमी भव्यात्माओं !

एक सम्राट दुःसाध्यरोग से ग्रसित था सम्राट था। सम्राट के रोग भी सम्राट जैसे होना चाहिए, तभी तो रोग की आव-भगत हो सकेगी सम्राट रोग से काफी परेशान था। उपचार हेतु दूर-दूर से चिकित्सक आये; काफी उपचार हुआ लेकिन लाभजरा भी न हुआ। जब तक रोग का निदान न हो तब तक उसका उपचार असंभव है ? रोग का निदान होते ही उपचार आसान हो जाता है। अनेक वैद्य आये, हकीम आये, डाक्टर आये, चिकित्सक आये लेकिन सभी असफल रहे। रोग का यथार्थ निदान कोई भी न कर सका। पुण्योदय से भाग्यवशात् एक वैद्य का आना हुआ। उसने राजा की नब्ज देखी और कहा कि आपको आम्बरोग है, अतः आप जीवन भर के लिए आम का त्याग कर दे। आम के त्याग से आप हमेशा के लिए रोग मुक्त हो जायेंगे। और यदि किसी भी दिन आम का सेवन कर लिया तो आपकी जीवन लीला समाप्त हो जायेगी। अगर जीना चाहते हैं तो आम का त्याग कर दे। सम्राट ने जीवन भर के लिए आम का त्याग कर दिया।

एक दिवस राजा ने विचार किया कि, मैंने तो आम का त्याग कर दिया है, यदि किसी बाजार में बिकने आ गये और मेरी दृष्टि उन पर पड़

गयी और आम खाने का मन हो गया तो..............? इसलिए नगर के सारे आम वृक्ष कटवा दिये जाये। उसने मंत्री को बुलाकर आदेश दिया कि नगर के सभी आम्र वृक्षों कटवा दिये जाये। मंत्री ने राज्य के सभी आम्र वृक्षों को कटवा दिये।

अनेक वर्षो के बाद सम्राट देशाटन को निकला। बसंत ऋतु थी। चारों ओर हरियाली छाई थी। पास ही एक आम का उपवन था। सम्राट ने उसी बगीचे में अपना डेरा डाल दिया। मंत्री ने सम्राट से सविनय-निवेदन किया, आग्रह किया कि यह आम का बाग है। यहाँ आपका रूकना उचित नहीं है। वैद्य ने वैसे भी आपको मना किया है; सम्राट ने कहाँ, रूकने में क्या हानि है? वैसे भी मेरे आम का त्याग है। आजीवन आम न खाने की प्रतिज्ञा कर रखी है। सम्राट ने बात बनाकर मंत्री को टाल दिया। मंद मंद हवा बह रही थी, आम की सुवास चारों और उड़ रही थी। उससे प्रभावित होकर सम्राट ने वृक्ष के ऊपर दृष्टि डाली, मधुर आम लटक रहे थे। सम्राट का मन आम के प्रति आकर्षित हुआ। इतने में एक आम सम्राट के सामने आ गिरा। सम्राट ने उसे हाथों में उठा लिया और आम के रंग और गंध से प्रभावित होकर उसे सूंघने लगा। मन आम खाने मचल उठा। रसना-इन्द्रिय के रस के लिए व्यग्र हो उठी। उसने सम्राट से कहाँ देखते क्या हो, मधुर आम है मुख में डाल लो। मंत्री सम्राट के हाव-भाव देख रहा था। उसने सम्राट से सविनय प्रार्थनापूर्ण शब्दों में कहा, सम्राट! यह आम नहीं विष है, यह मधुर नहीं, कड़ुवा है। राजन्! इस आम को शीघ्र फेंक दीजिये यह मृत्यु का दूत बनकर आया है, शीघ्र फेंक दीजिये इसे अन्यथा प्राण खतरे में पड़ जायेगे।

सम्राट ने कहा मंत्री, मैं कहाँ आम खा रहा हूँ, मैं तो मात्र इसे सूंघ रहा हूं। सूंघने में हर्ज क्या है? वैद्य ने सूंघने की मनाही थोड़ी न की है? उसने तो आम खाने को मना किया था। चंचल मन और हरा भरा चमन और कपिमन भला कैसे रूकेगा आकर्षण? निश्चित दोनों का होगा आपस में सम्बन्ध। सम्राट का मन आम्र आकांक्षा की प्यास को रोक न सका। काफी समयोपरान्त आम हाथ में आया था। दबी वासना दमक उठी, आम को देखकर चमक उठी। सम्राट ने आम की एक कली काटी और खाने लगा। मंत्री ने सम्राट से कहा, वैध ने आपको आम खाने के मना किया था, तथा आपने भी आम खाने की प्रतिज्ञा की थी। राजन्! आम खाने से आपका रोग पुनः जागृत हो जायेगा, जिससे आपके प्राण खतरे में पड़ जायेंगे। किन्तु सम्राट ने जरा भी बात न मानी और

आम की एक कली मुख में डाल ही ली। और परिणाम यह हुआ कि राजा अपनी रसना इन्द्रिय की वासना को रोक न सका। वह दो-चार-छह आम खा गया। उसने आम नहीं खाया बल्कि आम ने ही उसे खा लिया और सम्राट प्राणान्त हो गया।

मनुष्य भी कामना-वासना के आम का सेवन करके भटक रहा है। उसने स्वयं का रसास्वादन नहीं किया चारित्र का स्वाद नहीं चखा, सयम की शरण नहीं गया। यदि कदाचित चारित्र की शरण भी गया, तो कामनाओं-वासनाओं को साथ ले गया। चारित्र जैसे कल्पवृक्ष की छांव में भी जाकर इन्द्रिय सुख मांगता रहा, भौतिक क्षुद्र वैभव की याचना करता रहा। बीज बोया लेकिन अन्न के लिए नहीं, भूसा के लिए श्रम किया। सच्चे दिल से सन्यास ग्रहण करने वाला, सम्यक् चारित्र ग्रहण करने वाला अपने चारित्र में व्रत – नियम में दोष नहीं लगाता। वह ऐसे पथ पर ही नहीं चलता जहां फिसलन हो, गिरना सभव हो, वह ऐसा भोजन ही नहीं करता जिससे मरण निकट आता है।

आचार्य देव कह रहे जो चारित्र का हीरा हाथ लगा है अब उसे सुरक्षित रखना, सावधानी बरतना, अन्यथा चार लुटेरे तुम्हारे पीछे लगे है, चार मीठे बदमाश तुम पर नजर गढ़ाये बैठे हैं अब उनसे तुम्हें बचना है। ये चार लुटेरे हैं अतिक्रम-व्यतिक्रम, अतिचार और अनाचार जरा इनकी करतूतों से सावधान हो जाओ, इनके रुप-रंग को, हरकतों को समझ लो। क्योंकि अभी तुम्हें बहुत लम्बी यात्रा तय करनी हैं, और अपने गन्तव्य पर पहुंचना हैं। ये उस राह के स्थाई चोर हैं, स्थाई बदमाश है, स्थाई तस्कर हैं। ये बड़े निष्ठुर और निर्लज्ज है, इनने किसी को भी नहीं बख्शा। ये तो सदा पथिक का इन्तजार करते रहते हैं कि कब पथिक आये और उसे लूटे। साधक से भी ज्यादा ये सावधान रहते है, एक पल को भी विश्राम नहीं करते है। वही साधक सफल होता है जो प्रतिपल-प्रतिक्षण अपने में जागरुक सावचेत रहता है और जिसने अन्तरंग से चारित्र को ग्रहण किया है। जिसके अन्दर पाखण्ड नहीं है। उस सम्राट के समान। सम्राट ने ऊपर से आम छोड़ा था, भीतर तो आम की वासना कायम थी। मोक्ष मार्ग के साथ पाखण्ड मत करना अन्यथा...........? हानि दूसरे की नहीं स्वय की होगी।

पाखण्ड का अर्थ है भीतर एक, बाहर दूसरी बात, ठीक उल्टी बात, ठीक उल्टा आचरण। जैसे अगर प्रीति से, प्रेम से, श्रद्धा से पाषाण की प्रतिमा के सामने झुके तो पत्थर में भगवान है। श्रद्धा कसौटी है – क्योंकि

समर्पण में भगवान है। लेकिन कोई ऐसे ही औपचारिकता से, सामाजिक व्यवहार से, खानदानी परम्परा से, या किसी को झुकता देखकर झुक गये, पुराने संस्कार वश झुक गये तो पाखण्ड है। पाखण्ड का निर्णय झुकने से नहीं होगा, पाखण्ड का निर्णय भीतर हृदय के अन्तरमन में होगा। अगर भीतर पूजा का भाव नहीं, अगर भीतर परमात्मा की प्यास नहीं जगी तो पाखण्ड है। ऐसे साधक ने मात्र ऊपरी भेष बदला है। सिर का मुण्डन किया है लेकिन भीतर वासना का मुण्डन नहीं किया है।

आचार्य देव कह रहे है ....हे साधक जरा सावधान रहना, तुम जरा होशियार रहना। इस दुनिया में और कोई बड़ा लुटेरा नहीं है जो तुम्हें लूट ले; इस दुनिया में और कोई बड़ा जालसाज नहीं है। जो तुम्हें धोखा दे दें। तुम्हारा पाखण्ड सबसे बड़ा जालसाज है। और वह इस कुशलता से देता है धोखा और ऐसी सादगी से देता है धोखा कि लगता भी नहीं है धोखा हो रहा है। उस पाखण्ड के चार मित्र है अतिक्रम व्यतिक्रम, अतिचार और अनाचार। ये अनुकूल बदमाश है, प्रलोभन देकर अपने जाल में फंसाते है। ग्रहण किये हुए संकल्प को मीठा आस्वादन देकर तुड़वाते है। वही साधक स्खलित होता है, जो देह-आस्था और भोग आस्था से जुड़ा होता है। आत्म-साधक जब परमात्मा में डूबता है तब सहज ही कह उठता है।

कुछ तप त्याग से कर सकूं
उपहास जग का सह सकूं।
सुख-दुख में समता रख सकूं इतना तब आधार दो,

मुझको न यह संसार दो ।।
मैं नित सुनूं चारित्र कथा
करूणा से धोऊ हर व्यथा
जिसका न आदि न अन्त हो, वह प्रेम पारावार दो,

मुझको न यह संसार दो।
आस्था हिय में भर दो अमर
चलूं मोक्ष की मैं नित डगर
चाहे नौका भंवर में डाल दो, पर हाथ में पतवार दो

मुझको न यह संसार दो

कुछ बात दिल की कर सकूं
इतिहास तब अब गढ़ सकू
चाहे पंथ कंटको का क्यों न हो, सरिता को तीव्र धार दो
मुझको न यह संसार दो

पता नहीं कितना तो सुख मिला और भोगा। भोगते-भोगते या तो सुख खो गया, या स्वयं ही खो गये, मिट्टी हो गये। पता नहीं कितनी ही बार दुख मिला, तड़फे रोयें और उसके आदि बन गये। वे आदत में सुमार हो गये। लेकिन सुख और दुख के पार भी कुछ है। इसलिए तो तप-त्याग चारित्र में अर्थ है। उसके पालन करने में गरिमा हैं महिमा है, परमात्मा है। दोनों के बीच समता रखना है।

अगर अब साधक बने तो बस इतना ही पुरुषार्थ करना कि समताजग जाये। अगर परमात्मा से प्रार्थना में कुछ मांगना हो तो इतना ही मांगना कि प्रतिकूलता-अनुकूलता में, सुख-दुख-में समता रखने की क्षमता दो, भोगों के प्रति न ममता हो। बस जिसमें यह क्षमता आ गयी, उसका अतिचार-अनाचार कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते वह परमात्मा को पाने का हकदार हो गया, परमात्मा के योग्य पात्र हो गया। बस माँगना हो तो इतना ही माँगना की शत्रु और मित्र को समान रुप से देख सकूं; कांटे और फूल को समदृष्टि से देख सकूं। क्योंकि जिसमे समता की दृष्टि आ गयी, सम्यक्त्व आ गया, ध्यान आ गया, समाधि आ गयी, उसका परमात्मा दूर नहीं। सम्यक्त्व मोक्ष-मार्ग का प्रथम सोपान है, सम्यक आचरण समाधि का द्वितीय पायदान है और निर्विकल्प-ध्यान-समाधि निर्वाण का अन्तिम चरण है, वह समाधान है, सम्यक् साधना का, वहां परमात्म-मिलन है।

आचार्य देव कह रहे है-संसार में रहकर संसार से तिरने का, संसार को नष्ट करने के लिए तुमने जो हृदय की वेदी पर ध्यान का दीया जलाया है; उसे बुझाने के लिए हवा के झौके आयेगे, आँधिया आयेगी, बड़े-बड़े तूफान आयेगे और ये तुम्हारी ज्योति को बुझाने का प्रयास करेगे। इसलिए दृष्टि को बाहर जाने ही मत देना, स्वय पर टिकाकर रखना।

चारित्र का प्रथम अवरोधक हैं "अतिक्रम"-ग्रहीत व्रतादि को खण्डित करने का भाव मन में पैदा होना, अतिक्रम है। सम्यग्दर्शन, सम्यक्ज्ञान, सम्यक्चारित्र के प्रति मन में उत्साह का कम होना अतिचार है। अर्थात् ग्रहण किये व्रत को भंग करने का मन में विचार का पैदा होना अतिचार कहलाता है। "क्षतिं मनः शुद्धिविधेरतिक्रमं" मन की शुद्धि में हानि होना

या क्षति होना अतिक्रम है । मन कब शुद्ध रहता है ? जब वह भोगों से संसार की आस्था से, भौतिकता के विचारों से ऊपर उठ गया हो, उनसे पार हो गया हो । अभी आपका मन शुद्ध नहीं है । मन चारित्र से शुद्ध होता है और भोगों से अशुद्ध । भोग मन को अशुद्ध करते है, विकृत करते है । जैसे स्वादिष्ट भोजन में मिला हुआ थोड़ा सा जहर भी पदार्थ को नष्ट कर देता है, वैसे ही मन में उठे क्षणिक गन्दे विचार भी व्रतादि को दूषित कर देते हैं । सम्यक आत्म-साधक गन्दे विचारों को स्वयं में पैदा ही नहीं होने देता । कदाचित चारित्र मोहनीय कर्म के प्रबल उदय में अगर उनका जन्म हो जाये तो वह तुरन्त प्रतिक्रमण के नीर से मन को धो लेता हैं । "हा दुष्कृतमिति वा मनः प्रतिक्रमणम्" हाय मैंने मन से पाप विचार कर लिया, वह मिथ्या हो, समाप्त हो, ऐसा विचार करना मन; प्रतिक्रमण है ।

"व्यतिक्रम" यह चारित्र का द्वितीय अवरोधक हैं । अतिक्रम के पश्चात् की घटना है । साधक के मन में विषयाभिलाषा और तीव्र हो गई । आचार्य देव कह रहे हैं—"व्यतिक्रम शील वृतेर्विलंगनम्" शीलवृति अर्थात् स्वीकृत व्रत—नियम का उल्लंघन करना व्यतिक्रम हैं । व्रत की मर्यादा को भग करने की अभिलाषा करना व्यतिक्रम हैं । इसी प्रसंग में अमृतचन्दाचार्य पुरुषार्थ सिद्धि उपाय में लिखते हैं कि "व्यतिक्रमो यो विषयाभिलाष" स्वीकृत व्रत-नियम के विरुद्ध इन्द्रिय-विषयों की अभिलाषा करना इच्छा करना व्यतिक्रम हैं । व्यतिक्रम में साधक अतिक्रम से एक कदम और आगे निकल गया । अतिक्रम में तो मात्र भोग-सम्बन्धि बिजली चमकी थी, मन के सागर में एक लहर उठी थी, लेकिन व्यतिक्रम में तो भोग अभिलाषा प्रबल हो गई, मन बेकाबु हो गया, अब भागने ही वाला हैं सीमा का उल्लघन करने ही वाला है, उल्लंघन की चरम सीमा पर पहुँच गया हैं, भोग का द्वार खटखटाने लगा हैं । और इसी भावावेश में नियम का आंशिक उल्लंघन कर देता हैं । व्रत को आंशिक भग कर देता हैं, अधिकांश भाग सुरक्षित हैं इस स्थिति को अतिचार कहा हैं ।

"अतिचार" यह चारित्र का तीसरा धब्बा हैं, अवरोधक हैं । ग्रहण किये व्रत-नियम का आंशिक भंग हो जाना अतिचार कहलाता हैं । व्रतों के प्रति आचरण-अतिचार कहलाता हैं । "अतिचारः करणालसत्वम्" व्रतों के प्रति शिथिलता का होना अतिचार कहलाता है, ऐसा अमृताचार्य का कहना हैं । अन्तिम है चारित्र की धज्जियां उड़ाने वाला अनाचार ।

"अनाचार" यह चारित्र का विध्वंसक है । लिये व्रत नियम को

समूल उखाड़ फेंकता है। साधक को पूर्णतया पतित कर देता है, चारित्र की सम्पदा का पूर्णतया हरण कर लेता है। अनाचार की उपस्थिति में चारित्र का एक अंश भी शेष नही रहता है। अनाचार यानि चारित्र की भूमि पर भयंकर विस्फोट हो जाना, भयंकर बमबारी हो जाना। अमृतचन्द्राचार्य का कहना है कि "भंगो ह्यनाचारमिह व्रतानाम" व्रतों का सर्वथा भंग कर देना अनाचार है और स्वयं आचार्य देव कह रहे है कि-

"वदन्त्यनाचार मिहाति सक्तताम्"

व्रत-नियम आदि को छोड़कर विषयों में अति-आसक्त हो जाना, अहर्निश उसी में रचे-पचे रहना, विषयों में डूब जाना, जानबूझकर धृष्टता, दुष्टता, करना अनाचार है।

अतिचार और अनाचार में क्या अन्तर हैं? अतिचार और अनाचार में काफी अन्तर है। अतिचार में खाली मन का विचरण है, वस्तु का, पदार्थ का, भोग का स्पर्शन नही है लेकिन अनाचार में स्पर्शन भी है और काय द्वारा आलिंगन भी है। और आचरण भी है। अतिचार तक तो मर्यादा में है, उसका सुधार संभव हैं, लेकिन अनाचार में तो बात हाथ के बाहर है। मर्यादा के बाहर है, साधक बेशरम बन चुका है इन्द्रियों का दास हो गया है। अतिचार में तो अनाभोग (पूर्व संस्कार व शात्) से, सहसाकार (अचानक व्यक्त वस्तु का सेवन कर लेने) इत्यादि से, अतिचार होता है जबकि अनाचार तो जानबूझकर किया गया पाप है।

सम्राट अपनी आम खाने की वासना को रोक न सका, अपनी इच्छा पर अकुश न लगा सका। आम के वृक्ष के नीचे बैठने से उसके विचार बदल गये। उसका मन आम्र-आकांक्षा से भर गया, यह हुआ अतिक्रम। गृहित नियम के, क्रम के उल्लघन का विचार अतिक्रम है। उसके पश्चात् आम को हाथ में लेकर सूंघना. ललचाई दृष्टि से देखना व्यतिक्रम हुआ। और आम की कली को मुख तक लाना, अभी खाया नहीं है, लेकिन मुख के पास हाथ आ गया है. अब किसी भी समय आम मुख में पहुँच सकता है यह हुआ अतिचार। और साथियों के, मित्रों के, मत्री के मना करने के बावजूद आम खा लेना यह अनाचार है। सम्राट को मंत्री आदि ने काफी मना किया किन्तु वह नहीं माना और उसने आम का सेवन कर लिया। अपने स्वीकृत व्रत की मर्यादा को जानबूझकर तोड़ दिया बार-बार आम का भक्षण कर मरण को प्राप्त हुआ।

'अतिक्रम' अब मुझे व्रत का पालन नही करना है, मेरे से व्रत नहीं निभते। पानी के बिना मेरा काम नहीं चलता। मुझे तो दिन में कम से

कम दो बार पानी अवश्य चाहिए ।

"व्यतिक्रम" मन में जो व्रत भंग करने का भाव उठा था, उसे पूरा करने सामग्री एकत्र करना व्यतिक्रम है ।

'अतिचार' कुछ अशों में व्रत कायम हैं. और कुछ अंशो में व्रत दुषित हो गया, लेकिन मन कंप रहा है, दीपक की लो–कांपने लगी । अभी बुझी नहीं, लेकिन ज्यादा धुआं उगलने लगी । दीपक की रोशनी मन्द पड़ने लगी है, अब पुस्तक के अक्षर स्पष्ट दिखाई नहीं पड़ रहे, यह हुआ अतिचार । अतिचार में आत्मा धूमिल पड़ने लगती है ।

'अनाचार' व्रतों के प्रति अव्याचार करना. उनको पूर्णतया खण्डित कर देना अनाचार हैं। लो बुझ गई । लालटेन भभक-भभक कर बुझ गई, लेकिन चिमनी काली कर गई । चारित्र का चिराग बुझ गया-यह अनाचार हुआ । और इसके उपरान्त में जरा भी प्रायश्चित का प्रतिक्रमण का भाव नहीं हुआ तो यह 'दुराचार' हो गया ।

आचार्य देव कह रहे हैं कि हे प्रभु ! प्रमाद के कारण मेरे चारित्र में दोष लगा है उसके लिए चारित्र की शुद्धि के लिए मैं प्रतिक्रमण करता हूँ । अतीत के पापों को धोने के लिए प्रायश्चित करता हूँ, तथा वर्तमान के दोषों से मुक्त होने के लिए प्रतिक्रमण करता हूँ और भविष्य में ऐसी गलती नहीं करूँगा उस संकल्प को पूरा करने के लिए प्रत्याख्यान करता हूँ ।

सामायिक का सम्बन्ध चारित्र से हैं और चारित्र का सम्बन्ध त्याग से हैं । आत्मा को पाने के लिए त्याग-संयम आवश्यक हैं । आशा करता हूँ आप अपने हृदय में त्याग के बीज बोयेगे, त्याग को स्थान देगे जिसमें परमात्मा के फूल खिलते हैं ।

बस आज इतना ही
आदिनाथ दिगम्बर जैन नया मन्दिर
प्रतापगढ़ (राज.)

दिनांक १२-८-९१
सोमवार

९

पात्र धोकर आओ अन्यथा..

लोग मेरे पास आते है-पूछते है कि भगवान को कैसे पाए ? वे यह नही पूछते कि अपने पात्र को कैसे साफ करे। पूछते है ध्यान-सामायिक कैसे करे ? वे यह नही पूंछते कि परिग्रह कैसे छोड़े, वासनाएं कैसे छोड़े। वे पूछते है पूजा, भक्ति प्रार्थना कैसे करे ? वे यह नही पूछते कि क्रोध, मान, माया, लोभ, अंहकार को कैसे छोड़े ?

भोग से मन तृप्त नही हो सकता। ओस-अंसू का क्या सम्बन्ध ? ओस का जन्म तो रात्री में चन्द्रमा को साक्षी में होता है और सूर्य के निकलते ही समाप्त हो जाता है। भोग भी ओस सम क्षणभंगुर है। मन उससे कैसे तृप्त हो सकता है।

मूल पद्य :- अतिं मनःशुद्धि-विधेरतिक्रमं
शीलवृतेर्विलंघनम् ।
प्रभोऽतिचार विषयेषु वर्तनं
वदन्त्यनाचारमिहातिसक्तताम् ॥९॥

हिन्दी पद्य :— निज चित्त शुद्धि का नाश अतिक्रम कहाता,
निज शील वाड़ का नाश व्यतिक्रम कहाता ।
विषयानुरागी बनना अतिचार माना,
उनमें आसक्त रहना अनाचार जाना ॥९॥

अन्वयार्थ :-

प्रभो	— हे प्रभो !
इह (ज्ञानिन)	— ज्ञानी जन
मनःशुद्धि-विधेः	— मन की शुद्धि विधि के
क्षतिक्रमम्	— विनाश को
अतिम्	— अतिक्रम,
शील-वृतेः	— शील की बाड़ के
विलंघनम्	— उल्लंघन को
व्यतिक्रमम्	— व्यतिक्रम,
विषयेषु	— विषयों में
वर्तनम्	— प्रवर्तन को
अतिचारम्	— अतिचार और
अतिसक्तताम्	— अति आसक्ति को
अनाचारम्	— अनाचार
वदन्ति	— कहते है ।

भावार्थ :— हे प्रभो ! मन की शुद्धि के विनाश रूप अतिक्रम, शील की बाड़ का उल्लंघन रूप व्यतिक्रम, इन्द्रियों के विषयों में प्रवृति करके अतिचार और उनमें आते आसक्त होकर अनाचार किया है । (हे भगवान ! आपके प्रसाद से मेरे ये सब दोष दूर होवे !)

९

पात्र धोकर आओ अन्यथा ....?

ओम नमः सिद्धभ्य :—३
धर्म प्रेमी भव्यात्माओ

एक एकांतप्रिय गार्हस्थिक साधु अपनी पत्नी के साथ एक जंगल में छोटा-सा झोपड़ा बना सुख से रहा करते थे। लेकिन अक्सर ऐसा होता था कि जंगल में आने-जाने वाले लोग कभी रास्ता भटक जाते या लौटने में उन्हें शाम हो जाती तो वे साधु की झोपड़ी को देखकर वहाँ शरण माँगते। साधु इससे बहुत परेशान था। एक दिन शाम का समय था, साधु अपनी पत्नी के साथ बैठा-बैठा बात कर रहा था, तभी उसने देखा कि पप्पू चला आ रहा हैं वह पुराना परिचित हैं, अगर शरण मांगेगा तो मना भी नहीं कर सकते थे। अतः उसकी पत्नी ने एक उपाय बताया कि हम दोनों अपनी कुटिया में ऐसा अभिनय करें कि जैसे बहुत झगड़ा चल रहा हैं। संभवतः पप्पू दोनों को झगड़ता देखकर वापस लौट जायेगा।

उन लोगों ने ऐसा ही किया। झोपड़ी के द्वार बन्द करके झगड़ना शुरु कर दिया और एक डंडे से तकिया पीटना शुरु कर दिया। वे अभिनय में तो कुशल थे ही – बड़े पुराने खिलाड़ी थे। पत्नी ने जोर-जोर से रोना और बचाओ-बचाओ मत मारो, ऐसा चिल्लाना प्रारंभ कर दिया। ऐसा वे करीब ३०-४० मिनट तक करते रहे। जब पप्पू के जाने का उन्हें पूरा

भरोसा हो गया, तब वे निकल बाहर आये और झोपड़ी के बाहर फुलवारी में खाट पर बैठ गये, पति ने हंसते हुए कहा, साला भाग गया। देखा मैंने कैसा मारा ? पत्नी ने भी मुस्कराकर कहा, और देखा मैं भी कैसी रोई ? तभी खाट के नीचे से सिर निकालकर पप्पू बोला, और मैं भी कैसा भागा ?

आप जरा होशियार रहना मन बड़ी चालाकी करता है, दूसरों को धोखा देने की फिराक में स्वयं धोखा खा जाता है दूसरो को धोखा देते देते स्वयं भी धोखा खा रहा हूँ उसे इतना भी स्मरण नहीं आता हैं। इसलिए आचार्य देव को कहना पड़ा...... ..."क्षतिं मनः शुद्धि" मन की शुद्धि का नाश करना अतिचार है। स्वयं के साथ, चरित्र के साथ विश्वासघात हैं।

हे प्रभो ! मैंने मन की शुद्धि के विनाश रूप अतिक्रम शील की बाढ़ उल्लंघन रुप व्यतिक्रम, इन्द्रियों के विषयों में प्रवृति करना अतिचार और उनमें अति आसक्त होना अनाचार हैं हे प्रभु ! आपके प्रसाद से मेरे ये सब दोष दूर होवे।

गृहीत संकल्प को, नियम को, मन में तोड़ने का मात्र भाव आना अतिक्रम और विचार को पूर्ण करने सामग्री का एकत्र करना व्यतिक्रम और एकत्रित सामग्री की उपयोग के लिए हाथ में उठा लेना अतिचार तथा उसका उपयोग अनाचार हैं। मान लो आपने रात्रि में पानी नहीं पीने का नियम लिया और रात्रि में पानी पीने का भाव हो गया तो सकल्प में अतिक्रम का दाग लगा, और पानी से भरा गिलास हाथ में ले लिया, मुख तक ले आये, तो यह अतिचार हुआ और पानी पी लिया, अनाचार हुआ तथा बार-बार पानी पीने लगे तो यह दुराचार हुआ। अब साधक संभल नहीं सकता, ऊपर उठ नहीं सकता क्योंकि मन विषयों में जम्पापात करने लगा हैं, आपद कण्ठ डूब गया हैं।

तुमको क्या मालूम कि कितना मन करता हैं शैतानी
बहुवार भटक चुक हैं ये, पी चुका विषयों का पानी।

बीसों बार कहा हैं इससे,
सोच-समझ कर कहा करो।
कानों के कच्चे लोग यहाँ,
कच्चे घट में न नीर भरो।।

व्यर्थ परिश्रम करता रहता कच्चे घट में भरता पानी।
तुमको क्या मालूम कि कितना मन करता शैतानी।।

द्रव्य-क्षेत्र और काल को लख
बोला करो अपनी वाणी,
बिन-ज्ञात के गर बोल दिया तो
अपमानित करेंगे अज्ञानी ।
लेकिन जिद्दी मन को कितना समझाए यति मुनि-ज्ञानी ।
पल-पल करता-रहता मन अपनी-अपनी मन मानी ।।
मना किया हर बार की ऐसी,
चाल क्यों चलता अभिमानी ।
जिसमें दाग कलंक का लगता
जग घोषित करता अपमानी ।।
तीन लोक का दंभ भरता हैं करता-रहता मनमानी ।
तुमको क्या मालूम कि कितना मन करता हैं शैतानी ।।
ओस-आंसू का भाई चारा
हो नहीं सकता अभिमानी
ओस् चांद की रानी बेटी
तू मेघ का आवारा पानी
भोग जीवन का लक्ष्य नहीं हैं, तू फिर क्यों करता नादानी ।
साथ खोज ले ऐसा तू तो मिट जाये तेरी कलंक कहानी ।।

मन बहुत चालाक हैं, बहुत चतुर हैं, इसे भूल मत करने दो । हर भूल को सुधारों । एक-एक भूल का स्मरण करो और उन्हें सुधारों, थेगडे लगाओ, पुनः सिलाई करो, जोड़ लगाओ । लेकिन इतना याद रखो यदि मन को ध्यान-सामायिक स्वाध्याय-यम-नियम से नहीं बाँधा, तो एक तरफ भूल सुधारोगे. दूसरी तरफ भूल होने लगेगी, भूल रिसने लगेगी । एक तरफ से रोकोगे पानी, दूसरी तरफ से बहने लगेगा । इसलिए गृहस्थ अपने मन को रोक सकता । अगर रोकने की कोशिश भी करता हैं, उसकी दशा वैसी ही होती हैं जैसे ऐलोपैथिक औषधि लेने वाला एक रोग को दबाता है, दूसरे को जन्म देता है । सिर्फ बीमारियाँ बदलती रहती है । एक बीमारी दबाता है दूसरी बीमारी खड़ी हो जाती है । दूसरी बीमारी को दबाता है तीसरी बीमारी............? लेकिन साधु पुरूष तो मन को चंचल बनाने वाले कारणों से ही मुक्त हो जाता है ।

ओस्-आंसू का भाईचारा
हो नहीं सकता अभिमानी

ओस् चान्द की रानीं-बेटी
तू मेघ का आवारा पानी

भोग से मन तृप्त नहीं हो सकता। ओस्-आंसू का क्या सम्बन्ध ? ओस का जन्म तो रात्री में चन्द्रमा की साक्षी में होता है, और सूर्य के निकलते ही समाप्त हो जाता है। भोग भी ओस सम क्षरण भंगुर है, मन उनसे कैसे तृप्त हो सकता है ? मन तो आकाश में विचरण करते हुए पानी के समान है, जो सदा चचंल है। बादल अगर रुक जाये तो बरस जाते है। आकाश स्वच्छ हो जाता है, चारों तरफ शीतलता छा जाती है, ठण्डी हवायें चलने लगती है, नदी–नाले सब भर जाते हैं। मन अगर ठहर जाये, तो निर्दोष होने लगता है—कर्म-कालिमा छँटने लगती है, आत्म-आकाश दिखने लगता है। चारों तरफ सतत्व की, मधुर-प्रेम की गन्ध फैलने लगती है।

"और तू मेघ का आवारा पानी"

मन तो बादलो से भी ज्यादा गतिवान है। अभी तक वैज्ञानिकों ने ऐसा एक भी यान नहीं बनाया कि जो मन से भी ज्यादा गतिवान हो, मन से भी ज्यादा तेज दौड़ता हो। अगर ऐसा हो गया तो मन पीछे रह जायेगा और हम आगे निकल जायेगे। फिर आदमी बहुत मुश्किल में पड़ जायेगा। लेकिन ऐसा कभी होने वाला नहीं हैं, मन से तेज दौड़ने वाले यान का निर्माण असंभव है, क्योंकि बनाने वाला तो मन ही हैं। यान चाँद पर पहुँचेगा तब मन मंगल की यात्रा कर रहा होगा। यान जब मंगल पर पहुँचेगा तब मन दूसरे जगत में प्रवेश कर रहा होगा। मन सदा आगे दौड़ता है सब यानों के। कितनी ही तेज उनकी गति क्यों न हो। इतनी तेजी से दौड़ने वाला मन ठहरी हुई आत्मा को नहीं पा सकता इसलिए मन का भी ठहरना आवश्यक हैं। अगर मन ठहर जाये तो मन उसको भी जान सकेगा जो ठहरा हुआ है।

मन की दौड़ की अपनी तकनीक हैं, अपनीं पूरी टेक्नालॉजी हैं। अकारण तो वह दौड़ नही सकता, इसलिए मन कारण निर्मित करता हैं। उन कारणों का नाम हैं वासनाये है, कामनाये है, आकांक्षाये हैं। मन कहता हैं कि यह चाहिए, वह चाहिए, चाहिए के लिए, पाने के लिए, तो दौड़ना ही पड़ेगा। अगर मन में कुछ पाने की आकांक्षा न हो, कोई मंजिल न हो तो दौड़ेगे कैसे मन तो प्रत्येक समय भविष्य की आकॉंक्षा से भरा हैं कि उस मंजिल को पाना है, वहां तक जाना हैं अगर वहाँ तक जाना हैं तो दौड़ना पड़ेगा, दौड़ शुरू करनी पड़ेगी। इसलिए मन जिसे पा लेता है, वह चीज

बेकार हो जाती है, क्योंकि वह तो पात्र बहाना था। तब दूसरा बहाना खोज लेता है, कि यह तो अच्छा नहीं है, इसमें कोई सार नहीं है, और दूसरा पदार्थ खोजो, और आगे चलो..........।

मन सदा भविष्य में जीता है, वह वर्तमान में तो जो नहीं पाता और आचार्य वर्तमान में जीने की बात कर रहे हैं। वर्तमान जीवन ही जीवन हैं, वही जीवन्त रूप है। मन तो मील के पत्थर की भांति हैं, जिस पर तीर हमेशा आगे बताता रहता है। और मील के पत्थर पर कहीं-कहीं शून्य भी आ जाता है। शून्य के पत्थर पर तीर नही होता। शून्य का अर्थ हैं उसके आर-पार कुछ नहीं। कहीं जाने को नहीं, शहर आ गया। जहाँ आप जाना चाहते थे, वहाँ आ गये। लेकिन मन हमेशा आगे तीर बताता रहता हैं। मन की यात्रा में वह पत्थर कभी नहीं आता, जिस पर शून्य बना हो। और जिस दिन वह पत्थर आ जाये तो उसका नाम सन्यास हैं, वैराग्य है, सामायिक है, सम्यक् ध्यान हैं। जहां शून्य बना हो, कोई तीर न हो। जरा भी आकांक्षा न हो, तो समझना मन तृप्त हो गया दौड़ समाप्त हो गई। वह शून्य की जगह जहां हैं वही आत्मा—परमात्मा है। इसीलिए जिन्होंने जाना है, उन्होने कहा है कि अशुद्ध मन से तो आत्मा को न जान सकोगे।

मन बहाने खोजता है-कुछ पाना है और मन की आखिरी तरकीब हैं, वह कहता हैं कि यह पदार्थ ठीक नहीं हैं, नुकसान दायक हैं, और पुनः दौड़ने लगता हैं, फिर भी वह थकता नहीं हैं, नये-नये तीर बनाये चले जाता हैं, वासना अविरल जारी रहती है। मन पर अंकुश होता, मन का ठहरना आवश्यक है। अगर मन का पात्र गन्दा है तो इसमें पदार्थ सुरक्षित नहीं रह सकता। एक घटना याद आती है.......।

एक साधु के पास आकर किसी धनपति ने कहा, कि मैंने संसार में सब कुछ करके देख लिया किन्तु सुख जरा भी नहीं मिला, मैं कैसे सुख को पाऊं ? मैं परमात्मा को कैसे पाऊं ? मुझे कोई मार्ग बताये ? उस साधु ने कहा, कल जब मैं भोजन मांगने तुम्हारे द्वार पर आऊंगा तभी मार्ग भी बता दूंगा। धनपति सुनकर काफी प्रसन्न हुआ। साधु स्वयं घर पर आकर उपदेश दे, इससे बड़ी बात और क्या हो सकती है। धनपति ने कई प्रकार का स्वादिष्ट भोजन बनवाया। वह साधु दूसरे दिन भोजन मांगने आया। भिक्षा का पात्र उसने उस घर के सामने फैला दिया। आज धनपति को विशेष भोजन देना था, क्योंकि उससे कुछ लेना था। वह मिष्ठान्न लेकर भिक्षा पात्र में डालने आया, तो पात्र देखकर हैरान हुआ क्योंकि उसमें गोबर से

सने कंकर:पत्थर पड़े हुए थे, उसने हाथ रोक लिया और कहा, साधुजी इस पात्र में कैसे मिठाइयां डालू ? साधु ने कहा, डाल दो, क्या हर्ज हैं ? धनपति ने कहा, सब खराब हो जायेगी, यह पात्र तो गन्दा है। पहले पात्र को धोलें। साधु ने पात्र-धोया। उसने मिठाईयां उसमें डाल दी। साधु वापस लौटने लगा तो उसने कहा, आपने कहा था कि मुझे मार्ग बतायेगे, उपदेश सुनायेगे। उस साधु ने कहा—मैंने उपदेश सुना दिया, मार्ग बता दिया। मेरे इस पात्र में गन्दगी थी, पात्र गन्दा था ! इसमें आप मिठाइयाँ डालने को तैयार नहीं थे। तुम्हारे हृदय के पात्र में, मन के पात्र में हिंसा पड़ी है, अहिंसा कैसे डाली जा सकती है ? भीतर क्रोध की अग्नि जल रही है, क्षमा कैसे डाली जा सकती है ? भीतर वासना की गन्दी नालियां बह रही है, अमृत कैसे डाला जा सकता है ? आप को यह दिखता है कि थोड़े से गोबर सने कंकर-पत्थर सारी मिठाइयों को खराब कर देंगे। लेकिन आपको यह नहीं दिखता कि आपके भीतर अवगुण ही अवगुण है और ऐसे वीभत्स गन्दे पात्र में परमात्मा का अमृत भरने का प्रयास कर रहे हो। पहले अपने पात्र को धोओ, शुद्ध करो परिमार्जित करो बाद में ध्यान-सामायिक करना।

लोग मेरे पास आते है, पूछते है कि भगवान को कैसे पाएं ? वे यह नहीं पूछते कि अपने पात्र को कैसे साफ करे। वे पूछते है, ध्यान-सामायिक कैसे करे ? वे यह नहीं पूछते कि परिग्रह कैसे छोड़ें, वासनाये कैसे छोड़े ? वे पूछते है कि पूजा-भक्ति-प्रार्थना कैसे करे ? वे यह नहीं पूछते कि क्रोध-मान माया-लोभ, अहंकार कैसे छोड़े ? कोई भी मन से भरे घृणा और क्रोध को नहीं देखता। जो तत्व को धूमिल करते हैं, पात्र को गन्दा बनाते है उससे मुक्त होने का उपाय कोई नही पूछता है। आप स्वयं सोचे यदि क्रोध भीतर होगा और पूजा-भक्ति की चेष्टा चलेगी, तो क्या सफलता मिलेगी ? क्रोध करने वाला चित्त कैसे पूजा-भक्ति कर सकता है ? उसकी पूजा-भक्ति में भी क्रोध भरा होगा। मंदिरों में देखिये, जो पूजा-भक्ति कर रहे हैं, वे चारों तरफ देख रहे है, उनकी निगाहे चारो तरफ घूम रही है कि कब कोई जरा सा निमित्त मिल जाये और अपनी असलियत दिखा दूं। इसलिए बिना पात्र को साफ किये, बिना पात्र को धोऐ पूजा-भक्ति करने वाले लोग अक्सर क्रोधी हो जाते है। उसका कारण अकारण नही है। भीतर क्रोध है ऊपर भक्ति चल रही है, भीतर क्रोध है, ऊपर प्रार्थना चल रही है ऊपर वासना दौड़ रही है। भविष्य की आशा है कि कभी प्रार्थना सफल हो जायेगी, भीतर जो है वही सच हैं। ऊपर जो चल रहा हैं वह सच नही है, वह झूठ है। लोग सोचते हैं मात्र स्वाध्याय करते-करते, पूजा-भक्ति करते-करते

सब छूट जायेगा, सत्य मिल जायेगा, परमात्मा मिल जायेगा । यह सब भ्रम हैं, गलत धारणा हैं । जीवन में परिवर्तन तर्क से नही होता, बुद्धि पूर्वक आचरण करने से होता है। स्वयं के क्रोध का निरिक्षण करे तो उनसे मुक्त हो सकते है। हमारे भीतर जो गलत एकत्र है, उसे हम तर्क से, स्वाध्याय से निकालकर फेंक सकते उसे तो आचरण के माध्यम से, तप के माध्यम से एक झटके में निकाल कर फेंक सकते है । जीवन के परिवर्तन तर्क से नही क्रांति से होते है । अगर आपको अपने पापों का बोध हो जायें, भीतर की वासनायें दिखाई पड़ जाये. भीतर की हिंसा दिखाई पड़ जाये, तो उसी क्षण छलांग लग जायेगी, जैसे सांप–बिच्छु को देखकर लग जाती है । आप क्रोध-मान-माया-लोभ से मुक्त हो जायेंगे, और यह काम कल पर नहीं छोड़ेगे, तुरन्त करेगे। आप ऐसा नहीं कहेंगे कि मैं कमरे से धीरे-धीरे बाहर जाऊंगा जब काल लब्धि आ जायेगी तो बाहर हो जायेंगे। अगर ऐसा कहेंगे तो भीतर मोह और मजबूत होता जायेगा। एक आदमी निरन्तर बीज बो रहा है और कह रहा हैं कि हम धीरे-धीरे वृक्ष को उखाड़कर फेंक देगे। जबकि वृक्ष तो प्रतिक्षण बढ़ रहा है, मजबूत हो रहा है। उस पर पानी भी डाल रहा है, खाद भी डाल रहा है और भविष्य में उखाड़ने की बात भी कर रहा हैं। कल पर बात टालने वाला कुछ भी नहीं कर सकता ।

अनादि काल से अनन्त अनन्त जन्मों से यह जीव संसार में हैं। और अगर इस जीव ने पुरूषार्थ नहीं किया तो आगे और अनन्त जन्म बीतेगें। यह अनुभव से सर्वज्ञ ने कहा हैं, लेकिन जिन्होंने सुन लिया हैं इन शब्दों को उनके लिये घातक सिद्ध हुआ हैं। वे सोचते हैं कि यह जन्म भी खो गया तो नुकसान क्या हैं ? आगे और जन्म हैं। विदेह क्षेत्र में जाकर पुरूषार्थ करेंगे भविष्य का काफी लम्बा विस्तार है इसलिये इनका वर्तमान निकृष्ट और नीचा हो गया है। भविष्य की ऐसी कल्पनायें हैं कि वर्तमान को बदलने की जरुरत नहीं रही। इतना याद रखो ! जीवन में जो भी घटना है, वह वर्तमान में घटेगा, मनुष्य भव में ही घटेगा। इसी जीवन में घटेगा, क्योंकि जीवन एक छलांग से भोग से योग की ओर। जब आपको बाजार में या कहीं भी कोई मनभावन चीज दिखाई पड़ती है, तो आप एकदम से बदल जाते है। फिर ऐसा नहीं कहेंगे कि हम धीरे धीरे बदलेंगे, आध्यात्मिक क्षेत्र में हम कहते है कि हम धीरे–धीरे बदलेंगे यह बात आपके मोह को, आपके विषयानुराग को आपकी कमजोरी को प्रगट करती है कि आप - बदलना नहीं चाहते है । इसलिए आप कहते है कि जब काल-लब्धि आयेगी, हमारा समय पक जायेगा, आत्मा समझ में आ जायेगी, तब हम बदल जायेगे। अभी

हम धीरे—धीरे अभ्यास कर रहे है ।

सन्यास या सत्य कोई अभ्यास की चीज थोड़े न है, कि अभ्यास से प्राप्त हो जाये। यह जीवन की अपूर्व घटना है जो एकदम से घटती है। आप स्वयं को बदलना क्यों नहीं चाहते कि क्योंकि स्वय के भीतर क्या है उससे आप अपरिचित है। अगर आपको पता चल जाय कि आपके भीतर कैंसर के कीटाणु जन्म ले रहे है तब आप यह नहीं कहेंगे कि मैं डाक्टर के पास धीरे धीरे चला जाऊंगा, बाद में कभी चला जाऊंगा। नही रोग का पता चलते ही डाक्टर की ओर भागेंगे, उसी वक्त उपाय करेंगे, फिर एक मिनिट भी एक वर्ष सा प्रतीत होगा। लेकिन यह कैंसर की बीमारी तो सिर्फ शरीर को खाती है। क्रोध-मान-माया-लोभ कामना-वासना तो पूरी तरह आत्मा को खा जाते है, लेकिन वे हमें दिखाई नहीं पड़ते है। हमने कभी उन्हें देखने का प्रयास किया ही नहीं है। और जब भी देखने का अवसर आ जाय तो इधर-उधर झांकने लगते है। हम उन्हें देखने से बचते है। अगर भीतर क्रोध है, तो हम बहाना खोज लेते हैं और कहने लगते है कि यह क्रोध तो दूसरों को सुधारने के लिए है। अगर भीतर हिंसा है तो हम कहने लगते है कि हिंसा नही होगी तो लोग समझेंगे यह डरपोक है. नपुंसक है, कमजोर है अगर भीतर ईर्ष्या है तो हम कहेंगे कि भीतर ईर्ष्या नहीं होगी तो हम प्रतिस्पर्धा कैसे करेंगे? हमारा विकास कैसे होगा? हमने अपने भीतर के सब जहर सब रोगो की सुरक्षा के बहुत उपाय एकत्र कर रखे है. बहुत दलीले एकत्र कर रखी है। भीतर की हर बुराई की बखूबी रक्षा करना जानते है। हर आदमी कहता है कि हम स्वयं को धोरे-धीरे बदलेंगे। यह धीरे-धीरे बदलना भी न बदलने की तरकीब है। जो स्वय को बदलना नहीं चाहता हैं, वही कहता हैं कि काल-लब्धि आयेगी, समय-आयेगा तब सब बदल जायेगा। ऐसे व्यक्ति को पता भी नहीं है कि उसके भीतर जो हैं वह कितना रूग्ण, कितना बिमार, कितना कुरुप, कितना गंदा हैं। लेकिन हमने शास्त्रों को पढ़कर धारणा बना ली कि मैं परम शुद्ध हूँ, आत्मा में किंचित भी पाप-रज नहीं हैं, पाप—आत्मा का स्पर्श भी नहीं कर सकते हैं। और अगर ये लोग अपने भीतर जायेंगे कि आत्मा में गन्दगी के सिवाय कुछ भी नहीं है। वर्तमान से आत्मा एकदम अशुद्ध हैं, आत्मा में अमृत नहीं जहर भरा हैं। आत्मा अमृत का स्वाद तब मिलेगा जब ये अपने पात्र को ध्यान-सामयिक के जल से धोयेंगे, साफ करेंगे। अतिक्रम-व्यतिक्रम, अतिचार-अनाचार जैसे दोषों से बचेंगे।

आचार्य देव कह रहे हैं कि आत्म साक्षात्कार का पहला कदम हैं कि

अपने भीतर के दोषों का साक्षात्कार करो, अपनी कुरूपता का दर्शन करो, अपने दोषों को देखो, अपनी कमजोरियों का निरिक्षण करो, अपनी वासनाओं को देखो, जो आत्मा को गन्दी, व्रतों को धूमिल बना रही हैं। आत्मसाक्षात्कार उसे देख लेता हैं जो भीतर हैं, विजातिय हैं तो उसी क्षण बदलाहट शुरू हो जाती हैं। निरीक्षण की, देखने की इतनी बड़ी क्षमता हैं जिसका कोई हिसाब नहीं हैं। बस क्रांति का एक ही सूत्र हैं भीतर जो हैं उसके प्रति जाग जाना, लेकिन आश्चर्य तो यह है कि हम भविष्य के प्रति जागे हुए हैं और अतीत के बोझ से दबे हुए हैं। जो स्वयं में हैं उसके प्रति सोये हैं, जो बाहर हैं उसके प्रति जागे हुए हैं, उसके प्रति हर घड़ी हर क्षण सावचेत हैं। हम उसे पाने का प्रयास करेंगे जो हमारा नहीं हैं, हम उस दिशा में भागेगे जहां मंजील नहीं हैं। हम चलते रहते, चलते रहते है, जहां मंजिल नहीं है। जिस दिशा से सूर्य उगता है उस ओर हम आँख उठाकर भी नहीं देखते है। कहां है हम, क्या है हम, कौनसी वासनाये है हमारे भीतर हम आंख उठाकर भी नहीं देखते हैं। बस अच्छे-अच्छे सिद्धान्तों की बाते कण्ठस्थ हो गई है, अच्छे-अच्छे आध्यात्मिक ग्रन्थों का पाठन कर लिया है, स्वाध्याय कर लिया है, और उन्हें दोहराये चले जाते हैं और स्वयं को तथा अन्य को समझाने कों हमने शास्त्र सम्मत, न्याययुक्त तर्क खोज लिए हैं कि क्या करे हमारे अभी चरित्र मोहनीय का तीव्रोदय है, इसलिए संयम को चरित्र को ग्रहण नहीं कर सकते है। अभी हमारी काल-लब्धि नहीं आई हैं, अभी हमारा समय पका नहीं हैं इसलिए व्रतों को ग्रहण नहीं कर सकते है। दलीले खोजकर लोग निश्चित हो जाते है।

मैं छिन्दवाड़ा था। एक बड़ा अद्‌भूत वृद्ध आदमी, जो अब नहीं रहें। एक दिन उन्होंने मुझसे कहां मैंने छह बार ब्रह्मचर्य का व्रत लिया और ... ... ? आप समझ गये, इसमें हंसने की क्या बात है ? व्रत तो एक ही बार काफी हैं, छह बार की क्या जरूरत हैं ? मैंने पूछा आपकी उम्र तो काफा है, व्रत टुट कैसे गया ? उन्होंने कहा कभी व्रत मेरे द्वारा भंग हुआ और कभी पत्नी के द्वारा भंग किया गया। क्या व्रत लेने के उपरान्त भी पत्नी के साथ लेटते थे ? उन्होंने कहा, हाँ। इसीलिए तो व्रत भंग हो गया। ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने वाला नो कोटि से व्रत का पालन करता है। यह शरीर तो कामभोग का पुतला हैं। देह का कमल तो काम की कीचड़ से पैदा हुआ हैं, इसलिए इसकी रक्षा-सुरक्षा बहुत आवश्यक हैं। काम वासना तो सदा भीतर विद्यमान रहती हैं, जरा सा निमित्त मिलते ही भड़क उठती हैं। जैसे बिजली के तार में बिजली दौड़ रही है, बटन दबाते ही बल्ब जल जाता हैं, बटन

नहीं दबाते तो बल्ब नही जलता, बुझा रहता हैं, लेकिन फिर भी बिजली दौड़ रही हैं। बटन दबाकर देखना अगर बल्ब ठीक होगा और बिजली दौड़ती होगी तो बल्ब जलेगा। अगर नही दौड़ती होगी तो बल्व क्या जलेगा, बटन कोई कितना ही दबाए। अगर कोई मुझे आकर गाली दे, अगर मेरे भीतर क्रोध का करंट दौड रहा है तो क्रोध निकलेगा किसी न किसी रूप में। अगर क्रोध भीतर नहीं है तो वह देता रहे गाली, बटन दबाता रहे कोई भी रियेक्शन नहीं होगा, बल्ब नहीं जलेगा। मैंने उनसे कहा आप गृहस्थ काम प्रति पल भीतर दौड़ रहा है, अगर बल्ब साथ में रखेंगे तो जलेगा ही। ब्रह्मचर्य का पालन करने के लिए शील की नो बाढ़ो से बचे। १. बसति २. आहार ३. आसन ४. इन्द्रिय निरीक्षण ५. पूर्व क्रीड़ा स्मरण ६. प्रणय ७. कुंडयांतर ८. गरिष्ठ-भोजन और ९. श्रृंगार विभुषण।

१. वसति : रहने का स्थान शुद्ध हो, बाधा से रहित हो, उपद्रव से रहित हो अर्थात जहां स्त्रियों का आवास न हो नगर नारियां न रहती हो, नपुंसक न रहते हो, ऐसे स्थान पर शीलव्रत का पालन करने वाले को ठहरना चाहिए।

२. आहार कथा :- जहाँ पर भोजन कथा होती हो, या ऐसी कथाये होती हो जिनके सुनने से राग बढ़ता हो, मन भोजन की तरफ दोड़ता हो, ऐसी कथाओं का श्रवण नहीं करना चाहिए।

३. आसन :- सबके सामने उठे-बैठे, किस आसन से बैठे इस बात का विशेष ख्याल रखना चाहिए। मुनि को, आर्यिका की चटाई, पट्टे आदि पर तथा शीलव्रत के पालक को स्त्रियों के आसन पर नहीं बैठना चाहिए।

४. इन्द्रिय-निरिक्षण :- ब्रह्मचर्य व्रत के धारी को स्त्रियों के गुप्त अंगों को नही देखना चाहिए। पर्दे खिड़की आदि के पीछे छुपकर स्त्रियों का स्नान आदि नहीं देखना चाहिए।

५. पूर्व क्रीड़ा स्मरण :- व्रतधारी को पूर्व में भोगे-भोगों का स्मरण नहीं करना चाहिए।

६. प्रणय :-शरीर का व काम क्रीड़ा जनित अंगो का प्रेमविभूत हो स्पर्श भी नहीं करना चाहिए। यानि शारीरिक प्रेम नहीं करना चाहिए, नारीयों के प्रति राग भाव नहीं होना चाहिए।

७ कुंडयांतर :- ब्रह्मचारी को ऐसे किसी भी स्थान पर नहीं रूकना चाहिए जहां पर स्त्री-पुरुष पर्दा डालकर भोगासक्त हो।

८. गरिष्ठ भोजन :- साधु या ब्रह्मचारी को ऐसा आहार नही

करना चाहिए जिससे तीर्थ बनता हो, शरीर बलिष्ठ बनता हो सुन्दरता बढ़ती हो । गरिष्ठ भोजन करने वाला ब्रह्मचर्य का पालन नहीं कर सकता ।

९. श्रृंगार-विभुषण :— ब्रह्मचर्य व्रत का पालक देह का श्रृंगार भी नहीं कर सकता क्योंकि जिसे आकर्षित करना था, जिसे लुभाना था उससे तो सम्बन्ध तोड़ लिया है, इसलिए अब श्रृंगार किसके लिए ? क्रीम-पाउडर-शेम्पू किसी भी वस्तु का उपयोग न कर सकेगा । शील के अठारह हजार दोष है, उनसे बचने का प्रयास शीलव्रत पालक को करना चाहिए । उस अद्भुत वृद्ध आदमी ने छह बार व्रत भंग किया, क्योंकि स्त्री सहवास को छोड़ा नहीं था । यदि अपनी पत्नी से पृथक सोता तो शायद ऐसी नौबत न आती, या हृदय से व्रत ग्रहण किया होता, भोग के प्रति मन में घृणा होती तो स्त्री-के साथ सोने पर स्पर्श करने का उसका भाव न होता । अगर भोग का बोध होने के पश्चात व्रत लिया होता तो स्त्री के साथ कभी न सोता । वासना तो भीतर दबी हुई थी । मात्र ऊपर से व्रत का चादर ओढ़ा था करंट तो भीतर दौड़ रहा था, मात्र बटन बन्द था ।

सामायिक-ध्यान का आनन्द लेना चाहते हो, आत्म-गहराई में उतरना चाहते हो. परमात्म-यात्रा पर निकलना चाहते हो तो अतिक्रम व्यतिक्रम अतिचार अनाचार से बचो । पात्र धोकर आओ ताकि उसमें परमात्मा का, सत्य का, अमृत भरा जा सके अन्यथा........... ?

बस आज इतना ही
आदिनाथ दिगम्बर जैन नया मन्दिर
प्रतापगढ़ (राज.)

दिनांक १३/८/९१
मंगलवार

१०

मैं स्नान करने आया हूं

कई लोग आकर कहते हैं कि हम आपके चरणों की धूल हैं। सही मत मान लेना। नहीं तो वे आपको कभी भी क्षमा नहीं करेंगे। अगर कोई आपसे कहे कि मैं आपके चरणों की धूल हूं तो आप कहना कि मैं भी आपको ऐसा ही समझ रहा था। आपने बिल्कुल एकदम मेरे मन की बात कह दी। आप एकदम सच कह रहे हैं। फिर देखना आप, उसका तम-तमाया चेहरा, क्रोध से लाल आँखे. शरीर रुपी वृक्ष से झड़ते हुए शूल। फूल उसी समय बन जायेंगे शूल।

आदमी कोई भी शास्त्र पढ़े, किसी भी आचार्य को पढ़े, इससे कोई फर्क नहीं पड़ने वाला। क्योंकि उनके अर्थ निकालने वाले तो आप है। समयसार जरुर पढ़ोगे, मगर समयसार के बहाने स्वयं को ही पढ़ोगे।

मूल पद्य :- यदर्थ-मात्रा-पद-वाक्य-हीनं
मया प्रमादाद् किमनोचम् ।
तन्मे क्षमित्वा विदधातु देवि,
सरस्वती केवल-बोध-लब्धिम् ॥१०॥

हिन्दी पद्य :- यदि अर्थ वाक्य पद से त्रुटि कुछ रही हो,
जिन देव के वचन से उल्टी कहीं हो।
देवि सरस्वती ! बड़ा अपराधी हूँ मैं,
कीजिये क्षमा हो केवल ज्ञान मुझ में ॥ १० ॥

अन्वयार्थ .- मया — मेरे द्वारा
प्रमादात् — प्रमाद से
यदि — यदि
यत् — जो
अर्थ-मात्रा-पद-वाक्य- अर्थ, मात्रा, पद और वाक्य
हीनम् — से हीन
किंचित् — कुछ
उक्तम् — कहा गया हो तो
मे — मेरे
तत् — उस अपराध को
क्षमित्वा — क्षमा करके
सरस्वती, देवि — सरस्वती देवि
केवलबोध-लब्धिम् - केवलज्ञान रुपी बोधलब्धि को
विदधातु — प्रदान करे

भावार्थ :- मैंने प्रमाद से यदि अर्थ, मात्रा, पद और वाक्य से हीन अर्थात् जिन वचन से विरुद्ध कुछ कहा हो तो मेरा अपराध सरस्वती देवि क्षमा करे और मुझे केवल बोध रुप लब्धि को देवे ।

१०

मैं स्नान करने आया हूं

श्रोम नमः सिद्धेभ्य :-3
धर्मप्रेमी भव्यात्माश्रो !

तीन ईसाई साधु काफी प्रसिद्ध थे। वे इतने प्रसिद्ध हुए कि रसिया के चर्च का सबसे बड़ा पादरी ईर्ष्या श्रौर जलन से भर गया। लोग उसके पास न आकर उन साधुश्रों के पास पहुंचने लगे। एक नदी के पार उन तीनों साधुश्रों ने एक वृक्ष के नीचे कुटिया बना रखी थी। उनकी ख्याति, उनकी चर्चा गांव-गांव, गली-गली, चेहरे-चेहरे, मुख मुख पर फैल गयी. प्रधान पादरी के बर्दाश्त के बाहर बात हो गई। उसने एक दिन नाव-ली, माँझी लिया, नदी के उस पार गया। उन तीनों ने उठकर उसका स्वागत किया, श्रौर उसके पैर छुये। पैर छूने से पादरी समझ गया कि इनको कुछ आता जाता नहीं। ये तो तीनों गंवार है। पादरी अहंकारी आदमी था। उसने जान लिया कि ये तो सीधे सादे लोग है, गांव के गंवार है, नाहक ही इनकी यहां प्रतिष्ठा हो गई है।

पादरी ने उनसे पूछा कि तुम लोगों के पास कौन-कौनसी सिद्धियां है? उन्होंने कहा, हमारे पास सिद्धि वगैरह कुछ भी नहीं हैं। पूछा, आप लोग कौन सी प्रार्थना करते हो? तुम्हारी साधना क्या है? तो वे एक दूसरे की तरफ देखकर कहने लगे कि तू बता दें, तू बता दे। पादरी की तो

अकड़ बढ़ी, उसने कहा, जल्दी बोलो. मैं प्रधान पादरी हूँ, मैंने तो तुम लोगों को कभी दीक्षित ही नहीं किया, अदीक्षित ही तुम परमात्मा को उपलब्ध हो गये ? उन्होंने कहा, नहीं-नहीं, हम और परमात्मा को कैसे उपलब्ध होगें। हम दीन-हीन कहां परमात्मा को उपलब्ध होगें । हम तो चरणों की धूल भी नहीं है । रही प्रार्थना, सो हम झिझकते है कहने मैं, क्योंकि हमने किसी से सीखी नहीं, हम तीनों ने खुद ही गढ़ ली है । और ज्यादा बड़ी भी नहीं है, सुन्दर भी नहीं है, क्योंकि हमें कविता करना भी नहीं आता, हम पढ़े-लिखे भी नही हैं । हमने तो अपना काम चलाने छोटी सी प्रार्थना बना ली है । घरेलू है । आप क्षमा करें, न पूछे, शर्म आती है बताने में ।

पादरी ने जिद की तो उन्होंने कहा, आप नहीं मानते तो सुन लें । हमने सुना है कि परमात्मा तीन है ।.......... ईसाईयों में परमात्मा को तीन रूपों में माना गया है । पिता, पुत्र और पवित्रात्मा । जैसे हिन्दू ब्रह्मा-बिष्णु महेश तीन मानते हैं, ऐसे ईसाई ट्रिनिटी मानते हैं । परमात्मा के तीन रुप है, और फिर हमने देखा कि हम भी तीन है, सो हमने एक प्रार्थना बना ली, कि तुम भी तीन, हम भी तीन, अब हम पर कृपा करो । प्रधान पादरी तो सुनकर चौंका। ऐसी प्रार्थना उसने पहले कभी सुनी नहीं थी । तुम भी तीन, हम भी तीन, हम पर कृपा करो । "यू आर थ्री, वी आर थ्री, हेव मर्सी अपॉन अस ।"

पादरी ने कहा, बन्द करो यह बकवास । यह प्रार्थना नहीं है । तुम सब मजाक कर रहे हो परमात्मा का, यह परमात्मा पर व्यंग है। आओ मैं तुम्हें प्रार्थना सिखाता हूँ । उसने चर्च की नियमित प्रार्थना सुनायी । अब तो प्रार्थनायें भी निश्चित और नियमित हो गई है, जैसे सरकारी प्रार्थनायें होती हैं ।

प्रार्थना लम्बी थी, उन तीनों ने सुनी और कहा, एक दफा और सुना दें, नहीं तो हम भूल जायेंगे । फिर उन्होंने कहा, एक बार और कह दें, नहीं तो हम भूल जायेंगे । पादरी ने तीन बार प्रार्थना कहीं । उन्होंने कृतज्ञता प्रगट की, धन्यवाद दिया । पादरी बड़ा प्रसन्न हुआ कि इनको रास्ते पर लगा दिया । और नाव में बैठकर चल दिया ।

जब वह बीच नदी में पहुंचा तो अद्‌भुत दृश्य देखकर हैरान हुए, मांझी भी हैंरान हुआ, पादरी भी हैंरान हुआ, वे तीनों साधु पानी पर दौड़ते चले आ रहे थे । पादरी की छाती दहल गयी । पानी पर चलने की उसने सिर्फ कहानी सुनी थी कि जीसस चले थे एक बार । उस पर भी उसका पूर्ण विश्वास नहीं था कि चले होंगे जीसस कभी पानी के ऊपर । भला

कोई पानी पर भी चल सकता है ? मगर आज उसने अपनी आंखों से देखा, आंखे मींडकर देखा, मांझी से भी पूछा कि तुम भी देख रहे हो, यह क्या हो रहा हैं ? उसने कहा, मैं भी उतना ही चौका हूँ जितना आप चौके हैं, बल्कि आपको तो नहीं चौंकना चाहिए। आपका तो पूर्ण विश्वास हैं कि जीसस चले थे। तो चलना हो सकता हैं ! मैं तो साधारण आदमी हूं, इसलिए ज्यादा चौंक गया हूँ। मैं तो बहुत घबड़ा गया हूँ, मेरे हाथ-पैर कांप रहे हैं। पता नहीं ये तीनों आकर अब क्या करेंगे ? वे तीनों दौड़ते हुए आकर नाव के बगल में खड़े हो गये। हाथ जोड़कर उन्होंने कहा, एक बार और बतावें प्रार्थना, हम भूल ही गये। इसलिए हमें आना पड़ा, आपको पुन: कष्ट दे रहे हैं। अब तो पादरी की जबान लड़खड़ा गयी। अब इनको क्या प्रार्थना सिखाये। उनके चरणों में झुक गया, और कहा, मुझे क्षमा करो, तुम्हारी ही प्रार्थना सच्ची हैं, तुम्हारी प्रार्थना ठीक है, तुम सब अपनी ही प्रार्थना कायम रखो, वह तुम्हारी हार्दिक हैं, तुम्हारे प्राणों से पैदा हुई हैं। यद्यपि तुम्हारे शब्दों में कुछ नहीं हैं, जो तुम दोहरा रहे हो, लेकिन तुम्हारे प्राण उनमें समाहित हैं इसलिए प्रार्थना जीवन्त हो गई हैं। इसलिए तो प्रार्थना से यह चमत्कार घटा हैं जो मैं अपनी इन नंगी आंखों से देख रहा हूँ। परमात्मा पर मेरी इतनी आस्था नहीं हैं कि मैं प्रार्थना के बल पर पानी पर चल जाऊं, हालांकि मैं भी यही प्रार्थना वर्षो से पढ़ता आ रहा हूँ। तुम जीते. मैं हारा। तुम मुझे क्षमा कर दो। आज तुमने मेरी आँखे खोल दी मैं बहरा था, तुमने मुझे कान दिये। मेरे पास शास्त्रों की अनुभूति नहीं थी, शास्त्रों पर सच्ची आस्था नहीं थी, आज पहली बार तुमने मुझे शास्त्र की सत्यता का ज्ञान कराया मैंने शास्त्रों का अद्‌वा-तद्‌वा अर्थ किया, गलत तरीकों से लोगों कों समझा था आज मैं उन सब का प्रायश्चित करता हूँ और अपने विगत ज्ञान की भूलों की क्षमा चाहता हूँ।

भूल स्वीकार की अवस्था कोई शास्त्रीय बात नहीं हैं। यह आत्मिक प्रेरणा की, आत्म ग्लानि की बात हैं। यह तो हार्दिक श्रद्धा-समर्पण का प्रतीक हैं। साधक के प्राण तड़फें, जैसे पानी के बाहर मछली तड़फ जाती है अपनी भूल पर, और कगार के प्यार पर। जैसे किसी पक्षी के प्राण और पंख फड़-फड़ाते हैं पिंजड़े में कि एक अन्न के दाने की मोहासक्ति की भूल बन्धन बन गई। अब ऐसी भूल कभी नहीं करूंगा। ऐसे ही जब साधक के प्राण मीन की तरह तड़फे. अपनी भूल पर पछताये तब समझना कि सच्ची क्षमा याचना का भाव पैदा हुआ हैं। बस एक ही भाव रह जाये और सब भूल जाये, एक बात ध्यान में रहे कि मुझे अपने विगत ज्ञान की भूलों का

प्रायश्चित करना हैं, जिनवाणी माँ से, सरस्वती से क्षमा मांगना हैं तब समझना की तुम्हारा ज्ञान सम्यक् हैं तब तुम्हारे भीतर चारित्र की, परमात्मा की, अमृत-पान की घटना घटेगी।

अभी तो ऐसा लगता हैं। कि ज्ञानी तो होना चाहते हो और क्षमा-याचना से, निज भूल स्वीकार से बचना चाहते थे। कोई अपनी भूल स्वीकार करके अज्ञानी हो जाये तो शीघ्र धन्यभागी हो जाता हैं। अभी सब अपने को अज्ञानी नहीं ज्ञानी समझते हैं। जो वास्तव में अज्ञानी हैं वे निर्दोष हैं, क्योंकि उनने अपने अहंकार को, भूल को सहज स्वीकार कर लिया कि बिगत भूलें अज्ञात अवस्था में हुई हैं। हमने जानबूझकर ज्ञानी बनकर, शास्त्र पढ़कर नहीं की हैं। और जो राजी हैं स्वेच्छा से अज्ञानी होने को, अपनी भूल स्वीकार करने को तो उनके ऊपर सरस्वती का प्रसाद बरसेगा, उनके ऊपर की वर्षा होगी, उनके ऊपर ज्ञान की वर्षा होगी। जो खाली हो जाते हैं, वे भर दिये जाते है।

शून्य बनों, ज्ञान से शून्य हो जाओ तो ज्ञान से पूर्ण, परिपूर्ण हो जाओगे। ज्ञान से शून्य होने का अर्थ यह नहीं है आत्म-ज्ञान से रहित हो जाये। यदि आत्मा ज्ञान-रहित हो जायेगी। तो जड़ हों जायेगी। ज्ञान से शून्य होने का तात्पर्य यह है कि सम्प्रदायों, पूर्वाग्रहों, मताग्रहों से संचित जानकारी, अद्‌वा-तद्‌वा पुस्तको से गृहीत जानकारी से रिक्त हो जाओ, खाली हो जाओ, शून्य हो जाओ। ज्ञान और जानकारी में काफी अन्तर हैं। एक ज्ञान है जो शास्त्रों से अर्जित किया है एक ज्ञान हैं जो मित्रों से ग्रहीत किया हैं, एक ज्ञान है सम्प्रदाय से सस्कार रूप में पाया हैं, एक ज्ञान है जो असंयमियों, नकली उपदेशकों से सुनकर एकत्र किया है। ये सब जानकारियां है, ज्ञान नही। ज्ञान किसी आकाश से नहीं उतरता, ज्ञान तो सम्यक् आचरण और निर्विकल्प-ध्यान के द्वार से ज्ञानावरणी कर्म के क्षय से आत्मा में आविर्भूत होता है। मैं उसी ज्ञान की ओर आपको ले चलना चाहता हूँ।

प्रश्न-गुरुवर आप इतने प्रेम से समझाते है, पर मुझ अज्ञानी की समझ कुछ भी नहीं आता। वैसे समयसार, नियमसार, मोक्षमार्ग प्रकाशक इत्यादि सबका मेरा अध्ययन है, इनकी गाथाएं भी याद है लेकिन आपकी भाषा मेरे समझ में क्यों नहीं आती?

आपने पहले से ग्रहण कर रखा है, पात्र पहले से ही भरा हुआ है। भरे पात्र में कैसे भरा जा सकता है। पहले पात्र को खाली करो, उसके बाद भरने का विचार करना। आप अज्ञानी नहीं हैं क्योंकि समयसार

नियमसार इत्यादि सब तुम पढ़ चुके हो । तुम और अज्ञानी ? लज्जावश कह रहे हो कि तुम अज्ञानी हो । हम लज्जावश विनम्रतावश बहुत-सी बातें कहते है । उनको सही मत मान लेना ।

कई लोग आकर कहते है कि हम आपके चरणों की धूल हैं । सही मत मान लेना । नहीं तो वे आपको कभी भी क्षमा नहीं करेंगे । अगर कोई आपसे कहे कि मैं आपके चरणों की धूल हूँ, तो आप कहना कि मैं भी आपको ऐसा ही समझ रहा था । आपने बिल्कुल एकदम मेरे मन की बात कह दी । आप एकदम सच कह रहे हैं । फिर देखना आप, उसका तम-तमाया चेहरा, क्रोध से लाल आँखे, शरीर रुपी वृक्ष से झड़ते हुए शूल । धूल उसी समय बन जायेगी शूल । सारी श्रद्धा क्षण भर में गल जायेगी, बर्फ सी पानी बनकर बह जायेगी । वह आदमी आपको जिन्दगी भर क्षमा नहीं कर पायेगा । वह जीवन भर दिखलाने की कोशिश करेगा कि आप मेरे पैरों की धूल हैं । अक्सर लोग कहने लगते है कि हम तो कुछ भी नहीं है आपके सामने, लेकिन उनके भाव कुछ और है । उनका मात्र इतना ही अभिप्राय हैं कि आप हमारे समर्पण का, हमारी विनम्रता का सम्मान करो, आदर दो । देखो मैं कुछ भी नहीं हूँ तुम्हारे सामने । जरा आप उनका अपमान कर दें, तो वही व्यक्ति कहने लगेगा आप कौन होते हैं मेरे सामने, आपकी क्या औकात है मेरे सामने, आपने क्या रखा है अपने आपको ? एक घटना आपसे कहता हूँ............।

एक बगीचे में तीन जैन पंडित, विद्वान मिले । तीनों जैन सम्प्रदायों के अलग-अलग अनुयायी थे। एक था निश्चयवादी । उसने कहा कि जहाँ तक ज्ञान का, स्वाध्याय का सम्बन्ध है, हमारे मुमुक्ष भाईयों का कोई मुकाबला नहीं कर सकता । हमारे स्वाध्याय मण्डल की सारी साधना ही ज्ञान-साधना है । जैसे समयसार के ज्ञाता, शास्त्रज्ञ, आत्मज हमारे मण्डल ने पैदा किया है और किसी व्यवहारवादी ने पैदा नहीं किये । इस बात को तो स्वीकार दुश्मनों को अर्थात् व्यवहारवादियों को भी करना पड़ेगा । दूसरा था व्यवहारवादी । उसने कहा, यह बात ठीक है। अध्यात्म में, स्वाध्याय में, शास्त्रों में हमारी बहुत गति नहीं है, हमारी बहुत रूची भी नहीं हैं । समयसार में रखा क्या है ? हमारा जोर तो त्याग पर है, त्याग ही असली धर्म है । और जहां तक त्याग-तप-उपवास का सवाल है, हमारी बराबरी कोई भी नहीं कर सकता है। तीसरा जैन सम्प्रदाय है श्वेताम्बर मंदिरमार्गी, वह तीसरा मुस्कराया और उसने कहा, हमारे पास तो न ज्ञान हैं, न त्याग है, लेकिन साधु सेवा, विनम्रता में हम से ऊपर कोई भी नहीं

है । विनम्रता-वैय्यावृति से हमारी बराबरी कोई नहीं कर सकता । विनम्रता में हमसे ऊपर कोई नहीं ।

विनम्रता में हमारे बराबर कोई नहीं, ऐसी बात । तो फिर विनम्रता भी अहंकार का परिवर्तित, संशोधित रूप है, फिर विनम्रता भी अहंकार का आभूषण हो गयी । ज्ञान में हमारे मुकाबले कोई नहीं । फिर ज्ञान भी अहंकार का नया रक्षा-कवच हो गया । ज्ञान अहंकार नया बचाव हो गया । एक कह रहा है कि त्याग में हमसे ऊपर कोई नहीं तो फिर त्याग भी अहंकार का प्रदर्शन हो गया । त्याग भी अहकार का छिपाव हो गया । और सबसे सुन्दर छिपाव । दिखाई ही नहीं पड़ेगा, अहंकार छिपा है । अब आप इसे पकड़ भी न पाओगे, इतना बारीक हो गया, इतना सूक्ष्म हो गया ।

तीनों भ्रम में पड़े है । तीनों का ज्ञान मिथ्या है तीनों अहंकार के शिखर पर खड़ है । अपनी भूल को स्वीकार करने को कोई भी तैयार नहीं है अज्ञानी होना आसान काम नही है । अज्ञानी होना एक बहुत बड़ी साधना है । उनको मैं अज्ञानी नहीं कहता-जिन्होने समयसार, नियमसार, प्रवचनसार धवला, महाधवला, षटखण्डागम जैसे शास्त्र नहीं पढ़े है । वे अपढ़ है । और उनको मैं ज्ञानी नहीं कहता जिन्होंने सिद्धान्त ग्रन्थों का सम्पादन किया है, समयसार जेसे आध्यात्मिक ग्रन्थों को पढ़ा है । उनकी गाथाओं को कण्ठस्थ किया है, उस पर पी. एच. डी. की है, उस पर व्याख्यान किये है । वे पड़ित है । अज्ञानी तो मैं कहता मानतुंग आचार्य जैसे व्यक्ति को, जिन्होंने भक्ति के अद्वितीय भक्तामर जैसे काव्य में कहा कि मैं भक्ति करना नहीं जानता, काव्य लिखना नहीं जानता, विद्वानों के सामने मैं हास्य का पात्र बनूंगा, मेरी स्थिति छोटे पप्पू के समान हैं जो जल में प्रतिबिम्बित चन्द्रमा को हाथ से पकड़ने का प्रयास करता है । अर्थात् उन्होंने भक्ति काव्य की बेजोड़, बे-मिशाल, अजोड़ अनुपम रचना करते हुए लिखा मैं एक ही बात जानता हूँ कि मैं कुछ भी नहीं जानता यह है अज्ञानी । मगर ऐसा अज्ञान ही तो सम्यक् ज्ञान का प्रथम चरण है । जो यह कह सके कि मैं कुछ भी नहीं जानता हूँ और मात्र कह ही न सके, ऐसी उसकी प्रतीति भी हैं, और साथ ही अहंकार का दावा न हो, यह अहंकार का विसर्जन हो, तो फिर मिथ्याज्ञान अपने आप सम्यक् ज्ञान हो जाता है और चारित्र की बरसा हो जाती है । ऐसा भाव तो गौतम् गणधर में आया था, इन्द्रभूति की पर्याय में । मान स्तम्भ के दर्शन करते ही, और भगवान महावीर के दर्शन करते ही उन्हें अपने मिथ्याज्ञान का, अज्ञानीपने का एहसास हो गया था । जैसे ही स्वयं के आज्ञानीपन की प्रतीति हुई, उसी क्षण उन पर सम्यक्ज्ञान की वर्षा हो

पड़ी।

अज्ञान ज्ञान से (थोथे ज्ञान से) मुक्त होने पर मिलता हैं। अज्ञान ज्ञान से ऊपर की सीढ़ी हैं। उपनिषद् का एक बड़ा सुन्दर वाक्य हैं, बड़ा अद्भुत वचन हैं कि अज्ञानी तो भटकते ही हैं, लेकिन ज्ञानी (यानि चारित्रहीन विद्वान, पंडित, अनिर्शत आध्यात्मिक उपदेशक) और महा अंधकार में भटक जाते हैं। अज्ञानी भटकते हैं यह तो समझ में आता हैं, क्योंकि ऐसा सभी साधु तपस्वीं, पंडित-विद्वान कहते हैं, लेकिन उपनिषद् कहता हैं कि ज्ञानी तो और महाअन्धकार में भटक जाता हैं। कौन से ज्ञानियों के बाबत कहा गया हैं यह वाक्य ? जो चारित्रहीन हैं, थोथा, उधार, वासा ज्ञान हैं जिनके पास। जो शास्त्रानुसार आचरण नहीं करते, जो अपनी भूल स्वीकार नहीं करते, तथा ज्ञानमद में नये-नये पंथ गढ़ते हैं तथा जिन्होंने शास्त्रों से जानकारियाँ एकत्र कर ली हैं और जो ज्ञान मद में डूबे हैं। ऐसे ज्ञानी महाअन्धकार में भटक जाते हैं।

ऐसे लोग पढ़ लेते हैं समयसार, नियमसार, द्रव्य-संग्रह और सिद्धान्त ग्रन्थ और समझ भी लेते हैं, तो क्या ये वास्तव में ऋषियों-मुनियों को समझ सके हैं ? दिगम्बर मुनियों को, जैन-शास्त्रों के रचियिता मुनियों को, आचार्यों को समझने के लिए, कुन्दकुन्द आचार्य की चेतना चाहिए, उनकी साक्षी का अनुभव चाहिए। समयसार की गाथाएं समझने के लिए मुनि हुए बिना और कोई उपाय नहीं हैं। असंयमी भोगी, विषय-कषायी आर्त-रोद्र ध्यान में परिणमन करने वाले परिग्रही क्या समझेंगे अध्यात्म को, सिद्धान्त को, समयसार ग्रन्थ को ? ऐसे लोग तो वही समझ लेंगे जो समझते हैं। मुनियों ने क्या कहा है उसकी तो इन्हें झलक भी न मिलेगी, ये सब अपने ही अर्थ निकाल लेंगे। इसके अलावा और कुछ संभव भी तो नहीं है। क्या आप ऐसा समझते है कि कोई भी समयसार ग्रन्थ को पढ़े तो एक ही अर्थ निकालेंगे ? जितने लोग पढ़ेगे, उतने अर्थ निकाल लेंगे। जो अर्थ कुन्दकुन्दाचार्य ने भी न सोचा होगा, वो अर्थ ये भोगी निकाल लेंगे। शब्द तो अवश है। चाहे आप उसे उल्टा करें, सोचा करे, इधर से उधर खींच तान करे, शास्त्र तो मौन रहेगा। आपको जो अर्थ निकालना हैं, निकाल लो। 'पानी तेरा रंग कैसा, जिसमें डालो वैसा। पानी तो सबके साथ राजी हैं, उसका जैसा भी अच्छा-बुरा, खट्टा मीठा उपयोग करना है करो। उसे चाहे गरम करो, चाहे ठण्डा करो, वह तो एकदम तटस्थ हैं। शास्त्रों की भी यही स्थिति हैं।

एक मनोवैज्ञानिक ने छोटे बालकों को शिक्षा देने के लिए एक

स्कूल खोला। उसका विचार था कि बालकों को मारपीट कर पढ़ाना लिखाना नहीं चाहिए, इससे उनकी प्रतिभा, योग्यता नष्ट होती है, उनकी प्रगति अवरुद्ध होती है। उसने एक योग्य शिक्षक के लिए अखबारों में विज्ञापन निकलवाया कि एक ऐसे सज्जन की आवश्यकता है जो शांतिप्रिय, प्रेमपूर्ण और क्षमावान हों। इन्टरव्यू के लिए अनेक लोग आये। प्रथम उम्मीदवार के लिए लाल लंगोट लगाए मूछों पर ताव देता हुआ एक पहलवान भी आया।

मनोवैज्ञानिक ने उसके पहलवानी रंग-ढ़ंग को देखकर पूछा, श्रीमान, क्या आपने विज्ञापन को ठीक से पढ़ा था ?

पहलवान क्रोधपूर्ण नजरों से घूरते हुए बोला, पढ़ा था, तभी तो आया हूँ। वरना मुझे मालूम भी नहीं था कि तुम्हारे जैसे गीदड़ भी इस शहर के कौने में रहते हैं।

मनोवैज्ञानिक तो पसीना-पसीना हो गया। उसने डरते हुए पूछा, माफ करिये, भाई साहब। मैंने शाँतिप्रिय, प्रेमपूर्ण और क्षमावान को 'इन्टरव्यू' के लिए बुलाया था, क्या आपके पास ऐसा कोई प्रमाण है कि आप में ये गुण विद्यमान है ?

पहलवान ने कहा, एक नहीं सैंकड़ो प्रमाण है। मेरी पडोसिन का नाम शांति है, और मुझे वह प्रिय लगती है अतः मैं शांतिप्रिय हूँ। और बीस वर्षो से मैंने अपने अपने मोहल्ले वालो की रक्षार्थ मार-मार कर, पकड़-पकड़ कर एक सौ पचास पहलवान तैयार किये हैं। अब आप स्वयं सोच सकते है कि कैसा अतिमानवीय वात्सल्य भाव, प्रेम भाव मेरे भीतर है। विगत बीस सालों में लगभग दो सौ जगह नौकरी कर चुका हूं; हमेशा अधिकारियों से दंगा—फसाद और मारपीट हुई। अन्ततः अधिकारी मुझसे बोले, भाई साहब, हमें क्षमा करो, कहीं और जाकर काम करो। और हर बार मैंने उन्हें क्षमा कर दिया। अर्थात् मैं क्षमावान सिद्ध हुआ। और रही मेरे सज्जन होने की बात। तो सुन बे मरियल चूहे, यदि मैं सज्जन न होता, तो प्रमाण पूछने के दुस्साहस पर अब तक तेरा मुंह तोड़ देता।

आदमी कोई भी शास्त्र पढ़े, किसी भी आचार्य को पढ़ें, इससे कोई फर्क नहीं पड़ने वाला। क्योंकि उनके अर्थ निकालने वाले तो आप है। समयसार जरुर पढ़ोगे, मगर समयसार के बहाने स्वयं को ही पढ़ोगे। शास्त्र पढ़ोगे। आप अपने को ही पढ़ेंगे। नियमसार पढ़ोगे, अपने को ही पढ़ोगे। पाठक अभी अहंकार से मूच्छित हैं, पन्थाग्रह की शराब पी रखी है। शास्त्र

पढ़ना, समयसार पढ़ना आसान है, क्योंकि ग्रन्थ रोक नहीं सकता कि रूको फलाँने चन्द तुम गलत पढ़ रहे हो, यह अर्थ नहीं है, यह प्रयोजन नही है। जब तक मन विषय-कषाय से अनुरंजित है तब तक वह क्या समझेगा समयसार और क्या समझेगा मोक्ष मार्ग प्रकाशक ?

ग्रन्थ को समझने के पहले दिगम्बर गुरू के सत्संग को समझना होता है। क्योंकि वे ही आपको जगा सकते हैं, शास्त्र नहीं जगा सकते। शास्त्र तो स्वयं अचेतन है और आप चेतन है। आप तो उन्हें जहाँ रख दोगे, वहां रखे रहेंगे। उनकी विनयकर लोगे, अर्घ्य चढ़ा दोगे तो ठीक और उठाकर के बाहर फेंक दोगे तो ठीक। शास्त्र तो एकदम मौन है और गुरू एकदम मुखर है। इसलिए चालाक आदमी दिगम्बर गुरुओं के निकट जाने से डरता है, मुंह चुराता है और उनके लिखे शास्त्र पढ़ने में अपनी शेखी बघारता है।

लेकिन आदमी बड़ा अद्‌भुत है, जीवन के साथ चारित्र के साथ खिलवाड़ करता है, सो करता है, लेकिन शास्त्रों के साथ भी खिलवाड़ करता है। तभी तो अमित गति आचार्य को कहना पड़ा कि........ ....

यदर्थ मात्रा पद वाक्य हीनं
मया प्रमादाद् यदि किंचनोक्तम्।
तन्मे क्षमित्वा विदधातु देवि
सरस्वती केवल-बोध-लब्धिम्॥

हे सरस्वती देवि, हे मां, हे जननी ! मैंने प्रमाद से यदि अर्थ मात्रा, पद और वाक्य से हीन अर्थात् मन-वचन-काय से विरुद्ध कुछ कहा हो, तो मेरा वह अपराध क्षमा करे और मुझे केवल बोधलब्धि को देवे।

आचार्य देव एक आत्म-साधक से कह रहे है कि यदि वास्तव में मन शुद्ध हो गया हो, तो सम्यक् ज्ञान की शुद्धि का भी उपाय करो। क्योंकि ज्ञान की शुद्धि के बिना, सम्यक् ज्ञान के बिना चारित्र सम्यक् नही होता, बोधि की प्राप्ति नहीं होती और बोधि के बिना केवलज्ञान की उपलब्धि नहीं होती है। इसलिए अपने स्वार्थ के वशीभूत हो, अहंकार के प्रकाश में ज्ञान का दुरूपयोग किया होगा। व्यक्ति ज्ञान का दुरुपयोग जल्दी कर लेता है। दूसरों का गुरु जल्दी बन जाता है क्योंकि गुरु बनने में बड़ा मजा है, बड़ा आनन्द है।

ज्ञान भी एक रत्न है, उसका दुरूपयोग नहीं होना चाहिए, ज्ञान

का रत्न फालतू तो नहीं जा रहा, सामायिक की गहराई में उतरों और ज्ञान की पहिचान करो. अपने आपको जानने की कोशिश करो । ज्ञान की भूल बड़ी खतरनाक है, बहुत आत्म घातक है । अगर अज्ञान का जहर पी लिया हो तो अब सरस्वती मां के सामने, जिनवाणी मां के सामने उसका वमन कर दो, और क्षमा की औषधि पीकर स्वस्थ लाभ लो ।

भगवान महावीर ने तीन रत्नों का वर्णन किया हैं सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक् चारित्र । उनमें सम्यक्ज्ञान भी एक रत्न है । इसलिए कठोर साधना मोक्ष का कारण नहीं बन सकेगी, पुण्य बन्ध का कारण तो बन जायेगी । सांसारिक वैभव तो मिल जायेगा, लेकिन आत्म वैभव नहीं मिलेगा । श्रुत-ज्ञान का बहुत माहात्म्य हैं और श्रुतज्ञान के विकास का मूल आधार है सम्यक् श्रद्धा-भक्ति और नमन ।

आपको सुनकर बड़ा आश्चर्य होगा कि आचार्य देव ! इस श्लोक में सरस्वती मां से क्षमा मांग रहे है । माँ से तात्पर्य किसी अप्सरा से नहीं है, श्रद्धा-भक्ति पूर्वक मातृरुप स्वीकार किया है । और मजे की बात तो यह है कि हम महाव्रती साधुओं के लिए आगम में लिखा है जो आठ प्रवचन माता को ध्याता है वह मोक्ष पा जाता है । अष्ट प्रवचन माताएँ है पांच समिति और तीन गुप्तियां । जिस प्रकार माँ पुत्र की सन्तान की रक्षा करती हैं, उसी प्रकार अष्ट प्रवचन माताएँ आत्मा की, सयम की रक्षा करती हैं और परमात्मा बनाती है । शास्ता की वाणी को भी जिनवाणी माँ कहा है । इसलिए सरस्वती माँ से क्षमा मांगने में कोई आपत्ति नही होना चाहिए । अगर ज्ञान का क्षयोपशम करना चाहते हो तो श्रद्धा-भक्ति-से क्षमा मांगो ।

प्रस्तुत काव्य में विशेषता है ज्ञान विराधना की शुद्धि कैसे हो । ज्ञान की विराधना कब और कैसे होती है ? उसके सम्बन्ध में तत्वार्थ सूत्र में एक सूत्र आता है —

"तत्प्रदोष-निह्नव-मात्सर्यान्तराया सादनोपधाता ज्ञानदर्शनाव रणयोः ज्ञान और ज्ञानि में दोष देखना, उन पर दोषारोपण करने से । जिनसे ज्ञान प्राप्त हुआ है उनका नाम छुपाने से । ज्ञान और ज्ञानी से ईर्ष्या करने से, डाह करने से किसी की ज्ञान प्राप्ति में विघ्न डालने से । ज्ञान और ज्ञानी की अवमानना, निन्दा, अवज्ञा करने से ज्ञानावरणी और दर्शनावरणी कर्म का बन्ध होता है ।

आचार्य देव कह रहे हैं-ज्ञान और ज्ञानी की विराधना से वंचना कभी भी ज्ञानी अर्थात् मुनियो की अवमानना, अपमान, अवज्ञा, अनादर निन्दा मत करना अन्यथा ज्ञानावरणी और दर्शनावरणी का युगपत बन्ध

होगा । भविष्य में कभी न सम्यग्दर्शन ही होगा और न ज्ञान का क्षयोपशम ही होगा । मुनियों का अपमान करने से डबल बन्ध होगा क्योंकि मुनि सम्यग्दर्शन ज्ञान-चारित्र की त्रिवेणी रूप है । सामान्य व्यक्ति के ज्ञान ग्रहण में बाधा डालने से मात्र ज्ञानावरणी कर्म का बन्ध होता हैं लेकिन नग्न दिगम्बर साधुओं की अवज्ञा-अपमान करने से दर्शनावरणी और ज्ञानावरणी कर्म का बन्ध होता । अगर आपका ज्ञान सम्यक् है तो सन्तों से, जिनवाणी मां से क्षमा मांगकर ज्ञान की शुद्धि करो । मूलाचार में सम्यक्-ज्ञान की बाबत लिखा है-

> जेण तच्चं विबुज्झेज्ज जेण चित्तं णिरुज्झदि ।
> जेण अत्ता विसुज्झेज्ज तं णाणं जिण सासणे ।। २६७ ।।

जिससे तत्व का बोध होता है, जिससे मन का निरोध होता है, जिससे आत्मा शुद्ध होती है जिन शासन में उसका नाम ज्ञान है ।

> जेण रागा विरज्जेज्ज जेण सेएसु रज्जदि
> जेण मित्तीं पभावेज्ज तं णाणं जिणसासणे ।२६८।।

जिसके द्वारा जीव राग से बिरक्त होता है, जिसके द्वारा मोक्ष से राग करता है, जिसके द्वारा मैत्री को, प्रेम को भावित करता है, जिन शासन में वह ज्ञान कहा गया है ।

बगुला और हंस सफेद होते है लेकिन उनमें भेद तब मालूम पड़ता है जब पानी और दूध को अलग करने का समय आता है । ज्ञान तो सबके होता हैं लेकिन सम्यक्ज्ञान का पता तो तब चलता हैं जब अपनी भूल स्वीकार करने का सन्त चरण में नमन करने का सरस्वती से अज्ञान जनित भूल की क्षमा मांगने का अवसर सामने आता है । ज्ञान समीचीन हैं, मोक्षाभिलाषी है, आत्म-पिपासु है तो सहज क्षमा-मांगने, नमस्कार करने तैयार हो जायेगा । ज्ञान की शुद्धि को तत्पर रहेगा । ज्ञान की शुद्धि होते ही सरस्वती का प्रसाद बरसने लगता हैं-

तन्मे क्षमित्वा विद्धातु देवि-हे सरस्वती देवी ! यदि तुमने मुझे क्षमा कर दिया हो; तो मुझे बोधि दो, केवलज्ञान दो । क्षमा के साथ प्रेम आता है और प्रेम के साथ खुशी आती है । मात्र शांति नहीं चाहिए, शांति के साथ आनन्द भी चाहिए । मात्र क्षमा नहीं चाहिए उसके साथ केवलज्ञान चाहिए ।

अगर तुमने क्षमा कर दिया है तो अपने अमृतमय प्रेम की, ज्ञान की वर्षा करो मुझे भरो, मुझे तृप्त करो। मैं तुम्हारे प्रेम सरोवर में स्नान करने आया हूं! पात्र भरने आया हूं।

पथ ही क्यों पांव भी दो।
सिन्धु ही क्यों नाव भी दो,
चले कब तक ये मुसाफिर,.
रुकने को अब ठांव भी दो॥
आस ही क्यों साथ भी दो।
दिन ही क्यों रात भी दो,
हो गई अब रात लम्बी,,
रात ही क्यों विश्वास भी दो॥
जीत ही क्यों हार भी दो।
रूप ही क्यों प्यार भी दो,
कर सकूं मैं अन्तकर्मों का,,
ध्यान की कुठार भी दो॥
साज ही क्यों गीत भी दो।
रीत ही क्यों प्रीत भी दो,
गीत शून्य इस वीणा का,,
चेतना को गीत भी दो॥
ग्रन्थ ही क्यों ज्ञान भी दो।
ज्ञान ही क्यों त्याग भी दो,,
तुम मेरी साधना लो अब,,
मेरा भगवान भी दो॥

बस आज इतना ही।
आदिनाथ दिगम्बर जैन नया मन्दिर दिनाँक १४/८/९१
प्रतापगढ़ (राज.)

११

ज्ञान का वरदान

बूंद का सागर में समाहित होने का नाम है समाधि। जहां न बून्द होने का विकल्प है और न जहां सागर से मिलने की खुशी है मात्र शीतल जल की अनुभूति है उसका नाम है समाधि।

जहां न सीमा है न असीम के मिलन की खबर, उसका नाम है समाधि।

स्वयं के अस्तित्व के साथ, स्वयं की सत्ता जहां ऐक्य हैं उसका नाम हैं समाधि।

विचारों से पार, विकल्पों से परे ज्ञाता-दृष्टा का जहां दर्शन होता है वह संगम-केन्द्र है समाधि। क्योंकि विचार तो पौद्गलिक हैं, चैतन्य नहीं हैं, विचार जानने वाला चैतन्य है और जो विचार से शून्य चैतन्य हैं वही ज्ञाता-दृष्टा हैं।

मूल पद्य :- बोधिः समाधिः परिणाम-शुद्धिः
स्वात्मोपलब्धिः शिव-सौख्य-सिद्धिः ।
चिन्तार्मणि चिंतितवस्तु-दाने
त्वां वन्द्यमानस्य ममाऽस्तु देवि ! ॥११॥

हिन्दी पद्य :- चिन्तामणि से यथा चिन्तित वस्तु पाते
देवि मिले शुभाशीष हम सिर झुकाते ।
बोधि समाधि परिणाम की शुद्धि दीजिये ।
आत्मोपलब्धि शिव सौख्य अपार कीजिये ॥

अन्वयार्थ - देवि — हे ! सरस्वती देवि !
चिंतित-वस्तु दाने — मनोवांछित वस्तु के देने में
चिन्तामणिम् — चिन्तामणि रत्न के समान
त्वाम् — आपको
वन्द्यमानस्य मम — वन्दन करने वाले मुझे
बोधि — बोधि
समाधिः — समाधि
परिणाम-शुद्धिः — परिणामों की शुद्धि
स्वात्मोपलब्धिः — अपने आत्म स्वरूप की प्राप्ति
(च) शिव-सौख्य — और मोक्ष सुख की सिद्धि
सिद्धि
अस्तु — हों ।

भावार्थ - हे सरस्वती देवि ! आप मनोवांच्छित वस्तु को देने के लिए चिन्तामणि के समान है अतएव आपकी वन्दना करने वाले इस जन को बोधि, समाधि, परिणामों की शुद्धि अपने आत्म स्वरूप की उपलब्धि और मुक्ति के सुख की सिद्धि आपके प्रसाद से प्राप्त हो ।

११

ज्ञान का वरदान

श्रोम नमः सिद्धेभ्य :-३
धर्म प्रेमी भव्यात्माओं-!

एक आत्म-पिपासु गुरु के चरणों में गया। उसने गुरु के सामने अपनी अज्ञानता का, अपने पापों का चिठ्ठा खोला। अपनी विगत भूलों का प्रायश्चित मांगा। गुरु ने कहा-मैं कौन होता हूँ तुम्हें क्षमा करने वाला। वैसे भी मैं तुम्हें यदि क्षमा कर दूं तो उससे क्या होगा। असली क्षमा तो तुम्हें अपने आपसे मांगनी पड़ेगी। स्वयं के दर्पण के सामने स्वयं को पूर्ण नग्न होना पड़ेगा। उस आत्म-पिपासु ने कहा, मैंने आपको अपना गुरु माना है, हृदय-आसन पर आपका प्रतिबिम्ब स्थापित कर लिया है, अब आप ही मेरा मार्ग-दर्शन करे। मुझे आज्ञा दें कि मुझे क्या करना हैं ?

सन्त ने कहा, जाओ ध्यान-सामायिक में स्थित होकर अपने एक एक पाप का स्मरण करो और उन्हें बाहर निकालो। छह माह तक आहार पानी का त्याग कर आत्म-मल को ध्यान-नीर से धोता रहा। एक दिन वह सिद्धि को उपलब्ध हो गया। एक देवता स्वर्ग से आया और उसने कहां आप जो भी वरदान मांगना चाहे मांग ले। परमात्मा आप पर अति प्रसन्न है। उस साधु ने कहा, रास्ता पकड़ो। जब मांग थी, तब तुम कहां थे ? अब मांग नहीं रही, तब तुम आये ! अब तुम्हारा आना व्यर्थ है। भागो यहां से

।फजूल समय मेरा और अपना खराब मत करो। देवता तो बहुत हैरान हुआ, उसने कहा, मैं बहुतों के पास गया हूँ। लेकिन इस तरह का व्यवहार तो कहीं नहीं किया गया। क्या मैंने तुम्हारा अपमान कर दिया हैं ? सन्त ने कहा, ये अपमान नहीं तो और क्या हैं ? तुमने मुझे भिखमंगा समझ रखा हैं ? मालिक का मालिक, शहनशांहो का शहनशांह मुझे मिल गया है, अब क्यों तुम आये हो यहां ? तुम क्या दे सकते हो ? देने योग्य क्या है तुम्हारे पास ? और जो तुम देना चाहोगे, उसकी मुझे जरूरत नहीं रही। किन्तु उस देवता ने कहा, परमात्मा ने ही मुझे भेजा, और इस तरह लौटने में भगवान का अपमान होगा। कुछ मांग लो। कुछ ऐसी चीज मांग लो; जिसकी तुम्हें तो जरुरत न हो, लेकिन औरों को जरूरत हो। सन्त ने कहा, मुझे ऐसी किसी भी वस्तु की आवश्यकता नहीं है।

स्वयं देवता ने सुझाव देते हुए कहा कि ऐसा क्यों नहीं मांग लेते कि बीमार को छुओ तो बीमार ठीक हो जाएं। अन्धे की आंख पर हाथ रखो तो अन्धा ठीक हो जाये। मुर्दे का स्पर्श करो तो जी जाए। इससे लोगों की सेवा होगी। तुम्हारे भीतर करूणा का जन्म होगा लोगों में धर्म का सद्भाव जगेगा। परमात्मा की प्रीति उमड़ेगी। सन्त ने कहा, यह बात तो ठीक लगती हैं; लेकिन इससे एक खतरा है, इसमें मेरा अहंकार जन्म सकता हैं, इसमें मेरी अकड़ पैदा हो सकती हैं कि मैं किसी अन्धे की आँख छुऊं और वह ठीक हो जाये, तो मेरे भीतर अभिमान पैदा होगा अहा:, देखो मैंने इसकी आँख ठीक कर दी। और मुर्दे को जिला दिया तो फिर मेरे भीतर मेरा अहकार कहेगा कि देखा, है कोई और जो मुर्दे को जिला दें। देवता माना ही नही तो सन्त ने कहा, फिर तुम मेरी छाया को वरदान दे दो—मैं तो वरदान नही चाहता। मेरी छाया जिस किसी पर भी पड़ जाए, तो उसका कल्याण हो जाए, रोगी निरोगी हो जाए, मुर्दा जीवित हो जाए, भिखारी धनपति हो जाए, लेकिन मुझें पता नहीं चलना चाहिए। मेरी छाया अगर सूखे वृक्ष पर पड़ जाए, तो वह हरा हो जाए लेकिन मुझे पता नहीं चलना चाहिए।

देवता सन्त को वरदान देकर चला गया। अनेक सूखे वृक्ष हरे-भरे हो गये। अनेक दुखी, सुखी हो गये। वह सन्त सबके लिए वरदान सिद्ध हुआ। जहां से भी गुजरता मधुमास छा जाता। सन्त को पता ही नहीं चलता और लोगों को उसकी तपस्या का लाभ मिल जाता। सन्तों को रिद्धि-सिद्धि से क्या लेना-देना, वे उससे कोशों दूर भागते है। स्वप्न में भी उसकी इच्छा नहीं करते। कवि 'पलटू' कहते है...............

ऋद्धि-सिद्धि से बैर, संत दुरियावते ।
इन्द्रासन बैकुण्ठ तृण सम जानते ।।

सन्तों को चाहे इन्द्रासन दो, स्वर्ग में स्थान दो तो भी उनके लिये तिनके से ज्यादा नहीं हैं। वीतरागी सन्तों के द्वार पर ऋद्धि-सिद्धि भी आए तो उन्हें भी ठुकरा देते है कि भागों यहां से। यहां तुम्हारी कोई जरुरत नहीं है। सन्तों का, वीतरागी मुनियों का तो सारा उपयोग बस एक ही बात में ध्यान-सामायिक, परमात्म साक्षात्कार में लगा है..........कहां का स्वर्ग ! कहां का इन्द्रासन........अविरल ध्यान. अहर्निश सामायिक, प्रतिपल परमात्म भक्ति। स्वर्ग स्वयं तरसता हैं उनके लिए कि ऐसी पवित्रात्मा के चरण हमारे यहां भी पड़ जाए। वे क्यों स्वर्ग जाने को तरसें ? इन्द्रासन तड़फता होगा उनका स्पर्श करने को, उन्हें क्या पड़ी है इन्द्रासन की ? संन्तो की तो एक ही धुन है, एक ही मस्ती है, एक ही लक्ष्य है आत्म-ध्यान, समता सामायिक में रमण करने की। उनकी एक ही प्यास है-परमात्म-अमृत पीने की। ऐसे सन्तों के चरणों में ही अचिन्त्य घटना घटती हैं और ऐसे वीतरागी सन्तों के चरणों में ही कुछ हो सकता हैं, मगर उसको, जो गलने को तैयार हो, विर्सजित होने को तैयार हो। जो बीज की भांति अपने को समर्पित कर दें। उसके अन्दर बोधि-समाधि की घटना घटती है।

अब श्लोक को देखे, हे सरस्वती देवि ! आप मनोवांछित वस्तु को देने के लिए चिन्तामणि रत्न के समान हैं इसलिए आपकी स्तुति वन्दना, उपासना करने वाले को बोधि-समाधि, परिणामशुद्धि, आत्म-उपलब्धि, शिव सुख की प्राप्ति का लाभ हो।

हे सरस्वती मां ! आप चिन्तामणि रत्न के समान हैं। चिन्तामणि रत्न की विशेषता है कि उसका स्वामी मन में जो भी भौतिक विचार करता है. उसकी इच्छा उसी समय पूर्ण हो जाती है। ज्ञान की महिमा तो रत्न से भी महान है। वह एक ऐसा रत्न है जो अंतरंग सम्पदा को, परमात्म सम्पदा को उपलब्ध करा देता हैं। इसलिए अब मुझे और कुछ नहीं चाहिए सिर्फ बोधि चाहिए। भक्त बहुत होशियार है, उसने मात्र सरस्वती माँ से बोधि को मांगा है। बोधि यानि सम्यक्-दर्शन, सम्यकज्ञान, सम्यकचारित्र। तीनों रत्न है और इन तीनों रत्न के ही सद्‌भाव में आत्मा-उपलब्ध होती है।

एक अन्धा फकीर परमात्मा का अनन्य भक्त था। काफी समय से भक्ति उपासना में लीन था। एक दिवस किस्मत का दरवाजा खुला।

आकाश से एक फरिश्ता उतरा और उसने कहा मुझे परमात्मा ने पहुँचाया है। परमात्मा तुम्हारी भक्ति से बहुत खुश है, तुम्हें जो मांगना है, मांगलो आज तुम्हारी मांग अवश्य पूरी होगी; लेकिन एकबार में एक ही चीज मांगना, एक ही मांग पूरी होगी। फकीर ने कहा, ठहरो, सोचकर मागूंगा इतनी जल्दी क्या है। जब एक ही माँग करनी है तो थोड़ा सोचना पड़ेगा। उसने सोचा, यदि खाली सम्पत्ति मांगता हूं तो आँख के अभाव में उसका क्या लाभ ? यदि पुत्र-पुत्री मांगता हूँ तो सम्पत्ति के अभाव में उन्हें कौन पालेगा ? यदि आँखे मांगता हूं तो कमाना पड़ेगा, लोग भीख देना बन्द कर देगे। अन्त में उसने सोच-समझ कर वरदान मांगा कि मैं अपने पुत्र के पुत्र को सोने की थाली में दूध-चावल खाते हुए देखूं।

आचार्य देव ने कौन सा ज्ञान मांगा ? बोधि-ज्ञान, यानि राग द्वेष से रहित ज्ञान, मोह-माया से रहितज्ञान, अहंकार-ममकार से रहितज्ञान उसका मार्ग क्या है ? उसका मार्ग है समाधि। तो फिर समाधि का मार्ग क्या है ? उसका मार्ग है परिणाम शुद्धि। परिणाम शुद्धि का मार्ग क्या है ? रत्नत्रय। और रत्नत्रय प्राप्ति का उपाय क्या है ? देव-शास्त्र-गुरु पर गहन आस्था और परिग्रह का विमोचन यानि त्याग।

प्रश्न उठाना है अस्तित्व बोध का
अब उसमें ही रचना-पचना है
कोई विकल्प नही मन में
अब नया कदम रखना है
हम कौन है ? कहा से आये ?
हमको क्या होना है ?
इस प्रश्न का समाधान खोजना और
जीवन में निजात्मा को पाना है।
क्योंकि मिलेगा जो भी समाधान
वह जीवन का मर्म होगा
दर्द हीनता और जन्म-मरण का
क्रम तोड़ने वाला धर्म होगा।
हम है वही ही
जो कि हमें होना है
लेकिन कर्म-मल से दबे है
इसलिए पल-पल रोना है

और व्यर्थं कर्म भार को ढ़ोना हैं
और व्यर्थं जन्म-मरण कर रोना है।
जरा सोचो—
तितली ने कब पूछा, फूलो से ?
मैं पीने आऊं रस तुम्हारा
फूलों ने भीं कब चाहा ?
सुगन्ध हवा में फैलाऊं
फिर सोचो।
हम ही क्यों अनबुझ पहेली है
मकडी की जाल सी फैली है
अब आत्म—सत्य की सोचे
रत्नत्रय, बोधि-समाधि से
आत्मा तक पहुंचे
हमको क्या पड़ी है कि
हम रात-दिन मोह-माया
छल-कपट परिग्रह से जूझे
अभी हम में अभिव्यक्ति नहीं
अनव्यक्त शक्ति है
लेकिन अभिव्यक्ति के
ससक्त माध्यम है
सम्सार मंच के नायक नहीं,
मात्र कथा के घटना क्रम है
ये नरभक्षी काम राक्षस
काया नोंच रहे है
छीज रहे है हम उतने ही
जितना विषयों में लोट रहे है
और मात्र मोह पर सोच रहे हैं
पथ कौनसा और कहां जाना है
इतना ही मन में विचारो
संयम को आचरण में उतारो
बोधि—समाधि में डूबो
स्वयं को मोह-कीच से उभारो
विषय—भोग

परिग्रह संचय की कामना त्यागो
पीछे पड़ा हुआ है कोई क्रूर पशु,
उठो जल्दी भागो
प्रश्न उठाना है आस्तित्व बोध का
अब उसमें ही रचना पचना है
कोई विकल्प नहीं मन में
अब नया कदम रखना है

स्वयं के अस्तित्व के प्रति, आत्म बोध के प्रति प्यास को पैदा करना है, प्रश्न उठाना है और उसका समाधान खोजना है। उत्तर तो वहीं से आयेगा, जहां से प्रश्न आया है। उत्तर बाहर से कैसे आ सकता है अगर आ भी जायेगा तो नये तर्क, नये विकल्प पैदा करेगा, नये प्रश्न पैदा करेगा। अगर प्रश्न स्वयं का है, तो उत्तर दूसरे का काम आ ही नहीं सकता। आप ऐसा एक भी प्रश्न नहीं खोज सकते जिसका समाधान न हो ? आप ऐसी सन्तान नहीं खोज सकते, जिसका बाप न हो। प्रश्न और उत्तर का गठबन्धन है। चोली—दामन का साथ हैं। हाँ इतना अवश्य हो सकता हैं कि समाधान खोजने में समय लग जाये। जीवन समस्या का समाधान तो बोधि में हैं। अब उसमें ही रचना-पचना है।

अब नया कदम रखना हैं,
हम कौन है ? कहां से आये ?
इस प्रश्न का समाधान खोजना है ?

जीवन में अब तक जो नहीं किया, वह करना हैं, मेरा उद्भव क्या है, मेरा स्रोत क्या है ? तथा मुझे कहां जाकर समाहित होना है। बस इतना ही खोजना है। बहुत खोज कर ली, बहुत अन्वेषण कर लिया, चान्द-तारों का भी पता लगा लिया, सिर्फ एक चीज शेष है, स्वयं के अस्तित्व का ज्ञान। स्वयं के अस्तित्व को जानने के लिए चाहिए बोधि-और बोधि के लिए चाहिए परिणाम-शुद्धि। और परिणाम शुद्धि का मार्ग हैं परिग्रह का त्याग।

हमको क्या पड़ी है कि
रात-दिन मोह-माया
छल-कपट परिग्रह से जूझे

परिग्रह—संचय की कामना त्यागो
पीछे पड़ा हुआ हैं कोई क्रूर पशु
उठो जल्दी भागो

उठो मौत तुम्हारा पीछा कर रही हैं। आज मरे की कल, सात साल पहले मरे की सत्तर साल बाद इससे क्या फर्क पड़ता है, आखिर मरना तो है एक दिन। मौत से बचने का एक उपाय हैं बोधि-समाधि

समाधि का क्या अर्थ हैं ? मन-वचन-काय-की एकाग्रता से विचार और विषय के अभाव में जो अनुभव शेष है वह-समाधि कहलाती हैं परिवर्तित देह के भीतर निर्विकल्प ध्यान में अपरिवर्तित से परिचय कराने वाले तत्व का नाम है समाधि।

बूंद का सागर में समाहित होने का नाम हैं समाधि। जहां न बून्द होने का विकल्प हैं और न जहां सागर से मिलने की खुशी हैं मात्र शीतल जल की अनुभूति हैं उसका नाम हैं समाधि।

जहां न सीमा हैं न असीम के मिलन की खबर, उसका नाम हैं समाधि।

स्वयं के अस्तित्व के साथ, स्वयं की सत्ता के साथ जहां ऐक्य हैं उसका नाम हैं समाधि।

विचारों से पार, विकल्पों से परे ज्ञाता-दृष्टा का जहां दर्शन होता हैं वह संगम-केन्द्र हैं समाधि। क्योंकि विचार तो पौद्गलिक हैं, चैतन्य नहीं हैं, विचार जानने वाला चैतन्य हैं और जो विचार से शून्य चेतन्य हैं ज्ञाता-दृष्टा हैं।

समाधि निर्णय नहीं, सम्यक् साधना की सिद्धि, आत्मोपलब्धि की अनुभूति है। इसलिए सत्य की कसौटी तर्क नहीं, विचार नहीं..................., सत्य की कसौटी है आत्म-आनन्द की अनुभूति.........., इसे कोई भी साधक अन्तरंग-बहिरंग परिग्रह के अभाव में अनुभव कर सकता हैं। यही बोधि समाधि मुक्ति का शिव-सौख्य-सिद्धि का साक्षात् कारण हैं।

किसी ने पूछा था परिग्रह त्याग से क्या होता हैं ? परिग्रह के त्याग से आत्म परिणामों में निर्मलता आती है। परिणाम-शुद्धि से समाधि उपलब्ध होती हैं और बोधि से आत्मा की उपलब्धि होती हैं, तथा आत्म उपलब्धि ही अनन्त सुख, शिव-सुख में कारण हैं।

हम हैं वही
जो हमें होना हैं

लेकिन कर्म-मल से दबे हैं
इसलिए पल-पल रोना है
और व्यर्थ कर्म-भार ढोना है

जो हमें होना है, जो हमारी नियति है, हम वही हैं। शक्ति रूप परमात्मा हैं। लेकिन अभी कर्म-भार से दबे हैं, आत्मा-अशुद्ध हैं। पानी तो भू गर्भ में बह रहा है, लेकिन कंकरो-पत्थरों के नीचे दबा है। ककंरो-पत्थरों को हटाओ, उन्हें दूर करो तो झरना फूट पड़ेगा। तुम्हारा परमात्मा भी कर्म-मल से दबा हुआ है। संयम के माध्यम से, चारित्र के माध्यम से मलवा साफ करो। निर्विकल्प ध्यान में उतरो, स्वयं के परमात्मा से बात करो, उसका दर्शन करो। शरीर तो उसकी अभिव्यक्ति का माध्यम है। शरीर को परिग्रह संचय-विषय-भोग में मत लगाओ। शरीर तो चिन्तामणि रत्न के समान हैं इससे तुम जो माँगोगे, जो काम लेना चाहोंगे, जैसा काम लेना चाहोगे वैसा करेगा। जैसे चिन्तामणि रत्न अपने मालिक का दास होता है वैसे शरीर भी तुम्हारा दास है। शरीर आत्मा का निवास स्थान है। शरीर सुख-दुख की भोग भूमि है, आत्मा सेवक है। शरीर सदा आज्ञाकारी है। जहा भी ले चलो वह जाने को तैयार है। तुम उसे नरकगामी बताओ तो नारकीय बनेगा। स्वर्गगामी बनाओगे तो हंसी—खुशी से स्वर्ग चलेगा। हाथी घोड़े पर बिठाओं, सिंहासन पर बिठाओ तो बैठेगा। खीर-पूरी हलुआ खिलाओ तो राजी, मिरची, चटनी, रूखा-सूखा खिलाओ तो भी राजी, कड़ुवी औषधि पिलाओ, इंजेक्शन लगवाओं तो भी राजी। कड़ी मेहनत करवाओ तो भी राजी धूप में खड़ा कराओ, ठण्डी में दौड़ाओ, पानी में डुबाओ, मृदु शय्या पर लेटाओ, पत्थरों पर सुलाओ तो भी राजी। नवरत्न फूल माला, पहनाओ तो भी राजी, फटे वस्त्र पहनाओं तो भी राजी, लंगोटी पहनाओं, साड़ी पहनाओ, नंगा घुमाओ तो भी राजी। शरीर तो सदा सतोषी है। शरीर तो ऐसा मित्र है तो आत्मा का जीवन भर साथ देता है, उसकी हर इच्छा पूरी करता है। और अन्त में जब प्राणों का पंछी उड़ जाता है तो उसके प्रेम में शरीर चिता पर चढ़ जाता है, सती हो जाता है, लेकिन अपना शरीर अन्य किसी आत्मा को नहीं सौपता है। शरीर तो अपना धर्म निभाता है, प्राणों की आहुति देकर जल जाता है। दुनिया में ऐसा परम मित्र अन्य कोई भी नही है।

शरीर का सदुपयोग करना सीखो, अश्लील चित्र, सिनेमादि की गन्दी आदते डालकर इसे विलास की भूमि बनाकर, इसकी पवित्रता क्यों

नष्ट करते हो। व्यर्थ इसकी शक्ति का अपव्यय करते हो। इसके प्रति न्यायोचित, सम्माननीय व्यवहार करो। इसका अपमान नहीं सम्मान करो। पहिचानों इसकी शक्ति और आत्म जागरण में उसे लगाओ, फिर देखो शरीर का चमत्कार।

जो मूर्ख होते है वे अपने परम मित्र शरीर से दुष्कार्य कराते हैं। जैसे रावण ने अपने पुत्र इन्द्रजीत और भाई कुम्भकर्ण से हिंसक कार्य कराये और निन्दा का पात्र बना। रावण की भाँति देह को विष-हिंसक में नहीं अमृत पाने में लगाओ और पूज्यता को पाओ। शरीर के पात्र में वासना की मदिरा नहीं परमात्म प्रेम का अमृत भरो और परमात्मा का स्वाद चखो। शरीर को दुख–पीड़ा की नाली नहीं, हंसी–खुशीं आनन्द का सदन बनाओ, तब यह शरीर बोधि-समाधि के काम आयेगा। अगर परिणामों की शुद्धि रखना चाहते हो तो शरीर को पापाचार से, नीच कर्म से बचाओं, कुकर्म-अनाचार से दूर रखो, इस पर उनकी नजर ही मत पड़ने दो, अन्यथा अनर्थ हो जायेगा नवरतन का हीरा कोयला खरीदने में चला जायेगा। तुम्हारा शरीर मोक्ष-महल की सीढ़ी है, सिद्धालय का राजपथ है। तुम्हारा यह शरीर परमात्मा का मंदिर है इसलिए शरीर को आचरण-मय, पूर्ण सम्माननीय व्यवहार करके परम–समाधि में स्थित होकर अपने परमात्मा को जगाओ ताकि शिव–सौख्य सिद्धि अपने आप हो जाये। चिन्तामणी रत्न का काम शरीर कर दे और आत्म पात्र में परमात्मा का अमृत भर दे।

आँखे बेचारी निर्विकार मित्र है, वे न तो किसी से राग करती है, और न ही द्वेष। वे तो मात्र देखने का काम करती है, पथ दिखाने का कर्त्तव्य निभाती है। सारा खेल तो मन करता है। वह जंसी मालकीयत उन पर जमाता है, जैसा आदेश फरमाता है आंखे वैसा काम करती है। अन्ततः मन भाग जाता है और वे सजा पाती है, चिता में जलती है। मन उनसे जो भी काम कराये वे तो करने को राजी है। प्रेम योगी बनाये तो राजीं, रूप भोगी, काम—भोगी बनाये तो राजी। तुम जो भी देखना चाहोगे, आँखे वैसा दिखा देगी।

रे मन, गर तू चाहता है ?
बोधि समाधि
तो कर परिणाम शुद्धि
तो शरीर से कर विचार-विमर्श
और उसका ले परामर्श

आँखों में स्थित सूर्य-चन्द्रमा से
हस्त—पादादि अवयवों से
निष्काम प्रेमकर
संकल-संयम
तप—त्यागमय आचरण अपनाकर
सर्वेन्द्रिय वासी इन्द्रियातीत
परम-शुद्ध परमात्मा का
लगा एकाग्रचित्त ध्यान
कर अमृत-पान
स्वयं में स्वयं की
स्वयं के द्वारा कर पूजा
जड़ पूजा नहीं,
भाव सहित द्रव्य पूजा
प्रेम –समर्पण
श्रद्धा-भक्ति सहित पूजा ही
पूर्ण कहलाती है
पूज्य बनाती है
क्योंकि, बिना त्याग के भक्ति अधूरी
बिना ध्यान के तपस्या अधूरी
बन पाती अनिमेष नही
श्रृद्धा सम्मुख होते ही
रह जाता परिवेश नहीं
वही साध्य तक पहुंचा
जो सशरीर, अशरीर हुआ
कमलवत् जिया
पानी बीच रहा पर नीर न छुआ

आचार्य देव कह रहे है कि युगो-युगो के घावों को भर लो, छिद्र मुक्त हो जाओ, परिणामों को शुद्ध रखो फिर देखो तुम जहां भी रहोगे वही समाधि लग जायेगी। बस फिर भीतर मुड़े संसार गया। समाधि का अर्थ है अपने भीतर ठहर जाना। करो कुछ भी, ठहरे रहो भीतर। चलने दो झंझावत, आने दो तूफान और आंधियां लेकिन तुम भीतर मत कंपो, निष्कम्प रहो वहां।

वही साध्य तक पहुंचा
जो सशरीर-अशरीर हुआ
कमलवत जिया
पानी बीच रहा, नीर न छुआ

जो अपने भीतर डूबा, तो उसने पाया कि शरीर में रहते हुए भी अशरीर हो गया। और जिसने अशरीरपने का अनुभव किया, अशरीरपने का ज्ञान हुआ तो उसी क्षण कर्मों से मुक्त होने लगा। घावों से मुक्त होने लगा। क्योंकि घाव तो शरीर में ही पैदा होते है, आत्मा में तो घाव पैदा होते नहीं। शरीर में ही जहर व्याप्त हो सकता, जहर शरीर पर ही अपना असर दिखा सकता है, जिसने जाना की मैं आत्मा हूँ, जिसने जाना कि मैं आत्मा हूँ अब वह संसार में भी खड़ा रहे तो कमलवत् है। पानी उसे छुऐगा भी नहीं। ऐसा वैराग्य सम्पन्न ज्ञान ही वरदान है, परमात्मा का प्रसाद है। बस आचार्य देव-इसी बोधि-समाधि की मांग कर रहे हैं।

बस आज इतना ही।

आदिनाथ दिगम्बर जैन नया मन्दिर
प्रतापगढ़ (राज.)

दिनांक १५/८/९१
गुरूवार

१२

गहरा विश्वास-हृदय में निवास

फिर परमात्मा कैसे मिलता है ? प्रयास तो चाहिए ही चाहिए अथक प्रयास चाहिए, समग्र प्रयास चाहिए। लेकिन उतने से काम न होगा, प्रयास के साथ-साथ प्रार्थना-भक्ति-समर्पण भी चाहिए तब काम होगा, सोने में सुगन्ध आ जायेगी। कोरा प्रयास तो अहंकार का प्रतीक है और जब तक अहंकार है तब तक परमात्मा की प्रतीति नहीं। जब तक अहंकार है, तब तक स्वयं का साक्षात्कार नहीं। और प्रयास से अहंकार जाता नहीं और बदलता है। अगर मात्र स्वाध्याय करोगे, तो ज्ञानी होने का अहंकार करोगे। देखा देखी त्याग करोगे तो त्यागी का अहंकार हो जायेगा। कोरे कृत्य से अहंकार नहीं छूटता, बल्कि अहकार पीछा करता हैं। अहंकार मिटता हैं प्रयास प्रार्थना और ध्यान से। परमात्मा हृदय में विराजमान होता हैं। प्रयास-प्रार्थना-ध्यान से।

मूल पद्य :- यः स्मर्यते सर्व-मुनीन्द्र-वृन्दैः,
यः स्तूयते सर्वनराऽमरेन्द्रैः, ।
यो गीयते वेद पुराण-शास्त्रैः,
स देव-देवो हृदये ममाऽऽस्ताम् ॥१२॥

हिन्दी पद्य :— योगीन्द्र ध्यान जिनका करते सदा है,
नर देव इन्द्र जिन चरणन सिर नवावें ।
वेद पुराण जिनके नित गुण को गाते,
वह देवाधिदेव को हम हिये में बुलाते ॥

अन्वयार्थ :–

यः	— जो
सर्व-मुनीन्द्र वृन्दै	— सभी मुनिराजों के समूह द्वारा
स्मर्यते	— स्मरण किया जाता है
यः	— जो
सर्व-नरामरेन्द्रैः	— सभी नरेन्द्रों और देवेन्द्रो से
स्तूयते	— स्तुति किया जाता है
यः	— जो
वेद-पुराण शास्त्रैं	— वेदो पुराणों और शास्त्रों के द्वारा
गीयते	— गाया जाता है
सः	— वह
देव-देवः	— देवाधिदेव (अर्हन्त)
मम	— मेरे
हृदये	— हृदय में
आस्ताम्	— विराजमान रहे ।

भावार्थ :— जिसे सर्व मुनिजन सदा स्मरण करते हैं, जिसका सर्व इन्द्र, नरेन्द्र और धरणेन्द्र स्तवन करते है और जिसका वेद, पुराण और शास्त्र गुणगान करते है वह देवाधिदेष मेरे हृदय में सदा विराजमान रहे ।

१२

गहरा विश्वास–हृदय में निवास

ओम नमः सिद्धेभ्य ×३
धर्म प्रेमी भव्यात्माओं,

किसी नगर में महावीर का आगमन हुआ। उस गांव के सम्राट को उसके बूढ़े मंत्री ने कहा, महावीर आ रहे हैं, भगवान आरहे है तीर्थंकर का आगमन हो रहा है, आप स्वागत को चलें। नगर के द्वार पर आपकी मौजूदगी जरूरी है।

वह सम्राट जरा ज्यादा अकड़ू था, हेंकड स्वभाव का आदमी था मैं उस भिखमंगे के स्वागत को क्यों जाऊं ? मेरे पास क्या कमी है ? उसके पास ऐसा क्या है ? उन्हें आना होगा तो स्वयं आ जायेगे।

उस बूढ़े मंत्री की आँखों से आंसू टप-टप गिरे। सम्राट तो काफी हैरान हुआ। उसने मंत्री को कभी रोते नहीं देखा था। उसने पूछा, तुम क्यों रोते हो ? उसने कहा, मैं इसलिए रोता हूँ कि आज आपकी सेवा से मैं मुक्त हो रहा हूँ मेरा त्याग पत्र स्वीकार कर लें।

वह मंत्री तो मूल्यवान था। उसके बिना तो राज्य को सम्हालना भी मुश्किल था। वह सम्राट तो ऐशो-आराम में, ऐय्याशी, शराब पीने और वैश्याओं को नचाने में ही बिताता है, सारा काम तो मंत्री करता था। उसकी बुद्धिमत्ता से राज्य बड़ा था, सुसंगठित था, सुव्यवस्थित था। उसके

छोड़ने से तो सब गड़बड़ हो जायेगा सब अस्त-व्यस्त हो जायेगा। उसने कहा कि नहीं नहीं, क्या इतनी सी बात से त्यागपत्र। लेकिन मेरी बात में गलती तो नहीं है, सम्राट ने फिर भी कहा।

उस बूढ़े मंत्री ने कहा, गलती बहुत है। त्याग पत्र देकर गलती बताने वाला हूँ। क्योंकि जब तक त्याग पत्र न दिया आपका नौकर हूँ, आपकी गलती कैसे बताऊं पहले त्याग पत्र स्वीकार कर लो फिर आपकी गलती को बता दूंगा।

सम्राट ने कहा, गलती तुम पहले बताओं, मैं नाराज नहीं होऊंगा। मैं पहले क्षमा कर देता हूं मेरी गलती क्या है ?

उसे बूढ़े मंत्री ने कहा, तुम्हारी गलती यह है कि तुम्हारे पास जो है वह महावीर के पास था, उसको वो लात मार आये, तुम अभी लात नहीं मार सके हो और महावीर के पास जो है, वह पाने में तुम्हें अभी कई जन्म लग जायेंगे। पाना तो दूर, महावीर के पास जो है अभी उसे तुम देखने की भी क्षमता नहीं रखते हो। तुम्हारे पास आँख भी नहीं है जो देख सके कि महावीर के पास क्या है इसलिए तुम समझ रहे हो कि महावीर भिखारी है। मैं तुमसे कहता हूं कि तुम भिखारी हो और महावीर सम्राट है। या तो चलो मेरे साथ महावीर के स्वागत को, उनके चरणों में सिर रखो, या मेरा त्याग पत्र स्वीकार करो। क्योंकि मैं ऐसे आदमी के नीचे काम नहीं कर सकता जो इतना अंधा हो।

इस मंत्री की बात मूल्यवान है। धन कितना ही हो तो भी जिसके पास आत्मिक धन है, आत्मिक-ऐश्वर्य है उसके सामने तुम गरीब हो। और पद कितना हो तुम्हारा हो लेकिन जिसको परमपद, भगवत पद मिल गया उसके सामने तुम्हारी क्या हैसियत है।

श्लोक बड़ा महत्वपूर्ण है तथा यह वाक्य तो श्लोक के प्राण है या जीवन श्रद्धा के प्रतीक है "स देव देवो हृदये ममाऽस्ताम्" है देवाधिदेव ! बीतराग प्रभु आपके मेरे हृदय में विराजमान हों। श्रद्धा बड़ी गहरी चीज है, यह थोपी नहीं जा सकती, इसका तो अकारण जागरण होता है। "गहरा विश्वास परमात्मा का हृदय में निवास है।" वही परमात्मा के रहता आस पास। प्रवचन में हजारों लोग आते है एक-दूसरे के निकट बैठते हैं, आते-जाते समय सटकर चलते है लेकिन भावात्मक एकता का आस्था का अभाव होने से एक दूसरे से अपरिचित है यानि लाभान्वित नहीं है। लाभान्वित तो वही होता है जिसक हृदय में दूसरे के प्रति आस्था होती है।

जल में बसे कुमुदिनी, चन्द्र बसे आकाश ।
जो जाहू के मन बसे ताहू के पास ।।

मन में जो जिसके प्रति आस्था रखता है, वह उसके समीप होता है । चन्द्रमा आकाश में उदित होता है लेकिन उसकी चांदनी से पृथ्वी पर स्थित कमलिनी खिल उठती है । सूर्य आकाश में उगता है लेकिन अपनी रश्मियाँ बाँटता तो हैं चाहे परमात्मा कहीं भी दूर-सुदुर सिद्धालय में क्यों न हो लेकिन उसका गुण स्मरण आत्मा को पवित्र करता तो है । जब गुण स्मरण इतना महत्वपूर्ण है तब साक्षात परमात्मा का हृदय में बसना कितना महत्वपूर्ण और चमत्कारिक नहीं होगा । आचार्य देव कह रहे हैं कि हे परमात्मा । आप मेरे हृदय में विराजमान होवें । बड़ा रहस्य पूर्व वाक्य है हृदय में स्थित हो जाओ । अरिहन्त–सिद्धजपो, माला फेरो यह नहीं कह रहे। अब ये मालायें सामायिक में काम नहीं आती, ऊपर-ऊपर का प्रभु स्मरण काम न आयेगा हृदय से उठना चाहिए । जबानों पर अटके शब्द भीतर नहीं जाते, बाहर के बाहर चले जाते हैं रोटी-रोटी रटने से भूख नहीं मिटती, पानी–पानी जपने से प्यास नहीं बुझती है तो मात्र अरिहन्त-सिद्ध, णमोकार मंत्र जपने से, स्वाध्याय करने से क्या होगा ? मंत्र–उच्चारण करने से मात्र मन की विक्षिप्तता प्रगट होती है और कुछ भी नहीं । आचार्य कह रहे है सामायिक में अब मंत्र नहीं जपना हैं, परमात्मा को, प्रभु भक्ति को हृदय में उतारना है । तुम्हारे हृदय में परमात्मा का आवास हो, फिर अरिहंत-सिद्ध, अरिहन्त-सिद्ध जपो कि न जपो, चलेगा।

जो हृदय में विराजमान कर ले परमात्मा को, यानि हृदय पूर्वक, आत्मा पूर्वक स्मरण कर ले भगवान को वह धन्य हैं वह धन्य हैं इतना ही नहीं उसका शरीर भी धन्य हैं । क्योंकि जिस शरीर में परमात्मा विराजमान हो गया, वह शरीर मंदिर हो गया। वह शरीर साधारण शरीर न रहा, तीर्थ हो गया । ऐसे पैर पड़ेगे, वहां तीर्थ बनेंगे । ऐसा साधक जहाँ उठेगा बैठेगा वहाँ तीर्थं बनेगा । ऐसे ही तो शिखरजी बना, ऐसे ही तो गिरनार बना ऐसे ही तो चम्पापुर बना, ऐसे ही तो सोनागिर बना, ऐसे ही तो काशी बना, ऐसे ही तो कावा बना । आखिर तीर्थं बने कैसे ? किसी के भीतर वीतरागी परमात्मा प्रगट हुआ, किसी के भीतर महावीर प्रगट हुए, किसी के भीतर राम प्रगट हुए, किसी के भाव से ऐसी परमात्मा-विशुद्धि की सघनता आई की उसके आस-पास की मिट्टी भी पवित्र हो गयी । उसके तपस्या के स्थान भी पवित्र हो गये ।

आचार्य देव कह रहे हैं कि परमात्मा को हृदय में बसाओ और हृदय में वासना दूर हैं अभी तो प्रणाम—नमस्कार करना भी नहीं आता हैं। झुकने की कला भी नहीं आती। आदमी झुकना भूल चुका हैं। मंदिर में सिर झुकता हुआ नजर आता हैं लेकिन अहंकार भीतर खड़ा रहता हैं। आप स्वयं अपना निरीक्षण करना कि जब आप मंदिर में अकेले होते हैं उस समय नमस्कार साधारण होता हैं। और जब मंदिर में अनेक लोग होते हैं तब आपके प्रणाम में कुशलता आ जाती हैं, नमस्कार में लचक आ जाती हैं, सिर जरा ज्यादा झुकता हैं, मंत्र जाप ज्यादा देर तक चलता हैं ताकि लोग समझ जाये कि ये व्यक्ति बड़ा धार्मिक हैं। और कोई न हो मंदिर में तो सिर पटका और भागे, एक काम था निपटा दिया।

टालस्टॉय के जीवन की एक घटना हैं कि एक दिन वे सुबह-सुबह चर्च पहुंच गये। गांव का जो सबसे बड़ा धनपति था, वह मंदिर में, चर्च में परमात्मा से प्रार्थना कर रहा था। पूर्णतया सूर्य नहीं निकला था, वह टाल्सटॉय को नहीं देख पाया। और ईसाइयों की पद्धति के अनुसार प्रार्थना में पश्चाताप करना होता हैं कन्फेशन और अपने पापों का उद्‌घाटन कर रहा था, यह परमात्मा से कह रहा था, मैं बड़ा पापी हूँ मुझसे बुरा आदमी इस संसार में दूसरा कोई नहीं है। मैंने गरीबों का शोषण किया है उनका धन छीना है। परायी स्त्रियों पर भी मेरी नजर बुरी रही...............,मैंने कभी किसी का भला नहीं किया, मैंने सभी तरह के कुकर्म किये हैं, मेरी आत्मा पापों की गन्दी नाली है। मेरे पाप मुझे धिक्कारते है, कचोटते है। उसने तरह-तरह की बातें की, जो भी कहना चाहिए।

टाल्सटॉय सुनते रहे। उन्हें तो उसकी अभिव्यक्ति पर, पाप स्वीकृति पर भरोसा ही नहीं आया, इतमीनान ही न हुआ क्योंकि इस धनपति की काफी, प्रतिष्ठा थी वह तो नगर में साधु समझा जाता था। तभी धीरे-धीरे सुबह होने लगी, थोड़ा प्रकाश हुआ। उसने लोटकर देखा, टालस्टॉय पीछे खड़े है और उसने उसकी सब बाते सुन ली है। वह टालस्टॉय के पास आया। उसने कहा कि ख्याल रखना ये बाते बाहर न जा पाये। किसी को इन बातों का जरा भी पता न चले नहीं तो अदालत में मान हानि का मुकदमा चलाऊंगा।

तो टालस्टॉय ने कहा, लेकिन तुम्ही तो कह रहे थे। उसने कहा, हाँ मैं ही कह रहा था, परमात्मा से कह रहा था। और जनता से नहीं कह रहा था। क्या दुनियां में अपनी बदनामी करवानी है। मैं तुम्हें जताये देता हूँ कि अगर इसमें से एक भी बात कहीं बाहर गयी तो तुम्हीं जिम्मेवार

रहोगे। क्योंकि तुम्हारे अतिरिक्त यहाँ और कोई नहीं है।

टाल्सटॉय ने कहा, यह कैसी प्रार्थना ? अगर तुम वास्तव में सच्चे मन से सच्चे दिल से अपने दिल से पापो का प्रायश्चित कर रहे हो तो जानने दो सबको, सुनने दो सबको, पहिचानने दो सबको। हां इतना अवश्य हैं कि उससे अहंकार को चोंट लगेगी और वह हो नहीं सकता। अहंकार तो पापों को व्यक्त भी नहीं करने देगा। और कदाचित पापों का चिट्ठा खोलेगा भी तो बढ़ा चढ़ाकर खोलेगा, ताकि लोग प्रशंसा कर सके, धर्मात्मा कह सके। पाप को भी बढ़ा-चढ़ाकर कहने का भी एक मजा है। क्या मजा है ? कि में कोई छोटा पापी नहीं हूँ। विशेष पापी हूँ, सभी तरह के पाप कर लिये हैं, साधारण पापी नहीं, असाधारण पापी हूँ। असाधारण पापी होने में भी अहंकार है।

प्रार्थना तो सच्ची तब है जब मन से, वचन से कर्म से होश पूर्वक की जाती हैं। वह धन्य हो जाता है, कृत-कृत हो जाता है। याद रखना परमात्मा को भजने वाले बहुत है, राम चदरियां ओढने वाले बहुत है, काशी में बहुत मिल जायेंगे। वे अहर्निश भज रहे है राम-राम ....। मगर तोतों के समान बोल रहे हैं। उसका कोई भी मूल्य नही है। न उनके मन में राम है, न उनके कर्म में राम है, मात्र वचन में राम है। बस भेत्रवत काम चल रहा है। जरा आप ध्यान से देखना, लोग दुकानों पर बैठे है, इधर उधर देख रहे है साथ में माला भी फेर रहे हैं। दुकान भी चलाते-रहते है। माला रखने की थैलियाँ बना ली हैं लोगों ने, माला छिपाये हुए हैं और फेर रहे हैं, अंगुलियों के नीचे से गुरियां—मनके खिसक रहे हैं। ये मालाएं काम नही आयेगी। यह राम-राम जपना काम नहीं आयेगा। मंत्र जाप काम आ सकता है जब सब अपेक्षा का त्याग किया जाये। जाप करने में आनन्द आना चाहिए, अपेक्षा नहीं आनी चाहिए अगर जरा भी लहर आ गई तो तुम्हारी व्यर्थ हो जायेगी। अगर परमात्मा को हृदय में विराजमान करना है, तो कामना वासना की लहर प्रार्थना में ध्यान में, सामायिक में उठाना ही मत।

अपनी प्रार्थना में ऐसी भी आवाज मत उठाना कि है प्रभु यहां दुष्ट–नीच तो ऊँचे पदों पर बैठे है, सीधें सादों की कोई पूछ नही हैं। यहाँ ईमानदार—सदाचारियों का कोई सम्मान नहीं है, दुश्चारित्र ऊपर उठ गये है, सम्मान पा रहे है। इस संसार से बहुत कष्ट उठा लिए, अब स्वर्ग में बुला लो। अगर ऐसी आकांक्षा प्रार्थना में, पूजा में जरा भी कहीं छिपी रही तो प्रार्थना- उपासना धूमिल हो जायेगी। सारी साधना व्यर्थ हो जायेगी। ऐसी करो प्रार्थना की उसमें वासना की लहर न उठे तो

फिर देखना एक ही प्रार्थना में परमात्मा हृदय में विराजमान हो जायेगा।

युगों-युगों से परमात्मा की प्रार्थना करते आ रहे हो आज तक उसका सत्संग नहीं हो पाया, वह तुम्हारे हृदय में विराजमान नही हो पाया। तुम्हारा सत्संग अधूरा है। यह तो वैसा ही मिलन है जैसे स्कूल में बालक और बालिका साथ साथ पढ़ते है, बैठते है, परस्पर में परिचित भी है, लेकिन एक-दूसरे के प्रति आत्मीयता नहीं है। लेकिन वे ही विवाह सूत्र में बन्धते ही एक दूसरे के प्रति पूर्ण समर्पित हो जाते है, और आपस में आत्मीयता प्रगट हो जाती है प्रणय सूत्र में बन्धते ही आपसी सम्बन्धों का आनन्द मिलने लगता आपस में प्रेमानुभूति होने लगती है, एक दूसरे के दिल में विराजमान हो जाते है। पहले परिचित मात्र थे, आनन्द नहीं था लेकिन विवाह होने के बाद व्यवहारिक जीवन बदल गया। यही स्थिति आपकी, आप मात्र परमात्मा से परिचिय है, अभी उसके साथ आपका परिणय नहीं हुआ है, भारात्मक सम्बन्ध नहीं बना है, प्रेमात्मक सम्बन्ध नहीं बना है। परिचय और सम्बन्ध में अन्तर है। सम्बन्ध और प्रेम में काफी अन्तर है पहले परिचय बाद में सम्बन्ध। पहले सम्बन्ध होता हैं बाद में प्रेम। निष्कर्ष यह है कि परमात्मा हृदय में स्थित होते हुए भी उससे हमारा सम्बन्ध नहीं है। परमात्मा शक्ति रूप हृदय में विराजमान है लेकिन वह प्रसुप्त है। उसे जगाने के लिए आचार्य देव ने परमात्मा का आह्वान किया है आओ मेरे हृदय में विराजमान होकर मेरे प्रेम से मेरे परमात्मा को प्रेम की लोरिया गाकर जगाओ, उसे उसकी शक्ति से परिचित कराओ। वह मात्र आपकी ही बात मानता है अन्य किसी की नहीं। हाथी को हाथी ही बाहर निकाल सकता है।

एक सरोवर दल दल में एक हाथी फंस गया। बेचारा पानी पीने गया था, और दुर्घटना का शिकार हो गया। उसने सूंड उपर उठाकर चिल्लाना प्रारंभ किया। उसकी आवाज एक चूहे के कानों से टकराई। मदद के लिए चुहा आया। सांत्वना दी उसने, दुख प्रगट किया, साहस बन्धाया, तुम चिन्ता मत करो, मैं अभी तुम्हें संकट मुक्त करता हूँ। अपने बिल से एक सुतली उठा लाया और हाथी से कहा, लो इसे अपनी सूंड से पकड़ लो। हाथी ने सूंड से सुतली पकड़ी, चूहे ने खींचना प्रारम्भ किया। कहां हाथी और कहाँ चूहा। हाथी जितना निकलने का प्रयास करता उतना ही नीचे धंसता जाता। हाथी ने चिघाड़ना प्रारम्भ किया। एक खरगोश वहां से निकल रहा था। वह द्रवित हुआ। उसने भी हाथी की मदद की, लेकिन वह भी असफल रहा। एक कुत्ता वहां से गुजर रहा था, कौतुल वंश

वह रुक गया। उससे हाथी का दुःख देखा ना गया। उसने भी प्रयास किया लेकिन सफलता हाथ न लगी। चूहा-खरगोश-कुत्ता तीनों ने मिलकर हाथी को बाहर निकालना चाहा दल-दल से। लेकिन उन सबका श्रम असफल रहा। हाथी अपनी पीड़ा से कराह रहा था, कि पास से मनुष्य गुजर रहा था। वह भी पास आया और उसने अपना उपदेश प्रारंभ किया। तुम काफी समय से जंगल में रह रहे हो, क्या तुम्हें इस सरोवर की दल दल के बारे में ज्ञान था, जो इस कीचड़ में आकर फँस गये। अब भोगों अपने पापों का फल। उसे हाथी की पीड़ा दिखाई नहीं पड़ी-हाथी तड़फता रहा और वह पंडित की भाँति उपदेश सुनाता रहा। नरसश हो गया हाथी। जीने की उम्मीद खो चुका। उसके सारे प्रयास शिथिल पड़ गये, अपनी करनी-भरनी पर वह रोता रहा। उसने आकाश की ओर सूंड उठाकर कहा, हे परमात्मा ! यह विशाल शरीर आपको अर्पित है और पास ही एक फूल पानी पर तैर रहा था। उठाकर अर्पण कर दिया। उसकी अन्तरात्मा की पुकार सुन ली गई। पास से हाथी गुजर रहा था, वह निकट आया और सरोवर के किनारे खड़े होकर अपनी सूंड बढ़ाकर कहा, लो मित्र मेरी सूंड को कस के पकड़ लो और बाहर आ जाओ। उस-हाथी ने कीचड़ में फंसे हाथी को संकट से उभार लिया। हाथी, हाथी को निकाल सकता है, उभार सकता है।

कोरी प्रार्थना से परमात्मा नहीं मिलता और खाली प्रयास से प्रार्थना रहित प्रायास भी परमात्मा नहीं मिलता हैं प्रयास से नही मिलता, बिना प्रयास के भी नहीं मिलता।

फिर परमात्मा कैसे मिलता हैं ? प्रयास तो चाहिए ही चाहिए अथक प्रयास चाहिए समग्र प्रयास चाहिए। लेकिन उतने से काम न होगा, प्रयास के साथ साथ प्रार्थना भक्ति-समर्पण भी चाहिए तब काम होगा, सोने में सुगन्ध आ जायेगी। कोरा प्रयास तो अंहकार का हैं और जब तक अहंकार हैं तब तक परमात्मा को प्रतीति नहीं। जब तक अहंकार हैं, तब तक स्वयं का साक्षात्कार नहीं। और प्रयास से अहंकार जाता नहीं और बदलता है। अगर मात्र स्वाध्याय करोगे, तो ज्ञानी होने का अहंकार करोगे। देखा देखी त्याग करोगे तो त्यागी का अहंकार हो जायेगा। कोरे कृत्य से अहकार नहीं छूटता, बल्कि अहकार पीछा करता है। अहंकार मिटता है प्रयास प्रार्थना और ध्यान से। परमात्मा हृदय में विराजमान होता है। प्रयास प्रार्थना ध्यान से।

अहंकार गलता है प्रार्थना और समर्पण से जैसे सूरज के उगते ही

बर्फ गलने लगती है, जैसे सूरज के उगते ही ओस की बून्दे उड़ने लगती है ऐसे ही प्रार्थना-ध्यान के पैदा होते ही अहंकार शून्य होने लगता हैं। प्रार्थना समर्पण-ध्यान प्रसाद है। कोरा प्रयास कैसे ऊपर तो जायेगा नहीं, उठना हैं, कीचड़ से बाहर निकलना हैं तो हाथी की भांति सहारा मांगना होगा। परमात्मा को पुकारना होगा। उसका हाथ पकड़ना होगा, वह चलाये तो चलना होगा। हाथी को हाथी निकाल सकता हैं। चूहे, खरगोश, कुत्ते मनुष्य नहीं। आपको संसार कीच से रागी-द्वेषी, असंयमी-गुरु-विद्वान-पण्डित नहीं निकाल सकते। वीतरागी दिगम्बर गुरू ही भव-सागर से पार उतार सकते है।

लेकिन परमात्मा तक उसकी ही पुकार पहुंचती है जिससे अपनी तरफ से जो भी करना था किया, श्रद्धा-भक्ति-समर्पण, प्रार्थना को जीवन मानकर जिया। काहिलों की-आलसियों की सुस्तों की असंयमियों की, अकर्मण्यों की प्रार्थना उस तक नही पहुंचती है आचरण-हीन की प्रार्थना से प्राण नहीं होते है। समर्पण-भक्ति हीन प्रार्थना तो लाश है, उसमें से कामना वासना की बदबू उठती है, परमात्मा की सुगन्ध नहीं। असंयमी श्रद्धाहीन की प्रार्थना का क्या अर्थ; सिर्फ कमजोरी को छिपाने का उपाय है प्रार्थना तो उसी की सम्यक हैं जिसने आचरण के साथ-साथ ध्यान सामायिक को किया। श्रद्धावान ही प्रार्थना का अधिकारी हैं। क्योंकि उसकी प्रार्थना में प्राण हैं। उसकी प्रार्थना में पंख हैं। एक दिन उडेगा वह अनन्त-आकाश में और पा जायेगा परमात्मा को।

आचार्य कह रहे हैं कि मेरे हृदय में विराजमान हो जाये। विराजमान होने का क्या अर्थ हैं? उसका अर्थ देता हैं मैं जो कर सकता था, मेंने किया अब मैं असहास हूं। मैं जो कर सकता था कर चुका, अब मैं विवश हूँ। अब तुम्हें पुकारता हूँ, अब तुम ही कुछ करो आपको पुकारने का अर्थ हैं. मैं अपने पुरूषार्थ से किनारे तक आ गया, मनुष्य भव को पा गया, अब तुम ही हाथ बढ़ाओं सो किनारे से बाहर आंऊ। अन्यथा मझधार में ही लोग नहीं डूबते किमारों पर भी लोग डूब जाते हैं। अर्थात अन्य कुलों के होने पर ही लोग नहीं डूबते. जैन कूल में जन्म लेने के बावजूद भी डूब जाते हैं सच्ची श्रद्धा के अभाव में। और ऐसा भी देखा गया हैं कि किनारे पर लोग डूब जाते हैं और मंझधारों से बच जाते है। क्योकि मंझधारो में भय के कारण सावधान रहते हैं, सचेत रहते हैं. होश से भरे रहते हैं। लेकिन किनारे पर आते-आते बेहोंश हो जाते हैं सोचते हैं कि अब तो किनारे पर ही आ गये, अब क्या चिन्ता? किनारे देखते ही जरा ज्यादा निश्चित होने

लगते हैं। बेफिक्र होने लगते हैं। उसी निश्चितता में तो खतरा हैं। किनारे पर आते आते भरोसा आने लगता हैं कि अब तो पहुंच ही गये, अब क्या पुकारना हैं। स्वाध्याय करके ज्ञानी बन गये हैं, अब क्या संयम लेना अब क्या मुनियों के पास जाना। अब क्या परमात्मा की आरती-पूजा करना, स्वय ज्ञानी बन गये हैं ?

कुछ लोग यात्रा पर निकले थे, समुद्री यात्रा थी अचानक तूफान आ गया। ऐसा लग रहा था अब डूबी नाव, अब डूबी नाव। यात्री घुटने टेक कर प्रार्थना कर रहे थे परमात्मा से। सिवाय उसके कोई उपाय सूझ भी नहीं रहा था। तूफान जवानी पर था। आँधी भयंकर थी। लहरें आकाश छूने की चेष्टा कर रही थी, नाव छोटी थी, डावांडोल होरही थी, पानी भीतर भर रहा था। सब हाथों से उलीच रहे थे, लेकिन बचने की कोई आशा नहीं थी किनारा काफी दूर था। उसका कोई अता-पता नहीं चल रहा था।

नाव के सारे यात्री प्रार्थनारत थे, लेकिन एक पंडित और एक मौलवी चुपचाप बैठे थे। लोग उस पर बहुत नाराज हुए। लोगों ने कहा आप लोग परमात्मा के पुजारी है साधु है, फकीर है आपको तो हमसे पहले प्रार्थना करना चाहिए और आप लोग चुप बंठे है, हम सब का जीवन संकट में है, आप से इतना ही नहीं होता कि प्रार्थना करे। और हो सकता है कि हमारी प्रार्थना न पहुंचे क्योंकि हम लोग तो कभी-कभी सकट के समय प्रार्थना करते है हमें तो प्रार्थना करना भी नहीं आती है. इसलिए हो सकता है कि हमारी प्रार्थना के पहले तुम्हारी प्रार्थनायें स्वीकार कर ली जाये, क्योंकि तुम लोग तो जीवन भर प्रार्थना में डूबे रहे हो। और आज तुम लोगों को यह क्या हुआ हैं ? रोज हम तुम्हें देखते थे प्रार्थना करते हुए, सुबह, दोपहर शाम। और मोलवी तो पांच नमाज अदा करता था। आज तुम्हें क्या हुआ है ? आज तुम चुपचाप क्यों बैठे हो ?

पंडित और मोलवी हंसते रहे। नहीं की प्रार्थना और तभी जोर से चिल्लाकर पंडित ने कहा रुको, क्योंकि लोग प्रार्थना कर रहे थे-कोई कह रहा था कि मैं बच गया तो मंदिर मैं एक मूर्ति बिठाऊंगा, कोई कह रहा था कि अगर मैं बच गया तो नया मंदिर बनवाऊंगा। और कोई कह रहा था कि गरीबों को भोजन दूंगा और कोई कह रहा था अगर मैं बच गया तो सन्यास ग्रहण कर लूंगा। बीच में पंडित एकदम से चिल्लाया कि सम्हलो इस तरह की बाते न करो. किनारा दिखाई पड़ रहा है।

किनारा करीब आ गया था। तूफान की लहरें नाव को तेजी से किनारे की ओर ले आयी थी। बस सारी प्रार्थनाएं वहीं समाप्त हो गई।

अधूरी प्रार्थनायें छोड़ कर लोग उठ गये। संकट टल गया, सबको भरोसा आ गया। सब अपना सामान समेटने लगे, भूल ही गये प्रार्थना और परमात्मा को। तब पंडित प्रार्थना करने बैठा। लोग हंसने लगे। यात्रियों ने कहा, तुम भी बड़े पागल हो। अब क्या प्रार्थना करने बैठा। लोग हंसने लगे। यात्रियों ने कहा, तुम भी बड़े पागल हो। अब क्या प्रार्थना कर रहे हो, जब सकट टल गया? किनारा सामने दिख रहा हैं, किनारा करीब आ रहा हैं।

उस पंडित ने कहा कि मैंने महावीर के अनुयायी दिगम्बर गुरुओं से सुना हैं कि नाव मंझधार में कम और किनारे पर ज्यादा डूबती है। मुनियों से सुना है कि मंझधार में तो लोग सचेत होते हैं, सावधान होते हैं, किनारों पर आकर मूर्च्छित हो जाते है। मैंने मुनियों से सुना है मंझधार में लोग प्रार्थनायें करते हैं, परमात्मा को पुकारते है, किनारा देखते ही प्रार्थनाएं भूल जाते हैं। फिर कौन फिक्र करता है। जब काम ही पूरा हो गया, जब किनारा करीब आ गया तो कौन परमात्मा की फिक्र करता है चालबाज तो ऐसे है, बेईमान तो ऐसे है कि जिनका हिसाब नहीं।

वह जो मंझधार से बच भी जायेगा, किनारे पर आकर फिर बेईमान हो जायेगा, क्योंकि प्रार्थना उसका हिसाब थीं, गणित थी। प्रार्थना उसके प्राण नहीं थी। प्रार्थना सिर्फ बचाव का एक उपाय था, एक शस्त्र था, एक साधना नहीं थी, एक सुरक्षा थी, समर्पण नही थी।

तुम्हारे प्रयास तुम्हें किनारे तक ले आये, लेकिन किनारे के ऊपर कौन हाथ पकड़कर बाहर खीचेगा? तो सिर्फ प्रार्थना के द्वारा ही आमंत्रित किये जा सकते है। इसलिए प्रार्थना सेतु है मनुष्य और परमात्मा के बीच। प्रार्थना ही मनुष्य को परमात्मा से जोड़ती है, प्रयास नहीं। और प्रार्थना क्या जोड़ती है क्योंकि प्रार्थना में हृदय पूर्ण खुल जाता हैं। जैसे कमल खिलता हैं सुबह और सूरज की किरणें नाचती हुई उसके अन्तस्थल तक चली जाती हैं, ऐसे ही प्रार्थना में प्राण खुलते हैं, हृदय का कमल खुलता हैं और परमात्म नाचता हुआ प्रवेश कर जाता हैं। प्रार्थना में प्रसाद की वर्षा होती हैं।

अब प्रश्न उठता हैं–ऐसी सम्यक प्रार्थना कहां सीखोगे प्रयास करना तो आप सभी लोग जानते हैं। क्योंकि प्रयास तो अनादि काल से करते चले आ रहे हो। यही प्रयास तो धन कमाने के लिए किया, ऐसा ही प्रयास यहां करना हैं सिर्फ दिशा बदलनी हैं तो दशा बदल जायेगी। इस प्रयास को धन की तरफ नहीं, धर्म की तरफ लगाना हैं, काम की तरफ नहीं

ध्यान की तरफ लगाना हैं । जो हट संसार को जीतने की थी, उसे परमात्मा बनने में लगाना हैं, आत्म विजय से संलग्न करना हैं। प्रयास का अभ्यास सब जानते हैं। साधारण से साधारण जीव भी प्रयास से परिचित हैं. बस कम ज्यादा मात्रा का भेद हो सकता है, लेकिन अब प्रश्न है कि प्रार्थना कहां सीखोगे ? और मजे की बात तो यह है कि प्रार्थना और भक्ति तो प्रेम के समान सक्रामक होती है। प्रार्थना तो उनके पास ही सीखी जा सकती है, जिन्होने प्रार्थना जानी है । प्रार्थना तो एक शब्दातीत हृदय की तरंग आनन्द्रित के पास बेठोगे तो उदास हो जाओगे यानि रागी के पास बैठोगे तो रागी हो जाओगे, वीतरागी के पास बेठोगे तो वीतरागी हो जाओगे। रोतों के पास बेठोगे तो रोने लगोगे। आज कल, कल नही परसो, कब तक अपने को बचाओगे, एक न एक दिन तो उसके रोने का असर तुम्हारे उपर पड़ेगा।

प्रार्थना भी ऐसी ही सीखी जाती है–गुरु-परताप साध की संगति । गुरू का अर्थ है, जो जाग गया है, तथा दूसरो को जागने में लगा है, जिसने पा लिया है प्रकाश, जिसने अपना अज्ञान अहकार तोड़ दिया है जिसके अन्दर परमात्मा की रोशनी उतर आई है जिसकी वीणा मधुर गीत गाने लगी हो, तार-तार बोलने लगे है। उसके पास बेठोगे, उसकी बजती वीणा तुम्हारी सोयी वीणा को जगायेगी, उसके तारो को झंकृत करेगी। संगीतज्ञो का ऐसा कथन है कि जब एक वीणा जाग जाती है तो पास की वीणा कैसे सोयी रह सकती है ।

आप स्वय ही सोचे ? सोये आदमी को कोई दूसरा सोया आदमी नहीं जगा सकता है। सोये आदमी को कोई जगा हुआ आदमी ही जगा सकता है, क्योकि जागा हुआ आदमी हिला सकता है, हाथ पकड़ कर उठा सकता है, आवाज लगा सकता है, पानी लाकर ऊपर डाल सकता है क्योकि जागा हुआ है । जगाने का कोई न कोई इन्तजाम कर सकता है बिस्तर से खीचकर बाहर ला सकता है, तुम्हारा चादर खीच सकता है। जागा हुआ सब कुछ कर सकता है, और सोया हुआ कुछ भी नही कर सकता । हो सकता है वह सोये सोये जागने के स्वप्न देख रहा हो, अपने आपको जागा हुआ समझ रहा हो । तब तो उसका जागना और मुश्किल है । आपने ख्याल किया ! आपके पास बैठा हुआ कोई आदमी जम्हाई लेने लग जाये तो आपको भी जम्हाई आने लगती है । पास में बैठा एक आदमी सोने लगे तो आपको भी नीद आने लगती है। निमित्त का प्रभाव पड़ता है। जागा हुआ आदमी ही जगा सकता। मूर्च्छित बेहोश आदमी का उपचार अमूर्च्छित

व्यक्ति ही कर सकता है । मूर्च्छित-मूर्च्छित का उपचार नहीं कर सकता है । प्रार्थना वही सीखा सकता है जो प्रार्थनारत हैं, प्रार्थनामय जिनका जीवन है । जिन महागुरुओं के गुणों की महिमा शास्त्रों में गायी गयी हैं और ऋषि मुनियों ने स्वयं तपस्वियों ने गुरूओं ने गाई हैं ।

य: स्मर्यते सर्व—मुनीन्द्र - वृन्दै।
य: स्तूयते सर्व—नराऽयरेन्द्रै: ।
यो गीयते वेद–पुराण-शास्त्रै:
स देव-देवो हृदये ममाऽताम ।।

जिसका सब ऋषिगण स्मरण करते हैं जिसका सब राजा-महाराजा इन्द्र स्तवन करते है और जिसका वेद, पुराण और शास्त्र गुणगान करते हैं वह देवाधिदेव परमात्मा मेरे हृदय में सदा ही विराजमान रहे।

प्रतिक्रमण में एक बड़ा सुन्दर शब्द आता है सिद्धा सिद्धिमय दिसन्तु हैं सिद्ध परमात्मा मुझे सिद्धि दे, यानि सिद्धि का, सिद्धत्व का सन्देश-उपदेश दे । सामायिक-ध्यान में साधन के हृदय में ही परमात्मा से वार्तालाप अपने आप हो जाता है । यह तो उसका दुर्भाग्य है कि स्वयं में स्थित परमात्मा की आवाज नहीं सुन पाता, हृदय-वीणा से परमात्मा का संगीत जाग्रत नहीं कर पाया, और विषय-वासनाओं की मांग पूरी करने में लग गया । सांझ एक गीत सुनाई पड़ रहा था- "जय गामतोरा मम हृदय विराजों" है लोक के शिखर ! बाहुबली स्वामी आपकी जय-जयकार हुई । उस पराजय में ही आत्म-विजय छिपी थी। अब मेरे हृदय में विराजमान होकर मुझे भी आत्म-विजय का पाठ सिखाओं ।

घट-घट मेरा सांइस, सूनी सेज न कोय
वा घट की बलिहारियां. जा घट प्रगट होय ।।

एक भी जीवात्मा ऐसी नहीं है जिसमें उसका वास न हो, शून्य हृदय तो किसी का नहीं है, वह सबको हृदय में शक्ति रुप में विराज रहा है । लेकिन धन्य है वह आत्मा जिसके अन्दर परमात्मा प्रगट हो गया ।

ईश्वर: सर्व भूतानां हृद्देशेऽर्जुन: तिष्ठति ।
भ्रामयन सर्व भूतानि यंत्रा रुढानि मायया ।।

हे अर्जुन: ईश्वर माया से कर्म प्रकृति) से (कर्मचन्द रुपी) यंत्र पर आरुढ़ सर्व प्राणियों को परिभ्रमण कराता हुआ, समस्त प्राणियों के हृदय देश में रहता है।

कृष्ण अर्जुन से बात बड़ी गहरी रहस्यपूर्ण कह रहे हैं कि परमात्मा सर्वात्मा में स्थित है। लेकिन अपने कर्मों के कारण वह भटक रहा है, सर्व योनियों में परिभ्रमण कर रहा है। कहने का अर्थ यह है कि परमात्मा अति निकट होते हुए भी श्रद्धा के अभाव में उससे हमारा सम्बन्ध नहीं हो पा रहा है। गीता में कृष्ण के कहने का अभिप्राय जो कुछ भी हो लेकिन जैन दर्शन से बात मिलती-जुलती है कि शक्ति रूप से परमात्मा सबके भीतर विद्यमान है। उस अन्तस् के परमात्मा को यदि तप त्याग का योग मिल जाये तो वह प्रगट हो सकता है। चौके में रसोईघर में कितनी भी खाद्य सामग्री अलग-अलग पड़ी हो दाल, चावल, आटा, नमक, मसाला वे पक नही सकते। जब तक अग्नि-पानी-पात्र से उनका संयोग न हो। सयोग होते ही उनका आकार–प्रकार स्वाद बदल जाता है और वह पक जाती है एक माँ और बेटे एक कारागृह में वर्षो से बन्द है। एक ही कमरे में है लेकिन दोनों के बीच मात्र एक दीवार खड़ी है। वे आपस में एक दूसरे को देख नहीं सकते, कौन क्या कर रहा है जान नहीं सकते। दूर भी नहीं है, एक ही जेल में एक ही कमरे में बन्द है, फिर भी एक-दूसरे से अपरिचित है। यही स्थिति हर मनुष्य की है। हर मनुष्य के भीतर परमात्मा विद्यमान है लेकिन मोह माया-भोग की दीवार बीच में खड़ी है इसलिए स्वय के परमात्मा का दर्शन नहीं हो पा रहा है। संसार के सारे दर्शन उसकी महिमा का गुण-गान गा रहे है। संसार के सभी शास्त्र उसकी प्रशंसा से भरे पड़े है। और स्वयं मनुष्यों ने उसकी बाबत लिखा है। मंदिरों में उसकी प्रतिमायें बनायी है और शिल्पी स्वयं उससे अपरिचित है। अहो, है ना दुनियां का सबसे बड़ा आश्चर्य ?

यो गीयरो वेद पुराण शास्त्रै: वेद पुराण-गीता, सभी धर्म शास्त्र उसकी महिमा को गाते हैं। आप भी उसकी महिमा को गाकर, प्यास जगाकर, उसे पा सकते हैं, आपके पास प्रयास तो हैं लेकिन प्रार्थना नहीं हैं। किसी के पास प्रार्थना हैं, प्रयास नहीं, और किसी के पास प्रयास हैं, प्रार्थना नहीं, इसलिए प्रार्थना और प्रयास का समन्वय जरूरी हैं, वही समन्वय सम्यक्दर्शन, सम्यकज्ञान, सम्यकचारित्र से जोड़ता हैं और ये ही परमात्मा से जोड़ते हैं। अस्तु चलने के लिए प्रयास और उभरने के लिए प्रार्थना जरुरी हैं। जहां प्रयास और प्रार्थना मिलते हैं उसी संगम पर

परमात्मा उतरता हैं, परमात्मा विराजमान होता हैं।

"मम हृदये ममास्ताम्" मेरे हृदय में विराजमान रहो। यानि जो परमात्मा का सेवक हो गया, दास हो गया, अपने रोम-रोम में जिसने उन्हें बसा लिया उसका जीवन धन्य हो गया, गहरा विश्वास हैं जिसका उसके हृदय में निवास है उसका, परम-प्रकाश है उसका।

समता सीधी
नभ से राशि देख रहा है
ध्यान में डुबे मुनियों को।
प्रज्ञा ने अपने दृग खोले
त्याग के सारी कमियों को ॥१॥

सागर उमड़ा उत्सुकता का
लखने तप के प्यारों को।
डाल-डाल पर फुल खिले है,
करने प्रणाम इन चेहरो को ॥२॥

दमक रही है तम की आभा
कर्म की कालिमा हरने को।
तम की बदली भेद-भेद कर
शुद्धातम के वरने को ॥३।

गीत गा रहे तारे मिलकर
हम पृथक पृथक बटे बटे।
पर समता साधी मुनियों से,
इस कारण है अब सटे-सटे ॥४॥

बस आज इतना ही
आदिनाथ दिगम्बर जैन नया मंदिर
प्रतापगढ़

दिनांक १६-८-९१
शुक्रवार

१३

बोधि सुमन

ओह ! अचिन्त्य अनुपम सत्ता का
कैसा विस्मरण
मित्र को खोया
राग-द्वेष
मोह-माया
विषय-कषाय बीच फस रोया
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित्र का
बीज कभी न बोया
पर में तू इतना खोया
कैसा बन तू नायक
शुद्ध स्वरुप ज्ञायक
देखने के नहीं रहा लायक
ना....लायक, ना....नायक
नालायक

मूल पद्य :- यो दर्शन-ज्ञान-सुख-स्वभावः,
समस्त-संसार--विकार-बाह्यः ।
समाधि-गम्यः परमात्म-संज्ञः,
स देव-देवो हृदये ममाऽऽस्ताम् ।१३।

हिन्दी पद्य :- दर्शन अनन्त अरू ज्ञान सुखस्य स्वभावी,
संसार के विकारों से निर्वि—कारी ।
समाधि गम्य परमात्म की संज्ञा पाते,
वह देवाधिदेव को हम हिये में बुलाते

अन्वयार्थ :- यः	— जो
दर्शन ज्ञान-सुख स्वभाव	— अनंतदर्शन अनन्तज्ञान और अनन्त सुखरुप स्वभाव वाला है
(यः) समस्तसंसार विकार बाह्यः	जो संसार के समस्त विकारों से — रहित है,
(यः) समाधि गम्य	— जो समाधि से गम्य है
(यः) परमात्मसंज्ञः	- और परमात्मा संज्ञा का धारक है
सः देव-देवः	— वह देवों का देव
मम हृदये	— मेरे हृदय में
आस्ताम्	— विराजमान रहे

भावार्थ :- जो अनन्त दर्शन, ज्ञान और सुखरुप स्वभाव वाला है, जो संसार के समस्त विकारो से रहित है, जो समाधि के द्वारा ही अनुभवगम्य है और जिसे योगीजन परमात्मा कहते हैं वह देवाधिदेव मेरे हृदय में सदा विराजमान रहे ।

१३

बोधि सुमन

ओम नमः सिद्धेभ्य X ३
धर्म प्रेमी भव्यात्मानों

एक सम्राट काफी चिन्तित था। उसकी चिन्ता का कारण था, वंश को अंश का अभाव था। काफी बड़ाराज्य था, लेकिन उसका उत्तराधिकारी होने वाले का अभाव था। रानी ने सम्राट से कहा, नगर के बाहर उद्यान में दिगम्बर मुनि का आगमन है। आप उनके श्री चरणों में जाकर निवेदन करे तो अति उत्तम होगा, तथा इष्ट फल की भी प्राप्ति होगी। आप जरुर जाये। सम्राट मुनिराज के दर्शन को गया, सविनय प्रणाम करके बैठ गया मुनिराज के सामने अपनी व्यथा का इतिहास खोला और अश्रुपुरित आंखो से कहा, हे स्वामिन क्या मैं अपनी इन आंखों से अपने वंश का अंश नहीं देख पाऊंगा ? क्या यह अभागा यू ही आर्त-रौद्र ध्यान में अपने जीवन की आहुति दे देगा ? क्या मेरे प्राण नीर बिन मीन की भाँति तड़फ-तड़फ कर निकल जायेंगे ? मैं सन्तान का सुख नहीं भोग पाऊंगा ? हे नाथ। यह याचक सांसारिक कामना लेकर आया है। आपकी तपस्या में वो बल है, आप चाहे तो क्षण मात्र में आकाश के चान्द-तारे जमीन पर उतार सकते हैं, चान्द-तारों की गति को रोक सकते हैं। देव-दानव सभी आपके भक्त हैं! इस याचक की झोली में आपकी करूणा की अमृत-वर्षा होनी चाहिए।

मेरी प्यास का शमन आप ही कर सकते है । मुझे एक वंश का अंश दो ।

मुनिराज ने कहा, राजन् वंश का अंश तो तुम्हारे भाग्य में है, लेकिन उसके गर्भ में आते ही तुम्हें वैराग्य उत्पन्न हो जायेगा । तुम सन्यास के सागर में डूब जाओगे, समाधि के आनन्द में खो जाओगे । तथा पुत्र भी आठ वर्ष के उपरान्त दिगम्बर साधु का निमित्त मिलते ही साधु हो जायेगा ।

सम्राट ने कहा, गुरूदेव ! इससे बड़ा सौभाग्य और क्या हो सकता हैं। मुझें तो मात्र वंश का अंश चाहिए, मैं अपने कर्तव्यों से मुक्त होना चाहता हूँ । बस आपका आशीर्वाद दो, ताकि अपने लक्ष्य को पूरा कर सकूं । सम्राट आशीर्वाद प्राप्त कर प्रसन्नचित् महल में लौट आया । कुछ समयोपरान्त शुभ सूचना मिली कि रानी गर्भवती हो गई हैं । सम्राट की खुशी का पारावार न रहा । खुशी के अतिरेक से सन्यास की धारा फूट पड़ी । सम्राट का संसार पक गया, भोग थक गया। उसने रानी को बुलाया, और उसकी नाभि पर हल्दी का टीका लगाया और वन की ओर चल पड़ा ।

माथे पर टीका सन्दल का श्रद्धा के कारण लगता है
मंदिर में मूरत दिखती हैं, मूरत में ब्रह्मा बसता है ।
चाहे अब इसको ठुकराओ, चाहे इसको अपनाओ
अब मन में प्रभुता रहती है और प्रभुता में मन रमता है ।।

श्रद्धा बहुत बड़ी चीज हैं। श्रद्धा के गर्भ से ही परमात्म-भक्ति का जन्म होता है । सम्राट की श्रद्धा मुनिराज पर प्रगाढ़ थी । रानी के गर्भ से पुत्र जन्म लेगा । अब इस राज्य का उत्तराधिकारी जन्म लेगा; मेरा यहां क्या काम ? पुराना पत्ता टूटता है तभी तो नया पत्ता पैदा होता है । माथे पर टीका सन्दल का, चन्दन का श्रद्धा—भक्ति के कारण लगता है । एक टीका जो बाहर से लगाया जाता है चन्दन का, लेकिन कोई मूल्य नहीं । और एक है भीतर की गंध, भीतर की सन्दल से लगा हुआ श्रद्धा का टीका, उसका मूल्य है । फिर जीवन में क्रांति घट जाती है । मूर्ति में ब्रह्मा दिखने लगता है, मंदिर की तरफ चरण दौड़ने लगते है । सारे संकल्प विकल्प मिट जाते है । एक मात्र परमात्मा नजर आने लगता है । क्योंकि वही एक है वासी सब जगह । वही निवास कर रहा है सब जगह ।

जिन्होंने अपने को समर्पित किया, परमात्मा पर गहन आस्था की, उन्हें दो बातों का पता चला दर्शन और ज्ञान ये अनन्त सुख के हेतु है ।

आत्मा से ये कभी पृथक नही हो सकते इसलिए आत्म-अस्तित्व से सांस की डोर कभी नहीं टूट सकती। हम शाश्वत है, हम सदा से है और सदा रहेंगे अहंकार पानी का बबूला है, वह हम नहीं है। अहंकार बनता है मिटता है, हम नहीं। न हम बनते है, न हम मिटते है। हमारे अास्तित्व से उठती हुई प्रेम करूणा की सुगन्ध शास्वत है।

याद रखो एक मात्र मौत सुनिश्चित है, जीवन सुनिश्चित नहीं है। जीवन में कुछ भी निश्चित नहीं हैं, सिवाय मौत के। और जो इतनी निश्चित है, उसे हम देखते ही नहीं, टाले चले जाते है, अगर वह परमात्मा हृदय में विराजमान हो जाये तो मरण का मरण हो जाये और जीवन सुनिश्चित हो जाय। अनिश्चित निश्चित हो जाय, निश्चित अनिश्चित हो जाय, इसलिए सजग हो जाओं, जैसे सम्राट हो गया सजग और सन्यासी बन निकल गया। तुभ भी होशियार हो जाओ। सम्राट के समान स्वयं का दाव पर लगाओं, जल्दी उस परमात्मा को खोज लो, जो दर्शन-ज्ञान स्वभाव वाला है। जो समाधि में उपलब्ध होता है। डुबकी मारो समाधि के सागर में और मोती ले आओ। क्योंकि देर की तो पता नहीं हम बचे कि न बचे। समय मिला है लूट लो मजा संन्यास का।

रानी रोने लगती है, उसके सामने अपने बहुमूल्य रत्न जड़ित वस्त्र उतार कर फेंक देती हैं, होरक-मणियों के हार उतार देती है। नगरवासी रोने लगते है, कहते है कि आप ये क्या कर रहे है ? सब रो रहे है, सम्राट अपने बाल उखाड़कर फेंकने लगता है। बड़े प्यारे बाल थे। सेवक कहते हैं ये आप क्या कर रहे हैं ? सुन्दर भवन हैं, साम्राज्य हैं, सुन्दर रानी है, इन्हें छोड़कर कहां जा रहे है ? "दर्शन-ज्ञान सुख स्वभावः समस्त संसार विकार बाह्य:" मैं अपने सुख–स्वभाव वाले दर्शन-ज्ञान की खोज में जा रहा हूँ। ये सब बाह्य है, व्यर्थ है। मंत्री ने कहा, राजन्। लोग इसी सुख की तलाश करते हैं, और आप इसे छोड़ रहे है ? जीवन भर इसी की कामना करते है आप इसे त्याग रहे है। लोग इनके ही स्वप्न देखते है और उपलब्ध नहीं कर पाते, रोते, है और इन्हें लातमार कर जा रहे है ? तुम्हें सब कुछ मिला है, यही सच्चा सुख है, मुझे बूढ़े मंत्री को छोड़कर कहां जाते हो। सम्राट ने कहा, "समस्त संसार विकार बाह्य" ये सब सांसारिक हैं, मेरे नहीं है, सच्चे नहीं है। अब आत्मिक सम्पदा की खोज में जा रहा हूँ। वह ऐसी सम्पदा है "समाधि गम्य।" जो परम समाधि में उपलब्ध होती है।

मंत्री ने पुनः कहा, राजन ! तुम अभी युवा हो, तुम्हारे पास जीवन का अनुभव नहीं है। मैंने जीवन देखा है, तुम अभी अनुभव हीन हो, लौट

चलो। सम्राट कहता है लौट चलूं, वहां जहाँ सिर्फ लपटे ही लपटे है। तुम्हें यह सम्पदा दिखाई पड़ती हैं, मुझे सिर्फ मिट्टी ही मिट्टी नजर आती है। तुम्हें महल दिखाई पड़ता है, और मुझे खण्डहर ही खण्डहर दिखाई पड़ते है। तुम्हें साम्राज्य दिखाई पड़ता है और मुझे श्मशान ही श्मशान दिखाई पड़ता है। मेरी तुम्हारी दृष्टि अलग-अलग है। सत्य प्रगट हो गया है, अब मैं नहीं रुकता हूँ।

मंत्री समझाता है कि यह तो संसार से पलायन है, भगोड़ापन है। सम्राट कहता हैं कि जब घर में आग लगी हो तो आदमी भागता ही हैं। क्या घर में आग लगी हो भागते को तुम कहोगे भगोड़े हो, भीतर बैठे रहो, बाहर मत जाना ?

अब इन महलों में रुकना असंभव हैं, अब ये कदम रुक नहीं सकते हैं। सच हैं जब भोगों से, इन संगमरमरी देहों से जीवन का विश्वास उठ जाय तो फिर कोई ऊपाय नही हैं उस विश्वास को वापस लौटा लेने का। जिसके जीवन का विश्वास हाथों से निकल गया हो, जिसने जीवन में छिपी मौत को देख लिया हो, जिसे महलों में उठती लपटे दिखी हों, जहाँ ऊपर ऊपर जीवन और भीतर-भीतर मौत का काला साया देखा हो। ऊपर सजावट-शृंगार देखा हो और भीतर देखी हो वह कैसे रुक सकता हैं इन महलों में ?

> अब चाहुं भी तो मैं रूक नहीं सकता
> कारण खुद मंजिल मुझे बुलाती हैं
> जितना पैर टिकाने की कोशिश करता हूँ
> उतनी ही मिट्टी और घसकती जाती हैं
> मेरे अतीत का इतिहास पड़ा काला
> जो नयनों में तश्वीर उसकी मुस्काती हैं
> बस अरिहन्त नाम हैं सत्य, बाकी सब असत्य
> बस यही एक ध्वनि कानों से टकराती हैं।

आदमी जब मरता हैं, श्मशान की ओर अर्थी को ले जाती हैं तब राम नाम सत्य हैं, अरिहन्त नाम सत्य है कहते जाते है। सारी जिन्दगी कट गई तब सत्य का पता न चला, मरने के बाद पता चला कि एक मात्र आत्मा ही सत्य है, परमात्मा ही सत्य हं, बाकी सब असत्य है। जो आवाज नहीं सुनता, चल बसा है उसे सुनाया जा रहा है कि राम नाम सत्य है। जीवन

में किन्हीं और चीजों को सत्य माना, धन को, पद को, नाम को, सम्प्रदाय को, यश को सत्य माना --जीवन में सच्चे मन से कभी नहीं कहा अरिहन्त नाम सत्य है, लोग मरकर दोहराते है । वह सम्राट वन की ओर चला गया । दिगम्बर मुनि बन आत्म-ध्यान में डूब गया, बोधि सुमन खिलाने ।

एक दिवस आहार चर्या के लिए नगर में उनका आगमन हुआ । वे चर्योपरान्त जा रहे थे । महल के सामने से उनका निकलना हुआ । एक नन्हा बालक, राजकुमार, पप्पू महल की छत पर अपनी माँ और आंटी (धाय) के साथ बैठा हुआ था । नगर के कुछ अश्रद्धालु मुनिराज पर उपसर्ग कर रहे थे, पागल को बाहर निकालो, पागल को बाहर निकालो चिल्ला रहे थे, पत्थर मार रहे थे । क्योंकि रानी का आदेश था कि दिगम्बर मुनि को देखते ही राजकुमार भी सन्यासी हो जायेगा । इसलिए उसने ऐसी व्यवस्था कर रखी थी कि मुनि नगर में प्रवेश न करे । सन्यास तो आत्मिक घटना है, कहीं इस प्रकार प्रतिबन्ध लगाने से रुकता है ? वैराग्य कोई बहता पानी थोड़े न है कि दो चार पत्थर बीच में डाल दो और धारा को रोक दो ।

ऐसा हुआ, जब बुद्ध का जन्म हुआ तो ज्योतिषीयों ने कहा, अगर इन्हें युवा अवस्था में दुख का दर्शन हो जायेगा तो सन्यासी हो जायेगा । तो ज्योतिषीयों ने कहा अगर आप चाहते हैं कि ये साधु न बने, तो दुख का दर्शन मत होने देना । बीमारी इनके पास न फटके । वृद्ध व्यक्ति इनके पास न आये, कुम्हलाते फूल, झड़ते हुए पीले पत्ते भी दिखाई न पड़े । बुद्ध के बगीचे से फूल पत्ते झड़ने और फूल कुम्हलाने के पहले ही हटा दिये जाते थे । ऐसी व्यवस्था की गई कि फूल कुम्हलाने न पाये, सूखा पत्ता बगीचे में न बचे । रात में हटा दिया जाता । बुद्ध ताजा फूलों को ही देखे, जवानी ही जवानी जाने, बुढ़ापे की खबर न मिले ।

तो बुद्ध के पिता ने बड़ा इन्तजाम किया था । सुना है तब तक बुद्ध ने बीमार आदमी न देखा था, कुम्हलाते फूल न देखे थे । सूखे पत्ते न देखे थे । मरण की तो बात दूर मरण की पद-चाप भी, आहट भी नहीं सुनी थी । बुढ़ापा यानि मरण की पद-चाप । बुद्ध के चारों तरफ सुन्दर स्त्रियां एकत्र कर दो ताकि मौत की पद-चाप सुनाई न पड़ सके ।

एक कवि ने बुद्ध की बाबत लिखा है बुद्ध ने दुख खोज लिया । एक रात युवतियां नाचकर सो गयी, थककर गिर गयी हैं, बुद्ध को भी झपकी लग गयी है, आधी रात उनकी नींद खुली, उन्होंने आँख उठाकर देखा । संगमरमर जैसी देहे, स्वर्ण जैसे शरीर मूर्च्छित पड़े हैं, मदहोश पड़े हैं । किसी

की आँख में कीचड़ आ गया था। किसी की लार बहती थी। कोई नींद में बड़बड़ाती थी। साज-श्रृंगार, रख-रखाव- अस्त-व्यस्त हो गया था। चारों तरफ पड़ी सुन्दरियाँ बुद्ध को कुरूप नजर आई। सारा सौन्दर्य कुरुपता में ढल गया। सुन्दरता में कुरुपता का दर्शन हो गया।

बुद्ध सुबह उठे और किसी उत्सव में भाग लेने जा रहे थे कि रास्ते में एक घटना घट गई......। रास्ते में एक आदमी लकड़ी टेककर चल रहा था। सारथी से पूछा, इस आदमी को क्या हुआ ? बीमार हैं, बूढ़ा हैं, क्या हुआ ? सारथी झूठ बोलना चाहता था, लेकिन देवताओं ने उसकी जबान कील दी। सारथी कहना चाहता था, कुछ भी नहीं हुआ, मात्र एक दुर्घटना है। कभी कभी अपवाद स्वरुप ऐसा हो जाता हैं। लेकिन देवताओं ने उसके मुख में प्रवेश करके सत्य प्रगट कर दिया कि यह बुढ़ापा हैं, ऐसा सबके साथ होता है, कोई नई घटना नहीं हैं, कोई अपवाद नहीं हैं, तुम्हें भी ये दिन देखने पड़ेंगे। सत्य उजागर हो गया। सारी व्यवस्थायें फेल गई। सत्य को जितना छुपाने का प्रयास किया, उतना उजागर हो गया। बुद्ध चिन्तित हुए। उसका प्रतिबिम्ब आँखों से मिट भी नहीं पाया था कि सामने से लोग अर्थी लेकर मरघट जाते दिखे। बुद्ध ने पूछा ये क्या हैं ? सारथी ने फिर झूठ बोलना चाहा था, लेकिन फिर सत्य निकल गया। जो नहीं कहना था, वह कह गया। सबके साथ ऐसा ही होता है, एक दिन आपको भी मरना पड़ेगा। बुद्ध ने कहा रथ लौटा लो, अब महोत्सव में जाने को कोई जरुरत नहीं हैं। असली महोत्सव मैंने देख लिया। जब मृत्यु पीछे पड़ी है, तो महोत्सव में क्या भाग लेना ? अब मैं असली महोत्सव में भाग लूंगा, शाश्वत महोत्सव को खालूंगा-"यो दर्शन-ज्ञान सुख-स्वभाव" जो दर्शन-ज्ञान मेरा स्वभाव हैं। सुख का स्वभाव हैं। 'समस्त संसारतिकार बाह्यः' बाकी सब संसार व्यर्थ है, मुझसे बाहर हैं, नश्वर हैं, क्षण भंगुर हैं। मन में बोध जाग गया। निमित्त काम कर गया कि अब मैं उस जीवन को खोजुंगा जहां कोई मृत्यु न हो। और बुद्ध उसी रात घर छोड़कर भाग गये।

कोई नहीं, कोई नहीं
यह दुनियां हैं दुखभरी
ये अप्सराये हैं विष-भरी
ऐसा कोई नीर नहीं जो बुझा सके मम् हृदय प्यास को
कोई नहीं, कोई नहीं
सुनता समझता है मन

स्वार्थ-लिप्सा भरे वचन
ऐसा कोई वचन नहीं, जो समझा सके मेरे हृदयी सन्यास को
कोई नहीं, कोई नहीं
सत्य, समीरण जाग पड़ा है
सन्यास के नव पल्लव ले खड़ा है
ऐसी कोई शक्ति नहीं जो डिगा सके मेरे विश्वास को
कोई नहीं, कोई नहीं
जो बचा सके जाती हुई हर श्वांस को उच्छावास को।

बुद्ध ऐसी स्थिति को उपलब्ध हो गये, जहां जीवन का सारा विश्वास हाथ से छिटक गया, बिखर गया। उन्हें कोई न रोक सका। सारथी बहुत रोया, उसने कहा, आप ये क्या कर रहे हैं ? बुद्ध ने कहा, वास्तविक जीवन की तलाश में जा रहा हूँ। बुद्ध यह तुम्हारा बचपना बोल रहा है, अभी तुम बालक हो छोटे हो लौट चलो। लेकिन बुद्ध वापस न लौटे और सन्यास ग्रहण कर वन को चले गये।

मुनि को नगर के बाहर निकाला जा रहा था। राजकुमार ने महल से देखा एक व्यक्ति नग्न जा रहा है तथा उसके पीछे बहुत से लोगों की भीड़ जा रही। उसने अपनी मां से पूछा, मां यह आदमी सड़क पर नंगा घूम रहा है, तथा इसे लोग क्यों सता रहे है ? मां ने कोई उत्तर न दिया। बच्चे तो जिद्दी होते है। उसने पुनः पूछा, व्यक्ति नंगा क्यों है ? मां ने कहा, वह पागल हो गया है, हमारे बीच में रहने के लायक नहीं रहा है, इसलिए नगरवासी उसे धक्का मारकर नगर से बाहर कर रहे है। पास में बैठी उसकी "धाय" आन्टी, उसकी आँखों से आंसू बह रहे थे। राजकुमार ने मां से पूछा आंटी क्यों रो रही है ? माँ ने कोई उत्तर नहीं दिया और उठकर चली गई। सही उत्तर देना बहुत कठिन था। आंटी रोती रही और पप्पू पूछता रहा। आंटी ने कहा, बेटा वह जो नंगा आदमी था, वह पागल नहीं, तुम्हारे पिता थे, वे दिगम्बर साधु बन गये है।

राजकुमार ने पुनः पूछा, दिगम्बर साधु क्यों बनते है ? उसने कहा, परमात्मा बनने के लिए। तो क्या मैं भी साधु बन सकता हूं। हां क्यों नहीं। उत्तर मिलते ही राजकुमार पलक झपकते ही नीचे पहुंच गया। मुनिराज के चरणों में नतमस्तक हुआ और उनके समक्ष वस्त्रों का त्यागकर दिगम्बर मुद्रा धारण कर पीछे-पीछे चल दिया। बाल मुनि सुकौशल को देखने जनता उमड़ पड़ी। जय-जयकार की ध्वनि से आकाश गूंज उठा। आकाश से फलों की वर्षा होने लगी।

खबर सुनते ही रानी महल में मूर्च्छित हो गिर पड़ी । पति के वियोग का घाव अभी भर भी नही पाया था कि घाव में घाव पैदा हो गया । कोढ़ में खाज पैदा हो गई । पुत्र वियोग को वह सहन न कर सकी आर्त रोद्र ध्यान से मरण कर उसी जंगल में शेरनी बनी जिस जंगल में सुकौशल मुनिराज तपस्यारत थे ।

"यो दर्शन-ज्ञान सुख स्वभाव: "सः समाधि गम्य: समाधि के द्वार अवलोकनीय सुख स्वभाव वाला दर्शन और ज्ञान में लीन थे । आत्म-अमृत के पान में लीन थे एक दिवस शेरनी की दृष्टि दोनों मुनिराज पर पड़ी । सुकौशल मुनि पर भूखी शेरनी टूट पड़ी । बालमुनि शुक्ल ध्यान की नोका पर सवार हो गये, पूर्व भव के उसके पति ने उसे संबोधन करते हुए कहा, रे दुष्ट ! जिस पुत्र के वियोग में तू रो-रोकर, तड़फ-तड़फ कर मरी थी, यह वही पुत्र है । और उसका ही भक्षण कर रही है । पूर्व के अशुभ कर्म से शेरनी हुई है. अब नरक जाना चाहती है तू ? शेरनी को जाति स्मरण हो आया । उसकी आंखों से आंसू टपक पड़े । पश्चाताप की सरिता में डूब गई । प्रायश्चित एक ऐसी सरिता है जिसमें अवगाहन करने से अपराधी पवित्र बनता है । उसने मुनिराज से पांच अणुव्रत ग्रहण किये और मांस भक्षण का त्याग किया । मरणोपरान्त स्वर्ग में जन्म हुआ ।

सुकौशल मुनि आत्म-ध्यान में डूब गये । देह की म्यान से अनन्त शक्तिमान आत्मा को पृथक कर लिया । अनन्तशक्ति सम्पन्न आत्मा की, समाधि में दर्शन मिला, स्वयं का परमात्मा उपलब्ध हुआ । बाल मुनि में कहां से आई शक्ति ?

बीज फूल ही है
मात्र अभिव्यक्ति की देरी है
अभी द्वार बन्द है
कल द्वार खुल जायेगे
अभी पंखुडियाँ सोयी है
कल जग जायेगी
बीज वही है जो उसे होना है
मात्र तप-त्याग-संयम से उसे धोना है

बीज में तो वह छिपा हुआ है । उसे प्रगट करने को ही तो वह जन्मा है मात्र अभिव्यक्ति में देरी है और वह भी तुम्हारे कारण हैं । तुम स्वयं

उस अभिव्यक्ति में बाधा है। तुम्हारा अहंकार, तुम्हारी वासनायें, उसकी अभिव्यक्ति में रोड़ा अटकाती है। पहले उनसे मुक्त हो जाओ. फिर समाधि में डुबो और अपने स्वभाव को पाओ।

बस इतना याद रखो विषय भोग के वृक्ष पर दुःख के शूल उगेंगे और रत्नत्रय के वृक्ष पर परमात्मा के फुल खिलेंगे। तुम्हारा भविष्य तुम्हारे भीतर पड़ा है, तुम ही उसके मालिक हो। सुकौशल मुनि ने जैसे अपने भविष्य को अनन्त संभावना को जाना और व्यक्त किया तुम भी कर सकते हो। आत्म-शक्ति तो सब में समान है। तुम्हारी अनन्त संभावना तुम्हारे इस बीज में बन्द है। उसे व्यक्त करने का एक ही उपाय है निर्विकल्प समाधि। अभी हम सब विस्मृत है।

ओह ! अचिन्त्य अनुपम सत्ता का
कैसा विस्मरण
मित्र को खोया
राग द्वेष
मोह -माया
विषय-कषाय बीच फंस रोया
सम्यग्दर्शन-ज्ञान चरित्र का
बीज कभी न बोया
पर में तू इतना खोया
कैसा बन तू गायक
शुद्ध स्वरुप ज्ञायक
देखने के नहीं रहा लायक
ना ..लायक, ना. . लायक
नालायक।

आत्मिक शाश्वत सुख की बजाय भौतिक सुख को अच्छा मानना मूढ़ता का प्रतीक है ! सच्चा सुख तो स्वभावगत है सुख स्वभाव:। वह तो अकारण है, कर्माश्रित नहीं; देहाश्रित नहीं, वह तो अतीन्द्रिय सुख है। जैसे प्रेम कारण रहित होता है. अकारण होता है इसी प्रकार आत्मिक सुख भी अकारण होता है। सुख हमारा स्वभाव है, उसके लिए किसी कारण की जरुरत नहीं है। वह तो स्वयं के भीतर बजती हुई मधुर वीणा है जिसके तार न ज्यादा कसे है, ज्यादा ढीले है। जो सुख में बाधक है मात्र उससे

उसे मुक्त कर दो, तो अव्याबाध सुख की वर्षा हो जायेगी ।

सुख हमारा स्वभाव है यानि सुख हमारा निर्णय है, अगर आप निर्णय कर ले कि मैं एक माह सुखी रहूंगा, दुख के किसी भी बाह्य निमित्त को स्वीकार नहीं करूंगा । आप निर्णय कर लें कि कुछ भी हो जाए में अपने सुख को किसी भी कीमत पर नहीं खोऊंगा । फिर देखना आप बिना कारण सुखी हो जायेगे । बाहर का निमित्त आपको दुखी न बना सकेगे । दुख और सुख हमारा निर्णय है । जब ऐसी मान्यता हो जाती हैं कि सुख वस्तुओं से मिलता है तो दुख की वर्षा प्रारम्भ हो जाती हैं । दुख निमित्त जन्य हैं, कारण सहित है. लेकिन सुख तो अकारण हैं ।

मेरे पास अनेक दुखी लोग आते हैं, अपना रोना रोते हैं । अपनी राम कहानी सुनाते हैं, फिर भी मेरे भीतर उनकी दर्द भरी कथाओं से जरा भी फर्क नहीं पड़ता हैं । क्योंकि दुखी होना उनकी मौज हैं और सुखी रहना मेरी मस्ती हैं । मैं आपके दुखों को सुनता हूं, समझता हूँ लेकिन आपके दुखों से दुखी नहीं होता । मैं आपकी पीड़ा को आपके आँसुओं को समझता हूँ, लेकिन मैं उनसे लिपटता नहीं हूं । इसलिए तुम्हारे दुख से दुखी नहीं होता, रोता नहीं हूं । तुम्हारी आंख के आंसू सूख जाय, तुम सदा को सुखी हो जाओ इतनी भावना जरुर भाता हूँ मेरे दुखी होने से, मेरे रोने से तुम्हारी समस्या नहीं सुलझेगी । मेरे मार्ग-दर्शन से चलोगे, आचरण करोगे तो समस्या से मुक्त हो सकोगे । आपकी आँखो में आंसू न रह जाए, इसके लिए उपाय बताने का प्रयास करता रहता हूँ । लेकिन यह प्रयास भी मेरे आनन्द से निकलता हैं, मेरे दुख से नहीं । सुखी रहना मेरा स्वभाव हैं, मेरा सुख मेरे कारण हैं । वो अखंड हैं । उसमें आपके होने न होने से कोई फर्क पड़ने वाला नहीं हैं ।

और जो भीतर से सुखी होगा, वही आपके दुख दूर कर सकेगा । अगर मेरे इस प्रयास से, मोक्ष-मार्ग रुप आचरण से, सुखी होते हैं तो आपका कल्याण हैं, और सन्त मुद्रा से दुखी होते हैं तो आपका नरक आपके हाथ में हैं । क्योंकि सुखी-दुखी होना मनुष्य की पूर्ण स्वतन्त्रता हैं ।

इस काव्य का यही रहस्य है कि सुख आत्मा का स्वभाव है और जो अन्तरात्मा में प्रवेश करता है उसे ही उपलब्ध होता है । अन्तरतम में प्रवेश करने वाले को बाहर की धूप छाँव का पता ही नहीं चलता है । सुकौशल मुनि को पता ही नहीं चला कि उनके शरीर को शेरनी खा रही है । बाल अवस्था में अखण्ड सुख को उपलब्ध हो गये । और मां ने अपने स्वभाव को दुखमय बना लिया था, वो महलों में रहकर भी सुखी न हो

सकी । रावण भवन में रहकर दुखी था और राम वन में रहकर सुखी थे ।

सुख और दुख का निर्णय स्वयं को करना है । सुख को पाना है तो अपने स्वभाव में लौटो, समाधि को ग्रहण करो और बोधि-सुमन को खिलाओ, जिसने जीवन के उद्यान में बोधि सुमन को उगा लिए तो उसके जीवन-सुमन में अनन्त सुख की सुवास भर जाती है ।

आचार्य देव इस काव्य में परमात्मा का स्वरुप बताया हैं कि परमात्मा कैसा है-अनन्तज्ञान और अनन्त दर्शन से परिपूर्ण सच्चिदानन्द स्वभाव वाला है । जब भी परमात्मा का ध्यान करो तो ऐसे ही परमात्मा का ध्यान करना, क्योंकि जैसा गुरू होता है वैसा ही चेला बनता, अगर सच्चिदानन्द स्वभाव को पाना चाहते है तो उनके बोधि सुमन को सुवास लो और बोधिमय हो जाओं ।

बस आज इतना ही
आदिनाथ दिगम्बर जैन नया मंदिर
प्रतापगढ़

दिनांक १७-८-९१
शनिवार

१४

गंगा उल्टी बह रही है

भगवान महावीर का कितना प्यारा वचन है "जिओ और जीने दो" यह नहीं कह रहे कि सुख दो, यह कह रहे है कि किसी को दुख मत दो। अगर तुमने किसी को दुख न दिया तो अपने आस पास, ईर्द-गिर्द, जीवन के चारों तरफ फूल बरसते पाओगे, फूल खिलते पाओगे। अगर फूल न खिलते हो तो समझना तुम्हारी अहिंसा वास्तविक नहीं है, तुम्हारा आचरण सम्यक् नहीं है। दूसरों को दुख न दो, इसमें पूर्ण अहिंसा का पालन संभव है। दूसरे को सुख दो इसमें व्यक्ति अपने सुख के लिए मार्ग खोज लेगा, अहंकार की तृप्ति के उपाय ढूढ लेगा।

मूल पद्य :- निषूदते यो भव-दुख जालम् ।
निरीक्षते यो जगदन्तरालम् ।
योऽन्तर्गतो योगी-निरीक्षणीयः,
स देव-देवो हृदये ममाऽऽस्ताम् ।।१४।।

हिन्दी पद्य :- संसार के दुःखों को जो दूर करता ।
लोक 'ओ' अलोक को जो कर तुल्य देखता ।
हृदस्थ योगीजन जिनका दर्श पाते,
वह देवाधिदेव को हम हिय में बुलाते ।।

अन्वयार्थ - यः — जो
भव-दुःख-जालम् — संसार के दुःख समूह को
निषूदते — नष्ट करता है
यः — जो
जगदन्तरालम् — जगत् के अन्तराल (मध्य भाग) को
निरीक्षते — देखता है
अन्तर्गत य — जो अन्त:स्थित है
योगि-निरीक्षणीय- और योगिजनों के द्वारा
अवलोकनीय है
स, देव देवः — वह देवों का देव
मम, हृदय — मेरे हृदय में
आस्ताम् — विराजमान रहे।

भावार्थ - जो संसार के दुःख जाल को काटता है, जो जगत् के अन्तराल को अर्थात् सम्पूर्ण लोक को देखता है और जो योगिजनों के द्वारा हृदय में निरीक्षण करने योग्य है वह देवाधिदेव मेरे हृदय से सदा विराजमान रहे ।

१४

गंगा उल्टी बह रही है

ओम नमः सिद्धेभ्यः × ३
धर्मप्रेमी भव्यात्माओं !

कल आपने सुना था, सम्राट सन्तान का मुख देखे बिना ही मुनि बनकर वन की ओर चले गये। पुत्र का गर्भ में ही तिलक कर दिया। आत्म विश्वास प्रगाढ़ था, सन्त आस्था गहन थी। जब आस्था कमजोर होती है तो व्यक्ति विश्वास जतलाने कसमें खाता है आस्था प्रगाढ़ होती है तो समर्पण से भर जाता है।

"जैसा निमित्त वैसा परिणमन" सम्राट को, रानी को सन्त का आशीर्वाद मिला था, इसलिए वंश के अंश रुप कम नहीं सन्त जन्मा। इसलिए आचार्य देव ने उपासक को उपास्य का स्वरुप बता दिया कि उपास्य कैसा होना चाहिए। दर्शन-ज्ञान सुख स्वभाव वाला यदि दुख से भरा उपास्य होगा तो वह भी आपको दुखी बना देगा। वैसे ही हम सब दुखी है और अब क्या दुखी होना है? अगर वह सुख-स्वभाव वाला है तो वह किसके द्वारा देखा जाता हैं? तो आईये स्वयं आचार्य की लेखनी से सुने........

निषूदते यो भव दुःख जालम्
निरीक्षते यो जगदन्तरामम्।
योऽन्तर्गतो योगिनिरीक्षणीयः

स देव देवो हृदये ममास्ताम ।।

जो संसार के समस्त दुःख जाल को विध्वस्त कर डालता है, जो त्रिभुवनवर्ती समस्त पदार्थों को देखता हैं और जो अन्तर्हृदय में योगियों द्वारा, मुनियों द्वारा निरीक्षण किया जाता है वह देवाधिदेव मेरे हृदय में विराजमान हो। एक घटना आपसे कहता हूँ... ... .

किसी स्त्री का पति परदेश गया हुआ था धन कमाने। वहाँ गये उसे काफी दिन हो गये थे। पत्नी काफी परेशान थी, चूंकि पति के कोई समाचार नहीं थे। एक दिन अचानक पत्र आ गया। पत्नी अनपढ थी, उसे पता नहीं था कि किसका पत्र है एक युवक बन-ठन कर वहां से गुजर रहा था। अनपढ़ था। उसकी पत्नी ने उसे रोका, और कहा, भईया जरा यह पत्र तो पढ़कर सुना देना। युवक ने बडी नजाकत से पत्र लिया। दो-चार बार उल्टा-पल्टा, पढने का प्रदर्शन किया। कुछ देर गुमसुम रहा और पत्र को देखकर रोने लगा। पत्नी ने समझा कि दुखद समाचार हैं, शायद पप्पू के पापा का इन्तकाल हो गया हैं, इसलिए युवक बताने से घबड़ा रहा है। पत्नी ने कहा, भईया पढ़ो, पत्र पढ़ो रोओ मत। जो भी समाचार हो कहो इसमें रोने की क्या बात? युवक और जोर से सिसक-सिसकर रोने लगा। युवक को रोना देख वह स्त्री भी रोने लगी। मां को रोता देख पप्पू पप्पी रोने लगे। मोहल्ले के लोग एकत्र हो गये। वे भी रोने लगे। एक व्यक्ति का रोना जब इतना परेशान कर देता है और जहां पर सब रोने लगे, तो उस घर की मोहल्ला की क्या दुर्दशा होगी? युवक के हाथ में पत्र है और सब जोरों से रो रहे हैं। पास में आकर किसी ने नही पूछा कि रोने का कारण क्या हैं। उसका बड़ा बेटा स्कूल से लौटा, उसने सबको रोता हुआ देखा तो अपनी बहिन से पूछा दीदी तुम क्यों रोती हो? दीदी से पूछा, तो उसको कहां, मम्मी रो रही हैं, इसलिए मैं भी रो रही हूँ। मम्मी से पूछा, आप क्यों रो रही हैं? मम्मी ने कहा, तेरे पापा की चिट्टी आई हैं, इस भईया को पढ़ने दी थी। यह रो रहा हैं इसलिए मैं भी............? पत्र में क्या लिखा हैं? मुझे मालूम नहीं! पप्पू ने पत्र लेकर पढ़ा तो नाचने लगा, उमंगित हो गया। उसमें लिखा हुआ था, मैं यहां पर बहुत अच्छा हूँ। व्यापार वगैरह सब अच्छा चल रहा है, भगवान की बहुत कृपा हैं। अगले महिने की दस तारीख को काफी सम्पत्ति लेकर आ रहा हूँ। मेरी जरा भी चिन्ता न करना तथा पप्पू की पढ़ाई का विशेष ध्यान रखना।

पप्पू ने पत्र पढ़ने वाले से पूछा, भईया! आप क्यों रो रहे थे?

उसने कहा, मुझे पत्र पढ़ना नहीं आता है, इसलिए अपनी अज्ञानता पर रो रहा था कि मैं एक पत्र पढ़ने के लायक भी नहीं रहा। वह अहंकार में इतना नहीं कह सका कि मुझे पत्र पढ़ना नहीं आता है, कृपया यह पत्र आप किसी और से पढ़वा लें। वह ऊपर से तो पढ़ा लिखा दिखता था। शुद्ध वस्त्र पहनने से, अच्छे वस्त्र पहनने से कोई ज्ञानी नहीं हो जाता, सभ्य नहीं हो जाता, अच्छा नहीं हो जाता। ज्ञानी बनने के लिए आचरण करना होता हैं। ज्ञानी की पहिचान उसके सम्यक् स्वभाव से होती हैं तथा मुनि की पहिचान उसके ज्ञान और ध्यान से होती है। शास्त्र की पहिचान उसकी प्रमाणिकता से होती है, शास्त्र की वाणी से होती है, हित उपदेशिता अहिंसामय उपदेशिता से होती है।

आचार्य देव कह रहे है कि ऐसा परमात्मा मेरे हृदय में वास करे जो समस्त दुख जाल से मुक्त हो गया है, और हमारे दुखों को नष्ट करने में सक्षम हैं, कारण हैं।

"निषूदते भौ भव दुःख जालम्"

जो ससार के दुखो को नष्ट करते है. वो ही परमात्मा है। बड़ा प्यारा शब्द है, बड़ी सुन्दर पंक्ति है। श्लोक का प्रथम चरण ही हमारी मनोकामना को छू रहा हैं, मनुष्य की आकांक्षा को आमन्त्रित कर रहा है कि तुम्हारे दुखों का अन्त करने वाला, दुखों से मुक्त कराने वाला परमात्मा विद्यमान है. उसे अपने हृदय में स्थान दो, ताकि वह तुम्हें दुख से मुक्त कर सके। यह श्लोक आपके स्वार्थ को छू रहा हैं। सन्तात्मा स्वार्थ सिखाती है। अभी आप स्वार्थ का अर्थ भी नहीं जानते है। जिसे आप स्वार्थ कहते है वह तो स्वार्थ है ही नहीं। अभी तो लोग स्वार्थ के नाम पर आत्मघात कर रहे है। अमृत के नाम पर जहर पी रहे है। फूलों के नाम पर कांटे एकत्र कर रहे है।

भगवान महावीर का सिद्धान्त हैं, "जिओ और जिने दो" स्वार्थ सिखा रहे है। स्वार्थ का अर्थ होता है स्वयं के अर्थ को, जीने के अर्थ को जान लेना, अपने स्वभाव को पहिचान लेना, स्वयं के कल्याण को जान लेना, स्वयं की नियति को पहचान लेना। ऐसा आचरण करना कि महासुख प्रतिदिन तुम्हारीं तरफ दौड़ा चला आये।

भगवान महावीर कहते हैं कि 'जीओ और जीने दो'। स्वयं जिओ और दूसरों को जिलाओ। यानि स्वयं को प्रेम करो। क्योंकि जो स्वयं को प्रेम नहीं कर सका, तो वह दूसरों को करेगा कैसे ? और यदि प्रेम

करेगा तो वह करने में कहीं न कहीं धोखा होगा। जब घर में ही रोशनी नहीं है, तो दूसरों के घरों में क्या प्रकाश डालोगे अन्तस् का दीया जलता हो, तभी बाहर प्रकाश का दान सम्भव है। अन्तस का दीया बुझा हो तो क्या बाहर रोशनी डालोगे ?

मैं नहीं कहता आप दूसरों की सेवा करे। मैं आपसे कहता हूं कि स्वयं की सेवा करो, समस्त दुखों से मुक्त हो जाओगे। जिस दिन स्वयं की सेवा करोगे तो पाओगे, दूसरों की सेवा अपने आप हो गई, दूसरा अपने आप सुखी हो गया हैं।

मैं सबसे कहता हूं स्वार्थी बनो, पहले अपना दुःख काटने की कला सीखों। परार्थी बनने के कारण ही तुमने अपने जीवन को बिगाड़ा हैं, स्वयं दुखी हुए और दूसरे को दुखी बनाया है। स्व का अर्थ जान लेना और वैसा आचरण करना ही दुख को नष्ट करना हैं।

स्वार्थ धर्म हैं, लेकिन आप घबड़ाते हैं स्वार्थ शब्द सुनकर ही। ऐसा लगता हैं यह तो पाप हो गया, अनाचार हो गया। आप तो मात्र परार्थ को धर्म मानते है और भगवान महावीर स्वार्थ को धर्म मानते हैं। लेकिन कौनसा स्वार्थ ? यह आध्यात्मिक स्वार्थ हैं, सांसारिक स्वार्थ तो पाप ही हैं। आप स्वयं सोचो ! जिसने जीवन में जीने की कला नहीं सिखी, आध्यात्मिक स्वार्थ न साधा हो, तो उसके जीवन में परार्थ आयेगा कैसे ? जो अपना ही न हो पाया, वह किसी का क्या होगा। जो स्वयं ही गरिमा और गौरव से मंडित न कर पाया, वह किसी का क्या गौरवान्वित करेगा। जो स्वयं चलना न जानता हो, वह क्या किसी को चलायेगा। उसके जीवन में तो बीज ही नहीं है, वृक्ष की तो बात ही छोड़ो। भूमि पर आधार ही न रखा हो, तो भवन कहां पर खड़ा होगा। दीवार और पाये ही न होंगे तो लेन्टर कैसे कहां डालोगे, कैसे सुख का भवन खड़ा करोगे ?

दुख क्या है ? स्वयं के आत्मा के अनुकूल आचरण करना जीना सुख हैं और स्वयं के प्रतिकूल आचरण करना दुख है। बस इतना ही जानो, यदि जीवन में दुख है तो समझना कि तुम स्वभाव के प्रतिकूल आचरण कर रहे हो। दुख तो मात्र सूचक है, दुख तो मात्र खबर है कि कहीं कोई कुछ भूल हो रही है। आप धर्म के, आत्मा के अनुकूल नहीं चल रहे, इसलिए दुख है। आचार्य अमित गति सामायिक में 'स्व' की पहिचान बता रहे है, कि तुम्हारा स्वभाव क्या हैं। शरीरगत भेद होंगे, रूप रंग के भेद होंगे लेकिन तुम्हारे और परमात्मा के आत्म-स्वभाव में जरा भी भेद नहीं है। स्वभाव तो सबका एक है। लेकिन कर्मो के कारण से भिन्नता नजर

आ रही है। भेद तो रूप-रंग के हैं, ऊपर-ऊपर के है, आकृति के हैं। लेकिन आकृति में जो निवास कर रहा है उसमें कोई भेद नहीं है।

जिसने निर्विकल्प ध्यान में स्व को पहिचाना है, उसने तत्क्षण ये भी जान लिया है कि स्वभाव तो एक है। वहां अपना पराया नहीं है कोई। जो आप चाहते है वही तो सभी चाहते हैं। आप सुख चाहते है, वैसा सभी सुख चाहते है। आप दुख से बचना चाहते है। वैसा सभी दुख से बचना चाहते है। छोटे से छोटे कीड़े-मकोड़े भी दुख से बचना चाहते है, उसी तरह जसे आप बचना चाहते हैं। भूमि पर खड़ा हुआ वृक्ष भी सुख की वैसी आकांक्षा करता है जैसी आप करते है। प्यासा करता हैं, भूखा होता हैं तड़फता हैं। तृप्त होता हैं, प्रफुल्लित होता हैं तब झूमता हैं। पक्षी भी नाचते है, पक्षी भी रोते है। जब सुख की वर्षा होती है तब नाचने लगते हैं, और जब सुख छिन जाता हैं तो दुखो होते हैं, रोने लगते हैं। अगर इतना प्रगाढ़ सत्य भी हमें दिखाई नहीं पड़ता तो हमारा अन्धापन गहरा हैं।

आचार्य देव कह रहे है कि सामायिक में स्थित होकर स्वयं को ठीक से देखो, तुमने सबके भीतर झाँक लिया, अब अपने भीतर झाँको। यदि आत्मा को पहिचान लिया, तो परमात्मा को पहिचान लिया। अनन्त सुख को पहिचान लिया। स्व को जान लिया विपरीत चलने से मात्र दुख ही पैदा होता हैं।

यह तो सभी जानते है कि दूसरे सभी प्राणी सुख चाहते हैं, जैसा आप चाहते है, लेकिन फिर भी लोग इस ज्ञान के अनुकूल नहीं चलते है। आप लोग सोचने लगते है अगर अपने सुख के लिए किसी को दुख भी देना पड़े तो पीछे नहीं रहूंगा। दूसरा भी सुख चाहता है आप यह क्यों भूल जाते है, उतना जितना आप चाहते हैं। आप के सुखी होने में चाहे सारा संसार दुखी हो जाय, तो भी आप अपना स्वार्थ पहले हल करेंगे। इसका अर्थ हुआ कि आप स्वभाव के, धर्म के, परमात्मा के प्रतिकूल चल रहे है। आपके हृदय में परमात्मा के प्रति आस्था नहीं है, आपके हृदय में परमात्मा विराजमान नहीं हैं।

आप दूसरे को दुख देगे अपने सुख के लिए, लेकिन सिद्धान्त तो यह कहता है कि दोनों की आत्माये अलग-अलग नहीं है, संवेदन एक समान है याद रखो दूसरे को दुख देने का अर्थ है स्वयं के दुखी बनाने का इन्तजाम करना, गड्ढा किसी ओर के लिए खोदोगे, एक दिन खुद को गिरा हुआ पाओगे, क्योंकि यह दूसरा तुमसे पार नही है तुमसे भिन्न नहीं है। तुमसे

जुड़ा है, तुमसे संयुक्त है।

एक भक्त की भक्ति से मन्दिर का देवता प्रसन्न हुआ। वह प्रगट हुआ और कहा, वत्स ! मैं तुम्हारी भक्ति से बहुत प्रसन्न हूँ, मांगो क्या मांगते हो। लेकिन एक बात का ख्याल रखना जो तुम्हें मिलेगा, उससे दुगुना तुम्हारे पड़ौसी को मिलेगा, क्योंकि वह भी मेरा भक्त हैं। असमजस में पड़ गया कि पड़ौसी को मुझसे ज्यादा मिलेगा, हमारा सारा दुख पड़ौसी के कारण ही तो है। उसको दिखाने, नीचा गिराने, उसके अहंकार को चोट पहुंचाने हम सामग्री को एकत्र करते हैं। उसने भी नया मार्ग खोज लिया। वैसे भी मनुष्य खोजशील प्राणी है, वह किसी वकील से मिला, वकील ने सलाह दी, इसमें चिंतित होने की घबड़ाने की बात नहीं है। अगर देवता तुम पर प्रसन्न हैं, एक वरदान मांगने को कहा हैं तो उसे भी अपनी बुद्धि का चमत्कार दिखा दो। देवता से कहना, मुझे जो भी दो उससे दुगुना मेरे पड़ौसी को देना। और उनसे मांगना मेरी एक आँख फूट जाये, मेरे घर के सामने एक कुआं खुद जाय। भक्त बड़ा प्रसन्न हुआ, सोचा चलो अच्छा हुआ आंखो का कांटा तो निकला। "न रहेगा बांस न बजेगी बासुरी"

भक्त मंदिर गया, पुनः देवता प्रगट हुआ, वत्स ! मांगो क्या विचार करके आये हो ? भक्त ने कहा, मेरी एक आँख फूट जाये, उसकी एक आँख फूट गयी, मेरे घर के सामने दो कुआं खुद जाये, कुआं खुद गया. पड़ौसी के घर के सामने चार कुआं खुद गये, अब आप ही सोचो यह कैसा सुख है ? जिसकी एक आंख फूटी हो और घर के सामने दो कुआं हो, वह तो निश्चित ही गिरेगा. स्वय को सुखी बनाने क पूर्व दूसरे को दुख देना यानि अपन लिए दुख का गड्ढा खोदना हैं, सांसारिक सभी सुख अन्त में दुख देते है। आपने अगर दूसरे को चोट पहुँचाई तो चोट आपको ही लगेगी। आपकी हरकते तो छोटे बच्चू के समान है। छोटे बच्चों को टेबल का धक्का लग जाता है, वो गुस्से में आकर टेबल को चाटा मार देता हैं। उसका सोचना ठीक है, टेबल ने गड़बड़ की, मारो. लेकिन जब टेबल को चाटा मारा जाता है तो अपने ही हाथ में चोट लगती हैं, आप उस चोट को झेलने को भी तैयार हो जाते हैं क्योंकि आप सोचते हैं कि दूसरे को मारा, दूसरे को दण्डित किया। जिसने दुख दिया हम भी उसे दुख देंगे, ऐसा आपको एकदम न्यायपूर्ण लगता हैं। लेकिन यह सिद्धान्त है कि दुख दूसरे को दो तो स्वयं पर लौट आता है। जैसे आप नदी में रंग घोल दे, तो सारी नदी में फैल जायेगा, लहरे उसे दूर-दूर तक किनारों तक पहुंचा देगी, इसी प्रकार यदि आपने

संसार सागर में दुख का रंग डाला तो वह सब ओर फैलने लगेगा। इसलिए यदि अनन्त सुख चाहते हो, तो प्राप्त हो सकता लेकिन यह सनातन नियम तुम्हारी समझ में आ जाए जो तुम अपने लिए नहीं चाहते, उससे विपरीत दूसरे के लिए मत करना। ये स्वर्ण नियम। समस्त दर्शन, वेद, पुराण, बाईबिल, गीता, कुरान, समयसार, धम्मपद इसी एक नियम का गुणगान करते है। सभी दार्शनिकों के विचारों का सार इस सूत्र में समाहित है।

पप्पू परीक्षा देकर घर आया। उसने अपने पापा से कहा आपने कुत्ते के उपर जो निबन्ध लिखवाया था, मास्टरजी ने कहा है कि यही निबन्ध तो तुम्हारे बड़े भईया ने भी दो वर्ष पूर्व लिखा था—हुबहू यही, इसमें विराम पूर्णविराम का भी फर्क नही हैं। ये तो एकदम साफ नकल हैं, पापा थोड़ी देर सोचते रहे और उनने कहा कि जाकर अपने मास्टरजी को कहना, नकल नहीं है, ये, मजबूरी हैं कुता वही है, निबन्ध दूसरा लिखे कैसे ?

मैं आपसे कहता हूं जिस दिन आपके पास, श्रद्धा की आँखे होगी उस दिन आप इस एक स्वर्ण-सूत्र में सबको देख लेंगे, कुत्ता वही है सत्य वही है जो अपने लिए चाहते हो, वही सबके लिए चाहे, सबके कहने के ढग अलग-अलग हो सकते है, शब्दो के प्रयोग अलग-अलग हो सकते है, लेकिन उनका अभिप्राय तो एक ही है। तीर के रंग अलग-अलग है, लेकिन लक्ष्य भेद का काम तो एक ही है। आचार्य अमितगति यही कहना चाहते है कि दुखों का अन्त करना चाहते हो, तो योगी बनो. क्योंकि योगी ही परम सुख का, अखण्ड सुख का अनुभव करता है।

भगवान महावीर का कितना प्यारा वचन है "जिओ और जीने दो" यह नहीं कह रहे कि सुख दो, यह कह रहे है कि किसी को दुःख मत दो, अगर तुमने किसी को दुख न दिया तो अपने आस-पास, ईर्द-गिर्द, जीवन के चारों तरफ फूल बरसते पाओगे, फूल खिलते पाओगे, अगर फूल न खिलते हैं तो समझना तुम्हारी अहिंसा वास्तविक नहीं है, तुम्हारा आचरण सम्यक् नही है, दूसरो को दुख न दो, इसमें पूर्ण अहिंसा का पालन संभव है, दूसरे को सुख दो इसमें व्यक्ति अपने सुख के लिए मार्ग खोज लेगा, अहंकार की तृप्ति के उपाय ढूंढ लेगा।

मेरा अपना अनुभव कहता है कि अगर आप सच में ही किसी को दुख न देगे, तो सुख अपने आप देने आऐगा. क्योंकि ऐसा नियम है कि कोई भी जीवन सम्पदा को बांधकर नही रखता है, वह तो बढ़ती है, बिखरती है, फैलती हैं अगर आप सुखी न होगे तो दुखी होगे, अगर

गालिय न दोगे तो आज नहीं तो कल गीत गाओगे। करोगे क्या ? जो शक्ति गाली में व्यर्थ होती थी, अब गीतों में व्यथ होने लगी । अगर निन्दा न करोगे तो प्रशंसा या प्रार्थना करोगे, लेकिन कुछ न कुछ अवश्य करोगे। इसलिए भगवान कहते है कि अगर तुम गलत अपने से नहीं करोगे तो ठीक अपने आप होने लगेगा। क्योंकि जो ऊर्जा गलत दिशा में जा रही थी, वही ऊर्जा सही दिशा में जाने लगी, शुभ दिशा में जाने लगी ।

किसी ने पूछा था सुख क्या हैं ? स्वभाव के, आत्मा के अनुकूल आचरण करना सुख हैं। इसकी कसौटी क्या हैं ? अगर गंगा सीधी बहती हैं, सागर की दिशा में बहती हैं तो आनन्दित होगी, सहज होगी, संगीतपूर्ण होगी। सागर की ओर जा रही हैं, अपने घर की, ओर जा रही है, घर पास आ रहा है। प्रतिपल पुलकित हो रही हैं, नृत्य कर रही है । अगर गंगा उल्टी बहती हैं, तो दुखी होगी, दीन-हीन होगी, परेशान होगी, तनाव से भरी होगी, संतप्त होगी । अगर आप भी अपने स्वभाव के अनुकूल चल रहे है तो आप प्रसन्न होगे, आनन्दित होगे, क्योंकि जीवन गंगा सीधी बह रही हैं। अगर गंगा उल्टी बह रही हैं तो आप दुखी होंगे, पीड़ित होंगे, क्लान्त होगे; परेशान होगे, क्योंकि आचरण स्वभाव के प्रतिकूल हो रहा है अगर आप दुखी हैं, परेशान हैं तो ऐसा समझ कर मत बैठ जाना कि गंगा सीधी बह रही है यानि "आत्मा-शुद्ध हैं" । तब तो संसार से, गन्दगी से, दुर्भाग्य से मुक्त होने का कोई भी उपाय न रहा। स्वयं अपने भीतर कस लेना कि आप शुद्ध हैं या अशुद्ध. आचरण आत्मा के अनुकूल हैं या प्रतिकूल ? सबकी अपनी-अपनी गंगा हैं। अगर विपरीत दिशा में बह रही है तो नियम से दुखी होगी । शीर्षासन में खड़ा व्यक्ति क्या कभी आनन्दित रहा है। शीर्षासन करके जरा खड़े हो जाओ, देखो कितनी देर खड़े रह पाओगे ? जहां-जहां जीवन में आचरण हो जाता है, तो मात्र पीड़ा ही पैदा होती है।

जब कुछ गलत होता है, तो दुख पैदा होता है और सही काम होता हैं तो सुख पैदा होता हैं। सुख स्वाभाविक है, और दुख अस्वाभाविक हैं, दुख तो एक सूचक यंत्र है, जो मात्र इतनी ही सूचना देता है कि जीवन कुछ गलत हो रहा हैं। सन्त क्यों आनन्दित है क्योंकि स्वभाव के अनुकूल जी रहे है । आप दु खी है क्यों कि आप धर्म के प्रतिकूल चल रहे है ।

सुख तो भीतरी अनुभव है इसलिये योगियों के अनुगम्य है। अगर भीड़-भाड़ में, भोग में सुख होता तो महावीर गलत सिद्ध होगे, क्योंकि वे

अकेले हैं। लेकिन सत्य का, सुख का भीड़ से क्या लेना-देना। सत्य तो भीतरी अनुभव हैं, आप मेरी बात न माने, आप स्वयं अपनी जांच-परख करे, अपना अवलोकन करे, अगर दुखी है तो गंगा उल्टी बहरही है। अगर सुखी है, तो बड़े सौभाग्य की बात है। फिर किसी के चक्कर में मत फसना, इन्द्रिय भोग भी मत करना क्योंकि भीतर से सुखी है. स्वाध्याय भी मत करना क्योंकि सुखी हो। स्वाध्याय तो मन को रोकने के लिए किया जाता है, जब सुखी है तो स्वाध्याय की क्या जरूरत हैं ? सुख प्रमाण हैं स्वभाव के अनुकूल आचरण का और दुख प्रमाण हैं प्रतिकूल आचरण का।

अमृत मात्र कल्पना मन की
विष का दावा एकदम सच है
कभी किसी ने चखा न देखा
केवल कहावतों का लेखा-जोखा है
पर विष बिकता चौराहों पर
खाकर लोगों को मरते देखा है
अमृत कल्पना मात्र मन की
विष का दावा एकदम सच है

जिस दिन आपको यह पता चलेगा कि अमृत की बातें तो कहावतों का पुरुस्कार है। कभी किसी ने किसी को अमृत पीकर अमर होते नहां देखा है, इसलिए एक सपना हैं, जहर सत्य है-लोगों को पीकर मरते देखा हैं। जिसने देखा है मरते-उनके हाथ गरल पीनें से रुक गये हैं। फिर कोई जानकर जहर नही पीता है। अगर पीते हैं तो अमृत समझकर। यही स्थिति ससारी प्राणी की है-सांसारिक भोग पदार्थ सुख देते हुए दिखाई पड़ते हैं लेकिन दुख ही देते हैं। लेकिन आप लोग भी बड़ अद्‌भुत है-बार बार उन्ही भोगों में सुख खोज रहे हैं, जहां मात्र दुख ही हैं।

महाभारत में एक कथा आती है पांडव वन में भटक रहे है, अज्ञात वास के समय। उन्हे कसके प्यास लगी हैं। एक भाई झील पर गया। पानी भरने झुक ही रहा था, स्वच्छ, स्फटिक जैसी झील, उत्तप्तकंठ, भाई प्यासे तड़फ रहें हें कि अचानक एक आवाज आई। कोई यक्ष बोला "रूक जाओ, पहले मेरे प्रश्न का उतर दो, बिना उत्तर दीये पानी पीओगे तो मर जाओगे।

पूछा क्या प्रश्न है ? प्रश्न ऐसे थे कि भाई उत्तर न दे पाया और पानी ले जाने की कोशिश की, वही गिर पड़ा। प्रश्न यह था कि मनुष्य के जीवन का सबसे बड़ा चमत्कार क्या है ? ऐसे चार भाई आये और गिर गये, फिर युधिष्ठिर का आना हुआ। पुनः वही सवाल दोहराया यक्ष ने।

ये चार मरे पड़े हैं । यही तुम्हारी भी गति होगी । मेरे प्रश्नों का पहले उत्तर दो, बाद में पानी को हाथ लगाना । क्योंकि यहां मैं उलझन में पड़ा हूँ । उलझन यह है कि मुझे अभिशापित किया गया है कि जब तक मैं इन पांच प्रश्नों के उत्तर न लाऊंगा, तब तक मुझे इसी प्रेतात्मा में आबद्ध रहना पड़ेगा : मैं पूछ-पूछ मरा जा रहा हूँ, लेकिन कोई भी उत्तर नहीं दे पाता । सदिया बीत गई है । अगर तुम उत्तर दोगे तो इस झीले से पानी पी सकोगे । यह झील तरकीब है मेरी और इस झील के आसपास दूर-दूर तक मैंने ही सूखा फैला रखा है, कि जो भी आये प्यासा हो, जल की तलाश में झील तक आयें, मेरे जाल में फंसे । तु दे दो । मनुष्य के जीवन का सबसे बड़ा चमत्कार क्या है ?

युधिष्ठिर ने कहा, मनुष्य अनुभव से भी सीखता नहीं हैं, बस यही सबसे बड़ा चमत्कार है । यक्ष उत्तर से राजी हो गया ।

मनुष्य के जीवन की सबसे बड़ी बेबूफ घटना यही है कि रोज सुख मांगता है, रोज दुखी होता है, फिर भी सुख मांगता है, भोग-भोगता है । सोचता अमृत पी रहा है मुख में, लेकिन वह गरल है । आँखे देख रही है उसके बावजूद भीं विजयासक्त को, सरागी को परमात्मा मान रहा है । आचार्य देव परमात्मा का स्वरूप बता रहे है कि जो तुम्हारे दुखों का नाश करें, वही सच्चा परमात्मा हैं । जो सारे लोकालोक को ज्ञान-नेत्र देख रहा है. वही सच्चा परमात्मा है । और अपने हृदय में विराजमान करो ताकि उल्टी गंगा सीधी बहने लग जाये और तुम दुखों से मुक्त हो जाओ ।

दृष्टि कुंठित श्रवण सोये
भाव पंकिल नयन रोये
काम मथित हो जीवन खोये
सुख कहां पर छिपा हुआ हैं ?
दिख रहे तुम श्वेत से हो
शुभ्र सीप की रेत से हो
चारा कटे खेत से हो
कर रहे हो ध्यान किसका ?
कौन है तुममें विराजित
कर रहा जो तुमको पराजित
हो रहा सुख जिससे बाधित
हाय ये कैसी विवशता है ?

किस बुरे ग्रह ने छुआ है ?
कौन पीछे पड़ा हुआ है ?
क्यों दुख का तांता लगा हुआ है ?
हाय ये कैसी विडम्बना है
सोचकर देखो तनिक तो
बह गया कितना पथिक तो
रो रहा कितना पथिक तो
हर तरफ तम की विरासत.......
क्या सुख कोई कहीं है
काल कवलित जो नहीं है
हर समय जो प्रकाशित
वह कहां है कहां छिपा है ?
उसे व्यर्थ बाहर ढूंढना है
प्रिय इतना याद रखना है
तन्तु प्रेरित गात्र हो तुम
एक पुतले मात्र हो तुम
बहती नदी के पात्र हो तुम
इसलिए इस भव क्षणिका में
जगति की लघु कणिका में
शाश्वतिका श्रद्धा धरो तुम
रंग शाश्वत का भरो तुम
ताकि चिर शर्म मिल जाए
दुःख के बादल छट जाए
सुख अन्यत्र न छुपा हुआ है
सुख तुम में ही भरा हुआ है

बस आज इतना ही
आदिनाथ दिगम्बर जैन नया मन्दिर
प्रतापगढ़ (राज.)

दिनांक १८/८/९१
रविवार

१५

डाकू के भीतर साधु

इतराकर यों राजहंस से कहता आज उलूक
सुन बेटा ! मैं करता हरदम बात खरी दो टूक
राजहवेली में, महलों में मेरा नित्य निवास
ताल-तलैया में करता तू संबुक आज तलाश
कभी किसी युग में मुक्ताहल तू ने चुगे जरुर
अब तो मूंगा मोती के भी दाम बढ़े भरपूर
तू जिसका वाहन है मैं करता उसका व्यापार
सभी मुद्रणालय मेरे, मेरे सब ग्रन्थागार
मेरे हाथ बिके वाणी के साधक सभी समान
नत मेरी बोली के आगे सभी गुणी मतिमान
मैं हूं जिसका वाहन उसका आज विश्वभर पर राज
नाच रहा उसकी इंगित पर सारा सुधी समाज
कोओ-बगुलों का दरबारी तू भी बना निदान
देख रहा क्यों मान-सरोवर का सपना नादान

मूल पद्य :- विमुक्ति–मार्ग–प्रतिपादको यो
यो जन्म-मृत्यु व्यसनाद विमुक्तः
त्रिलोक लोकी विकलोऽकलङ्क
स देव–देवो हृदये ममाऽऽस्ताम् ॥१५॥

हिन्दी पद्य :- जिनके स्वरुप शिवराह प्रकाशपाया
जन्मादि के दुःखों को जड़ से मिटाया
त्रिलोक दर्शी, कलंक न तन को पाते
वह देवाधि देव को हमहिये में बुलाते

अन्वयार्थ - यः — जो

विमुक्ती-मार्ग-प्रतिपादक	मोक्ष मार्ग का पतिपादक है
जन्म-मृत्यु व्यसनात	— जन्म मरणादि दुःखों से
विमुक्तः	—रहित हैं।
(यः) त्रिलोकलोकी	—जो तीनों लोको का अवलोकन करता
विकलः	—शरीर रहित है
अकलंकः	— कलंक रहित हैं
स देव देवः	—वह देवो का देव
मम	—मेरे
हृदये	— हृदय में
आस्ताम्	—विराजमान रहे।

भावार्थ :- जो अनन्त दर्शन ज्ञान और सुखरुप स्वभाव वाला हैं जो संसार के समस्त विकारों से रहित है जो समाधि के द्वारा ही अनुभवगम्य हैं और जिसे योगीजन परमात्मा कहते हैं वह देवाधिदेव मेरे हृदय में सदा विराजमान रहे।

१५

डाकू के भीतर साधु

ओम् नमः सिद्धेभ्यः × ३
धर्मप्रेमी भव्यात्माओ !

भगवान महावीर के समय कि एक घटना से अपनी बात कहता हूँ। उनके समय में एक बहुत बड़ा डाकू हुआ। महावीर से वह बहुत डरता था। क्योंकि जो भी उनके सम्पर्क में आता, बदल जाता। गौतम गणधर महावीर को देखते ही बदल गये थे। वह भी डरता था। वह बूढ़ा हो गया था। एक दिन उसने अपने बेटे को शिक्षा दी कि, देख और सब करना, लेकिन महावीर के दर्शन को, दिगम्बर मुनियों के दर्शन को, दिगम्बर मुनियों के दर्शन को कभी मत जाना। वे सब खतरनाक हैं वे अपने धन्धे के बिल्कुल दुश्मन हैं। इनके पास गये कि मिटे। तो अगर कभी भूल-चूक से भी तुम मंदिर के सामने से गुजरते हो और दिगम्बर मुनि बोलते हों तो अपने कानों में अगुलियां डाल लेना, सामने मुनि दिख जाये तो आंख पर हाथ रख लेना। मैंने स्वयं को बड़ा मुश्किल से बचाया है।

निश्चित ही इस डाकू के भीतर साधु छिपा होगा, तभी तो वह डर रहा था। अन्यथा कौन महावीर से बचता। वह जानता हैं कि महावीर ठीक है, उनका मार्ग ठीक हैं। अगर भूल-चूक से भी बेटा वहाँ चला गया तो उसका धन्धा बन्द हो जायेगा। इसलिए पाप-कर्म करने वाले सन्तों के निकट नहीं आते, उन्हें भय रहता है कि सन्तों के निकट गये तो उनके ही संस्कार

पड़ जायेगे । ये ऊपर से कहते है कि निमित्त कुछ नहीं करता और भीतर से निमित्त के अधीन जीते हैं। जब निमित्त कुछ नहीं करता हैं, तो सन्त चरण में जाने से क्यों डरते हों ? बेटा आखिर बेटा ही था, बाप तो बहुत पुराना डाकू था। वह महावीर से, दिगम्बर साधुओं से बचाता रहा, अपने को। बेटा एक दिन आ रहा था, जैन मंदिर के सामने से गुजर रहा था और एक मुनिराज का उपदेश हो रहा था। चूंकि बाप ने मना किया था, इसलिए मन में और ज्यादा आकर्षण पैदा हो गया कि एकाध शब्द सुन लेने में क्या हर्ज है, ऐसा कोई नियम तो है नहीं कि एकाध शब्द सुन लेने से जीवन बदल जाए, सन्यास पैदा हो जाए।

तो मुनिराज बोलते थे मंदिर में, वह निकल रहा था, एक ही वाक्य कान में पड़ा और पिताजी की याद आ गई, कान में अंगुलियां डाल ली। भाग खड़ा हुआ। लेकिन एक वाक्य कान में पड़ गया। मुनिराज से किसी ने पूछा था, कोई प्रश्न और वे जवाब दे रहे थे। पूछा था देवताओं के सम्बन्ध में, देव होते है तो कैसे होते है ?

फिर काफी समय बीत गया। वह डाकू पकड़ा गया। सम्राट के घर डाका डाला था सम्राट इसके बाप से परेशान था; बाप मर गया। सम्राट परेशान था। वह बहुत होशियार था, वह कहीं भी अपने प्रमाण नहीं छोड़ता था, कभी भी रंगे हाथो पकड़ा न गया था। एक दिन पकड़ में आया। लेकिन उसके खिलाफ प्रमाण एक भी न थे। सम्राट ने अपने कुशल सलाहकारों से सलाह ली, कि इससे सारी बातें उगलवानी है, उसके लिए उपाय बतायें। बामुश्किल हाथ में आया है, इसे सजा देना जरुरी है।

सलाहकारों ने बताया कि इसे खूब शराब पिलाई जाय तथा नगर की सुन्दरतम स्त्रियां इसके सामने लाई जाये, वे इससे प्रेम में, दारु के नशे में सब उगलवा लेगी। उसे खूब शराब पिलाई। शराब पिलाकर महल की सुन्दरतम स्त्रियों को उसके चारों तरफ खड़ा कर दिया। वह बीच में बैठा है, और अप्सराये नाच रही है, ऐसा सुन्दर महल उसने कभी न देखा था, और न इतनीं सुन्दर अप्सराये उसने देखी थी। उसे शक होने लगा कि मैं इस लोक में हूँ, या परलोक में हूँ। उसने किसी से पूछा, कि मैं कहां हूँ। उसे बताया गया कि तुम मर कर स्वर्ग में आ गये हो। और तुमने अपने जीवन में जो भी पाप किये हों उन सबका ब्योरा दे दो, ताकि परमात्मा तुम्हें माफ कर सकें। उसकी कृपा अनन्त है, भयभीत मत हो। तुम अपना एक-एक ब्यौरा खोल दो, बोल दो। जो पाप तुम छिपाओगे वह बचा रहेगा। जो तुम बता दोगे, उससे तुम्हारा छुटकारा हो जायेगा।

तब जरा डाकू चौका। "सब पाप बता दे" तब उसे याद आया, मुनिराज का वह वचन, देवलोक में देवताओं की छाया नहीं पड़ती। तो उसने गौर से देखा कि अगर यह देवलोक है तो फिर स्त्रियों की छाया क्यों पड़ रही है ? वह तुरन्त सम्हल गया। उसे लगा, यह सब धोखा है, मैं नशे में हूं। उसने एक भी पाप के सम्बन्ध में कुछ भी न कहा। उसने पुण्य की बाते बताई, जो उसने कभी न किये थे। उसने कहा, पाप तो कभी किये ही नहीं। मैंने तो आज पहली बार पाप का नाम सुना है। पुनः कहा अपने पाप स्वीकार कर लोगें तो हमेशा को यहां रहने मिल जायेगा, स्वर्ग में तो पुण्यात्मा आते हैं, पापात्मा नहीं। उसने कहां, मैंने पुण्य ही पुण्य किये हैं, तभी तो यहां पर लाया गया हूं। अगर पाप किये होते, तो कब का नरक चला गया होता ?

सम्राट को उसे छोड़ देना पड़ा। वह जाल काम न आया। वह जैसे ही वहाँ से छूटा सीधा मुनिराज के पास गया। उनके पैरों में गिर पड़ा और कहने लगा, तुम्हारे एक वचन ने मेरे प्राण बचाये। अब मैं तुम्हें पूरा पूरा ही सुन लेना चाहता हूँ। इतना ही रास्ते पर अनमने मन से सुना था, जो काम की बात न थी, लेकिन काम पड़ गयी। क्षणिक शब्द का स्पर्श, शब्द का स्मरण, शब्दों का सत्संग काम आ गया। वह भी ऐसा जो मार्ग पर चलते-चलते एक वाक्य सुना था। कि देवताओं की छाया नहीं पड़ती। तब तो सोचा भी न था कि इतना महत्त्वपूर्ण होगा, इतनी सार्थकता होगी, लेकिन डूबते को तिनके का सहारा काम आया। मेरे प्राण बचे। तुमने मुझे बचाया। भयंकर शराब पिलाई थी, नशे में डुबाया था। सारा इन्तजाम किया था और मैं फंस ही गया था, और तैयार ही था बोलने को, ताकि क्षमा कर दिया जाऊं। लेकिन तुम्हारे एक शब्द ने मुझे बचा लिया। अब तुम मुझे पूरा बचा लो ! इस सम्राट से तुमने मुझे बचाया है, अब तुम मुझे मृत्यु से बचा लो। इस छोटी मौत से मुझे बचाया हैं अब बड़ी मौत से मुझे बचा लो सारी मौतों से मुझे बचा लो। अब मैं तुम्हारी शरण में हूं।

साधु का एक वचन भी सुन लिया जाये तो भोगी के, असाधु के जीवन में रुपान्तरण शुरु हो जाता हैं-बीज पड़ गया। आचार्य देव कह रहे है कि अभी तक तुमने सच्चे परमात्मा को जाना नहीं है। पहले उसके स्वरुप को समझ लो। जिसे तुम अपने हृदय में बसाना चाह रहे हो उसकी बावत ज्ञान कर लो।

जो मोक्ष मार्ग का प्रतिपादन करने वाला है, जो जन्म-मरण की पीड़ा से रहित है, जो तीन लोक का दृष्टा है, जो शरीर रहित-अशरीरी है,

और निष्कलंक है, वह देवाधिदेव मेरे हृदय में विराजमान हो।

परमात्मा कैसा होना चाहिए हितोपदेशी। और हितोपदेशी वही हो सकता हैं, जो निष्कलंक होगा। निष्कलंक ही ज्ञाता दृष्टा हो सकता है। क्योंकि उसने संसार को देखा हैं, सारा लोक उसके ज्ञान में झलक रहा है। इसलिए उनके एक-एक शब्द आत्म-अनुभव के रस में पगे, मीठे, मधुर होंगे। आगम में भी लिखा है कि अध्यात्म का उपदेश कौन दे सकता हैं-जो सर्वज्ञ हो वीतरागी हो वही हितोपदेशी हो सकता हैं। उसके उपरान्त तीर्थंकर के अभाव में वीतरागी मुनि ही अध्यात्म का उपदेश कर सकते है। पाक्षिक प्रतिक्रमण में गणधर देव ने इसका खुलासा किया है... ... ...।

प्राज्ञः प्राप्त समस्त शास्त्र हृदयः प्रव्यक्तलोक स्थितिः
प्रास्ताशः प्रतिभापरः प्रमवशान् प्रागेव दृष्टोत्तरः
प्रायः प्रश्नसहः प्रभुः परमनोहारी परानिन्दया्
ब्रूयाद्धर्मकथा गणी गुण निधिः प्रस्पष्ट मिष्टाक्षरः ॥१॥

श्रुतमविकलं शुद्धा वृतिः परप्रतिबोधने
परिणातिरू रुधोगो मार्ग प्रवर्तन सद् विधौ
रनुत्सेको लोकज्ञत्रा मृदुताऽस्मृता
यति पति गुणा यस्मिलन्वये च सोऽस्तु गुरु सताम्। २॥

जो प्राज्ञ है, बुद्धिमान हैं, जिन्होंनें सम्पूर्ण शास्त्रों का रहस्य जान लिया है। जिनके सामने लोक की स्थिति स्पष्ट है, जिनकी समस्त लौकिक आशायें नष्ट हो गई है, जो प्रतिभाशाली हैं, कषाय भाव से रहित हैं, प्रश्नकर्ता के प्रश्न पूछने के पहले ही जिनके पास उत्तर तैयार रहता हैं, जो प्रश्नो को सहन करने वाले हैं समर्थ हैं, दूसरो के चित्त का हरण करने वाले हैं, पराई निन्दा से रहित हैं, गुण निधि हैं, जिनके वचन स्पष्ट और मधुर हैं। ऐसा गणी आचार्य धर्मकथा कहने वाला होता हैं।

जिसका शास्त्रज्ञान निःसंदेह परिपूर्ण हैं, जिसकी मन, वचन और काय की प्रवृति शुद्ध निर्दोष हैं, औरों को बोध कराने में जिसकी परिणति हैं, सन्मार्ग की प्रवृत्ति कराने की प्रशस्त विधि में जिनका भारी उद्योग हैं, जो अपने से बड़ों का विनय करने वाला हैं, अहंकार रहित हैं, जिसमें लोकज्ञता हैं, मृदुता हैं जो स्पृहा से रहित हैं, जिनमें अनेक यतिपतियों के गुण विद्यमान हैं, वह सज्जन पुरुषों का, मुनियों का गुरु होता हैं।

गौतम गणधर कह रहे कि वही आध्यात्म का प्रवचन करे जिसने समस्त शास्त्रो का सार, समस्त पुराणो का निचोड़; बीतराग चरित्र को अपने भीतर उतार लिया हो, समस्त संकल्प-विकल्प से, विषय आशा से ऊपर उठ गया हो। शास्त्र खिलवाड़ का, मनोरंजन का विषय नहीं, आत्म जागरण का हेतु हैं।

ज्ञान से मोक्ष होता है, ऐसा आगम कथन हैं, लेकिन कौन से ज्ञान से, मोक्ष होता हैं, स्वसंवेदन ज्ञान से और वह स्वसंवेदन ज्ञान निर्विकल्प समाधि में समस्त परिग्रह त्याग के उपरान्त होता है। आत्म-ज्ञान को यहां स्वीकार किया हैं।

> तमित्यं भूतमात्मानम् आहर भय मैथुन परिग्रह संज्ञा स्वरुप
> प्रभृति समस्त संकल्प विकल्प कल्लोल जालं त्यक्त्वा
> जानाति यः स पुरुष एवं ज्ञानादभिन्नत्वात् ज्ञानं भव्यतेइति

ऐसी आत्मा को जो पुरुष आहार, भय, मैथुन, परिग्रह रुप चार वांछाओ स्वरूप आदि समस्त विकल्पो की तरंगो को छोड़कर जानता हैं वही पुरुष ज्ञान से अभिन्न होने से ज्ञान कहा जाता हैं।

आत्म-ज्ञान ही तो साधक की सम्पदा है, वही शुद्धज्ञान केवलज्ञान का बीज हैं, कारण हैं, निमित्त हैं। आप आचार्य कुन्द-कुन्द के जिस समयसार को पढ़ते हैं, वह साधारण कृति नहीं हैं, असाधारण ग्रन्थ हैं। इसलिए असाधारण कहा कि समयसार को स्वयं कुन्दकुन्दाचार्य ने नहीं गाया। वे तो आत्म-ध्यान मे खामोश बैठे थे, वे तो अपनी तन्हाई में डूबे थे, वे तो अपने एकान्त में मस्त थे, वे तो अपने भीतर का रसपान कर रहे थे, आँख-द्वार-दरवाजे सब बन्द करके, वे तो अपने अन्तर गुहा में बैठे थे, तब उनकी आत्मा से समयसार का झरना सहज फूट पड़ा। तब हृदय नाद अपने-आप गा उठा। तब यह अपूर्व वचन प्रगट हो पड़े। इसलिए उनके वचनो में जो सौन्दर्य. प्रगट हुआ हैं, जो निर्दोषता है, जो सरलता है, वह किसी-किसी महान-आत्मा में कभी-कभी प्रगट होती है।

कुन्दकुन्दाचार्य के वचनो का सौंदर्य भोगियो ने कुरुप कर डाला, असाधारण वचनो को साधारण बना डाला। उनकी गहराइयो को समझने के लिए योगी बनना होगा। कितना माधुर्य है उनके वचनो में, कितना रस है समयसार की गाथाओ में, क्योंकि ये गाथाएँ उनके प्राणों का स्पन्दन है, ये गाथाएँ उनके दिल की धड़कन है। इन गाथाओं में उनकी चेतना की

गहराई समायी हुई है। तभी तो ये दो कोड़ी के, ओछे लोग, उथले लोग उन्हें समझ नहीं पाये। समयसार की गहराई में उतरने के लिए उन्हें कहना पड़ा कि..........।

एवं पणमिय सिद्धे, जिणवर बस हे पुणों-पुणों समणे ।
पडिवज्जदु सामण्णं जेदि इच्छादि दुख परिमोक्खं"

यदि मुक्ति चाहते हो, परमात्मा को चाहते हो, तो मुनि बनो, जिनेन्द्र को नमस्कार करो, बार-बार मुनियों का सत्संग करो, समागम करो, यदि दुख से मुक्त होना चाहते हो तो।

"विमुक्ति मार्ग प्रतिपादको यो"

मुक्ति के मार्ग का, आध्यात्म का प्रतिपादन करने वाले है। कौन कर सकता हैं। मोक्ष-मार्ग का प्रतिपादन जो जन्म मरण से रहित है, अमल हैं, विमल हैं और निष्कलंक है। भोगी-असंयमी नहीं कर सकता। योगी ही मोक्ष मार्ग का निरुपण कर सकता हैं। तभी तो आचार्य कुन्दकुन्द का समयसार जब भी कोई पढ़ता हैं, हमारी समझ में आये या न आये फिर भी हृदय को छू जाता हैं, मन मस्त होने लगता हैं। भले ही प्राकृत भाषा का अर्थ समझ में न आये फिर उनकी गाथाएँ दिल को हिला डालेगी, क्योंकि ये गाथाऐ आत्म गहराई से पवित्र चित्त से सहज पैदा हुई ई। ऐसी गाथाओं का, समयसार का आनन्द लेने के लिए स्वयं कुन्दकुन्द कह रहे हैं कि योगी बनो। अगर दुख से मुक्त होने की आकांक्षा पैदा हो गई हो तो बार-बार मुनियों की शरण कहो। मुनिराज ही चेतना की गहराई का उद्घाटन करते हैं, समयसार की गहराई को योगी ही समझ सकते हैं, भोगी नहीं।

आचार्य अमितगति कहते हैं कि हे परमात्मा! मेरे हृदय में बस जाओ, कहां सिद्धालय में बैठे हो। आप तो जन्म-मरण से रहित हो गये है। अब आपका तो कुछ बिगड़ने वाला नहीं हैं, लेकिन आपके विराजने से मेरा कुछ बनने वाला है। मैं जन्म-मरण से मुक्त हो जाऊंगा। मुझे आपसे वह कला सीखनी है, वह साधना सीखनी हैं, जिस साधना से तुम ने जन्म मरण को पराजित किया हैं। और यह साधना तो मात्र वीतरागी महासन्त ही सीखा सकते हैं। अगर मुनि आस्था न हो, सन्त न हो मौजूद, तो तुम परमात्मा की कितनी गुहार लगाओ, स्वाध्याय करो गुण गाओ सब प्रपंच हैं। सब व्यर्थ है। पूजा, उपासना, स्वध्याय सार्थक तभी हैं जब परमात्मा को

जानने वाला हो तुम्हारे साथ । परमात्मा जिसके भीतर घटा हो, उसकी उपस्थिति में तुम्हारे भीतर भी कुछ घट सकता है । "पुरण-पुरण सामणं" बार बार मुनियों के चरणों में जाओ, उनकी सत्संग करो ।

"जयि इच्छदि दुक्ख परिमोक्खं"

यदि दुख से, जन्म-मरण से मुक्त होना चाहते हो, तो सन्तों की शरण गहो । बड़े प्यारे वचन हैं ! खूब-खूब ध्यान करना इन वचनों का । स्वयं में गहरे उतरने देना इन वचनों को । इनका रस तुम्हारी पोर-पोर में समा जाए, कि बिना सन्तों के, शास्त्र बेकार हैं, वेद कुरान बाईबिल, नियमसार, समयसार सन्त आस्था के बिना कोई सार नहीं रखते । इनमें क्या पड़ा है ? ये तो मात्र नक्शे हैं । और नक्शा असलियत नहीं है । जैसे भारत का नक्शा भारत नहीं है, भारत तो भूमि पर बसा है । ये सारे शास्त्र तो नक्शे है और सन्तों को तो सत्य मिल गया है, तुमने नक्शे की अनुभूति कर ली है । यदि तुम भी नक्शे में अंकित भारत को देखना चाहते हो, तो जानकार के चरणों में जाओं । असंयमी पंडित, असंयमी गुरु असली भारत को यानि परमात्मा को नहीं बता सकेंगे, नहीं दिखा सकेंगे । संत बोलते है, तभी तो शास्त्र बनते है, पंडित क्या जाने शास्त्र की अनुभूति जिनसे शास्त्र पैदा हुए है, उनके पास जाओ तभी कुछ घट सकता है अन्यथा नहीं । किसी कवि की रचना पढ़ता हूँ —

इतराकर यो राजहंस से कहता आज उलूक
सुन बेटा ! मैं करता हरदम बात खरी दो टूक
राजहवेली में, महलों में मेरा नित्य निवास
ताल-तलैया में करता तू संबुक आज तलाश
कभी किसी युग में मुक्ताहल तू ने चुगे जरूर
अब तो मूंगा मोती के भी दाम बढ़े भरपूर
तू जिसका वाहन है मैं करता उसका व्यापार
सभी मुद्रणालय मेरे, मेरे सब ग्रन्थागार
मेरे हाथ बिके वाणी के साधक सभी समान
नत मेरी बोली के आगे सभी गुणी मतिमान
मैं हूँ जिसका वाहन उसका आज विश्वभर पर राज
नाज रहा उसकी इंगित पर सारा सुधी समाज
कोओ बगुलो का दरबारी तू भी बना निदान
देख रहा क्यों मान सरोवर का सपना नादान

बन जा गोरी निपुण स्वामिनी का अब तू भी भाट
पोखर में सड़ने से अच्छा गा उसका ही ठाट
वही गा रहे आज गिरा की वाणी के सब तार
सुन बेटा ! मेरी देवी की जय-जयकार अपार

वर्तमान में उल्लू हंसो को समझा रहे हैं।

इतराकर यों राजहंस से कहता आज उलूक
सुन बेटा ! मैं करता हरदम बात खरी दो टूक

असंयमी भोगी, सद्गुरू, असंयमी पंडित-पुजारी ये अन्धे लोग, जिन्हें दिन में भी नही सूझता ऐसे उलूक है, लेकिन ये समयसार को समझा रहे है, सारी दुनियां को समझा रहे है कि यह पंचमकाल है इस समय सच्चे मुनि नहीं होते इसलिए मात्र स्वाध्याय करो। त्याग तो बन्ध में कारण है। अब तो जो हम कर रहे हैं वही तुम भी करो जो स्वाध्याय हम करते है, तुम भी करो, जो शुद्ध-बुद्ध हम रहते है तुम भी रहो, इसी से मिलेगा शुद्धात्मा इसी से मिलेगी मुक्ति। हम जो शास्त्र पढ़ते है उसे तुम भी पढो, कण्ठस्थ करो। हम जिस असंयमी गुरू के भक्त है, और हमारा गुरु जिस ज्ञान की देवी के तलुवे चाट रहा है तुम भी चाटो। हमारे जय—जयकार में तुम भी शामिल हो जाओ, तो सम्यकदर्शन पा जाओगे। मत सपने देखो मान-सरोवर के। अभी वह काल नहीं है, जब हस मोती चुगता था। अब तो हंस ताल-तलैयों के गन्दे तट पर बैठा है। इस काल में मुक्ति नही है व्यर्थ तप-त्याग के चक्कर में मत फंस जाना।

लेकिन तुम्हारे प्राण उन उल्लुओं की बातों से तृप्त नहीं हो सकते प्राण तो मान सरोवर का ही सपना देखेंगे। सपना देखते रहना मान सरोवर का, यानि दिगम्बर मुनि बनने का और अगर कभी कोई मान सरोवर का जानने वाला दिगम्बर मुद्रा का धारी सन्त मिल जाए तो पकड़ लेना उनका संग साथ होते ही तुम्हारा मोक्ष-मार्ग भी शुरू हो जायेगा, तुम्हारी जीवन यात्रा का शुभारंभ हो जायेगा चरन परमात्मा की ओर चल पड़ेंगे। बुन्द सागर की यात्रा पर निकल पड़ेगी।

बिना दिगम्बर मुनियों के, बिना सन्तों के बिना पदप्रदर्शन के जो मान सरोवर की अनुभूति में डूबा है, मान सरोवर तक, आत्मा तक न पहुंच सकोगे रास्ते में भटकाने वाले बहुत है अटकाने वाले बहुत है। क्योंकि आप भटके और अटके, इसमें उनका स्वार्थ सिद्ध होता है। आप सत्य को पाओ इसमें उनका स्वार्थ सिद्ध नहीं होता, आप मुनि बने इससे

उनका स्वार्थ सिद्ध नहीं होता। आपको तो वही पहुंचा सकता है जिसका अपना कोई स्वार्थ न हो। स्व ही नहीं रहा तो अर्थ कहां रहेगा। स्वार्थ तो वहां रहता है जहाँ इच्छाये, कामनाये करती हैं। जिनके अन्दर भोग आस्था जीवित है, त्याग आस्था मर चुकी है, सन्त चरण से कोसों दूर है, महत्वाकांक्षा से भरपूर है ऐसे लोगों को..........

जरा सा सम्मान मिला फूल गये।
जरा सी सम्पत्ति मिली बेकाबू हो गये।
जरा सा ज्ञान मिला, उपदेश की भाषा सीख ली।
जरा सा यश मिला, दुनियां पर हसने लगे।
जरा सा रूप मिला, दर्पण ही तोड़ डाला।
जरा सा अधिकार मिला, दूसरों को तबाह कर डाला।

भला ऐसे लोग जो रागी है, विषयों में डूबे है वे क्या मार्ग-दर्शन कर सकते है, वे क्या जन्म-मरण से रहित बना सकते है ? जो स्वयं रागी है, वे क्या दूसरों का इलाज कर सकगें? ऐसे असंयमी-सद्गुरू-परमगुरु कहलाने वाले तो चलनी से पानी भरने जैसे है। भरते तो बहुत, मेहनत तो बहुत करते है, लेकिन विषयों की चलनी में क्या कभी पानी ठहरा है ?

वो तमाम् उम्र चलनी से पानी भरते रहे।
अपनी समझ से बहुत बड़ा काम करते रहे॥

सत्य तो हृदय में घटता है, और हृदय तक पहुचने का द्वार स्वाध्याय नहीं; निर्विकल्प त्यागमय ध्यान है। हृदय में जाने का द्वार शास्त्र नहीं, सन्त प्रेम है सन्त-आस्था है।

अगर आपका स्वाध्याय सच्चा है, सन्त आस्था आपके भीतर उछाले मारने लगेगी, शब्द का सार, ग्रन्थ का सार गूंजने लगेगा त्याग के लिए मन मचलने लगेगा, तब आपको उल्लुओं की असलियत का पता चल जायेगा और ऐसा महसूस होगा कि आज तक हम चलनी से पानी भरते रहे। शायद इस आशा से कि कभी तो पानी ठहर जायेगा, काललब्धि छिद्रों को बन्द कर देगी। जब कोई समीचीन पात्र लेकर आता है तब अपनी चलनी के छिद्र दिखाई पड़ते हैं, कुए से पानी तो बाल्टी से ही निकाला जा सकता है। परमात्मा के कुये से पानी तप त्याग की बाल्टी से, सन्तों की मुनियों के माध्यम से ही निकाला जा सकता है। अभी तो तुम्हारे भीतर असंयमी के शब्दों का शोरगुल, विषयों का शोरगुल गुंज रहा है,

इसलिए सन्तों की आवाज सुनाई नहीं पड़ रही हैं। अभी तो तुम्हारे भीतर भोगों का बाजार लगा हुआ है और उस बाजार को बढ़ाते जा रहे हो, कैसे आवाज सुनाई पड़े मुनियों की अभी तुम्हारे भीतर गीता, कुरान, वेद, मोक्ष मार्ग प्रकाशक गुंज रहे है, मस्तिष्क में शब्द गुंज रहे हैं, अब हटाओ उन सब को, हटाओ व्यर्थ के शास्त्रों को, हटाओ शब्दों को तो सारे का सार, शब्दों का सार तुम्हें उपलब्ध हो जाए, तो उस दिन तुम जानोगे कि सन्त में और परमात्मा में भेद नहीं हैं।

अभी तो तुम पंडित पुरोहित के चक्कर में फसे हो। उन्होंने धर्म को भी एक व्यवसाय बना लिया है। धर्म के नाम पर व्यापार आसानी से चलता हैं, क्योंकि परमात्मा के प्रति लोगों की आस्था हैं। धर्म के नाम पर जितना धोखा सभव है, किसी और चीज के नाम पर संभव नहीं हैं। ऐसे असंयमी–सद्गुरू कहलाने वालो से थोड़ा जागो और आपको जगाने के लिए ही परमात्मा का स्वरुप बताया जा रहा हैं। आश्चर्य तो यह हैं कि जिन्होने जाना नहीं है, वे दूसरो को जना रहे हैं, जिन्हे मिला नहीं हैं वे दूसरो को मिलवा रहे हैं। जिनके पास जरा भी नहीं हैं वे केवल शास्त्रों के आधार पर लोगों को समझा रहे है। इसलिए आप सन्तों से कतराकर दूर भाग रहे हो।

और आचार्य देव कह रहे है कि हे परमात्मा! तुम सदा के लिए मेरे हृदय में विराजमान हो जाओ, ताकि में इन पाखंडियो से बच सकूं और तुम्हारे ज्ञान के प्रकाश में सत्य-असत्य का निर्णय कर सकूं। जीवन का सम्यक् पथ चुन सकूं। अगर आपने सन्त चरण नहीं पखारे, सन्तो को हृदय में नहीं बिठाया तो तुम्हारा परमात्मा तुमसे पूछेगा, तब तुम क्या उत्तर दोगे जरा सोचो ?

मुनि—सन्तो की ओर न तुमने कभी निहारा।
जब पूछेगा परमात्मा
क्या उत्तर होगा तुम्हारा ?
जिन सन्तों का प्रेम निमंन्त्रण
तुमने था ठुकराया
उन सन्तों में त्यागमय
एक रुप था मेरा
तुम भोग के भ्रम में खोये
मुझे नहीं पहचाना

असंग लगा दिगम्बर ताना-बाना
जबकि उसका ही था यह बाना
जिन सुमनों का पूजन-अर्चन
तुमको नहीं सुहाया
उन सुमनों में सुन्दर सुरभिमय
एक सुमन था मेरा
दिव्य त्याग को मात्र बन्धन
कहकर तुमने टाला
त्याग को हेय बता
मुक्ति पथ विकृत कर डाला
जो त्यागमय सुरधनु जीवन
तुम्हें लगा मात्र सपन है
वह रंगमय एक सपन था मेरा
तुम निश्चय के पीछे भूले
व्यवहार की गुरु गरिमा
रटा-रटाया ज्ञान बन गया
जड़-चेतन की जड़ सीमा
रत्नत्रय का उपहास उड़ाया
कहकर जड़ की माया
उन रत्नों में ज्योतित चिन्मय
जीवन भरा था मेरा।

डाकू के भीतर साधु छिपा था और आपके भीतर आपका परमात्मा छिपा है। उसे प्रगट करने के लिए प्रगट परमात्मा की आवश्यकता है। उसे तो वही जगा सकता है। जिसने उसे जाना है, जो उसमें जिया है, जिसने अपने भीतर उसे उतारा है। उनका मार्ग-दर्शन लो, उन्हें अपने हृदय में उतारो। डाकू के भीतर जो साधु छिपा है उसे बाहर निकालो। भोगों के डाकू ने जो परमात्मा रुप साधु को कैद कर रखा है उसे मुक्त करो। तुम्हारे भीतर बैठा साधु कभी-कभी आवाज भी लगाता है लेकिन तुम उसकी सुनते कहां हो, उसकी आवाज तुम्हारे कानों तक पहुंच ही नहीं पाती है। इसलिए कहना पड़ा कि मेरे हृदय में विराजो और सदा सावचेत, सावधान करते रहो ताकि.......... ....?

बस आज इतना ही — दिनांक १९-८-९१
आदिनाथ दिगम्बर जैन नया मंदिर — सोमवार

१६

चरम निष्कर्ष

एक बार नारद को यह अभिमान हो गया कि वे भगवान को सबसे ज्यादा प्रेम करते है। भगवान ने इस बात को जाना। नारद को साथ लेकर एक दिन वे भ्रमण को निकले। रास्ते में एक तपस्वी मिला जो रुखे-सुखे पत्ते खाता था और तलवार चलाने का निरन्तर अभ्यास करता था। नर-वेषधारी भगवान ने इन दोनों बातों का कारण पूछा। तपस्वी ने बताया महाराज ! सूखे-पत्ते मैं इसलिए खाता हूँ कि फल-फूल परमात्मा के दूसरे पुत्रों के खाने के लिए बचे रहे और तलवार का अभ्यास मैं अपने शत्रुओं को मारने के लिए करता हूँ। भगवान ने पूछा, तुम्हारे शत्रु कौन कौन हैं ? पहला अर्जुन जिसने भगवान से रथ हंकवाकर उन्हें कष्ट दिया, दूसरा द्रोपदी जिसने मेरे भगवान को नंगे पैरों दौड़ाया और तीसरा नारद जो अकारण ही अनेकों प्रश्न पूछ-पूछ कर भगवान का सिर खाता रहता है।

मूल पद्य :- कोडीकृताऽशेष-शरीरि-वर्गाः
रागादयो यस्य न सन्ति दोषाः
निरिन्द्रियो ज्ञान-मयो-नपायः
स देव-देवो हृदये ममास्ताम् ॥१६॥

हिन्दी पद्य :- रागादि दोष जिनने सब जग हराया;
है एक आप जिनमें आश्रय न पाया।
इन्द्रिय विहीन औ' ज्ञान सुख सुभाते,
उस देवाधिदेव को हम हिय में बुलाते ॥

अन्वयार्थ :-

कोडीकृताऽशेष	— समस्तप्राणि वर्ग को व्याप्त
शरीरि वर्गाः	— करने वाले
रागादयो	— रागादिक
दोषाः	— दोष
यस्य	— जिसके
न सन्ति	— नहीं हैं।
सः	— वह
निरिन्द्रियः	— अतीन्द्रिय
ज्ञानमयः	— ज्ञानमयी
अनपायः	— अपाय रहित
देव देवः	— देवों का देव
मम, हृदये	— मेरे हृदय में
आस्ताम्	— विराजमान रहे।

भावार्थ :- समस्त प्राणीवर्ण को अपने अधीन करने वाले रागादि दोष जिनमें लेशमात्र भी नही है। जो अतीन्द्रिय है। ज्ञानमयी है। और सर्व अपायों से रहित है। वह देवाधिदेव मेरे हृदय में सदा विराजमान रहें।

१६

चरम निष्कर्ष

ओम नमः सिद्धेभ्यः ३
धर्म प्रेमी भव्यात्माओ !

एक दिवस एक आदमी की पत्नी खो गई। घटना कोई साधारण तो थी नहीं। पति घबड़ा गया। किसी को मुंह दिखाने लायक न रहा। काफी लोग पूछने आये कि मामला क्या है ? लोग तो ऐसे मामले में पूछने जरुर आते है। यह तो उत्सुकता का विषय है, बड़ा रस है ऐसी घटनाओं में। वैसे कभी सुख-दुख का हाल पूछने न आयेंगे, लेकिन ऐसे मामलों में हमदर्दी दिखाने वाले ज्यादा आयेंगे, काफी लोग आये पूछने कि मामला क्या है ? वह क्यों भाग गई ? कैसे भाग गई ? पति से मित्रों ने पूछा, क्या कभी आपस में कहा-सुनी हो गई थी ? वह मित्रों को उत्तर देते-देते काफी परेशान हो गया। लोगों ने सलाह दी कि आप शीघ्र थाने में जाकर रिपोर्ट दर्ज कराये। मामला बहुत गम्भीर है, साधारण न समझे ' लोगों से परेशान होकर, लोगों के कहने पर रिपोर्ट दर्ज कराने पुलिस थाने गया। थानेदार ने पूछा, कब खोयी ?

इतने दिन क्या कर रहे थे ? तुम्हें दस दिन बाद होश आया ? क्या शराब पी ली थी ? नहीं। मुझे विश्वास ही नहीं हो रहा था कि पत्नी भाग जावेगी। यह मेरा सौभाग्य कहां। जब मुझे पूर्ण विश्वास हो गया कि

वह भाग गई है, अब मिलना असंभव है इसलिए रिपोर्ट लिखाने आ गया हूँ।

थानेदार ने पूछा, उसकी लम्बाई क्या थी ? पति ने कहा. इतने कठिन सवाल मत पूछो। क्या कभी कोई अपनी पत्नी को नापता है। लगभग मंझोले कद की रही होगी।

थानेदार—जब घर से भागी तब कौनसी साड़ी पहने थी ?

पति—इसका तो मुझे जरा भी ख्याल नहीं है।

थानेदार—आपकी शादी कब हुई थी ?

पति—पांच साल पहले,

थानेदार—उसका चेहरा कैसा हैं ? मैंने अभी तक ध्यान से नहीं देखा

थानेदार – उसकी आवाज कैसी हैं ? कभी ध्यान से नहीं सुना। जब कभी भी वह बोलती थी, तो मैं अखबार पढ़ने लगता था, या रेडियों सुनने लगता था।

थानेदार – जब आपको उसका चेहरा रुप-रंग कुछ भी मालूम नहीं है, तब आपने उसे शादी से पहले कैसे पसन्द कर लिया ? कम से कम शादी के पहले तो उसे देखा होगा, बातचीत की होगी ? पति-उस समय उसका चेहरा नीचे थे, जवानो में किसे होश रहता है। उसका सिर नीचे था, वह सिर हिलाकर इशारे से बात कर रही थी। शादी के पहले लड़की सिर हिलाती है और शादी के बाद जबान चलाती हैं। और पुरुष शादी के पहले जबान चलाता है तथा शादी के बाद सिर हिलाता है।

थानेदार— अजीब आदमी है आप ! पांच साल हो गये शादी हुए और आज तक अपनी पत्नी को नहीं पहिचान पाये।

पति श्रीमान् अगर मैं उसे पहिचान गया होता तो वह घर से भागती ही क्यो, मैं खुद ही घर से भाग जाता। मैंने उसे आज तक ध्यान से नहीं देखा। "कब कौन अपनी पत्नी को ध्यान से देखता हैं ?" इसलिए मैं उसकी पहिचान ठीक से नहीं लिखा सकता।

थानेदार ने झल्लाकर कहा, पाँच पर्ष से उसके साथ हो, कोई न कोई खास पहिचान तो होगी, जरा सोचकर बताओ ?

पति—उसकी आवाज बुलन्द हैं, दहाड़ने से छाती कंप जाती हैं, वह मेरे कुत्ते को साथ ले गई हैं।

थानेदार— कुत्ते की रिपोर्ट लिखा दो-कुत्ता काले रंग का है, झबरा हैं, मोटा हैं, गले में लाल रंग का पट्टा हैं, उसका नाम मोती है। कुत्ते में लोगों की उत्सुकता हैं, पत्नी में नहीं। लोगों की उत्सुकता भौत्रिकता में हैं, धर्म में नहीं। कौन देखता हैं अपनी पत्नी को ध्यान से, प्रेम से।

उसने थानेदार से कहा, मैं कुत्ते की बाबत तो बता सकता हूँ लेकिन पत्नी की बाबत नहीं। मैं कुत्ते को अच्छी तरह जानता हूं, आप उसकी बाबत जो भी पूछेंगे बताऊंगा। थानेदार ने उसे थाने से बाहर निकाल दिया।

बस यही स्थिति हमारी हैं। हम सबको जानते हैं पहिचानते हैं लेकिन एक मात्र अपनी आत्मा को, परमात्मा को नहीं पहिचानते। घर की, दुकान की, संसार की प्रत्येक वस्तु से अच्छी तरह परिचित है। एक भी भव, एक भी योनी, एक भी पर्याय ऐसी नहीं जहाँ इसका परिचय भोगों से न हुआ हो। समयसार में कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि..........

सुदपरिचिदाणु भूदा सव्वस्स वि काम भोग बंध कहा।
एयत्तस्सु वलंभो णवरि वा सुलहो विहत्तस्स ।।

काम-भोग सम्बन्धी कथा सभी जीवों की सुनी हुई है, परिचित है और अनुभव में आई हुई है, केवल रागादि से भिन्न एकत्व की प्राप्ति सुलभ नहीं है।

संसार का सुख-दुख तो सम्पूर्ण प्राणी भोगते ही है। कुत्ते-गधे भी भोगते है; वृक्ष भी भोगते हैं; कीड़े-मकोड़े भी भोगते है। अगर तुमने भी वही भोगा, तो तुमने मनुष्य पर्याय पाकर क्या किया ? मनुष्य जन्म तो दोषों से दुख-सुख से मुक्त होने को मिला हैं।

नफा हो गया, नुकसान हो गया, संयोग हो गया, वियोग हो गया, आज तो बड़ी मौज हो गयी, कल बड़ा दुख हो गया, आज बड़ा लाभ हो गया, कल बड़ी हानि हो गई। आज थोड़ा हंस लिया, कल ज्यादा रो लिया ऐसे दिन तो सभी देखते है; मानते है। देवताओं को देख लो, नारकियों को देख लो, राम-रावण, कृष्ण-कंस, पांडव-कौरव का जीवन देख लो। चौरासी लाख योनियों के जीव का इतिहास पलट लो, पढ़ लो। किसी काभी इतिहास देख लो, अगर ऐसे थपेड़े तुम खा रहे हो, तो तुम व्यर्थ पैदा हुए हो। यही चीज तो किसी भी योनि में, किसी भी गति में मिल जायेगी। क्योंकि आहार भय, मैथुन-परिग्रह संज्ञा चारो गति के जीवो में समान होती है। यहां काम तृप्ति को नारी मिली है, ऊंट बनोगे तो वहां ऊटनी मिल जायेगी, शेर बनोगे तो शेरनी मिल जायेगी, गधा बनोगे तो गधी मिल जायेगी, कुत्ता बनोगे तो कुत्ती मिल जायेगी, चिड़वा बनोगे तो चिड़िया मिल जायेगी, काम तृप्ति का कोई न कोई साधन जरुर मिल जायेगा। चाहे सूअर हो जाये, चाहे कुत्ता हो जाए, चाहे गधा हो जाए, चाहे हाथी हो जाय अर्थात ये भोग किसी भी योनि में दुर्लभ नहीं है। यदि मनुष्य भव में भी आकर इस नर-रत्न को

काम-भोग में विषय-संयोग में शराब-कबाब में लगा दिया तो जीवन के स्वर्ण पात्र में विष भर लिया ऐसा जानो। मनुष्य भव में दुर्लभ है संयम-आत्म ज्ञान-समाधि-सम्यग्दर्शन-ध्यान एक ऐसा आनन्द जहां जरा भी दुख-क्लेश का जरा भी लेश न हो। ऐसी परम प्राप्ति का नाम ही परमात्मा है।

परमात्मा कौन हैं ? क्रोडीकृता शेष शरीरवर्गाः
राागाद्यो यस्य न सन्तदोषाः ॥

संसारी प्राणी जिन दोषों के, भोगों के, रोगों के, कमियों के, वासनाओं के आधीन, है गुलाम है, दास हैं, सेवक है, किंकर हैं ऐसे दोष जिनमें नहीं है वो ही परमात्मा है। अगर परमात्मा भी दोषी है, कर्मों से लिप्त है तो फिर हममें और उसमें क्या अन्तर है। कोई मात्र शक्ति सम्पन्न होने से थोड़े न परमात्मा हो जाता है। परमात्मा तो वह हो सकता जो अपनी आत्मा का मालिक बन गया है, स्वामी बन गया है, समस्त दोषों से ऊपर उठ गया हैं। यही तो परमात्मा की पहिचान हैं। जब साधारण सी स्त्री की पहिचान होती है, साधारण से मनुष्य की पहचान होती है, तब क्या परमात्मा की पहचान न होगी ? उसके विशेष लक्षण न होंगे ? वह सबसे भिन्न न होगा ? पहिचान कर, जानकर, समझकर परमात्मा को नमस्कार करो, किसी भी अद्वा-तद्वा रागी-दोषी को परमात्मा मत मान लेना अथवा तुम्हारी ही फजिहत होगी -

नगर में एक कुम्हार था, उसे अपने गधे से बहुत प्रेम था। एक दिन अचानक उसका गधा मर गया। कुम्हार के तो प्राण ही सूख गये। होशो हवास उड़ गये। उसके वियोग में दहाड़े मार कर रोने लगा। हाय गन्धर्वसेन तुम मर गये। अब हमारा जीवन कैसे चलेगा ? हाय गन्धर्वसेन ! लोगों ने सुना, वे भी काफी दुखित हुए। लोगों ने समझा कि गन्धर्वसेन नाम का साधु मर गया है। काफी नाम था, बहुत काम करता था वह। अब लोग किसके पास अपना दुखड़ा सुनायेंगे, कौन उनके दुख दूर करेगा। लोग भी उसके साथ-साथ रोने लगें। एक से दो हुए, दो से चार हुए, चार से आठ हुए, देखा-देखी सारा नगर रोने लगा। लोगों ने अपने-अपने सिर मुढ़ा लिये। नगर का थानेदार भी प्रभावित हुए बिना न रह सका, उसने भी अपना सिर मुढ़ा लिया, उसकी देखा-देखी सबने सिर मुढ़ा लिये। अकस्मात नगर का सम्राट नगर भ्रमण को निकला। उसने देखा आज सारा नगर रो रहा है। मंत्री से कहा, जाओं पता लगाओ, क्या कारण है ? थानेदार से पूछा गया, क्या बात है ? आज सबने सिर क्यो मुढ़ाया है, किसलिए सब रो रहे है ? थानेदार ने कहा, गन्धर्वसेन मर गया है। यह गन्धर्वसेन कौन है ?

अपने नगर के बाहर बहुत बड़ा तपस्वी रहता है, वही हैं। यह खबर तुम्हारे पास कैसे आयी? नगर के कुम्हार के द्वारा पता चला। कुम्हार से जाकर पूछा, कि तुम्हें कैसे पता चला कि गन्धर्वसेन का मरण हो गया? अरे आप कैसी बात करते हैं, मेरा गधा मरे और मुझे पता भी न चले। तो तुम्हारे गधे का नाम गन्धर्वसेन है? जी हां, बेचारा मर गया।

असलियत का पता चला तो सब लोग अपनी मूर्खता पर काफी पछताये, शरमाये। आपको भी जब पता चलेगा अपने अज्ञान का, अपनी मूर्खता का तब आपकी भी यही दशा होगी। जिस परमात्मा की पूजा उपासना-आराधना करते हैं, कम से कम उसके स्वरूप का ज्ञान तो होना ही चाहिए। परमात्मा कौन हो सकता हैं, गुरु कौन हो सकता हैं। रत्नकरण्ड श्रावकाचार में आचार्य समंतभद्र लिखते है............!

परमेष्ठी परमज्योतिर्विरागो विमल; कृती
सर्वज्ञोऽन्यादि मध्यान्तः सार्वशास्त्रो पलाल्यते ।।

वह परमात्मा परमज्योति यानि परमज्ञान से सहित हैं, राग-द्वेष मोह से रहित विमल हैं; बिराग से सम्पन्न है यानि वीतरागी है, कृत्य-कृत्य है, परिपूर्ण है, आत्मिक आनन्द से लबालब है। आदि-मध्य और अन्त से रहित है, समस्त पदार्थों का ज्ञाता दृष्टा है और समस्त जीवों का हित कारक है। वही परमात्मा है अन्य किसी को, चमत्कार दिखाने वाले को परमात्मा मत समझ लेना।

गन्धर्वसेन के मरण पर सारा गांव रोने लगा। यह किसी ने भी नहीं पूछा कि गन्धर्वसेन कौन था, आदमी था या शैतान, इंसान था या भगवान, आखिर कौन था वह, बस सब रोने लगे सिर मुढ़ा लिया। हमने भी कभी परमात्मा के स्वरूप की बावत जानने की कोशिश नहीं की। लाल पीले पत्थरों को पूजते चले आ रहे है। सबके भगवान अलग-अलग हैं। सबने अपनी-अपनी शक्ल में परमात्मा गढ़ लिये है। परमात्मा का एक निश्चित आकार-प्रकार रूप नहीं है। भारत का भगवान अलग है, चीन का भगवान अलग है। भारत के भगवान की नाक सीधी है, क्योंकि यहां सीधि नाक के लोग है, और चीन के भगवान की नाक चपटी हैं क्यों कि वहां के लोगों की नाक चपटी होती हें। आदमी भीतर से जैसा होता है, बाहर भी वैसा ही भगवान निर्मित कर लेता हैं। तुलसी के भगवान के हाथ में धनुष है, सूर के भगवान के हाथ में बाँसुरी है। कोई भगवान को सारथी मानता है, कोई भगवान को योद्धा मानता है। गीता कथा में एक प्रसंग आया है.... ।

एक बार नारद को यह अभिमान हो गया कि वे भगवान को सबसे ज्यादा प्रेम करते है। भगवान ने इस बात को जाना। नारद को साथ लेकर एक दिन वे भ्रमण को निकले। रास्ते में एक तपस्वी मिला जो रुखे सुखे पत्ते खाता था और तलवार चलाने का निरन्तर अभ्यास करता था। नर-वेषधारी भगवान ने इन दोनों बातों का कारण पूछा। तपस्वी ने बताया महाराज ! सूखे-पत्ते मैं इसलिए खाता हूं कि फल-फूल परमात्मा के दूसरे पुत्रों के खाने के लिए बचे रहे और तलवार का अभ्यास मैं अपने शत्रुओं को मारने के लिए करता हूं। भगवान ने पूछा, तुम्हारा शत्रु कौन-कौन है ? पहला अर्जुन जिसने भगवान से रथ हंकवाकर उन्हें कष्ट दिया, दूसरा द्रोपदी जिसने मेरे भगवान को नंगे पैरो दौड़ाया और तीसरा नारद जो अकारण ही अनेकों प्रश्न पूछ-पूछ कर भगवान का सिर खाता रहता हैं।

यह प्रसंग भले ही अहंकार चूर करने की दृष्टि से कहा गया हो। लेकिन मैं आपसे कहता हूं कि इस पृथ्वी पर ऐसा कोई भी परमात्मा नहीं हैं जो किसी के साथ विचरण करता हो, और एक-एक भक्त के अहंकार को तोड़ने का उपक्रम रचाता हो। दूसरे के अहंकार को तोड़ना भी द्वेष बुद्धि है और जहां पर द्वेष हैं, वहां राग नियम से होगा। राग-द्वेष का दिन रात का, सुबह-शाम का सम्बन्ध है, जन्म-मरण का सम्बन्ध हैं। परमात्मा तो कर्मों से रहित है, मोह से रहित हैं। और राग तो मोह के उदय से होता हैं। द्वेष से ज्यादा खतरनाक राग होता है। क्रोध में, द्वेष में तो कम से कम यह ख्याल बना रहता हैं कि मैं पाप कर रहा हूँ, गलत कर रहा हूं, लेकिन राग में तो इतना भी पता नहीं चलता कि मैं क्या कर रहा हूं।

वेद कहता है कि संसार को, सृष्टि को परमात्मा ने रचा हैं। यानि ईश्वर के मन में कामना पैदा हुई कि मैं कुछ रचूं। मैं संसार रचूं। संसार रचने की वासना जागी। इसका मतलब हुआ कि कामना परमात्मा से भी बड़ी हुई। कामना ने परमात्मा को आन्दोलित कर दिया। परमात्मा भी वासना के अधीन हुआ, और संसार बनाने चला। वासना पैदा हुई कि रचूं कामना हुई कि बनाऊं, फैलाऊ अपनी माया का जाल। अगर परमात्मा भी माया के वशीभूत है, कामना के वशीभूत है, वासना से अनुप्राणित होने जा रहा है, चलाया जा रहा हैं, तो वासना बड़ी हुई और परमात्मा छोटा हुआ।

और भगवान महावीर कहते हैं कि छोड़ो परमात्मा को पहले अपनी वासना को पकड़ो। जिसने परमात्मा को चलाया है वह तुम्हें भी चला रही है। विचारणीय प्रश्न है अगर परमात्मा जन्म-मरण से, कर्मों से रहित है

तो उसके अन्दर वासना उठी कैसे ? बिना पानी के लहर नहीं उठ सकती, बिना आँखों के देखा नहीं जा सकता। पदार्थ को देखने के लिए आँख चाहिए तथा वासना को जन्म देने को कर्म चाहिए। परमात्मा ने संसार को नहीं बनाया, बल्कि हमने परमात्मा को बनाया है। परमात्मा ने तो अन्तरंग के कर्मों के संसार को नष्ट करके स्वयं के अनन्त गुण रुप अन्तरंग संसार को बनाया है। संसार दो प्रकार का हैं-एक क्रोध-मान-माया-लोभ का अन्तरंग संसार तथा दूसरा पदार्थ का बहिरंग संसार। स्वयं के अन्तरंग ससार को मिटाकर परमात्मा बना सकता है।

परमात्मा तो परम वीतरागी है, वह संसार को बनायेगा ही क्यों। उसे क्या गरज पड़ी है संसार बनाने की ? क्या संसार नहीं था तो वह परेशान था ? जितना एक मां परेशान होती है पप्पू के अभाव में, एक नेता परेशान होता है अधिकारों के अभाव में, एक कवि परेशान होता है प्रशंसा के अभाव में, तो क्या परमात्मा भी इतना ही परेशान था ? यदि परमात्मा परेशान था, तो वह हमसे भी ज्यादा दुखी होगा और जो दुखवादी है उसकी आराधना से क्या लाभ ? एक गीत सुना था....... ....!

मोह जाल में फंसे हुए है कर्मो ने आ घेरा
कैसे तिरेंगे भव-सागर से, क्या है दोष हमारा
लिखा विधाता ने किन घड़ियों से लेखा हमारा
भूल हुई क्या हमसे भगवन क्या है दोष हमारा ?

कौन लिखेगा, विषाद की, दुख की लम्बी शृंखला तुम्हारे जीवन में ? किसको पड़ी है ? कौन तुम्हें दुख देने को उत्सुक हैं ? अगर परमात्मा दुख देने में मात्र शैतान ही उत्सुक हो सकता है। परमात्मा कैसे उत्सुक होगा ? वह तो करूणा निधान है, दया का सागर है, प्रेम की मूर्ति है। जरा स्वय सोचो। परमात्मा और दुख को उत्सुक हो ! तो फिर शैतान और परमात्मा में क्या भेद करोगे ? और विशेष ध्यान रखना, परमात्मा यदि आपको परमात्मा दुख देने में उत्सुक हो, तो खुद भी दुखवाही होगा और दुख ही पायेगा। जो दूसरों के जीवन में दुख लिखेगा, उसके जीवन खाते में अपने आप दुख लिख जायेगा। जो चारों तरफ दुख बरसायेगा, उस पर भी दुख के छीटे पड़े बिना न रहेंगे। और जो सबके जीवन में अन्धेरा कर देगा, उसे खुद भी अमावस में रहना पड़ेगा। लेकिन

ये भूल, अगर कोई, कहीं परमात्मा है तो न करेगा। नारायण श्रीकृष्ण स्वयं गीता में कहते हैं..........।

न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः।
न कर्मफल संयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते ॥१४॥

परमात्मा लोक के कर्तृत्व और कर्मों का सृष्टा नहीं हैं। वह लोक के कर्म-फल संयोग की रचना भी नहीं करता। केवल स्वभाव, अर्थात् पदार्थ की स्वयं की प्रवृति की कर्मत्व और कर्मफल में निमित्त होती हैं। प्रकृति का परिणमन तो अपने आप होता हैं। उसका कोई कर्ता-धर्ता हर्ता नहीं हैं। प्रत्येक आत्मा अपने कर्म का फल भोगती है। जीव स्वयं ही कर्म करता हैं और उसका फल भोगता हैं।

एक बात आपसे कहूँ, आदमी कभी अपने भीतर ठीक से झांककर देखे तो बहुत सारे रहस्य अपने-आप खुल जायेंगे, प्रगट हो जायेंगे, जीवन में जो भी हो रहा हैं, वह स्वयं के चाहने से हो रहा हैं, वह हमारे चाहने से हो रहा हैं। जो हम चाहते हैं, वही हो रहा हैं। शायद हमें भी पता न हो कि हम क्या चाहते हैं। चाहे हमने गहन अन्धेरे में दबा दी हो, अचेतन के मोह में भूला दी हो - लेकिन जो भी हो रहा हैं, वो हमारे चाहे हो रहा हैं। मौत भी हमारी चाह से ही घटती हैं, और जीवन भी हमारी चाह से ही घटा हैं। जन्मे भी अपने कारण हैं और मरण भी स्वयं के कारण होगा। संसार में भी हम अपने ही कारण हैं और मोक्ष में भी हम ही कारण हैं। यही तो भगवान महावीर की एतिहासिक खोज हैं। ये जैन दर्शन का चरम निष्कर्ष है।

रथ जीवन का जाकर रूके ये तो तेरे गांव में
सांसों का ये दीप बुझे तेरे चरणों की छांव में
भावना के फूल लेकर
आँसू की जयमाल में
द्वार निहारे आये हम तो
मुक्ति रमा की चाह में
हिय की चन्दना प्रेम की प्यासी वन-वन डोले बावरी
देह मुरलिया गीत तुम्हारे गाती फिरे ये पागली
त्याग तुमको अर्घ चढ़ाये
ध्यान उतारे—आरती

तुमको श्रद्धा-अर्पण टेरे
तुमको भक्ति पुकारती
प्रेम दीप के बुझा न पाये कर्मो की ये आंधियां
पग पग चलकर आ रही मिटाने सारी दूरियां
नयन समाधि के द्वारा ये
रुप तुम्हारा निहार ले
मेरे तप स्वेद की बून्दें
चरण तुम्हारे पखार लें
अन्तिम सांसो का स्वर भी भक्ति की झंकार दे
अन्तिम रक्त बिन्दु मेंहदी बन आतम को शृंगार दे ।।

अगर परमात्मा को हृदय में विराजमान करना चाहते हो, तो बस अब एक ही प्रार्थना उठे, कि ये जीवन का रथ मात्र आपके गांव में, सिद्धालय में ही जाकर रुके। मुक्तिरमा के आँचल की छांव में ही विश्राम करू। ये सांसो का दीप तुम्हारे चरणों की छाव में बुझे अन्यत्र कहीं नहीं। यह बारात अब तुम्हारे ही। द्वार पर आकर रूके । जब अपनी हर श्वांस मे त्याग बन जाय, अर्पण हो जाय, और मन का पोर-पोर उसकी उतारने लग जाय, श्रद्धा-भक्ति उसे पुकारे, तेरे तो निश्चित ही उसके ही आंचल में विश्राम होगा। बस एक "चरम निष्कर्ष" हो तुम्हारा कि समाधि की आँख द्वारा निज के परमात्मा का रुप निहार लूं और जीवन को तपस्या से आविर्भूत गंगा जल तुम्हारे चरणों का अभिषेक करे। अन्तिम श्वांस जाते जाते तुम्हारे गीत गाती जाये और अन्तिम रक्त की मेंहदी बन कर तुम्हारे पांव में रच जाये, आत्मा का शृंगार कर दे। बस मेरे जीवन का चरम निष्कर्ष रहे।

वह अपनी पत्नी का चेहरा नहीं पहिचान सका और आप अपने परमात्मा को नहीं पहिचान सके, क्योंकि आपकी उत्सुकता भौतिकता में है। आपका मन सतत् दौड़ रहा है भाग रहा हैं, भविष्य में जी रहा है। वर्तमान में जो उपलब्ध है उससे वह तृप्त नहीं है। शादी के पूर्व आपने बड़ी कल्पनाये की थी, अनेक स्वप्न देखे थे कि ऐसी पत्नी लाऊंगा, इतनी सुन्दर पत्नी लाऊंगा कि जैसे स्वर्ग की अप्सरा पृथ्वी पर उतर आयी हो। और अपने मन पसन्द की पत्नी भी ले आये। मनकी कर ली, इच्छा पूर्ण हो गई, अब आँखे बन्द करो और देखो क्या आपको अपनी पत्नी का चेहरा याद हैं ? नहीं; किसको याद रहता है पत्नी का चेहरा । कौंन देखता हैं पत्नी को

प्रेम से। हाँ पडोसिन का चेहरा जरुर याद होगा। जब पत्नी का चेहरा याद नहीं हैं: तब परमात्मा का चेहरा कहां याद रहेगा ? जैसे आपकी पत्नी के साथ दैहिक सम्बन्ध हैं, वैसे परमात्मा के साथ भी व्यापारिक लाभ-हानि का सम्बन्ध हैं। परमात्मा के पास तो भौतिक प्यास बुझाने जाते हैं लेकिन हृदय में वह नहीं धन विद्यमान हैं। धन की आकांक्षा विद्यमान हैं। लेकिन आचार्य कह रहे है कि अब धन नहीं धर्म, पद नहीं परम विराजमान रहे। यही मेरा चरम निर्णय हैं और परमात्मा की उपलब्धि ही जीवन का चरम निष्कर्ष हैं।

बस आज इतना ही
आदिनाथ दिगम्बर जैन नया मंदिर | दिनांक २०-८-९१
प्रतापगढ़ | मंगलवार

१७

चमन को खाक बनाने की बात करता हूं

चमन को खाक बनाने की बात करता हूँ ।
समझ सको तो समझाने का प्रयास करता हूँ ॥
कहर में शम्मा जलाने की बात करता हूँ ।
मिथ्यात्व से पर्दा उठाने की बात करता हूँ ॥
कण-कण में बिछा दो बबूल के कांटे ।
चाल-चलन सिखाने की बात करता हूँ ॥
वो बागबान जो फूलों से बैर रखता है ।
आज उसे ही हटाने की बात करता हूं ॥
जो सिर्फ अपने लिए बना रहे है जमी पे मकां ।
मैं हर किसी को मकां बनाने की बात करता हूँ ॥
जिस चिराग तले लूट है, अन्धेरा है ।
वहां ज्योत जलाने की बात करता हूँ ॥
गुलों पे जमी ओस को मोती समझ रहे है ।
ओस उठाने के लिए सूरज की बात करता हूँ ॥
चमन को खाक बनाने की बात करता हूँ ।
समझ सको तो समझाने का प्रयास करता हूँ ॥

मूल पद्य :- यो व्यापको विश्व-जनीन-वृत्तिः
सिद्धो विबुद्धो धुत-कर्म-बन्धः
ध्यातो धुनीते सकलं विकारम्,
स देव-देवो हृदये ममाऽऽस्ताम् ।। १७ ।।

हिन्दी पद्य :- जो सर्वव्यापी औ विश्वकल्याण कारी,
सिद्ध-प्रबुद्ध अरू कर्मबन्धन निवारी ।
मन में हैं ध्यान करने से विकार खोते,
वह देवाधिदेव को हम हिय में बुलाते ।। १७ ।।

अन्वयार्थ :-

यः	— जो
व्यापकः	— (ज्ञान की अपेक्षा) सर्वव्यापक हैं
विश्व-जनीन-वृत्ति	— विश्व कल्याण करने का स्वभाव वाला है
सिद्ध	— सिद्ध है
विबुद्ध	— ज्ञायक स्वभावी है
धुत-कर्म-बन्ध	— कर्मबन्धनो का विध्वसंक है
ध्यातः	— ध्यान में चिन्तन किया गया जो
सकलम्	— समस्त
विकारम्	— विकारी भावों को
धुनीते	— नष्ट करता है
स देव-देवः	— वह देवों का देव
मम हृदये	— मेरे हृदय में
आस्ताम्	— विराजमान रहे ।

भावार्थ :- विश्व कल्याण की वृत्ति जिनका स्वभाव हैं जो ज्ञान की अपेक्षा से सर्वव्यापक है सिद्ध है, प्रबुद्ध हैं और सर्वकर्मबन्धनों से रहित हैं तथा जिसका ध्यान करने से हृदय के सर्व विकार दूर हो जाते है, वह देवाधिदेव मेरे हृदय में सदा विराजमान रहे ।

१७

चमन को खाक बनाने की बात करता हूं

ओम नमः सिद्धेभ्य : ३
धर्मप्रेमी भव्यात्माओ !

जो कर्मों के अधीन नहीं है, स्वयं का सम्राट है, स्वयं का मालिक हैं, अतीन्द्रिय आनन्द में डूबा हैं, समस्त दोषों से रहित है। और ज्ञानमय हैं, परम विशुद्ध ज्ञानमय हैं, ऐसा परमात्मा मेरी आत्मा में वास करे, निवास करे।

जगत हित की वृति जिनका स्वभाव हैं, ज्ञान की अपेक्षा से सर्वव्यापी है, सिद्ध है, प्रबुद्ध है, समस्त कर्म बन्धन से रहित है तथा जिनका ध्यान करने से हृदय के समस्त विकार दूर हो जाते है ऐसा परमात्मा अर्थात अरिहन्त देव मेरी आत्मा में विद्यमान रहे।

"धुत कर्म बन्धः" जो समस्त कर्मो से रहित है। अर्थात् कर्तापन से रहित है। संसार के सभी दर्शनकार परमात्मा को सृष्टि का कर्ता मानते है लेकिन भगवान महावीर परमात्मा को सृष्टि का नहीं स्वयं का कर्ता है, स्वयं के परमात्मा का सृजन किया हैं। और समस्त कर्मो का नाश वही कर सकता है जिसने अपने समस्त विकारों को जीत लिया हो। आत्मा वैभाविक रुप में होती है तब विकार उत्पन्न होते है। अगर कोई परमात्मा है तो समझना वह बिकारों से रहित होगा। ऐसा अन्य मत वाले कहते है,

उनके पुराण कहते है। कि-

एक दिवस ब्रह्मा के मन में पृथ्वी को रचने का ख्याल पैदा हुआ, अपनी वासना को वो रोक न सका, तो एक दिन उसने पृथ्वी रची, वो उसकी बेटी थी, फिर उस पे मोहित हो गया। उसके पीछे दौड़ने लगा। बेटी घबड़ा गयी। घबड़ा के गाय हो गयी। वो बैल हो गया। फिर उसने अपना रुप बदल लिया, वो हथिनी हो गई वो हाथी हो गया इस प्रकार उससे सारे पशु-पक्षियों का जन्म हुआ, फिर उसने गधा-कुत्ता-उल्लू मनुष्य का सृजन किया। इस प्रकार उसने सृष्टि का सृजन किया। इसलिए कहा जाता है कि ब्रह्मा ने सृष्टि को रचा है। लेकिन वर्तमान के हिन्दु बहुत कायर हो गये है, इस कथा को कहने से वे कतराते है। कथा कितनी ही भद्दी लगती हो लेकिन हैं बहुत मूल्यवान पुराने समय के हिन्दू बहुत हिम्मतवार थे, उन्होंने फिकर नहीं की कि लोग क्या कहेंगे। लेकिन कभी बड़ी हिम्मती कौन थी यह मानना पड़ेगा। कथा बड़ी रहस्यपूर्ण हैं, बड़ी प्रतिकात्मक है, जरा इसे समझो। भले ही कल्पित हो, मगर इससे क्या लेना-देना हैं, हमें तो मात्र इसके तथ्य को समझना है। कि आदमी जब मानसिक रूप से रूग्न होता है तो कामना-वासना विकारो से भरता है। विकार का शाब्दिक अर्थ है... ....विषयों के प्रति प्यार की दौड़ कार वही हे विकार। विषयो के प्रति मन में बसे विशेष प्यार वहीं है विकार। मन जब रुग्न होता है तो विकार को जन्म देता है, कामना से भरता है। आप जानते ही कामी मन सारी मर्यादाओं को तोड़ देता है, जैसे तूफानी नदी किनारों को तोड़ देती हैं। वासनाये भी मर्यादाओं का उल्लंघन कर देती है।

"यो व्यापको विश्व जनीन वृति" जिनका ज्ञान व्यापक और विश्व कल्याण की वृति वाला है। ज्ञान कैसा होना चाहिए, विश्व कल्याण की भावना से ओत-प्रोत। समस्त जीवों के कल्याण की भावना से भरा होना चाहिए। अद्भूत वाक्य है "यो व्यापको" आप व्यापक हे। इसका अर्थ यह नहीं है कि परमात्मा कण-कण में विद्यमान है। शरीर की अपेक्षा परमात्मा व्यापक नहीं है, ज्ञान की अपेक्षा व्यापक है। उनका परम विशुद्ध केवलज्ञान लोक के पदार्थ को और अतीत-अनागत-वर्तमान की एक समयवर्ती सभी पर्यायों को जानता हैं। उनके ज्ञान से एक भी पदार्थ, एक भी पर्याय अछूति नहीं है।

ज्ञान की अपेक्षा आप व्यापक है, आत्मा को सिद्ध कर लिया है इसलिए आप सिद्ध है। आपने अपना गुरू किसी को नहीं बनाया, दीक्षित

थे, जन्म से तीन ज्ञान मति-श्रुत-अवधिज्ञान के धारी थे इसलिए आप प्रबुद्ध है। आप समस्त कर्मो से रहित है इसलिए अशरीरी हैं। जो भी आपको ध्याता है वही भी कर्मो से मुक्त हो जाता है। आचार्य क्या कह रहे है, परमात्मा की महिमा कितने गहरे शब्दों में बता रहे है. कृतज्ञता प्रगट करने को कितना प्यारा शब्द चुना है ध्यातो-धुनीते जो ध्याता है उसे आप धुन देते है, साफ कर देते है रूई की भाँति। रूई का धुननेवाला जैसे रुई को धुन कर साफ कर देता हैं आप भी संसारी आत्मा रुपी रूई के भीतर से काम-क्रोध लोभ-मोह का कचरा बाहर निकाल देते है।

"सन्त दरश सबक पातक रही"

सन्तों के दर्शन मात्र से समस्त पातक, पाप विनाश को प्राप्त हो जाते हैं। एक बार राजा भोज ने कवि कालिदास से पूछा कि सृष्टि में सर्वश्रेष्ठ फूल कौनसा है। तो राज्य सभा में बैठे अनेक विद्वजनों ने कहा, चम्पा। किसी ने कहा चमेली किसी ने कहा गुलाब। किसी ने कहा कमल। किसी ने कहा केतकी। लेकिन कालीदास ने कुछ न कहा, तो लोगों ने कहा, आप क्यों चुप बैंठे हैं? कालीदास ने कहा, हूजूर सृष्टि का सर्वश्रेष्ठ फूल यदि कोई है तो वह कपास का फूल है. सब लोग हंसने लगे। सभाषदों ने कहा, उसमें गन्ध नहीं होती, उसमें सुवास नहीं होती। कालीदास ने कहा, यही तो भूल है। फूल का मूल्यांकन उसकी गन्ध से नहीं, उपयोगिता से होता है। कपास का फूल दूसरों की आबरू बचाने के लिए काम आता है। जब वह एकता के सूत्र में बन्धकर कपड़े के रुप में आता हैं तो वह दूसरों की नग्नता को ढक देता है कपास वस्त्र के रूप में तभी ढलता हैं, वस्त्र बनता हैं जब वह अपन बीज को, मल को त्याग देता है और एकता के सूत्र में बन्धता है।

देखो सन्तों का सम्यक्ज्ञान वो अपने वस्त्र उतार कर समाज के उद्धार में, कल्याण में लग जाते है, अर्थात समाज की व्यक्ति की नग्नता को ढ़क देते है। जिनको सन्त समागम मिल जाता है, उनका जीवन धन्य हो जाता है। क्योंकि -

दारा सुत अरु लक्ष्मी पापी के घर होय।
संत समागम हरि-कथा तुलसी दुर्लभ होय॥

जीवन की दो दुर्लभ वस्तुयें हैं.........सन्त समागम और हरि-कथा भगवान की कथा बाकी सब सुलभ हैं। पापी से पापी जीव भी स्त्री का स्वामि और सम्पत्ति का स्वामी बन जाता हैं। धन-सम्पत्ति, स्त्री आदि को

पाना कठिन नहीं है। कठिन हैं सन्त-समागम और जिनवाणी का श्रवण। और जिनवाणी तो सन्त मुख से ही अच्छी लगती हैं। क्योंकि जिनकी वाणी हैं, उनके ही मुख से अच्छी लगती है, पंडितो पुरोहितों के मुख से नहीं। वे क्या जाने शास्त्रों का स्वाद। शास्त्रों का स्वाद तो मिलता हैं सम्यक् आचरण से। और सम्यक आचरण की प्यास पैदा होती हैं सन्तो का समागम करने से, उनके निकट बैठने से, और तथा कथित पंडित डरते हैं मुनियों से, कतराते हैं, उनके पास जाने से। ये तो परमात्मा से भी बचते होंगे, उसका कारण हैं क्योंकि परमात्मा से, सन्तों से जुड़ने का अर्थ हैं अपने अहंकार की दुकान को बन्द करना, और अपने हृदय को उनके प्रेम-तीर के लिए खुला छोड़ देना, असुरक्षित छोड़ देना। हटाओ अपनी सारी सुरक्षा के कवच। हटा लो चरित्र मोहनीय कर्मोदय की ढ़ाले। लगने दो त्याग के तीर चुभ जाने दो प्राणों में। अहंकार के गलन से मोह के पिघलन से, परिग्रह के क्षयरन से, कामना के उपशमन से दर्द होगा बहुत। सन्तो की संगति करोगे तो त्याग-भाव तो पैदा होगा, परिग्रह छुटने की पीड़ा तो होगी मगर यह पीड़ा बड़ी मधुर हैं। लेकिन इसका अनुभव तो तभी होगा, जब हृदय से सन्त चरण में आओगे, श्रद्धा से नमन करोगे, त्याग को अपनाओगे। लाख आचाय समझाते रहे इससे कुछ न होगा, जब शब्द तीर लगेगा, हृदय में चुभेगा और उसकी पीड़ा सर्वांग में फैलेगी, तब उसका अनुभव होगा। सन्तो के शब्द तीर कोई साधारण नहीं है जो मारता हो, यह तो ऐसा तीर है जो जिलाता हैं। यह तीर जहरीला नहीं, अमृतमय है। जिसको लगता उसको अमर बनाता हैं।

ये नुकीले शब्द उनको अखरते हैं, उनको चुभते हैं जों शास्त्रीयज्ञान से भरे हैं, अहंकार की मूढ़ता से भरे हुए हैं। बस यही एक मूढ़ता उनको संयम से दूर, सन्तों से दूर भाग रही है, उनको सत्य से हटा रही हैं। चरित्रहीन शास्त्रीयज्ञान अहंकार को जितना परिपुष्ट करता है और कोई चीज परिपुष्ट नहीं करती। इसलिए तथाकथित ज्ञानियों ने वेद-कुरान-गीता संयम सार-नियमसार के अहंकार से अपने कण्ठ को सजा लिया है। लगाए तिलक, पहने जनेऊ, पहने टोपी, लिए हुए समयसार, लिए हुए गीता जमे हैं पंडित। जरा गौर से देखो, इनकी चाल देखो, इनका उठना-बैठना देखो, इनके ज्ञान को ओट में छिप गया है इनका अज्ञान। पादरी—पुरोहित, तथाकथित पंडित जितने अहंकारी होते हैं कोई और नहीं होता। बड़ी पैनी धार होती हैं उनके अहंकार में। तभी तो इनने तेरह-बीस-निश्चय-व्यवहार के नये-नये पंथ खोल दिये। शास्त्रों में ख्याति-पूजा-लाभ से भरे ज्ञानी को

अज्ञानी कहा है, मूढ़ कहा हैं। क्योंकि ये तो पहले से ही समझे बैठे है, पहले से ही ज्ञानी बने बैठे है। शब्द समझ लिए हैं, कंठस्थ कर लिए हैं, तोतों की तरह और सोचते है कि जान लिया जो जानने योग्य है, आत्मा को समझ लिया है, अब मुनियों के पास क्या जाना, सन्तों के पास क्या जाना।

इनको तो सन्तों के शब्द पसन्द आने वाले ही नही है। ये तो खोपड़ी में जी रहे है, ये तो हृदय को भूल ही गये हैं, ये तो सन्तों को भूल ही गये हैं। ये कुन्दकुन्दाचार्य को भी नहीं मानते. अगर वे जिन्दा होते तो किसी और को मानने लगते। ये तो अपने स्वार्थ को मानते है, इनके मतलब की जो बात होती हैं उसे मानते हैं। इन्हें किसी से कुछ लेना-देना नहीं हैं, तो मात्र अपने अहंकार के संवर्धन से मतलब हैं।

एक बात का विशेष ख्याल रखना कि सन्त भी शास्त्रों में मूढ़ शब्द का, अज्ञानी शब्द का, प्रयोग करते हैं, तो उनका अर्थ साधारण अर्थ नही होता बेपढ़ा-लिखा, गंवार। नहीं, उनका अर्थ होता है पढ़ा-लिखा गंवार। इसी बात का खुलासा अमोघ ऋषि ने किया हैं...........

किं पथ्पदनं धर्मः का शुचिरिह यस्य मानसं शुद्धम्।
कः पंडितो विवेकी किं विषयवधीरिता गुरवः ।।

मार्ग के लिए भोजन क्या हैं। धर्म। शुद्ध कौन हैं ? जिसका मन पवित्र हैं। पंडित कौन हैं विवेकी पुरूष। विष क्या हैं ? गुरुओं का तिरस्कार और अपमान विष हैं। लौकिक विष के खा लेने से मात्र देह का मरण होता हैं लेकिन मुनि अपमान का विष, अनादर का जहर, अवज्ञा का हलाहल, मुनि उपेक्षा का गरल आत्मा को भव-भव में भटकता हैं। इसलिए....... ....।

चमन को खाक बनाने की बात करता हूं।
समझ सको तो समझाने का प्रयास करता हूं ।।
कहर में शम्मा जलाने की बात करता हूं।
मिथ्यात्व से पर्दा उठाने की बात करता हूं ।।
कण-कण में बिछा दो बबूल के कांटे।
चाल-चलन सिखाने की बात करता हू ।।
वो बागवान जो फूलों से बैर रखता है।
आज उसे ही हटाने की बात करता हूं ।।
जो सिर्फ अपने लिए बना रहे हैं जमी पे मकां।
मैं हर किसी को मकां बनाने की बात करता हूं ।।

जिस चिराग तले लूट हैं अन्धेरा हैं।
वहां ज्योत जलाने की बात करता हूं।।
गुलों पे जमी ओस को मोती समझ रहे हैं।
ओस उठाने के लिए सूरज की बात करता हूं।।
चमन को खाक बनाने की बात करता हूं।
समझ सको तो समझाने का प्रयास करता हूं।।

मैं तो चमन में आग लगाने की बात करता हूँ। जिन भौतिक फूलों के आकर्षण में खोये हो, जिन फूलों ने तुम्हें भरमाया है, जिस जानकारी ने तुम्हें भटकाया हैं उसे आग लगाने की बात कर रहा हूं उसे मिटाने की सलाह दे रहा हूं। जो विभिन्न-विभिन्न पुस्तकों से, शास्त्रों से जानकारीयां एकत्र कर ली, पहले उनसे शून्य बनो। मन की भूमि पर जो नकली उपवन वसा रखा हैं पहले उसे समाप्त करो। अगर प्यास हो समझने की तो आओ मेरे पास, असली और नकली फूलों से तुम्हारा परिचय हो जाये, सत्य असत्य प्रगट हो जाय।

वो बागवान जो पौधों से वैर रखता है।
आज उसे ही हटाने की बात करता है।।

जो बागवान पौधो से दुश्मनी रखता हो, उसे तो उपवन से शीघ्र हटा देना चाहिए। जिन पौधो से फल-फूल मिलते हैं, क्षुधा का शमन होता हैं। जो फूल पूजा-अर्चन की थाली में सजते है, परमात्म-चरण में चढाने के काम आते है उन पौधों से वैर रखने वाले को हटा दो। वह तो बागवान के रुप में उपवन का दुश्मन आया है, आस्तीन का सांप बनकर आया है। जो हमारी मुनि आस्था के पौधों का दुश्मन हो, जिस पौधो पर सम्यग्दर्शन ज्ञान-चरण के, तप-त्याग-ध्यान के फल-फूल पत्र लगते है, उन पौधो को, मुनि आस्था की जो तोड़ने की बात करता है। उपवन सजाने की आड़ में उपवन उजाड़ता है, अध्यात्म की आड़ में मुनि आस्था से तोड़ता है उसे शीघ्र अति शीघ्र हटा देना चाहिए। बन्दर उपवन की रक्षा नहीं कर सकता भोगी आत्मा की, अध्यात्म की रक्षा नहां कर सकता। उपवन से बन्दरो को भगाने की बात करता हूँ। उपवन की सुरक्षा की बात कर रहा हूँ। निकाल दो उन बन्दरों को जो हमारी आस्था के पौधो को गिरा रहे हो; श्रद्धा के पौधो को नष्ट कर रहे है।

चमन को खाक बनाने की बात करता हूं

कण-कण में बिछा दो बबूल के कांटे
चाल—चलन सिखाने की बात करता हूं

अभी तो प्रशंसा के फूल बिछे हैं, इसलिए ये मदहोश हैं, मूर्च्छित हैं। अब इनकी आलोचना के कांटे चारों तरफ बिखेर दो, ताकि ये एक-एक कदम संभाल कर उठाये, सामने देखकर चले। जब तक ये काँटे इनकी पगतली में, मन में चुभेगे नहीं, तब तक ये सुधरेगे भी नहीं। इन्हें चलना-सिखाना हैं तो कांटे बिखरने आवश्यक हैं। ड्राईवर घाट पर गाड़ी संभल कर चलाता हैं, जानता हैं कि जरा सी निगाहे चूकी की गाड़ी गई खड्डे में। पथ में काँटे होंगे तो ये देखकर चलना सीख जायेगे, इनकी मूर्च्छा टुट जायेगी।

जिस चिराग तले लूट हैं अन्धेरा है।

इनका आध्यात्मिक चिराग आपके प्रकाशिक करना नहीं, आपको लुटने के लिए है। चोर के हाथ में टार्च किसी को मार्ग दिखाने के लिए नहीं होती, बल्कि पथिक को लूटने के लिए होती हैं। इनका आध्यात्मिक चिराग भी आपकी सन्त आस्था की सम्पदा लूटने के लिए हैं। इसलिए अब चिराग के पास नया चिराग जलाने की बात कर रहा हूँ। जरा इन तथाकथित असंमकी पंडितों—सद्‌गुरु का जामा पहनने वालो से बचो। इनके प्रकाश के प्रकाश के धोखे में मत आ जाना। अन्यथा सनातन मुनि परम्परा की आस्था से टूट जाओगे।

इनको जो भी दिखी राह में उसे निहारने लगे।
उसको कई इशारो से पुकारने लगे॥
हमसे कहने लगे भईया उस नागिन को मत देखो।
खुद तो सुधरे नहीं दूसरो को सुधारने लगे॥

जमाने भर को अध्यात्म का उपदेश सुनाते हैं और उन्हीं विषयों में भोगों में अपना समय बीताते है। भोग ही इनका ध्येय है, भोग ही इनका लक्ष्य हैं। इनके सारे उपदेश बगुला के समान हैं।

परमात्मा को, सत्य को, सन्तों को समझने के लिए थोड़ा सा निर्दोष हृदय चाहिए तो ही मनुष्य के भीतर संभावना पैदा होगी सत्य को झेलने को, चारित्र को ग्रहण करने की।

सिकन्दर का गुरु डायोनीज दिन में ही हाथ में लालटेन लेकर घूमा करता था। जलती-लालटेन भरी दोपहर में, दिन के प्रकाश में अपने हाथ में

रखता था। लोग पूछते कि डायोनिज होश में हो ? सूरज चमक रहा है, धूप बरस रही है, चारों तरफ प्रकाश का डेरा है लालटेन किसलिए जलाये हो ? तो डायनीज कहता कि मैं आदमी की तलाश कर रहा हूं । बड़ा अन्धेरा है । काश सूरज के उगने से अन्धेरा मिट जाता, तो सारे लोग ज्ञान को उपलब्ध हो जाते है । बड़ा अन्धेरा है, बड़ी अमावश है, हाथ को हाथ नहीं सुझता है । इसलिए लालटेन लिए घूम रहा हूं, आदमी की तलाश कर रहा हूं ।

और जब डायोनीज मरा तब भी जलती लालटेन उसके पास थी। लालटेन अब जल रही थी, दोपहरी थी, भीड़ एकत्र हो चुकी थी। किसी ने अन्तिम विदाई के क्षण पूछा, डायोनीज तुम जिन्दगी भर कहते रहे कि बड़ा अन्धेरा है, इसलिए लालटेन जलाकर आदमी की तलाश कर रहा हूं । आदमी मिला ? डायोनीज ने कहा, आदमी तो नहीं मिला, लेकिन मेरी लालटेन बच गई ये क्या कम है । क्योंकि कई की नजर मेरी लालटेन पर लगी थी। इतना ही धन्य भाग्य मेरा कि वह बच गई, कोई चुराकर नहीं ले गया। नहीं तो नंगे आदमी के पास लालटेन कौन बचने दे। कभी भी कोई भी छीन लेता, कोई भी चुरा लेता । डायोनीज ने कहा, मैं लोगो की आँखो को जिस प्रकाश से परिचित कराना चाहता था, उसकी प्यास, उसकी उत्सुकता नहीं देखी। लेकिन मेरी लालटेन की उत्सुकता जरूर देखी कि किसी तरह पा जाये ।

आदमी तर्क पर जीता है यही उसका दुर्भाग्य है । असम्भव संभव जब बनता है जब आदमी हृदय को स्वीकार करता है । फिर सीमित क्षमता में, असीम का अवतरण हो जाता है। मुट्ठी भर राख में सारा आकाश उतर आता है । जिस शरीर की कोई औकात न थी, एक बिन्दु से ज्यादा जिसकी क्षमता न थी, उसमें सारा समुन्दर उतर आता है, संभव में असंभव घट जाता है लेकिन तभी, जब कोई सन्त चरण में हार्दिकता से झुकता है और चारित्र को अंगीकार करता है ।

लेकिन आश्चर्य तो तब होता है अपन आपको ज्ञानी कहने वाले तथाकथित सद्पुरुष, असयमी पंडित जिनके पास तिलभर ज्ञान नहीं है । और इनको ज्ञान का नीर लग भी नहीं सकता। इन्होने तो अपने ऊपर अहंकार की खूब चिकनाई पोत रखी है, शास्त्रो की जानकारियो की चिकनाई से ये बहुत चिकने हो चुके हैं । ये तो चिकने घड़े हैं। वर्षा भी होती रहे तो भी इनको पानी छुयेगा नहीं ।

आप स्वयं सोचे ? पंडितो से ज्यादा चिकना घड़ा देखा हैं आपने ?

उसमें ऐसी चिकनाई लगी हैं कि पानी छू नहीं सकता। वास्तव में पंडित कौन हैं, कः पंडित ? जिसने शास्त्रों को पढ़कर हेय-उपादेय का ज्ञान करके संयम ग्रहण किया है, वही वास्तव में पंडित है। बाकी ये तो नकली पंडित है। जिन्हें आप पंडित कह रहे है ये पंडिन नहीं शास्त्र के जानकार है, आपकी अपेक्षा से ये पंडित है, लेकिन आगम की अपेक्षा से नहीं। आगम के अनुसार जो पाप को खण्डित करता है, पाप को खण्डित करता वही पंडित है। पार्श्वनाथ पुराण में तीर्थंकर के गर्भ में आने के पूर्व तीर्थंकर की माता से छप्पन कुमारियों ने अनेक प्रश्न पूछे। उनमें एक प्रश्न महत्वपूर्ण था। माँ से पूछा..........संसार में महत्वपूर्ण कौन हैं ? माता ने उत्तर दिया जो शास्त्रो का ज्ञान होने के बाद, विषयों में प्रवृत्ति करता हैं, अर्थात आध्यात्मिक सैद्धान्तिक प्रवचन करने के बावजूद भी संयम को ग्रहण नहीं करता वही ससार का सबसे बड़ा मूर्ख हैं, महामूर्ख है। इसीलिए मैंने भी इनको चिकना घड़ा कहां है। शास्त्रों का पानी, इनके उपर नहीं चढ़ता। अगर शास्त्रों का इनके उपर थोड़ा सा असर होता तो ये अब तक संयमी हो जाते, एकाध इनमें मुनि बन जाते।

ग्रहस्थाश्रम की एक घटना आपसे कहूं, मेरे मित्र के पिता घी बेचने का काम करते थे, वे महाकंजूस थे। उनके कपड़ों में अत्यधिक घी लग चुका था। क्या पता उनके पास दूसरे कपड़े थे या नहीं भगवान जाने। वे अक्सर एक ही जोड़ी कपड़े पहनते थे। दिन भर घी ही बेचना और घी खरीदना घी ही घी हो गया था उसके कपड़ों पर। मैंने उनको स्नान करते देखा वे कपड़े नहीं उतारते थे। लोटा लेकर पानी डाल लेते थे, पानी उपर से बह जाता था, कपड़ों पर ठहरता ही नहीं था। ऐसी ही दशा पंडित की है। इनसे बचना चाहिए। आप इंहें कितनी ही समझाये, ये मानेंगे नहीं, बल्कि विवाद पर उतर आयेगे जितना समझाओगे उतना जिद्द करेंगे। ये शास्त्रार्थ करने को राजी रहेंगे लेकिन सत्य को जानने, संयम करने को राजी नहीं होगे।

समाज को इन्होंने ही डुबोया है, मुनि आस्था से तथाकथित पंडितो ने ही समाज को तोड़ा है। इस जैन समाज में बड़ी अजीब स्थिति पैदा कर दी समाज को तेरह-बीस पन्थ में, निश्चय-व्यवहार में बांट दिया और सब को तोता बना दिया। हर एक स्वाध्यायी ज्ञानी मालूम पड़ता है। क्योंकि जो देखों, वही आत्म-ज्ञान की, समयसार की चर्चा कर रहा है। और जीवन में अपना भी पता नहीं आत्मा का तो क्या खाक पता होगा। आध्यात्म की एक बून्द, सन्त आस्था की एक बून्द कन्ठ से नीचे नहीं उतरी है, आत्मा

का जरा भी अनुभव नहीं है। सन्तो के चरण पखारना ही नहीं जाना और शब्द याद हो गये है, समयसार की गाथाये दोहरा रहे है। जिन्होंने मुनियों की महिमा नहीं जानी, सन्त समागम नहीं किया। कवि पलटू ने पंडितों के सम्बन्ध में लिखा............

जोहिके जगत दियार, ताहि भक्ति न आवे
सत् संगति से विमुख और के सन्मुख धावें ।।

जरा ठीक से पहचान लेना जिन्होने अभी भी माया से, धन से, पद से, प्रतिष्ठा से यश से, महत्वाकांक्षा से अपना मोह जोड़ रखा है, अपना प्यार स्थापित कर रखा हो तो समझ लेना "ताहि के भक्ति न आवें" इनको भक्ति नहीं आ सकती, यानि सच्ची मुनि आस्था पैदा नहीं हो सकती इनके अंदर सम्यक श्रद्धा का जागरण असम्यक है। ये सबको आत्मा की बात बताते है बडी गहराई से समझाते है और स्वयं सन्त-संगती से विमुख है। इसलिए इनको परमात्मा का कुछ भी पता नहीं है।

एक पंडित जो मेरे पास अक्सर दर्शन को आते रहते है उनकी मुनियों पर गहरी आस्था है। कुछ ऐसे भी विद्वान और पंडित है जो मुनि आस्था से जुडे हैं, उनका आचरण भी अच्छा है। पंडित जी ने एक बडी सुन्दर बात बतलायी, बोले, एक बार मुझे जयपुर जाने का काम पड़ा। मेरे एक मित्र ने कहा कि यहां पर अच्छे आध्यात्मिक वक्ता पंडित तैयार किये जाते है, आध्यात्मिक क्लाश हमेशा चलती रहती है। मैं भी कक्षा में सम्मिलित होवे प्रतिदिन जाता हूं एक तरह की फैक्ट्री है, जैन पंडित तैयार किये जाते हैं। उन्होने कहा कि आप भी हमारे आध्यात्मिक शिविर में पधारे। पांच-सात सौ आध्यात्मिक वक्ता तैयार हो रहे है, पूर्णतया होने तैयार में पांच वर्ष लगते है। बड़ा आश्चर्य है धार्मिक व्यक्ति कोई कैसे तैयार कर सकता है ? धर्म तैयार करने की वस्तु तो है नहीं। धर्म तो संक्रामक रोग है मुनियो के पास बैठने से लगती है यह बीमारी पंडित जी ने कहा, जरुर आऊंगा। मेरा भी मनोरंजन हो जायेगा दिल बहल जायेगा।

तो एक दिन पंडित जी गये। उन्होने पंडित जी को अपना आध्यात्मिक शिक्षा केन्द्र दिखाया। उनकी आध्यात्मिक शिक्षा देखी वास्तव में बडी मनोरंजक थी। एक जगत आखिर कक्षा में, इस वर्ष बाद पंडित हो जायेगे, शास्त्री की उपाधी से अलंकृत हो जायेगे, उनको एक पापठ ढ़ाया जा रहा था कि जब तुम पर्यु षण पर्व में तत्वार्थ सूत्र को

समझाओगे लोगों को तो किस तरह किस शब्द पर जोर देना, किस शब्द को बोलते वक्त आंखें बन्द कर लेना किस वक्त आंखें आकाश की तरफ उठाना, किस शब्द को बोलते वक्त मुट्ठी बांध लेना किस शब्द को बोलते वक्त टेबिल पीटना। पंडित जी ने उनसे कहा कि आप लोग अभिनेता पैदा कर रहे हो कि धर्म को जानने वाले लोग पैदा कर रहे हो?

एक विद्यालय में एक शिक्षक समझा रहा है विद्यार्थियो को कि जब तुम समझाओ लोगों को धर्म ग्रन्थ तो स्वर्ग का वर्णन आ जाए पूरा चेहरा मुस्कराहट से भर जाना चाहिए, सारे दांत दिखाई पड़ जाना चाहिए, आखों में एकदम चमक आ जाना चाहिए, चेहरे पर एकदम ओज छा जाए, मस्ति छा जाए, मन झूम उठे, स्वर्ग का वर्णन ऐसे ही मत कर देना वर्णन का परिणाम तुम्हारे चेहरे पर दिखाई पड़ना चाहिए एक विद्यार्थी ने खड़े होकर पूछा, और जब नर्क का वर्णन करना पडे तब? तो शिक्षक ने कहा, तुम्हारी तो साधारण सूरत है उससे काम चल जायेगा नर्क का वर्णन करने के लिए कोई अभ्यास करने की जरुरत नहीं है। बस तुम सीधे खडे हो जाना। तुम्हें देखते ही लोग समझ जायेगे कि नर्क की हालत क्या है।

नहीं समझे आप? असलियत तो यह है नर्क जैसा चेहरा है, नर्क जैसा व्यक्तित्व है और स्वर्ग का अभिनय करना सिखा रहे हैं। [योगी है और योगियों की नकल कर रहे हैं।

यहां वहां बडा शोरगुल मचा रहे हैं, अध्यात्म की बात सुन रहे है और स्वयं सत्सगति से विमुख भोगों के सम्मुख है। मुनियो से तो बचते है, उनसे किनारा करते है उन्हे देखते हीं मुख छिपाते है मुंह छिपाना ही पडेगा, क्योकि उनके सामने खडे होना, दर्पण के सामने अपना चेहरा देखना है, और कौन देखना चाहता है कि मैं मूढ़ हूं मैं अज्ञानी हूं मैं कपटी हूं? कौन देखना चाहता हैं कि मैं भोगी हूं? कौन देखना चाहता हैं कि मैं पापी हूं? कौन देखमा चाहता है कि मै गर्हित हूं? कौन देखना चाहता है कि मैं व्यर्थ जीवन गंवा रहा हूं? लोग अपने से गये-बीतो का सत्संग करते हैं ताकि अहंकार तृप्त हो जाय, धर्मात्मा, पुण्यात्मा सम्यक दृष्टि, ज्ञानी की उपाधि से अंलकृत हो जाये।

समझदार ज्ञानी तो अपने से बड़ों की सत्संगति करेगा उनकी छाया में बैठेगा, उनसे कुछ ग्रहण करेगा कुछ सीखेगा और वहां देखेगा अपने पाप। और स्वयं के पाप दिख जाये तो छोडने में देरी नहीं लगती। ध्याते-धुनते सन्तो की संगति से पापो का कचूमर निकल जाता है, निरहंकारिता का पाठ सीखने को मिल जाता। इसीलिए तो आचार्य

परमात्म-ध्यान की, परमात्म-निमंत्रण की बात कह रहे हैं।

स्वयं के दोष दिखाई पड़ना बहुत कठिन है, छोड़ना तो आसान है। दोष दिखाई पड़ने लग जाये तो, मन काँपने लगता है, स्वयं सिकोड़ने लगता है, इसलिए पाप छूटने लगता है। दिखाई पड़ जाए कि यह दुश्मन है तो दोस्ती की बात खतम हो गई सम्मान की बात समाप्त हो गई कोई जानकर सिंह के मुख में हाथ नहीं डालता, जानकर दीवालो से नहीं निकलता अगर पता चल जाय कि यह दीवाल है तो वहाँ से नहीं निकलता और यदि जबरन द्वार समझकर निकलने का प्रयास करेगा तो टकरायेगा सिर फुटेगा, और कोई जानकर तो पत्थर खाता नहीं है, हाँ धोखे से मुंख में कंकड़ आ जाए तो बात और है, लेकिन उसे भी मुख से निकालने की कोशिश करता है, ठीक ठीक जानना जीवन रुपान्तरण है, ऐसा सम्यक्ज्ञान, अनुभवात्मकज्ञान की मुक्ति का कारण है।

श्रद्धा रहित कोरा शास्त्रीय ज्ञान मुक्ति का कारण नहीं, आत्मिय ज्ञान मुक्ति का कारण है। शास्त्रीयज्ञान तो खोपड़ी की तिजोरी में एकत्र होकर अहंकार पैदा करता हैं। इसलिए पंडित-पादरी सब जगह-घूमेंगे फिरेगे, उठेगे-बैठेगे लेकिन वहां नहीं जायेंगे जहाँ जीवन की चेतना जागी है, परमात्मा का चैतन्य मन्दिर बना है। वहां से बचेगे, बल्कि मुनियों की सच्चे गुरुओं की निन्दा करेगे क्योंकि उनकी छाया भी उन्हें काटती है, मुश्किल में डालती है।

सन्तों को, भगवन्तों को समझने के लिए निर्दोष कोमल हृदय चाहिए शास्त्र को समझने के लिए भावुकता चाहिए ताकि सन्यास पैदा हो सके, परमात्मा के गुण-स्मरण में बड़ी शक्ति है, वह तीर जिसके भी हृदय में चुभता है, अर्थात "ध्यातो-धुनीते" जो इसे भावुक हृदय से स्वीकारता है तो उसके हृदय द्वार खुल जाते है और परमात्मा उसके भीतर आकर विराजमान हो जाता है, उसका सब कुछ छुड़ा देता है, राज्य को भी छुड़ा देता है, वैभव को भी छुड़ा देता है सच्चा दिगम्बर मुनि बना देता है। व्यर्थ का सब छुड़वा देता है और जो सार्थक है उससे जुड़वा देता है।

हे परमात्मा! आप सर्वज्ञ हैं, आपने स्वयं की ऋद्धि सिद्धि को समझ लिया हैं, आप बुद्ध हैं, आप केवलज्ञानी हैं इसलिए आपके गुणों की प्राप्ति के लिए सामायिक में स्थित होता हूँ, ताकि आप मेरी शून्यता में उतर सके, मेरे हृदय में विराजमान हो सके।

बस आज इतना ही — दिनांक २१-८-९१
आदिनाथ दिगम्बर जैन नया मंदिर — बुधवार

१६

सब ओर भूकम्प है

किसी ने पूछा था, मन बार-बार भाग क्यों जाता है ? मन इसलिए भाग जाता है कि आप उसका परिचय जिन भोगो से कराते है, उनको तो मन पहले ही भोग चुका है। काफी पुराना परिचय है। नया परिचय नहीं।

एक शराबी शराब घर पहूंचा। पहले से बहुत पीये था, घर से ही पीकर चला था। दुकानदार ने देखा की बहुत पीये हुए हैं। उसने कहा कि आज तुम्हे शराब नही दूंगा। शराबी ने कहा, तुमने अपने आपको क्या समझा है ? क्या एक तुम्ही हो इस गांव में ? किस अकड़ में भूले हों ? दुबारा पांव न रखूगां तुम्हारी दुकान पर। देते हो या नहीं ? दुकानदार ने कहा जाओ यहां से। अब होश में हो तब आना ....।

मूल पद्य– न स्पृश्यते कर्म कलंक- दोषैः
यो ध्वान्त-संघैरिव तिग्म–रश्मिः।
निरंजनं नित्य मनेक मेकम्,
तं देव माप्तं शरणं प्रपद्ये ॥ १८ ॥

हिन्दी पद्य :- पाते न स्पर्श जिनका कर्मारि शशि,
छूती न जैसे रवि को तमको ये राशि।
नित्य निरंजनं अनेका एक माहि,
जाता शरण में उस देव की नित्य भाई ॥ १८ ॥

अन्वयार्थ:-

ध्वान्त-संघै — अन्धकार समूह से
तिग्म रश्मिः इव — जैसे सूर्य स्पृष्ट नही होता है
यः — (उसी प्रकार) जो
कर्म कलंक दोषैः· कर्म-कलंक और रागादि दोषों से
नस्पृश्यते — स्पृष्ट नही होता है
निरंजनम् — निरंजन–निर्मल
नित्यम — नित्य
अनेकम् — अनेक और
एकम् — एक स्वरूप
तं — उस
आप्तम् — आप्त
देवम् — देव की
अहम — मैं
शरणम् — शरण
प्रपद्ये — ग्रहण करता हूं

भावार्थ– जैसे अन्धकार के समूह द्वारा सूर्य का स्पर्श नही किया जाता उसी प्रकार ज्ञानावरणादि कर्म रुप कलंक और रागादि दोष जिसका स्पर्श भी नही कर सकते है, जो नित्य निरंजन स्वरुप है और जो एक रुप होकर के भी अनेक रुप है मैं उसी आप्त देव की शरण को प्राप्त होता हूं।

मूल पद्य	विभासते यत्र मरीचि–माली,
न विद्यमाने भुवनाव भासी।
स्वात्म–स्थितं बोधमय प्रकाशं,
तं देव माप्तं शरणं प्रपद्ये ॥ १९ ॥

हिन्दी पद्य:-	जिनके समक्ष रवि शशि शोभा न पाते।
जिन देव की छवी लख पड़ फीके जाते
निज आत्म लीन अरु ज्ञान प्रकाश मांही
जाता शरण में उस देव की नित्य भाई ॥ १९ ॥

अन्वयार्थः-

भुवनावभासी	— भुवन का प्रकाशक
मरीचि माली	— सूर्य
यत्र	— जहाँ
विद्यमाने	— (आपके) विद्यमान रहने पर
न विभासते	— शोभा नहीं पाता
स्वात्म स्थितम्	–ऐसे अपने आत्म स्वरुप में स्थित
बोधमय प्रकाशम्	— ज्ञानमय प्रकाशवाले
तं आप्तं देवम्	— उस आप्त देव की
शरणं प्रपद्ये	— मैं शरण ग्रहण करता हूँ

भावार्थ-	जिस देव के विद्यमान रहते हुए भुवन प्रकाशक सुर्य शोभा को नही पाता है, जो अपने आत्मा में स्थित है और ज्ञानमयी प्रकाश वाला है, मैं उसी आप्त देव की शरण को प्राप्त होता हूं।

१८–१९

सब ओर भूकम्प है

ओम नमः सिद्धेभ्यः ३
धर्मप्रेमी भव्यात्माओं,

एक बार ऐसा हुआ जापान के एक तीन मंजिला मकान में उपर की मंजिल पर एक साधु ठहरा हुआ था। काफी लोग मिलने आये थे, धनपति, विद्वान सभी आये, साधु की विदाई का समारोह था, संयोग की बात ! जब चर्चा चल रही थी, तब अचानक भूकम्प आ गया। जापान में भूकम्प आना आसान है। लकड़ी का मकान भयानक रुप से कांपने लगा। बस ऐसा लगा कि अब गिरा। लोग भागे। मकान मालिक भी भागा। सीढ़ियो पर भीड़ लग गई। मालिक को गुरु का ख्याल आया और लौट पड़ा। देखा साधु आँखे बन्द किये अपने स्थान पर बैठा हैं मकान मालिक का मन तो हुआ कि भाग जाय और एक मन हुआ कि मैंने हो साधु को निमंत्रण देकर अपने यहां बुलाया था, उन्हें छोड़कर भागना अच्छा नहीं होगा। यही रुक जाता हूँ, फिर जो गुरु का होगा वही मेरा होगा। और जब वे इतने अकम्प और निश्चित बैंठे है, तो मुझे इतना भयभीत होने की जरूरत क्या है ? वह भी रुक गया, गुरू के पास बैठ गया। हाथ पांव कांपते रहे, जब तक भूकम्प समाप्त न हो गया। काफी भयंकर भूकम्प था। सारा शहर तहस–नहस हो गया था। काफी लोग मर गये थे, काफी मकान

गिर गये। शहर की सारी व्यवस्थाऐं भंग हो गयी थी। भूकम्प रुका, लोगों को शांति मिली। लोगों की भाग–दौड़ समाप्त हुई।

जैसे ही भूकम्प थमा, साधू ने आँख खोली और चर्चा प्रारम्भ की। जहां बात टूट गई थी भूकम्प के आने और लोगों के भागने के कारण, वहीं से बात शुरू कर दी, जैसे बीच में कुछ भी हुआ ही न हो। मकान मालिक ने कहा, अब तो मुझे जरा भी याद नहीं है कि हम क्या चर्चा कर रहे थे। बीच में बड़ा तूफान आ गया। बड़ा फासला पड़ गया। मैं तो एकदम भूल ही गया हूँ कि पहले आपने क्या चर्चा की थी। अब वह सवाल महत्वपूर्ण नहीं है। अब तो मैं कुछ और ही पूछना चाहता हूं। यह जो तूफान आया था, भूकम्प उठा था उसके सम्बन्ध में कुछ कहे। तो साधु ने कहा, वह सदा बाहर ही बाहर है। और जो भीतर न प्रवेश कर सके उसका कोई मूल्य नहीं हैं। बाहर सब कंप गया। और मैं वहां सरक गया, जो कभी कंपता ही नहीं, बाहर के तूफान जिसका स्पर्श कभी कर ही नहीं पाते। भीतर कभी कंपन पैदा होती ही नहीं हैं।

बस यही तो आत्म-ज्ञान की कला हैं। ज्ञानी उस जगह सरक जाता है जहां कभी कंपन होता ही नहीं हैं। परमात्मा भी अनन्तकाल के लिए एक ऐसी आत्म गहराई में सरक गये है, पहूंच गये हैं जहां कर्म पहूंच ही नहीं सकते हैं। अन्धकार जिनका स्पर्श कर ही नहीं सकता हैं। परमात्मा के परिधि से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लिया हैं, इसलिए लोक में कैसे भी तूफान आ जाय, कैसे भी भूचाल पैदा हो जाय लेकिन उनका स्पर्श नही कर सकते।

कितना ही तेज तूफान हो, सागर की सतह ही कंपित होती हैं, सागर का अन्तस्थल नहीं। कितनी भी आँधियाँ आये, ऊपर–ऊपर लहरे डोलती हैं, कंपित होती हैं। सागर का अन्तस् अकम्पित ही रहता हैं, अडोल ही रहता हैं। वहां तक हवाओं का जरा भी प्रवेश नहीं, वहां तक जरा भी उनकी चोट नहीं पहूंचती। सीमा उद्वेलित होती है, केन्द्र तो अकम्प ही बना रहता है।

काव्य रहस्य पूर्ण हैं इसे गहराई से समझना होगा। काव्य की प्रथम पंक्ति है "न स्पृश्यते कर्म कलक दोषैः - कर्म-मल जिनका स्पर्श नहीं कर सकते। यो ध्वान्त-संघै रवि तिग्म रश्मि :– अन्धकार सूर्य को छू नहीं पाता। अन्धकार यानि वासनाये—कामनाये आत्मा को छू नहीं सकती क्योंकि आत्मा के मन की संगति को छोड़ दिया है। मन के सम्बन्ध में कुछ बाते समझना आवश्यक हैं। मन सतह हैं आपके व्यक्तित्व की। वह अपनी

आत्मा नहीं हैं। मन तो एक सीमा हैं, जो दूसरों से पृथक करता हैं और जोड़ता है। मन पडोसी से अलग भी करता हैं और जोड़ता भी हैं। जो हेय उपादेय का ज्ञान कराता हैं, सोचने-समझने की प्रेरणा देता है, वह मन हैं। अगर आप अकेले हैं, तो मन की कोई आवश्यकता नहीं हैं। इसलिए जिन्हें मन को मिटाना हैं वे एकान्त में तपस्या करने चले जाते है। भरे संसार में भी जो अपने को कमलवत् बना लेता है, उसका मन अपने आप मरने लगता है। मन का अर्थ है, तुम्हारे और दूसरे के बीच सीमा रेखा, पदार्थ और तुम्हारे बीच सीमा की रेखा, वही आपकी सतह हैं। और इतना अवश्य ध्यान रखना सतह के लिए दूसरे का होना जरुरी हैं। इसलिए परमात्मा का कोई मन नही होता, उसकी कोई सतह नहीं हैं तभी तो असीम हैं और दूसरो से, पदार्थ से अप्रभावित हैं।

असीम अकम्प हैं, असीम कम्पित हैं। मन सीमित है, आत्मा असीमित है। मन सतह है, जहां से पदार्थ, वासनाये पृथक होती है। आत्मा सागर की वह गहराई है जहां पर तूफान नहीं उठते है। और समझ लेना जहां तूफान पहूंच जाये वहां गहराई नहीं ह, सतह ही है। जो साधक आत्मा की खोज में निकलते है, आत्म-ज्ञान की खोज में निकलते है, बोधि-सुमन खिलाना चाहते है, वासना के शूल मिटाना चाहते है उनकी खोज का महत्वपूर्ण हिस्सा की वे आत्म-गहराई में उतर आये, आत्म-शरण में पहुंच जाय, असीम की शरण को ग्रहण कर ले, ताकि स्वयं सुरक्षित हो जाय।

अगर आप उद्विग्न हैं, परेशान है, क्लान्त है, दुखी है तो उसका एक ही कारण है कि परिधि पर, शरीर के तल पर जी रहे हो। किसी के शब्द उद्वेलित कर रहे है, संतृप्त कर रहे हैं तो समझना कि परिधि के साथ तुम्हारा तादात्म्य सम्बन्ध है। आप उस जगह खड़े है। जहां सब तरफ से, सभी प्रकार के तूफान आते है, हवायें कंपाती है, आग जलाती है, सुख—दुख घेरते है, प्रशंसा - निन्दा छूती है। और आप इस प्रयास में है कि ऐसी घड़ी आ जाये कि निन्दा परेशान न करे और सदा हर्षोंन्माद से भरे रहे, प्रशंसा से भरे रहे, दुख आंसू न पैदा कराये। ऐसा कभी भी संभव नहीं है। हवा आये और पानी में लहर न उठे। हवा चलेगी तो पानी में नियम से लहरे उठेगी। जो देह की शरण में जियेगा, वो निश्चित ही दुखी बनेगा, आँखों से आंसू बहेंगे, दुख के बादल छायेगे। परिधि पर खड़ा रहने वाला नियम से हारेगा। अनन्त जन्मों का अपना इतिहास उठाकर देख लो, हारते चले आ रहे हो। वहां कोई भी सुखी नहीं रह पाया। जो भी वहां खड़ा रहेगा, देह से सम्बन्ध जोड़ेगा नियम से

हवाये छुयेगी, दुखी होओगे, सुख आयेगा तो सुखी होओगे यहां बचने का कोई भी उपाय नहीं है, कोई भी शरण नहीं है। शरण भीतर है। और आचार्य देव उसी शरण की बात कर रहे हैं। जो अपनी आत्म-गहराई की शरण में पहुंच गया, उसे सुख-दुख का अन्धकार छू नहीं सकता। जिसने आत्म-प्रकाश की, परमात्म-प्रकाश की शरण ग्रहण कर ली, उसे अन्धकार परेशान नहीं कर सकता, वहां तक अन्धकार पहुंच ही नहीं सकता।

समुद्र में विचरण करने वाली व्हेल मछली को तूफान की सूचना चौबीस घण्टे पहले मिल जाती है। वह सागर में तूफान उठने के पहले तलहटी में चली जाती है। वहां तो एकदम शांतता ही बनी रहती है।

आपने कभी ख्याल किया कोई भी साधु सबसे पहले अपनी स्पर्श इन्द्रिय की संवेदनशीलता को कृश करता है, कम करता है, नष्ट करता है। तप के माध्यम से, उनकी पूरी साधना शरीर की संवेदनशीलता को नष्ट करता हैं, वे घण्टों धूप में खड़े हैं, ठण्डे में बैठे हैं, कांटों पर लेटे हैं, एक पांव पर खड़े हैं, कांटो पर लेटने से शरीर की, स्पर्श-इन्द्रियों की संवेदन शीलता थोड़े दिनों में समाप्त हो जाती हैं इसलिए कांटो की चुभन महसूस नहीं होती, क्योंकि स्पर्श मुर्दा हो गया, संवेदनशीलता खो गई।

एक आदिवासी बैठकर चिलम पी रहा था। उसकी पत्नी पास में ही काम कर रही हैं, खड़ी हैं, उसने उससे कहा-देख तूने आगी पर पांव रख दिया हैं, पैर हटा अपना, वह स्त्री अपना काम करती रहती हैं और कहती है कि कौनसा पैर, बांया की दायां ?

आदिवासी के पैर की चमड़ी मरी होती हैं उसे पांव के नीचे पड़ी अग्नि का भी पता नहीं चलता हैं, साधु सन्यासी भी यही कर रहे हैं अपनी स्पर्श-इन्द्रिय की संवेदनशीलता को नष्ट कर रहे हैं। सभी इन्द्रियों में स्पर्श इन्द्रिय बड़ी हैं। क्योंकि सर्व-प्रथम उसी इन्द्रिय का निर्माण होता हैं और पूरे शरीर में फैली रहती है, मां के गर्भ में सब चमड़ी का जन्म होता है उसके बाद सभी इन्द्रियां चमड़ी का रूपान्तरण है, यद्यपि पर्याप्ति नाम कर्म के उदय से सभी इन्द्रियों का प्रारभ तो एक साथ होता हैं लेकिन पूर्णता क्रम से होती है। आँख भी चमड़ी है लेकिन उसके पास देखने की विशेष कला हैं। कान भी चमड़ी हैं लेकिन उसके पास विशेष कला है सुनने की। जीभ भी चमड़ी है लेकिन स्वाद को लेने की क्षमता उसके पास हैं। नाक भी चमड़ी की हैं, उसने सूंघने की कला सीख ली हैं। वे अपने-अपने विषयों को ग्रहण करने में एक्सपर्ट्स हैं, लेकिन सभी शरीर के अंग है।

इसलिए मानव शरीर में स्पर्श सबसे मौलिक इन्द्रिय है, तथा उसका

कार्य क्षेत्र भी विस्तृत है। इसलिए सबसे पहले अपनी स्पर्श–इन्द्रिय पर मालकियत जमाता है। उस पर-विजय-पताका फहराता हैं, उसे अपने वश में करता हैं उसकी संवेदनशीलता को नष्ट करता हैं। क्योंकि ज्यादा संवेदनशीलता में कष्ट सहन नहीं कर सकता। इसलिए साधू धूप में खड़ा रहेगा सर्दी में खड़ा रहेगा। शरीर को धूप में, सर्दी में खड़ा करके स्वयं धीरे से अपने भीतर खिसक आयेगा। शरीर धूप में सूखता रहेगा, जलता रहेगा और आत्मा फुलती-फलती रहेगी। शरीर सिकुड़ता रहेगा, आत्मा फैलती रहेगी। शरीर गलता रहेगा आत्मा बनती रहेगी। आत्म शरण में आने पर बाहर के सुख-दुख स्पर्श नहीं करते। परमात्मा ने भी गहराई पा ली है, आत्मा को परम-विशुद्ध बना लिया हैं इसलिए कर्म-कलंक उसका स्पर्श नहीं कर पाते. अन्धकार उनके प्रकाश को छू नहीं पाता हैं।

एक काल्पनिक घटना आपसे कहता हूँ, एक दिवस अन्धकार ने परमात्मा से शिकायत की कि प्रकाश मुझे चैन से रहने नहीं देता हैं। वह सदा मेरे पीछे पड़ा रहता हैं, मुझे चैन की सांस भी नहीं लेने देता हैं। एक क्षण को आराम भी नहीं करने देता हैं। मैं आ भी नहीं पाता, ठहर भी नहीं पाता कि मुझे भगाने आ जाता हैं। जबकि मैंने प्रकाश का कुछ भी नहीं बिगाड़ा हैं, और न ही मैंने उसकी कभी निन्दा की हैं। हे परमात्मा! आप उसे समझाईये, वह मुझे तंग न करे।

परमात्मा ने दूत को पहुंचाकर प्रकाश को बुलाया और डांटते हुए कहा कि तुम्हारा रंग रुप अच्छा है, जगत में तुम्हारा सम्मान बहुत हैं। सब तुम्हें आदर की दृष्टि से देखते हैं। सब तुम्हारी महिमा गाते हैं, फिर तुम गलत काम क्यों करते हो ?

प्रकाश ने सविनय कहा, कौन सा गलत काम ? किसके साथ गलत काम ? आप स्पष्ट बताये अगर मैंने किसी के साथ दुर्व्यवहार किया होगा तो अभी आपके सामने उससे क्षमा याचना किये लेता हूं।

परमात्मा ने कहा, तुम्हारा अन्धकार ने क्या बिगाड़ा है तुम उसे क्यों परेशान करते हो ? तुम क्यों उसके पीछे पडे हो ? प्रकाश ने कहा-भगवान ! मैंने तो आज तक उसे देखा ही नही है मेरी तो उससे कभी मुलाकात ही नही हुई। आप उसे मेरे सामने बुलाये, मैं क्षमा मांगने को तैयार हूं। परमात्मा ने जैसे ही पीछे पलटकर देखा, तो अन्धकार वहां से गायब था। परमात्मा स्वंय आज तक अन्धकार और प्रकाश को नहीं मिला सका। इसलिए आचार्य देव को कहना पड़ा कि अन्धकार भी आपको छू नही सकता। आपकी आत्मा अत्यन्त निर्मल और पवित्र हो गई है कर्म-

मल कलंक उसका स्पर्श भी नहीं कर सकते। सोना शुद्ध हो चुका है अब उसे कहीं भी रख दो, चाहे कीचड़ में भी डाल दो लेकिन चकित होने वाला नहीं है।

हे परमात्मा ! आप हमारी पंकित आत्मा में, कर्म-किचड से मलीन आत्मा में वास करे। आपके विराजमान होने से मेरी आत्मा पवित्र हो जायेगी। आपका तो कुछ बिगड़ने वाला नही है, क्योंकि आप तो एकदम शुद्ध स्वर्ण है। इसलिए मैं आपकी शरण को ग्रहण करता हूं आपकी शरण को स्वीकार करता हूं। आपके चरणों में बैठकर ही अपनी आत्मा के कलमष धोऊंगा।

मैं अपनी आत्मा की शरण को प्राप्त होता हूं। वही एक मात्र सच्ची शरण है। अब मैं देह की शरण को तजता हूं, त्यागता हूं। देह की शरण के कारण ही तो मेरा संसार चलता आया है। आत्म गहराई में जाने पर देह की संवेदनशीलता मर जाती है। तप-त्याग से, कायोत्सर्ग से देह का ममत्व भाव घटता जाता है। देह की संवेदन शीलता जड हो जाती है।

आपने कभी ख्याल किया हो मेहतर सिर पर मल की टोकरी लेकर जाती है, उसे मल से जरा भी परेशानी नहीं होती। उसे मल की दुर्गन्ध नहीं आती। लेकिन वह साधु नही है। वह निर्विचिकित्सा अंग का पालन भी नहीं कर रहा है। वो मात्र अर्थ कमाने के लिए श्रम कर रहा है। अनेक साधु कांटों पर लेटे है इससे उन्हें मोक्ष नही हो जायेगा क्योंकि वे सम्मान की आकांक्षा से लेटे हैं अभिप्राय कुछ और है। उनने भी संवेदनशीलता को नष्ट कर दिया है। मेहतर ने भी घ्राण इन्द्रिय की संवेदनशीलता को नष्ट कर दिया है। मेहतर आदत में ढ़ल गया है। उसकी नाक मर चुकी है। निरन्तर पाखाना ढ़ोना पडेगा तो नाक कितनी देर जिन्दा रहेगी ? अगर आपके सामने से वह यूं ही खाली निकल जाय तो आप नाक पर रुमाल रख लेते है. क्योकि आपकी नाक बहुत सुक्ष्म है नासापुरों के अणु बहुत सुक्ष्म हैं जो गन्ध को ग्रहण करते है। बहुत डेलिकेट है, बहुत नाजुक है उन पर लगातार चोट करो तो वे मर जाते हैं। इसलिए मेहतरों को कोई दुर्गन्ध नहीं आती है न गन्ध आती हैं. फिर भी इन्हें साधु नही कह सकते, क्योकि इनने नासा-इन्द्रिय को जीता नहीं मारा है। वह आत्म गहराई में उतरा नही है। लेकिन वीतरागी साधु आत्म गहराई में उतर कर शरीर से तादात्म्य सम्बन्ध ही तोड़ लेते है। वे शरीर को मारते नहीं उससे अपना ममत्व भाव घटाते है। जिससे उसकी संवेदनशीलता नष्ट हो जाती है।

वह साधु भी भूकम्प के समय आत्म शरण में चला गया भयंकर भूकम्प के समय तीसरी मंजिल मैं बैठा रहा, उसका मन जरा भी अशांत या विचलित नहीं हुआ। लोग डरकर भागे, वह भागा लेकिन वह बाहर नही भीतर भागा और लोग बाहर भागे लेकिन उसके भागने का ढ़रा अलग था वह भी हट गया लेकिन वह परिधि से हटा, सुरक्षित स्थान पर पहुंच गया। भागो तो सभी लेकिन सब वहां भागे जहां भूकम्प था, तूफान था, हलचल थी, ऐसे भागे । भूकम्प मात्र तीसरी मंजिल पर ही थोडे न आया था, वह तो दूसरी पर भी आया था, पहली पर भी आया था। सारे शहर में आया था। सारे लोग भाग कहां रहे थे..............? एक भूकम्प के स्थान से दूसरे भूकम्प के स्थान पर ही भाग रहे थे। वहां कोई बचाव नहीं था, मात्र भ्रम था; मन का संतोष था । असली स्थान पर तो वह साधू ही पहुंचा, उसने ही सच्ची शरण खोजी है. आप भी शरण खोज रहे हैं, लेकिन जहां मरण है, असुरक्षा है । आप जिसे शरण समझ रहे हैं, वह शरण के नाम पर एक धोखा है ।

आप एक परिधि से दूसरी परिधि पर भाग रहे है। धन की तरफ, मकान की, पदों की तरफ भाग रहे हैं वहाँ भी भूकम्प है। स्थान बदलने से क्या होगा ? "सब तरफ भूकम्प है" इसलिए ऐसा स्थान खोजो जहां भूकम्प न पहुंचता हो, सुख-दुख न पहुंचते हो। जो भूकम्प से सुरक्षित हो, वही आपकी भी सुरक्षा कर सकेगा । उसकी शरण चलो जो जीवन को वरदान सिद्ध हो। अभी तक तो जहां-जहां शरण खोजी, जिन-जिन की शरण खोजी वे सब अभिशाप सिद्ध हुए। अब उस परमात्मा की शरण चलो जैसे विभीषण राम की शरण में आये थे। तुम भी आतम राम की शरण में आओ। रावण की शरण में बहुत रह लिए उसके काले कारनामें। उनने कुछ दिया नहीं बल्कि लुटा है। बनाया नहीं मात्र मिटाया है · पहचानों असलियत की ओर लौट आओ स्वयं की परमात्मा की शरण में । वहां कौन जीता है ? कौन मरता है ? कैसा जन्म ? कैसी मृत्यु ? जनम मरण तो परिधि पर है, केन्द्र पर नहीं। शरीर है परिधि और आत्मा है केन्द्र।

मन परिधि है वह दूसरे से जोड़ता है । मन जिसे देखता है उसे पाने की ख्वाईश से मर जाता है । आत्मा नहीं देखती मन देखता है, मन तो अतीत का अनुभव करता है जो देखा है, सीखा है, सुना है, जाना है उनकी स्मृतियां करता है या भविष्य की कल्पना करता है । जो वर्तमान में हैं उसका भोग नहीं करता है मन धूल है, क्योंकि मन अतीत है और धूल परिधि पर जमती है । इसलिए पहले मल के दर्पण को स्वच्छ करो,

साफ करो ताकि उसमें सही–सही साफ प्रतिबिम्ब दिख सके।

किसी ने पूछा था, मन बार–बार भाग क्यो जाता है ? मन इसलिए भाग जाता है कि आप उसका परिचय जिन भोगो से कराते है, उनको तो मन पहले ही भोग चुका है। काफी पुराना परिचय है। नया परिचय नहीं है।

एक शराबी शराब घर पहुंचा पहले से ही बहुत पीये था, घर से ही पीकर चला था। दुकानदार ने देखा कि बहुत पिये हुए हैं। उसने कहा कि आज तुम्हे शराब नही दूंगा। शराबी ने कहा, तुमने अपने आपको क्या समझा है ? क्या एक तुम्ही हो इस गांव में ? किस अकड़ में भूले हों ? दुबारा पांव न रखूंगा तुम्हारी दुकान पर। देते हो या नहीं ? दुकानदार ने कहा जाओ यहां से। जब होश में हो तब आना।

शराबी लड़खड़ाता बाहर निकला। बड़ी देर बाद दूसरी दुकान खोज पाया। वह उसी दुकान का दूसरा दरवाजा था। शराबी आदमी। उसको बड़ी देर लग गई ढुंढ़ते। इधर गया, उधर गया, गोल–गोल घूमा, परिक्रमा दी दूकान में, पहुचा। बड़ी प्रसन्नता से बड़बडाते भीतर गया कि क्या समझा है साले ने अपने आपको ? अब नहीं जाऊंगा। साले की दूकान पर। कोई हराम में थोड़े न पिलाता हैं, नकद रुपये देकर पीता हूं। ग्राहक पर ही तो जीते है, फिर भी अकड़ दिखाते हैं। उस दूकानदार ने कहा श्रीमान आप फिर आ गये, आज तुम्हें नही मिलेगी।

शराबी बाहर निकला। फिर खोज बीन की। आधी रात बीत गयी तीसरे द्वार से पुनः उसी दुकान में प्रवेश हुआ। उसने कहा बड़ी मुसीबत है। यहां पर दुकानें बहुत दूर-दूर है। एक दुकान से दूसरी पर जाने में घण्टों लग जाते हैं। उसने सभी दुकाने खरीद ली है ? हर जगह तुम्ही मौजूद हो।

मन किसी भी दरवाजे से घूसे लेकिन पहुंचता तो उसी दुकान पर है। मन कहीं ओर जा ही नहीं सकता, क्योकि अनादिकाल का ससार जो पड़ा है। अब उस संसार से मुक्त होने उनकी शरण चलो जो प्रकाशित है जिनके प्रकाश के सामने सूर्य भी शोभा को प्राप्त नही होता है। परमात्मा का दूसरा विशेषण है 'नित्य-मनेक मेकम्' जो एक रुप होकर भी अनेक रुप है

एक गुरु कुल में दो पंडित एक झण्डे के बारे में विवाद कर रहे थे। एक ने कहा, झण्डा डोल रहा है।

दूसरे ने कहां, झण्डा नहीं हवा डोल रही है। दोनो में काफी विवाद छिड़ गया। दोनों अपने-अपने तर्कों से जिद्ध करने में लगे थे। दोनों के एकान्तिय तर्क थे। विवाद काफी बढ़ गया। पास से ही एक साधू

गुजर रहा था, उसने कहा व्यर्थ क्यों विवाद करते हो। भगवान महावीर का अनेकान्त सिद्धान्त पढ़ो और समस्या का समाधान करो। अभी तो तुम दोनों का अहंकार डोल रहा है, दोनों का मन डोल रहा है। जरा ध्यान से देखो, झण्डे के पास डोलने की शक्ति है और हवा के पास डुलाने की शक्ति है तथा खम्बे के पास झण्डे को थामने की शक्ति है। दोनों के संयोग से झण्डा डोल रहा है। अकेला झण्डा कुछ नहीं कर सकता है।

परमात्मा एक भी है और पर्याय की अपेक्षा अनेक है। भक्तों की आस्था की अपेक्षा अनेक है। क्योंकि हर भक्त परमात्मा को भिन्न-भिन्न रुपों में देखता है, पुकारता है पानी तेरा रंग कैसा ? जिसमें डालो वैसा। पानी तो एक है, लेकिन उसके उपयोग अलग-अलग है, उसी प्रकार परमात्मा तो अपने द्रव्य की अपेक्षा एक है, लेकिन भक्तों की भावनाओं की अपेक्षा अनेक है। परमात्मा-तत्व की अपेक्षा परमात्मा एक है लेकिन अनन्तानन्त आत्माये मोक्ष गयी है इसलिए परमात्मा अनेक भी है।

अनेकान्त दृष्टि के अभाव में मात्र विवाद ही होता है। दोनों पंडित एक झण्डे के बावत विवाद कर रहे थे। एक कह रहा था कि हवा ने उसे फहराया है, दूसरा कह रहा था कि झण्डा स्वयं डोल रहा है। अब झण्डे से क्या लेना-देना है। लेकिन मन तो, अहंकार तो विवाद में दूसरे को हराने में रस लेता है। लड़ने के लिए बहाना कोई भी हो सकता है। चाहे झण्डे के सम्बन्ध में विवाद करो या किसी अभिनेत्री के सम्बन्ध में विवाद के सम्बन्ध में कि कौन सबसे ज्यादा सुन्दर है। विवाद तो आखिर विवाद ही है।

विवाद का रस क्या है दूसरे को हराना। आदमी उपर से ज्ञानी हो गया है लेकिन भीतर का शैतान मर नहीं गया है, जिन्दा है लट्ठ नहीं मारता है, तर्क मारता है। किसी के सिर पर लकड़ी मारो पुलिस पकड़ लेगी। उसकी हमने व्यवस्था कर रखी है। लेकिन तर्क मारो कोई नहीं पकड़ेगा। अहंकार का रस है दूसरे को नीचा दिखा देना, गिरा देना। मैं ठीक हूं तुम गलत हो। हिन्दु कहता है मुसलमान से कि तुम गलत हो। और मुसलमान कहता है हिन्दु से कि तुम गलत हो हिन्दु कहते है कि क्या रखा है जैन धर्म में। सब विवाद में लीन है। जरुर विवाद में गहरा रस है, अन्यथा लोग इतना रस क्यों लेवे ? श्वेताम्बर में विवाद है कि महावीर ने विवाह किया या नहीं किया। दोनों आपस में संघर्षरत है। अब महावीर को मोक्ष गये पच्चीस सौ साल हो गये है। उनके शादी करने या न करने से क्या होगा ? इनके जीवन का

कल्याण तो इनको ब्राह्मचर्य व्रत के पालन से होगा और महावीर का परमात्मा भी ब्रह्मचर्य व्रत के पालन करने के उपरान्त ही प्रगट हुआ। आपस में काफी तर्क खोज लिये हैं दोनों ने। भला विवाह में परमात्मा कैसे उतरेगा ? असली बात महावीर के बाल ब्रह्मचारी होने की नहीं स्वयं के अहंकार की पुष्टि की है।

झण्डा हिल रहा है, या हवा हिला रही है, इस पर विवाद चल रहा है। मौका लगे तो सिर भी फुट सकते हैं हिन्दू मुसलमान की मज्जिदें जलाते हैं, मुसलमान हिन्दुओं की मूर्तियां फोड़ते हैं। अगर आदमी के पास जरा भी बोध हो कि चाहे मज्जिदें जलाओं, चाहे मूर्तियाँ तोडों दोनो में हिंसा विद्यमान है, तो संभल जायेगा। शक्ति तो दोनो की व्यय हो रही है, दोनो बाहर उलझे है, दोनों का जीवन हाथ से निकल जा रहा है। यह सब हट की मूढ़ता है, अहंकार की मूढ़ता है, इसलिए आचार्य देव को कहना पड़ा कि परमात्मा एक भी है और अनेक भी है।

आदमी बहुत चतुर, पशुता को सिद्ध करने के उसने अनेक उपाय कर रखे है। लोग शतरंज खेल रहे है, लकड़ी के हाथी घोडे दौडा रहे है। जिन्दा हाथी-घोडे दौड़ाना तो मुश्किल है। असली हाथी घोडे चलायेंगे, पालन भी मुश्किल पडेगा। आदमी को पालना तो मुश्किल जानवरों को कैसे पाल सकेंगे। तो नकली हाथी-घोडे पिद्दी-मंत्री सम्राट को दौड़ा रहे। असली सम्राट को दौड़ाये तो पता चलेगा. शतरंज खेलने वाले की मुद्रा देखो कितनी गंभीर रहती है जीतने के लिए जीवन दाव पर लगा देता है। कई लोग परमात्मा है या नही, सिद्ध-असिद्ध करने में समय व्यतीत करते हैं।

करोडो-वर्षो से आदमी लड़ रहा है। न नास्तिक को समझा पाता है और न आस्तिक नास्तिक को हरा पाता है। ये बातें तर्को से तय नही हो सकती। परमात्मा तर्क विषय नही है, अनुभूति का विषय है। परमात्मा कोई पदार्थ थोडे न है जो हाथों पर रख कर दिखाया जा सके या प्रयोगशाला में अनुभव किया जा सकता है। परमात्मा तो समाधि की प्रयोगशाला में अनुभव किया जा सकता है। परमात्मा असीम है और आप समीप है। परमात्मा अदृश्य, अरुपी है, उसे बनाया और दिखाया नहीं जा सकता। उसे सिद्ध भी नही किया जा सकता। यदि उसने जगत का सृजन किया है तो एक बात पक्की है कि बनाते समय आप मोजूद नहीं थे। कोई साक्षी नहीं था, कोई गवाह नहीं था, क्योकि जगत शून्य था। और इतना बड़ा कृत्य बिना गवाह के कोई मान भी नहीं सकता। वैसे जगत का कर्ता कोई नहीं है जगत के निर्माण के सम्बन्ध में अलग-अलग दर्शनकारों की

भिन्न-भिन्न किंवदन्तियां है।

ईसप की कथा है- परमात्मा ने झाड़ बनाये, पोधे बनाये, आसमान बनाये, चान्द तारे बनाये, पृथ्वी बनायी और छंटवें दिन आदमी बनाया। फिर उसके बाद उसने कुछ नही बनाया। किसी जिज्ञासु ने पूछा, फिर क्यो नहीं बनाया? तो उसने कहा कि आदमी से वह इतना घबड़ा गया। यह देखकर कि यह क्या कर बैठे। इसलिए उसने इसके बाद कुछ नहीं बनाया। मनुष्य पात्र स्वयं को बना और मिटा सकता है। स्वयं का ससार उसके हाथों में है।

धर्म शुरु होता है परमात्मा की समीचीन आस्था से, तर्क से नहीं तर्क तो खुजली की भाँति है इसे जितना छेड़ोगे उतनी खुजली को खुजलाते चले जाओ तो आखिर में आप पायेगे कि घाव पड गये। तर्क के पीछे अगर आप भागे तो सारी आत्मा घाव से मर जायेगी, मस्तिष्क बीमार हो जायेगा। तर्क खुजलाहट है, खुजली बीमारी है। तर्क बीमारी है। उसके पीछे ज्यादा मत पड़ो। औषधि खोजों कि कैसे मन की भ्रांति टूटे, मन शात हो जाय और आप केन्द्र पर स्थित हो सके, परिधि से आपका नाता टूटे। कैसे अपने घर वापस लौट सके जरा डुबो ध्यान-सामायिक में और परमात्मा के बारे में सोचो-परमात्मा अनन्त ज्ञान स्वभाव वाला है, अपनी आत्मा में स्थित है, मैं ऐसे परमात्मा की शरण को प्राप्त होता हूं। मैं अडोल-अकम्प होता हूं। जो अडोल अकम्प हो जाता है वही परमात्मा को पा जाता है एक गीत कहता हूं

चलो चले वीर की छाव में
चलो चले वीर की शरण में
कामना की राहो में, कदम बहक जायेंगे
वीर की शरण चले जहां संभल जायेगे
बीज में वृक्ष छुपा आज उसे ही अर्पण करना है,
उसकी चरण-रज आज लगा आयेगे
चलो चलें गुरुवर की छाव में ... ...
साधना के नीर से सिंचन उपवन का करना है
पतझर में उजडे उपवन का मधुमास से भरना है
मन की रीति गागर में कुछ नीर तो आयेगा
चलो चलें प्रभुवर के चरणों में
चलो चलें गुरुवर की शरण चलें।

शेष चर्चा आपसे कल करूंगा, क्योंकि शरण की बात, शरण के वरण के चयन में समय लगता है।

बस आज इतना ही

आदिनाथ दिगम्बर जैन नया मन्दिर
प्रतापगढ़

दिनांक २३-८-९१
शुक्रवार

२०

तू-ही-तू

अहंकार जीवन की मूल भूत समस्या है और समर्पण शरण मूल भूत समाधान। पहले अहंकार को समझने की कोशिश करे, जब पप्पू छोटा होता है तब उसे 'मैं' का कोई बोध नहीं होता। सिर्फ हूं ऐसा बोध होता है तभी तो वह हर बात में हां कर देता हैं। जिस दिन न करने लगे तो समझना उसका 'मैं' विकसित होने लगा। बच्चे वर्षा में भींगने लगते है, क्योंकि उनके बोध का विकास नहीं हुआ। अग्नि में हाथ डाल देंगे क्योंकि अभी बोध नहीं है। माता-पिता धीरे-धीरे बच्चों में संस्कार आरोपित करते है कि दौड़ में प्रथम आना, परीक्षा में प्रथम आना पुरस्कार जीतकर लाना। बच्चों को अहंकार से भरते रहते है। और युवा होते-होते बालक के ऊपर अहंकार का कड़ा मजबूत खोल चढ़ जाता है। जिसे तोड़ना मुश्किल होता है। अहकार टूटता है तो समर्पण होता है। अहंकार मजबूत हो जाये तो छोड़ना मुश्किल पड़ता है।

मूल पद्य :- विलोक्यमाने सति यत्र विश्वम् ।
विलोक्यते स्पष्टमिदं विविक्तम् ॥
शुद्धंशिवं शान्तमनाद्यनन्तम् ।
तं देव माप्तं शरणं प्रपद्ये ॥२०॥

हिन्दी पद्य :- जिनके सुज्ञान में सब संसार दिखता
स्पष्ट हैं झलकता पर से न मिलता
हैं शान्त शुद्ध शिव रूप अनित्य नाही
जाता शरण में उस देव की नित्य भाई

अन्वयार्थ :-

यत्र	— जिसके
विलोक्यमाने	— अवलोकन
सति	— करने पर
इदम्	— यह
विश्वम्	— समस्त विश्व
स्पष्टम्	— स्पष्ट रूप से
विविक्तम्	— पृथक-पृथक
विलोक्यते	— दिखाई देता है
शुद्धम्	— उस शुद्ध
शिवम्	— शिव
शान्तम्	— शान्त स्वरूप और
अनाद्यनन्तम्	— आदि अन्त से रहित
आप्तं तं देवम्	— आप्त देव को
शरणंप्रपद्ये	— मैं शरण को प्राप्त होता हूँ

भावार्थ :- जिसके अवलोकन करने पर यह सारा विश्व स्पष्ट और पृथक-पृथक दिखाई देता हैं जो शुद्ध शान्त, आदि अन्त रहित और शिव स्वरूप हैं मैं उसी आप्त देव की शरण को प्राप्त होता हूं।

२०

तू–ही–तू

ओमनमः सिद्धेभ्यः ३
धर्मप्रेमी भव्यात्माओं !

एक प्रेयसी के द्वार पर किसी प्रेमी ने दस्तक दी। प्रेयसी की भीतर से आवाज आई, कौन है?

जो द्वार के बाहर खड़ा था, उसने कहा, मैं हूं तुम्हारा प्रेमी, यह घर दो को मैं और तू को नहीं संभाल सकता, और द्वार बन्द ही रहा।

प्रेमी जंगल चला गया. वहां उसने साधना की, तप किया, उपवास किये, प्रार्थनायें की।

काफी वर्षों के बाद वह लौटा, और दुबारा उसने द्वार खटखटाये) और फिर वही प्रश्न दोहराया गया, बाहर कौन है?

पर इस बार द्वार खुल गये। क्योंकि उत्तर बदल चुका था, तू ही है।

आचार्य कह रहे हैं कि "शरणं प्रपद्ये" मैं आपकी शरण को प्राप्त होता हूं। क्योंकि आपके विराट् ज्ञान में सारा लोक, स्पष्ट झलकता है, प्रत्येक पदार्थ पृथक-पृथक प्रतिबिम्बित होते हैं। आप शुद्ध हैं. शांत हैं, अन्त से रहित हैं और शिव स्वरूप हैं।

मैं आपकी शरण को प्राप्त होता हूं। आपकी शरण में आता हूं,

मैं परमात्मा की शरण को जाता हूँ, ऐसा नहीं कहा। शरण में जाना तो अधूरा समर्पण हैं। मार्ग में विचार बदल सकता हैं, मन भटक सकता हैं। शरण में पहुंचने का निश्चय नहीं हैं। "अरिहंते शरणं पव्वज्जामि" यह शरण में पहुंचने की अंतिम स्थिति हैं। 'बुद्धम् शरणं गच्छामि" बुद्ध की शरण में जाता हूँ। "संघम् शरणम् गच्छामि" संघ की शरण में जाता हूँ। "धम्मं शरणं गच्छामि" धर्म की शरण में जाता हूँ। बुद्ध की शरण में जाता हूँ, यह यात्रा का प्रारंभ हैं। "अरिहन्ते शरणं पव्वज्जामि" अरिहन्त की शरण को प्राप्त होता हैं। साधक पहुंच चुका है, अंतिम स्थिति है। क्योंकि शरण स्वीकार करने के बाद आगे कोई गति नहीं है, कोई मार्ग नहीं है, अगर कोई कहता हैं कि मैं शरण में जा रहा हूं तो यह प्रथम कदम हैं। कुछ दूर जाने के बाद वापस लौटा भी जा सकता हैं। मैं आपकी शरण को स्वीकार करता हूं यह शरण में पहुँचने का प्रतीक हैं, अब वापस लौटना, असभव हैं। लेकिन जाता हैं यह तो यात्रा का प्रथम चरण हैं, "अरिहंते शरम् पव्वज्जामि" यह तो शरण में पहुंचने का प्रतीक हैं पूर्ण समर्पण का प्रतीक हैं, मैं जा रहा हूँ, अभी गया नहीं हूँ, पहुंचा नहीं हूँ, मार्ग में हूँ, यात्रा प्रारंभ कर दी है, यात्रा के बीच में कठिनाई भी आ सकती हैं, उपसर्ग भी हो सकता है, विचार भी बदल सकता हैं, "अरिहंते शरणं पव्वज्जामि" मैं शरण को प्राप्त होता हूँ, यानि मैं अपने अहंकार को छोड़ता हूं, आपको स्वीकार करता हूं, मन को अस्वीकार करता हूँ, जो अपने को स्वीकार करेगा, वह शरण को स्वीकार करेगा. वह शरण को स्वीकार नहीं कर सकता, शरण को स्वीकार करना यानि अपने अहंकार की हत्या करना है।

अहंकार जीवन की मूलभूत समस्या है और समर्पण शरण मूलभूत समाधान, पहले अहंकार को समझने की कोशिश करे, जब पप्पू छोटा होता हें तब उसे 'मैं' का कोई बोध नहीं होता, बोध होता है मात्र रोने का, हँसने का, हूं का, मैं 'हूँ' ऐसा बोध नहीं होता, सिर्फ 'हूँ' ऐसा बोध होता है, तभी तो वह हर बात में 'हां' कर देता है, जिस दिन करने लगे तो समझना उनका 'मैं' विकसित होने लगा, बच्चे वर्षा में भींगने लगते है, क्योंकि उनके बोध का विकास नहीं हुआ, अग्नि में हाथ डाल देगे क्योंकि अभी बोध नही है, माता पिता, छोटे-छोटे बच्चों में संस्कार आरोपित करते है कि दोड़ में प्रथम आना, परीक्षा में प्रथम आना, पुरस्कार जीतकर लाना, बच्चों को अहकार से भरते रहते है, और युबा होते-होते बालक के ऊपर अहंकार का कड़ा मजबूत खोल चढ़ जाता है, जिसे तोड़ना मुश्किल होता है, अहंकार टूटता है तो समर्पण होता है, अहंकार मजबूत हो जाये तो छोड़ना मुश्किल

पड़ता है, अहंकार के सद्भाव में परमात्मा को छोड़ दो साधारण सी स्त्री को प्रेम करना तो मुश्किल है।

आप कह सकते हैं कि हम पति पत्नी आपस में बहुत प्रेम करते हैं, तथा आपस में भी हजार बार दुहराते हैं कि मैं तुम्हें बहुत प्रेम करता हूं, पति पत्नी को कहता है, पत्नी पति को कहती है, लेकिन यह सब ऊपरी ऊपरी है, यह तो इस बात की सूचना है कि आपस में नहीं हैं अन्यथा बार बार कहने की क्या जरुरत थी, बार-बार पत्नी को मनाने के लिए आभूषण गहने, हीरे जवारात भेंट करने की क्या जरुरत हैं ? प्रेम के सामने तो यह सब कचरा हैं, पत्नी को भी प्रतिदिन शृंगार करने की क्या जरुरत हैं, जिस दिन हृदय का दान हो जायेगा, उस दिन शृंगार शेष न रह जायेगा, जब तक हृदय का दान नही हुआ है तब तक यह सब नाटक है, अगर प्रेम के बीच से अहंकार खो जाये तो समर्पण सहज हो जाता है।

जैसे-जैसे विवेक जागता है, सम्यक्‌ज्ञान पैदा होता है, धर्म का जागरण होता है वैसे वैसे अहंकार मिटता जाता हैं गलता जाता। जैसे-जैसे सूर्य निकलता जायेगा, उगता जायेगा, वैसे-वैसे बर्फ गलती जायेगी, बर्फ की चट्टाने पिघलती जायेगी। ऐसे ही जब कोई परमात्मा के निकट जाता है तो उसका अहंकार पिघलता जाता है। अगर धर्म क्रिया करते हुए, स्वाध्याय करते हुए भी अहंकार की पर्ते बढ रही है, मजबूत हो रही है चट्टाने बन रही है तो समझना कि धर्म से बहुत दूर है, मार्ग भटक गये है। कही और किसी दिशा में चरण बढ़ रहे है, वह परमात्मा की दिशा नही है। प्रातः सूरज के उगते ही बर्फ पिघलने लगती है, तो क्या तुम्हारी आत्मा में परमात्मा के प्रगट होते ही अहंकार नही पिघलेगा।

आपका प्रश्न हो सकता है कि बिना अहंकार के प्रतिस्पर्धा भी तो नहीं होती, विकास के लिए अहकार जरुरी है ?

लेकिन एक बात का ख्याल रखना, अहंकार जीवन के प्रथम चरण में जरुरीं है, सांसारिक विकास के लिए, आत्म-रक्षा के लिए, कवच चाहिए, विकास के लिए प्रतिस्पर्धा चाहिए। चारों तरफ संघर्ष है, जीवन खतरे में है। अगर मैं का भाव नही होगा तो कैसे आगे बढ़ेगे। मैं का भाव तो रहे लेकिन उसके साथ तादात्म्य सम्बन्ध न रहे। तो स्वाभिमान को कायम रखकर भी प्रतिस्पर्धा की जा सकती है, जितना प्रथम चरण में अहंकार आवश्यक है, उतना उससे छुटकारा पाना भी जरुरी है।

जैसे कोई ऊपर जाने के लिए सीढ़ी का उपयोग करता है, तभी तो ऊपर पहुंच सकता है, यदि सीढ़ी को ही पकड़े रहे तो ऊपर न पहुंच सकेगा,

सीढ़ी पर ही रुक जायेगा, सीढ़ी चढ़नी भी पड़ती है और छोड़नी भी पड़ती है, तभी कोई ऊपर पहुंचता है. पकड़ना भी पड़ता है और छोड़ना भी पड़ता है. अहंकार की सीढ़ी को आप पकड़ लेते हैं फिर छोड़ते नहीं है।

आप तो एक ऐसे यात्री है बस में चढ़ गये तो फिर उतरने का नाम नहीं लेते। बस का नियम है, एक जगह बैठना पड़ता है और एक जगह उतरना पड़ता है। बस मात्र बैठने के लिए नहीं है, बैठकर उतरने के लिए है।

दो तरह के लोग हैं संसार में। एक वे हैं. जो कहते हैं कि जब उतरना ही है बस से, तो चढ़े ही क्यों? उनकी बात में तर्क है। क्योंकि कभी-कभी पागलों की बातों में भी थोड़े तर्क होते है, पागलों के लिए।

और दूसरे वे लोग है जो कहते है कि जब चढ़ ही गये है तब उतरे क्यों? नहीं तो चढ़े ही क्यों? दोनों की बातों में विरोध नहीं है, तर्क एक ही है। लेकिन उनके पास हठ है, अहंकार है। तर्क के दो अंग है। एक पागलों का तर्क है और दूसरा हठाग्रही का तर्क है। एक कहता हैं कि हम चढ़ेंगे ही नहीं दूसरा कहता है क्योंकि उतरना पड़ेगा। दूसरा कहता है कि अब चढ़ गये तो अब हम उतरेंगे नहीं।

दोनों ही वंचित रह जायेंगे यात्रा से। ज्ञानी तो वह है जो चढ़ना भी जानता है और उतरना भी। संसार में फंसे है तो व्रत लेना भी पड़ेंगे और ध्यान में संकल्प-विकल्प से मुक्त होना भी पड़ेगा। अहंकार को ग्रहण किया है तो अहंकार को छोड़ना भी पड़ेगा। जीवन के विपरीत के अनुभव से बढ़ता है और परिपक्व होता हैं। जीवन एक डायलेक्टिक्स है। जीवन बड़ा द्वन्द्वात्मक हैं।

अन्धकार का एहसास होने पर ज्योति की तलाश प्रारंभ होती है। असत्य का असत्य की तरह बोध हो जाये तो सत्य की तरफ कदम बढ़ने लगते है। मूलबात है अगर भीतर सीखने की प्यास है तो चोर से भी सीख लोगे और अगर प्यास नहीं है तो परमात्मा से भी सीख नहीं पाओगे। अहंकार झुकने नहीं देता है, शरण में जाने नहीं देता है।

आप इतना अवश्य ख्याल रखना कि जो-जो इस संसार सृजन में सहयोगी है. वही-वही परमात्म-उपलब्धि में बाधक कारण है। इसे यूं समझें............जो जो यहां साथ देता है, वही-वही मोक्ष-मार्ग में बाधा देता है, क्योंकि यात्रा विपरीत हैं। अगर संसार की यात्रा पूर्व की है तो परमात्मा की यात्रा पश्चिम की हैं। अगर संसार की यात्रा नीचे की तरफ है तो परमात्मा की यात्रा ऊपर की तरफ है। अगर संसार में दूसरों की तरफ जाते हो. तो इस यात्रा में अपनी तरफ लौटना है, अपनी तरफ आना है।

संसार की यात्रा में पकड़ना ही पकड़ना है, तो मोक्ष की यात्रा में छोड़ना ही छोड़ना है। अगर यहां विचार साथ देता है तो वहां निर्विचार साथ देता है। यहां जितने अशांत होते हैं वहां उतने शांत होते हैं। यहां जितने विषाद से भरे होते हैं वहां उतने आनन्द से भरे होते हैं। यहां की गहन अशांति शांति के लिए कारण बन जाती है। हृदय का दौरा पड़ता है, तो धर्म का द्वार, परमात्मा का द्वार नजर आता हैं। संसार और परमात्मा विपरीत आयाम है, अगर इन्हें अच्छी तरह समझ लिया तो शरण में जाने की यात्रा सुगम होगी।

संसार की यात्रा के लिए अहंकार जितना जरूरी हैं, मोक्ष-यात्रा के लिए उतना ही भारी हैं, बाधक हैं। जो यहां सहज हैं, विनम्र हैं वो यहां हारा हुआ हैं, पराजित है। भगवान महावीर का वचन है जो विनयवान है वही मोक्ष का पात्र हैं 'विनयं मोखस्य कारण'' विनय मोक्ष में कारण है। जीसस का प्रसिद्ध वचन हैं कि जो विनम्र है वे ही प्रभु के राज्य के मालिक होंगे। बड़ी विपरीत यात्रा है-यहाँ जो विनम्र हैं पंक्ति में खड़ा हैं तो पीछे ही रह जायेगा। उसे हर कोई धक्का दे देगा, बाहर निकाल देगा, कभी पहुंच ही न पायेगा। क्योंकि यहां संघर्ष भारी हैं, सभी धक्का मार रहे हैं। यहां की प्रतियोगिता तेज हैं। यहां तो आगे आने के लिए आक्रमक व्यक्तित्व चाहिए। और परमात्मा को पाने के लिए समर्पणात्मक हृदय चाहिए, सहनशील, उपसर्गजेता दिल चाहिए।

संसार में रहने के लिए मेक्यावेली का शास्त्र चाहिए। महावीर का नही बुद्ध का नहीं, जीसस का नहीं। संसार में ठहरने के लिए चाणक्य की कला सीखनी पड़ती हैं। मेक्यावेली और चाणक्य कहते हैं कि अगर कोई तुम्हारे ऊपर आक्रमण की तैयारी कर रहा हो तुम पहले ही उस पर आक्रमण कर देना। क्योंकि वही संसार में अपनी रक्षा का उपाय है। लेकिन ऐसी आक्रमक आत्म-रक्षा में दुख ही दुख हैं सुख का जरा भी लेश नहीं। मिर्च खाने में भले ही कितनी ही अच्छी लगती हो, स्वादिष्ट लगती हो, भोजन में स्वाद पैदा करती हो लेकिन उसका अन्तिम परिणाम तो पेट में जलन और शरीर में पीड़ा उत्पन्न करना हैं।

जो-जो यहां मूल्यवान हैं, वह-वह वहां निर्मूल्य हैं और परमात्म तत्व में बाधक हैं। और जो-जो यहां निर्मूल्य हैं, वह-वह-वहां मूल्यवान होता जाता हैं। अगर अहंकार यहां राजपथ है, तो वहां अहंकार ही भटकाव है, वही अहंकार ही अमावस की रात है।

आयें, जरा कथा के रहस्य खोले-वह प्रेमी अपनी प्रेयसी के द्वार पर

गया, उसने आवाज लगायी, उसे पुकारा। भीतर से आवाज आई, "कौन है ?" प्रेमी ने कहा, मैं हूँ। द्वार बन्द ही रहा, प्रत्युत्तर में सुनाई पड़ा," यह घर मैं और तू दो को नहीं सम्हाल सकता।

प्रेमी उदास हुआ और जंगल चला गया। वहां उससे अपनी प्रेयसी को पाने का तय किया, उपवास किया, प्रभु से प्रार्थनायें की। कई वर्ष गुजारे, उसके बाद वह लौटा और पुनः उसी द्वार पर दस्तक दी। द्वार खट खटाया

फिर वही प्रथम. स्वर "बाहर कौन ?

इस बार द्वार खुल गये। क्योंकि उसका उत्तर बदल चुका था, उसने कहा, तू ही है।

अब एक-एक शब्द को समझे कहानी की तह में चले। स्त्री अपने हृदय का द्वार उनके लिए ही खोलती है जो पूर्ण समर्पित होकर आया है। अपना सर्वस्व अर्पण करने आया है अपने अहंकार को तोड़कर आया है। जो द्वार पर प्रेम की भिक्षा मांगने आया हो, जो प्रेम का अमृत पीने आया है। अपने पात्र में प्रेम-रस भरने आया हो। सारा जीवन प्रेम के ही द्वार पर दस्तक दे रहा है। प्रत्येक जीवात्मा की गहरी आंकाक्षा प्रेम देने और प्रेम को पाने की है। आप स्वयं विचार करे ? आपकी पूजा-भक्ति, आराधना-उपासना, प्रार्थनाओं का उद्देश्य क्या है ? मात्र एक ही उद्देश्य कि प्रेम उत्पन्न हो जाए। प्रेम की तलाश से धड़कती है हर दिल कि हर धड़कन। प्रेम की खोज से ही प्रतिदिन पैदा होती है पूजा और प्रार्थना आप स्वयं सोचे प्रेम को पाने और देने के लिए ही जीवन की यात्रा चल रही है। क्या आपने कभी द्वार प्रेम पाने के लिए नही खटाखटाये लेकिन अब एक ही द्वार शेष है परमात्मा का जहां पावन प्रेम मिलता है।

अभी आप प्रेम के नाम पर वासना की गन्दी नालियों में कीड़ो सा कुलबुला रहे है इसलिए जीवन में एक तनाव है, एक चिन्ता है, एक सन्ताप है, एक अजीब प्रकार की बेचैनी सी है, गहन विषाद सा है। जीवन एक मरुस्थल सा है, जहां मात्र धूल ही धूल उड़ रही है। प्रेम के फूल नहीं खिल रहे है, मात्र वासना की धूल उड़ रही है। आदमी प्रेम की खोज में भटक रहा है, आनन्द की खोज में भटक रहा है। आनन्द प्रेम की ही छाया है। आपके जीवन में जब भी प्रेम घटता है, तो आप आनन्दित हो जाते है। चाहे यह प्रेम तक पत्थर की मूर्ति के प्रति घट जाये, एक फूल के प्रति घट जाय, तो भी आनन्द आयेगा। भले ही क्षणिक आनन्द आये। ऐसा आनन्द किसी को धन से मिल जाता है, किन्हीं को यह आनन्द

खिलाड़ियों के फोटो एकत्र करने में मिल जाता है। किन्हीं को यह आनन्द पोस्टल-स्टाम्प एकत्र करने में मिल जाता है। किन्हीं को यह आनन्द बगीचे में वृक्षारोपण में, बागवानी में मिल जाता है किन्हीं को यह आनन्द चित्रकारी में, पेंटिंग में मिल जाता है। लेकिन यह भौतिक क्षणिक आनन्द है लेकिन यह मिला कब ? जब उस पदार्थ के प्रति साधक समर्पित हुआ, उसकी शरण में गया। पदार्थ से प्रेम किया। प्रेम जहां भी है वहां आनन्द ही आनन्द है। अभी आपका मन क्षुद्र से छोटी-छोटी वस्तुओं से लगा है इसलिए आप विराट् को पाने से चूक रहे हैं। जैसे पप्पू का मन गुड्डे गुड़ियां से खेलने में लग जाता है तो माता-पिता का प्रेम पाने से वंचित रह जाता है। आपका मन क्षुद्र वस्तु में अटका है इसलिए मन उससे शीघ्र ही उब जाता है। प्रेम के विषय बदलने से क्या होता है। दवाई बदलने से बीमारी नहीं मिटती। विराट् से प्रेम करने से जीवन का विषाद मिटता है। परमात्मा की शरण चलो पूर्ण समर्पण करो। अभी तो नये नये द्वार खटखटा रहे हैं और वहां से भाग रहें हैं। वहां से चूक रहे हैं। उसने द्वार नही बदला अपने आपको बदला, अपने विचारों को बदला तो प्रेम पा गया। आप प्रतिदिन विचार नही बदलते अहंकार नहीं छोड़ते मात्र पदार्थ बदलते है इसलिए चूक जाते हैं। आपका अहंकार आपको खा जाता है। अपका सम्मान आपके अपमान का द्वार बन जाता है। फूल सम्मान का फूल-हार जीवन की हार बन जाता है।

आपकी हार्दिक आकांक्षा है कि आप ऐसे प्रेम को पा जाये जो कभी न नष्ट हो, कभी न चुके। अभी तो अहंकार के कारण पत्नी भी चूक जाती हैं। पति भी चूक जाता हैं, पिता भी चूक जाता हैं, पुत्र भी चुक जाता है। मित्र भी चूक जाता हैं, प्रेमी भी चूक जाता हैं, प्रेयासी भी चूक जाती हैं। सब एक दूसरे से फर्ज निभा कर चूक रहें हैं, खाली हो रहे हैं और विषाद से भर रहे है। मात्र परमात्मा का प्रेम ही ऐसा प्रेम हैं जो पात्र भरने के उपरान्त कभी समाप्त नहीं होता, मिलने के बाद कभी नहीं चूकता इसलिए "तं देव-माप्नं शरणं प्रपद्ये" मैं आपकी शरण को ग्रहण करता हूं।

हर आत्मा प्रेम के ही द्वार पर दस्तक दे रही हैं। भले ही प्रेम की आड़ में अज्ञान के कारण, मिथ्यात्व के कारण गलत द्वारों पर दस्तक दे रही है, भटक रही हैं लेकिन उसका लक्ष्य तो एक ही हैं मात्र प्रेम को पाना।

किसी ने पूछा था, हर जीवात्मा प्रेम क्यों चाहती हैं ? क्योंकि प्रेम-करुणा आत्मा का स्वभाव हैं, । तथा प्रत्येक नारी और पुरूष सभी

प्रेम के स्रोत से ही जन्मे हैं, इसलिए सभी की खोज एक समान है।

आश्चर्य तो इस बात का है कि लोग प्रेम चाहते हैं लेकिन प्रेम योग्य पात्र नही बनते हैं। इसलिए जीवन कामना-वासना की सूखी कीचड़ में फंसी मछली के समान तड़फ-तड़फकर समाप्त हो जाता है। आप तो चाहते हैं कि पात्र में अमृत भरे और विश से भरते रहते हो। अमृत को सम्हालने के योग्य पहले अपने पात्र को तो बनाओ। विराट् परमात्मा को बुलाना चाहते हो और क्षुद्र वासनाओं से हृदय भरा पड़ा है। विराट् को चाहने से पहले विराट् बनो अन्यथा जिन्दगी सूखी ही बीत जायेगी।

उसने प्रेयसी के द्वार पर दस्तक दी, द्वार नही खुला तो वापस चला गया। कई वर्षो तक अपने अन्दर पात्रता पैदा करता रहा। उसने उसका विरोध नही किया, बल्कि स्वयं में स्वयं का शोध किया। आप तो अपने आपको पात्र समझते हैं, यही तो भूल है। इसलिए आचार्य देव ने पहले पात्र को सफाई का निर्देश दिया। 'मैं' यानि अहम् ही बाधा है, वही तो अपात्रता है। अहंकार तो मात्र मिटाना जानता है उसके पास बनाने की क्षमता कहां है। इसलिए जीवन की जितनी भी श्रेष्ठ घड़िया हैं वे उस समय घटती हैं जब अहंकार नही रहता है। उसी निरहंकार के क्षण में परमात्मा उतरता है, तभी सच्ची शरण नजर आती है।

प्रेयसी ने पूछा, द्वार के बाहर कौन है ? "प्रत्युत्तर मिला, "मैं हूं।" भीतर से उत्तर आया मैं और तू को यह घर नहीं सम्हाल सकेगा घर छोटा है, अहंकार मोटा है। प्रेम का घर तो बहुत छोटा है, इसमें तो एक ही रह सकता है। इसमें दो न समा सकेंगे। प्रेम में द्वैत को स्थान है ही नही। प्रेम यानि अद्वैत, शरण यानि अद्वैत। दो में तो सिवाय कलह के और कुछ नही होता। संसार मैं और तू के कारण ही तो चल रहा है, संसार संघर्ष के बिना नही चलता, और परमात्मा संघर्ष के द्वारा नही मिलता। द्वैत था इसलिए द्वार नही खुला। परमात्मा का द्वार भी इसीलिए नही खुल रहा है। जैसे ही अहंकार गिरता है कि द्वार खुलता है।

वह जगल चला गया। वहां उसने एकान्त का अभ्यास किया, उपवास किया, तप किया, प्रार्थना की और पुनः लौटा। आवाज दी। भीतर से आवाज आई कौन है ? प्रत्युत्तर में कहा, तू ही है। अबकी बार उत्तर बदल गया। कहा तू ही है, तुरन्त द्वार खुल गया। परमात्मा के द्वार भी, मुक्ति श्री के द्वार भी तभी खुलते हैं जब शून्य हो जाते हैं।

उसने तप किया, प्रार्थनायें की, उपवास किया। अपने अहकार को

मारने उपवास किया, सन्त लोग तप मैं को मिटाने के लिए ही करते हैं। अहंकार द्वार हैं कर्मों के आगमन का। जंगल जाने का एक ही कारण हैं एकान्त में अकेले होकर मैं को मिटाने का। दो के बीच में "मैं" को मिटाना बहुत ही कठिन हैं। जितने भी तीर्थंकर हुए हैं, या अन्य दार्शनिक हुए हैं कुछ समय के लिए वे समाज से हटे हैं, एकान्तवास में, अपने "मैं" को मारा हैं उसके बाद पुन: समाज में लौटकर आये और आत्म–सन्देश सुनाया।

वह द्वार पर गया, उसने दस्तक दी। आप भी परमात्मा के द्वार पर दस्तक देने चलो, शरण ग्रहण करने चलो। अगर मैं से हटकर पुकारा तो तुम्हारी आवाज वहां तक न पहुंचेगी। द्वार बन्द ही मिलेगी। अहंकार सहित प्रार्थनाओं का कोई मूल्य नहीं है। मिट जाओ, अहंकार छोड़ना ही एक मात्र शरण जाना है।

हे परमात्मा आप शांत हैं, शिव हैं, शुद्ध हैं, अनन्त है मैं भी आपकी शरण को प्राप्त होता हूं।

मरने के पूर्व मुझे एक और अवसर दो
अब तक जीवन विषय-भोग में
स्वयं को जाने बिना बीत गया
अनगिनत संकल्पों-विकल्पों को
पूर्ण करने में बीत गया
कभी गरीबी ने कभी धन की अधिकता ने
मुझे रोज तोड़ा हैं
सत्य से मुख मोड़ा हैं
मैंने मन की बात मान
गूंगी सच्चाई से मुख मोड़ा हैं
मुझ में मेरापन अब बचा नहीं
मैंने स्वयं का जीवन कभी रचा नहीं,
यह यौवन–वैभव वसन लौटा लो
मुझे अपने जैसा बना लो
मरने से पूर्व एक और जीवन दो
ऐसा दर्पण दो,
जिसमें स्वयं को नग्न देख पाऊं
साहस दो, जैसा भी देखू
मैं लोगों से वैसा ही कह पाऊं

जीवन का इतिहास ओस घुले अक्षरों में रचू नहीं
कर्मोदय मुझे जब जब भी ललकारे
मेरी ओर निहारे
पीठ दिखा भागू नहीं
जो जैसा है वैसा कहने का सामर्थ्य दो
जो जैसा है वैसा जानने की सामर्थ्य दो
जो सत्य है उसमें जीने की सामर्थ्य दो
शुद्धं-शिवम्-सत्यम् के चरणों में
जाने को सामर्थ्य दो
चरण शरण में एक अवसर दो

परमात्मा से करो प्रार्थना और कहो कि ये यौवन-भवन-वसन सब लौटा लो, इन्हें शरण माना था, अपनाया था, लेकिन इनमें मात्र दुख ही पाया है। अब जीवन में एक अवसर और दे दो, एक मौका और दे दो। जैसा मां के गर्भ से आया था, उसी यथाजात मुद्रा को ग्रहण कर सत्य की शरण में रह सकूं। अब एक मात्र तू ही तू है, तू ही हैं सच्ची शरण बाकी सब जगह हैं मरण।

बस आज इतना ही

आदिनाथ दिगम्बर जैन नया मंदिर
प्रतापगढ़

दिनांक २४-८-९१
शनिवार

२१

मैं आया शरण तुम्हारी

काफी पुरानी घटना सुना रहा हूं, जब दास प्रथा का जोर था, अरब के एक बाजार में गुलाम बिकने आये थे। कुछ धनपति गुलाम को खरीद कर ले जा रहे थे। एक फकीर ने एक गुलाम से पूछा, क्या तुम बिक गए हो ?

गुलाम ने कहा हाँ।

फकीर ने पूछा, कहा, जा रहे हो ?

गुलाम ने कहा, जहाँ मालिक ले जाये।

फकीर ने पूनः पूछा-क्या काम करोगे ?

गुलाम ने उत्तर दिया-जो मालिक कहेगा।

फकीर ने पूछा-क्या खाओगे ?

गुलाम ने कहा, जो मालिक खाने देगा।

फकीर ने पूछा, कहाँ रहोगे ?

गुलाम ने कहा-जहाँ मालिक रखेगा।

फकीर ने सुना, अवाक रह गया। सोचा ! गुलाम समर्पित है मालिक के प्रति और मैं परमात्मा के प्रति समर्पित नहीं हो रहा हूँ।

मूल पद्य :- येनक्षता मन्मथ-मान-मूर्च्छा
विषाद-निद्रा-भय-शोक-चिन्ताः
क्षय्योऽनलेनेव तरू-प्रपंच
स्तं देव माप्तं शरणं प्रपद्ये ॥ २१ ॥

हिन्दी पद्य ;- है नाम मात्र जपने से सौख्य पाते
अरु काम क्रोधभय को क्षण में भगाते
अनल मध्य तरुओं का समूह नाहीं
जाता शरण में उस देव की नित्य भाई ॥ २१ ॥

अन्वयार्थ :-

अनलेन	— अग्नि के द्वारा
तरू-प्रपंच	— वृक्षो का समुह
क्षय्यः इव	— जैसे क्षय (भस्म) कर दिया जाता है
येन	— उसी प्रकार जिसके द्वारा
मन्मथ-मान-मूर्च्छा	— काम, मान, मूर्च्छा, विषाद निद्रा
विषाद निद्रा भय शोक	— भय शोक चिन्ता आदि
चिन्ता	— समस्त दोष
क्षता	— क्षय कर दिये गये है
तं आप्तं देवम्	— उस आप्त देव की मैं
शरणं प्रपद्ये	— शरण को प्राप्त होता हूँ

भावार्थ - जिस प्रकार अग्नि के द्वारा वृक्षों का समूह क्षय को प्राप्त होता हैं उसी प्रकार जिसके द्वारा काम-विकार मान मूर्च्छा विषाद निद्रा भय शोक और सर्व प्रकार की चिन्ताएं नष्ट कर दी गयी है मैं उसी आप्त देव की शरण को प्राप्त होता हूं ।

२१

मैं आया शरण तुम्हारी

ओम नमः सिद्धेभ्यः
धर्मप्रेमी भव्यात्माओं !

एक सम्राट अपनी रानियों को लेकर जल क्रीड़ा करने एक सरोवर में गया। रमणीक वन प्रान्त, लहलहाते हरे-भरे वृक्ष ऐसी सुशोभित हो रही थी। मानो नवश्रृंगार करके दुल्हन सजी संवरी किसी का इंतजार कर रही हो। सरोवर का किनारा और पास ही तट पर प्राचीनतम जिन मंदिर स्थित है। योग और भोग का संयम स्थल। भोगी सम्राट अपनी रानियों के साथ सरोवर में जल क्रीड़ा में मग्न है। तथा तीन खण्डाधिपति रावण शांतिनाथ भगवान की पूजा में तल्लीन है।

अचानक एक घटना घट गई। भोग की अति ने इति को पुकारा। भोग की अति से, जल क्रीड़ा से सरोवर के जल ने अपनी मर्यादा तोड़ दी। जल सीमा का अतिक्रमण कर बह पड़ा। रावण शांतिनाथ भगवान की पूजा कर रहा था। पूजा में व्यवधान पड़ा। उसने अपने सेवक से कहां, जाओ, मना करो कौन जलक्रीड़ा कर रहा है। सिहवल राजा ने सेवक को डांट-डपट कर भगा दिया। लौटकर सेवक ने रावण से सारा वृतान्त कहा स्वयं रावण गया और रानियों के बीच क्रीड़ा करते हुए राजा की गर्दन पकड़कर ले आया और अपने पांवों के नीचे डालकर छाती पर पांव रखकर

खड़ा हो गया।

सिंहवल सम्राट की रानियों ने रावण से क्षमा याचना की अपने सुहाग की प्राण-रक्षा की याचना की।

एक पर्वत पर राजा का बड़ा भाई जो मुनि बन गया था तपस्या में रत था। वो अचानक वहां आ पहुंचा। रावण ने तुरन्त मुनिराज को को प्रणाम किया। मुनिराज के कहने पर रावण ने राजा को मुक्त कर दिया। राजा के सामने अपना अतीत और वैभव तृणवत नजर आने लगा। उसने विचार किया आज मुनिराज ने मुझे मौत के मुख से बाहर निकाल लिया, अन्यथा मैं मर जाता ये रानियां पलक झपकते विधवा हो जाती। ये राग रंग सब विलीन हो जाता। संसार की असारता का, क्षण भंगुरता का चिन्तन किया और संसार से विरक्त हो गया। उसने मुनिराज के चरणों में जिनेश्वरी दीक्षा ग्रहण कि और मुनि के साथ प्रस्थान कर दिया। रानियाँ रोती रही, चीखती रही, रावण भी देखता रह गया। आगे बड़ा अपने दुश्मन मुनि के चरणों में नत हो गया, प्रणाम किया और चला गया।

कामना वासना का तूफान शाँत हो गया। अहंकार की लहरे शाँत हो गई। रावण त्याग के चरणों में झुक गया। एक क्षण पहले जो शत्रु था, वही पूज्य बन गया, जीवन का मार्ग-दर्शक बन गया। सत्य के प्रति आस्था हो तो समर्पण सहज हो जाता हैं, अपने-आप हो जाता है।

जिसके अन्दर काम नहीं है, वासना नही है, जो काम से रहित हैं, मैं उसकी शरण को प्राप्त होता हैं। सम्राट जब तक काम से सहित तो मौत के पांव तले था। काम के जाते ही, भोग का त्याग करते ही, अप्सराओं को त्यागते ही मुक्त हो गया। मौत ने चरण पखार लिए और अमरता ने जीवन का दान दे दिया। काम से मुक्त होना बहुत मुश्किल हैं। काम के रुप बहुत है, वह तो अनेक रुपों में अभिव्यक्त होता है। संसार के सभी भगवानों के साथ एक एक नारी खड़ी है, जुड़ी है। लेकिन जैन तीर्थंकरों के साथ भगवान महावीर के साथ कोई भी नहीं है। वे तो मात्र अपने स्वभाव में डूबे है। उन्हें नारी की आवश्यकता ही नहीं है। उन्होंने काम को भस्म कर दिया है। वे तो अठारह दोषों से रहित है। जैन तीर्थंकरों में एक भी दोष न पाओगे। यही तो जैन दर्शन के परमात्मा की विशेषता है। अगर कोई परमात्मा है, तो वह निश्चित ही मन्यथ, मान-मूर्च्छा, विसाद, निद्रा, भरा, शोक चिन्ता से रहित होगा। ये दोष तो उसक भीतर स्वप्न में भी स्पर्श नहीं कर सकते। आचार्य समंतभद्र रत्नकरण्ड श्रावकाचार में कहते है........ ....।

क्षुत-पिपासा-जरातङ्क-जन्मान्तक-भयस्मया: ।
न राग-द्वेष मोहाश्च यस्याप्तः स प्रकीर्त्यते ।।

जिसके भूख, प्यास, बुढ़ापा, रोग, जन्म, मृत्यु, भय, गर्व, राग द्वेष मोह, चिन्ता, अरति, निद्रा, विस्मय, मद स्वेद और खेद ये अठारह दोष नहीं है वही सच्चा देव है, भगवान है ।

जिनने मोह माया-मान-मत्सर-मंदन का मर्दन किया,
भीषण उपसर्गो को जिनने हंसते-हंसते सहन किया ।
जो पतित-उद्धारक भव-निवारक आत्म-ध्याता गंभीर है
वे पूज्यनीय, वंदनीय तीर्थंकर स्वयं महावीर है ।।
जो राग द्वेष, विषय-भोग रहित तल्लीन अमृत-पान में,
लोकालोक युगपत झलकता जिनके दर्शन - ज्ञान में ।
प्रेम - करूणा का नीर बहता जिनके हर व्याख्यान में,
काम-जेता, कर्म-विजेता सन्मति मैं आया तब छाव में ।।
जिनका परम-पावन चरित्र आकाश से भी विशाल है,
गणधर भी जिनकी महिमा का गा न पाये गुणगान हैं ।
जिनकी परम अहिंसा से जग का हो रहा कल्याण हैं.
मैं रह रहा उनकी वंदनीय वर्द्धमान की छांव हैं ।।

जिनने मोह-माया, मान, मत्सर-मदन-को नष्ट कर दिया हैं और पतित-उद्धारक हैं, भव-सागर से पार उतरने वाले हैं, राग-द्वेष से विषय भोग से रहित हैं। जिनने काम और कर्म को जीत लिया हैं मैं उन सन्मति की छांव में रह रहा हैं। मेरे जीवन रथ के सारथी आप ही हैं। मोह के रण क्षेत्र से, गुरु क्षेत्र बाहर ले जाने वाले आप हैं।

परमात्मा भूख प्यास से रहित हैं। अगर परमात्मा भी रोटी पानी के आश्रित हो गया, तो वह भी पराधीन हो जायेगा। मनुष्य बडा होशियार प्राणी हैं, अगर परमात्मा भूखा-प्यासा हो जायेगा तो उस पर भी अपनी मालकीयत जमा लेगा। उसे भी वह चलाने लग जायेगा। उसे भी सलाह देने से नहीं चूकेगा। अगर परमात्मा भी तुम्हारे जैसा खाने पीने लगा तो तुम में और परमात्मा में क्या अन्तर रह जायेगा। फिर परमात्मा को भी चिन्ता करनी पड़ेगी। अगर परमात्मा भी चिन्तित हैं तो वह संसार का सबसे बड़ी दुखी आत्मा होगी। चिन्ता जीवन की सबसे बुरी घटना है।

चिन्ता उत्पन्न होने के तीन कारण है। शंका-कांक्षा और विचिकित्सा के कारण चिन्ता पैदा होती हैं।

राजकुमार नेमि की बारात जब लौट गई, तो राजुल चिन्ता से भर गई कि अब इस सोलह शृंगार का, यौवन के महकते उपवन का क्या होगा, फूल का मूल्यांकन करने वाला भौंरा ही चला गया। राजुल के साथ नेमि का सम्बन्ध नया नहीं, आठ भव पुराना था। राजुल ने अपनी चिन्तन की धारा को नया रुप दिया, नई दिशा दी, नया आयाम दिया और चिन्ता बना लिया कि तेरा एक घर बसेगा अनेक उजड़ जायेंगे। एक प्यार पायेगा, सब तरस जायेंगे, एक सुख भोगेगा अनेक दुखी हो जायेंगे, अनेको का सुख उजड़ जायेगा। कुमार नेमि ने छोटी प्रीति को छोड़कर बड़ी प्रीति से नाता जोड़ लिया है. शव को छोड़कर शिव को प्रेम कर लिया है, देह को छोड़कर अदेही के प्रेमी हो गये हैं। वे तो मुझे शादी के बहाने बुलाने आये थे, निमंत्रण देने आये थे कि मैं जा रहा हूं अगर तुम्हें आना हो तो आ जाना। मैं एक यात्रा पर जा रहा हूँ जहां चिन्ता शोक भय नहीं पहुंचते हैं। राजुल ने नेमि की अदृश्य सरूपी पुकार सुनी और उनकी शरण में पहुंच गई।

शरण में जाना दुष्कार्य है, बड़ा कठिन है, शरण देना सरल है। हर व्यक्ति दूसरों को शरण देना चाहता है शरण लेना नहीं। जबकि शरण में जाना निरहंकार का प्रतीक है, समर्पण का प्रतीक है शरण में जाने का अर्थ है अपने व्यक्तित्व को बदल देना, चेन्ज कर देना। अपना सब कुछ अर्पण कर देना। आप सब कुछ है और मै ना कुछ हूँ।

काफी पुरानी घटना सुना रहा हूं, जब दास प्रथा का जोर था। अरब के बाजार में गुलाम बिकने आये थे। कुछ धनपति गुलाम को खरीद कर ले जा रहे थे। एक फकीर ने एक गुलाम से पूछा, क्या तुम बिक गए हो?

गुलाम ने कहा हाँ!
फकीर ने पूछा, कहाँ जा रहे हो?
गुलाम ने कहा, जहाँ मालिक ले जाये।
फकीर ने पुनः पूछा-क्या काम करोगे?
गुलाम ने उत्तर दिया—जो मालिक कहेगा।
फकीर ने पूछा-क्या खाओगे?
गुलाम ने कहा, जो मालिक खाने को देगा।

फकीर ने पूछा, कहां रहोगे ?
गुलाम ने कहा जहां मालिक रखेगा।

फकीर ने सुना, अवाक् रह गया! सोचा गुलाम समर्पित है, मालिक के प्रति और मैं परमात्मा के प्रति समर्पित नहीं हो रहा हूं। इसके मालिक ने तो इसे अभी-अभी खरीदा है और यह अपने पेट के लिए, मालिक के प्रति इतना समर्पित हो गया। और मैं चालीस साल पुराना फकीर हूं, उसके नाम से सम्मान पा रहा हूं, रोटी पा रहा हूं और उनके चरणों में आज तक समर्पित नहीं हो पाया। जरा सी प्रतिकूल घटना घटती है, मन के प्रतिकूल काम होता है तो मैं प्रभु को कोसने लगता हूं, लेकिन यह गुलाम कितना श्रद्धालु है, कितना समर्पण है रोटी के लिए, पेट के लिए इसका और मेरी आत्मा के प्रति इतना समर्पण नहीं है। फकीर रो पड़ा, आँखे भर आई और वह प्रभु के प्रति समर्पित हो गया। उसका अहंकार गल गया। अहंकार बहुत सूक्ष्म, है उसकी अभिव्यक्ति के द्वार अनेक है। भिन्न भिन्न रूपों में उसकी अभिव्यक्तियां।

घर में पप्पू कहता है कि मम्मी! खेलने के लिए बाहर जाऊं तो मम्मी मना कर देती है, अहंकार मना कर देता है, जबकि वह तो खेलने जायेगा ही। नौकर कहता है मालिक से, अगर आज तनख्वाह मिल जाय तो अच्छा होगा, आप कहते हैं कि नहीं, आज नहीं मिलेगी। ऐसा भी नहीं है कि घर में पैसा नहीं है। अहंकार मालकीयत कहलाता है। अहंकार में ही न प्रगट होता है ताकि मेरा अधिकार समझ में आ जाय। नहीं कहने में अहंकार को आनन्द आता है। अहंकार अपनी सत्ता को, प्रभुता को दिखाना चाहता है। तभी तो नारायण श्री कृष्ण ने कहा था, अर्जुन तुम सारे संकल्प—विकल्प को छोड़ कर मेरी शरण में आ जाओ। यानि पूर्ण समर्पण करो, पूर्ण तया मिट जाओ। यद्यपि कृष्ण पापों से मुक्त नहीं करेगे, अहकार शून्य होने पर अपने आप पाप से मुक्त हो जाते हैं। "मैं" के कारण पाप होते हैं। वह "मैं" ही गल गया, तो पाप कौन करेगा ? परमात्मा में खो जाने का संसार को भूल जाने का निमंत्रण दिया था कृष्ण ने।

अहंकार के जाते ही सब पाप चले जाते है। सब रेखाये मिटने लगती है, पुण्य-पाप की, अच्छे बुरे की, शुभ-अशुभ की।

अहंकार तो एक गाँठ है रोग है, बीमारी, है जो काम—विस्तार भय शोक विवाद विसाद को, चिन्ता को जन्म देता है। जिस क्षण अहंकार

की गांठ गलती है तो शांति का जन्म होता है। एक ऐसी शांति का जो भीषण उपसर्गों के उपरान्त भी खण्डित नहीं होती हैं।

एक साधु पर किसी गुण्डे ने हमला किया। उसके पेट में छुरा घुसेड़ दिया। उसने झुककर उसे प्रणाम किया। उसने मरते समय कंपते हाथों से पैर छुए, हत्यारा घबड़ा गया। उसने कहा, आप यह क्या करते है?

साधु ने कहा, तू बीच में मत आ। तेरा कुछ लेना देना नहीं है, तेरे पैर हम छूते भी नहीं है। यह तो मैं उसके पैर छू रहा हूं कि तू किसी भी रूप में आ, मैं तुझे पहिचान लूंगा। तू मुझे धोखा न दे पायेगा, मैं तुझे पहचान लूंगा। यह तेरे-मेरे बीच की बात है। तू परेशान न हो। तुझे जो करना है, कर और मुझे जो करना है करुंगा। लेकिन आखिरी वक्त भी मेरी सांस यही कहते हुए समाप्त होगी कि तू जिस रुप में आया मैंने तुझे चाहा। मैंने कोई भी शर्त नहीं लगायी। प्रेम में शर्त कैसी? तू जैसे भी आयेगा, मैं तुझे देख लूंगा। तेरे सिवाय मेरा कोई भी नहीं है। तू मारेगा भी तो जिलाने के लिए, प्राण भी लेगा तो नया जन्म देने के लिए।

बस जिस क्षण इतने समर्पण का जन्म होता हैं उसी क्षण परमात्मा से मिलन हो जाता हैं।

चित्त मन कल में जीता हैं। बीत गया कल, और आगे वाले कल में। ये दोनों समर्पण नहीं करने देते, भीतर के परमात्मा को जागने नहीं देते, उसकी शरण में जाने नहीं देते। इन कलो के पार में आत्मा पिसती रहती हैं जीव पिसता रहता है। न तो अतीत के कल को पकड़ो और भविष्य के कल को पकड़ों, वर्तमान को पकड़ो तो समर्पण घट जाता है शरण का वरण हो जाता हैं।

एक साधु अपने शिष्यों से कहा करता था चटकाओं अंगुलिया और मारो चाटां अपने गाल पर और जागो अभी। जैसे सोते से उठता हुआ आदमी अंगड़ाई लेता है, अंगुलियां चटकाता है। उस साधु का कहना ठीक हैं चटकाओ अंगुलिया लो अंगड़ाई, इतने से काम न चले तो मारो एक चाटां अपने गाल पर, झकझोरों और जागो ताकि सत्य का पता चल जाय।

अभी दो पाटों के बीच में तुम पिस रहे हो, राग-द्वेष के। वे ही दोस पाट चकमत बन सकते हैं अगर उनमें मोह का, काम का स्वार्थ का, गेहूं न डाला जाये, तो उनमें से चकमक पैदा होगी जो कर्म को, मिथ्या संसार को नष्ट करेगी, जलायेगी। खाली चक्की कौन चलाता हैं? और

यदि कोई चलाता भी हैं तो भीतर का आटा साफ करने को चलाता हैं। जिन चक्कियों में लोग पिस रहे है उन्हीं चक्कियों को रगड़ कर लोग बुद्ध हो गये हैं, ज्ञानी हो गये है, तीर्थंकर हो गये है। चक्कियां तो वही है, अवसर तो वही है, जीवन वही है सिर्फ उनके उपयोग करने का ढंग अलग है। आज अभी समर्पण धर सकता है यदि आदमी मस्तिष्क की शरण छोड़ दे हृदय की शरण आ जाये।

समर्पण जीवन का एक उत्सव है या नहीं इसकी फिक्र छोड़ो। पहले हृदय को तैयार करो, पूर्ण श्रद्धा से भरो, भक्ति से भरो तो एक दिन परमात्मा अपने-आप उतर आयेगा आत्मा में। परमात्मा के प्रति, स्वयं के प्रति आस्थामय हो जाओ, प्रेममय हो जाओ। बड़े मजे की बात बता रहा हूँ। वैज्ञानिकों ने शोध किया है कि जब आप गाय के स्तन से दूध दुह रहे हो अगर उसके आस-पास मधुर धुन छेड़ दी जाय, मधुर संगीत का वातावरण उपस्थित कर दिया जाये तो गाय ज्यादा दूध देती हैं। आप स्वयं सोचे जिस पिक्चर में गाने ज्यादा होते है वह ज्यादा चलती हैं। समय जल्दी कट जाता है बिना गानों की पिक्चर मे तीन घण्टे काटना मुश्किल होता है। तीन घण्टे की पिक्चर तीन वर्ष जैसे महसूस होती है। संगीत फिल्म को मधुर बना देता हैं, श्रद्धा-समर्पण को मधुर बना देती है। धर्म की परिभाषा में ईश्वर से ज्यादा महत्व श्रद्धा को हैं। अगर भीतर गहरी प्यास हो, श्रद्धा-भक्ति हो तो परमात्मा उस ओर बहने लगता है। असमय ही फूल खिलना शुरु हो जायेंगे, जीवन में नये फूल-पत्ते उगने लग जायेंगे, हरियाली ही हरियाली हो जायेगी। फल लगेंगे, फूल लगेंगे। एक तृप्ति, एक आनन्द घेर लेगा। एक परितोष चारों तरफ छा जायेगा। यह सब श्रद्धा के संगीत से घटेगा।

एक साथ एक खेत में बीज बोए गये आधे खेत को संगीत सुनाया गया, आधे खेत को संगीत नहीं सुनाया गया। दोनों को बराबर खाद दी गयी। बराबर पानी बराबर धूप. सब कुछ बराबर-बराबर दिया गया। सिर्फ एक भेद आधे को संगीत सुनाया गया, आधे को नहीं सुनाया गया। जिस हिस्से को संगीत सुनाया गया, उसके पौधे दुगुने बड़े हुए और फल दुगुने बड़े हुए। और जल्दी पौधे बढ़े और जल्दी फल आए। ज्यादा फल आए और ज्यादा रसपूर्ण थे। पौधे भी संगीत की भाषा को जानते हैं, समझते हैं। तो परमात्मा न समझेगा। पत्थर समझते है। तो क्या परमात्मा न समझेगा! घर में बच्चे बच्चियां जल्दी जवान हो जाते हैं क्योंकि दिन भर टी. वी. पर संगीत का आनन्द लेते हैं तो यौवन समय के पहले ही जाग

जाता हैं । टी.वी. की शरण के बजाय सन्त शरण में बहुत आये तो परमात्मा शीघ्र जाग जाये । जितना प्रेम भौतिक संगीत के प्रति हैं परमात्मा के प्रति हो जाए तो परमात्मा जग जाए, सच्ची शरण का वरण हो जाए ।

जिसके पास हिया है वही जिया हैं, उसने ही अमृत पिया हैं । मन बहुत बाधाये खड़ी करता हैं, क्योंकि समर्पण से, शरण से, प्रेम से बहुत डरता हैं । उसका यह स्वाभाविक गुण हैं । प्रेम का जन्म, समर्पण का जन्म भक्ति का जन्म मन की मृत्यु हैं । प्रेम के पास जीवन है और मस्तिष्क के पास दासता हैं । सन्तो के प्रति प्रेम जागा कि आत्मा जागी । आत्मा जागी कि भक्ति जागी और भक्ति आयी कि परमात्मा आया, फिर कौन पूछेगा मस्तिष्क को ? मस्तिष्क तो अन्धों की बस्ती में काना राजा हैं । और आँख वालों कि बस्ती में कौन पूछेगा काने राजा को ? मस्तिष्क का दीया तो उतनी देर टिम-टिमाता हैं जब तक श्रद्धा प्रेम के सूर्य का प्रकाश नहीं उतरा हैं आत्मा में । अभी तो हम लोग टिम-टिमाती-पीली-सी रोशनी में जी रहे हैं मोमबत्ती जैसी अगर घर में बिजली आ गई हो, सूर्य उग आया हो फिर कौन मोमबत्ती की फिक्र करता है, लोग तो तत्क्षण उसे बुझा देते है । बस ऐसी ही घटना घटती है जब हृदय श्रद्धा प्रेम—भक्ति से प्रकाशित होता है तो मस्तिष्क की मोमबत्ती ऐसे ही बुझ जाती है, जैसे सुबह लोग मोमबत्ती को बुझा देते हैं ।

और आप तो जानते ही है कि मोमबत्ती की आकांक्षा रहेगी कि रात बनी रहे, साधारण रात भी नहीं अमावस की रात । मस्तिष्क का सारा व्यस्त स्वार्थ यही है कि तुम्हारा अज्ञान न टूटे और अज्ञान टूटता है आत्म प्रेम से, सन्त प्रेम से, समर्पण से । अज्ञान शास्त्रीय ज्ञान से नहीं टूटता । इसलिए मस्तिष्क ज्ञान से बिलकुल नहीं डरता । शास्त्रों को पढ़ो, सिद्धान्तों को रटो, बड़ी-बड़ी गाथाओं को कंठस्थ कर लो, नमोकार मंत्र पढ़ो, गायत्री मंत्र जपो इन सबसे मस्तिष्क राजी हैं । क्योंकि इन सबसे मस्तिष्क का कुछ भी बिगड़ने वाला नही ह । बल्कि इनसे मस्तिष्क और मजबूत होता हैं । पांडित्य मस्तिष्क को मजबूत करता है ! जितना शास्त्रों का बोझ बढ़े, मस्तिष्क कहता है बढ़ाये चले जाओ, क्योंकि उससे तो आत्म—संवेदन होगा नही । लेकिन प्रेम मृत्यु है मस्तिष्क की । वहां उसकी गति नही । वहां एकदम हारा—ठगा, ठिठका रह जाता है । इसलिए मस्तिष्क झुकने नही देता, नये नये तर्क पैदा करता है, भविष्य की ओर ले जाता है । वर्तमान से चुका देता है । प्रेम का जन्म हृदय से होता है, मस्तिष्क से नहीं । इसीलिए केवल

ज्ञानियों के मस्तिष्क नही होता मात्र परम-पवित्र आत्मा होती है, तभी तो उनका प्रेम जगती के सारे प्राणियों को मिलता है। यदि मस्तिष्क होता तो प्रेम भी चुन-चुनकर गिन-गिनकर अपनो को मिलता। यदि परमात्मा की शरण चलना है तो हृदय की सुनो, मस्तिष्क की नही।

नोट बड़ी गन्दगी फैलाते हैं। संक्रामक रोग इनसे ही फैलता हैं। पता नही, किन—किन के हाथो में जाते हैं और कौन कौन सा रोग लेकर आते है। रूपयों को अंग्रेजी में करेन्सी कहते है। करेन्सी यानि करेन्ट, जो करेन्ट मारकर सी—सी कराता है। करेन्सी यानि जो घूमता फिरता रहे नोट सदा घूमते फिरते रहते है, चलते-फिरते रहते है। मस्तिष्क भी सदा घूमता फिरता है, विचारों से भरा रहता है। इसलिए कहना पड़ा कि आत्मिकश्रद्धा में डूबा व्यक्ति ही शरण ग्रहण कर सकता है। श्रद्धा भक्ति के अभाव मे पूजा-भक्ति, स्वाध्याय का कोई महत्व नहीं।

पूजा मन्नत ध्यान व्रत मंत्र तंत्र तावीज।
इनका फल तब ही मिले ,श्रद्धा का हो बीज ।।
मिट्टी पानी खाद का , जो नहीं रखते ध्यान।
हरी भरी फसल का मिले न उनको पान ।।
हर बात में दांव पेंच बात-बात में घात ।
बहुत ज्ञान से है भला , भम भक्ति सोगात ।।
महा नगर तुमसे भला , मेरा यह देहात ।
हरी-भरी फसलें यहां गाती प्रेम प्रभात ।।
जन-जन डुबे पाप में , सबके सिर अभियोग ।
चोर सभी भाई बने , कैसे मिटेंगे रोग ।।

पुजा मंत्र तंत्र तभी फलदायी होती है जब उनमें श्रद्धा का बीज होता है। इनकी फसल तो वही काट सकता है जिसने-श्रद्धा के बीज बोये है।और प्रेमपूर्ण प्रतिक्षा की हो।

बीज से अंकुर ऐसे ही नहीं फूट जाता। होशियार किसान ही हरी-भरी फसल का लाभ ले पाता है। जिसने बीज बोने के बाद खाद-पानी का पूरा-पूरा ध्यान रखा हो

ज्यादा ज्ञानी होने से शास्त्रों का अध्ययन करने से क्या लाभ ? उससे तो व्यर्थ के तर्क ही पैदा होते हैं फिर कोई सन्यासी होने को शास्त्र थोड़े न पढ़ता है। अगर सन्यासी होना है तो संसार का कटु अनुभव ही

साधु बनने के लिए काफी है। लेकिन लोग तो दुसरे को सुनाने के लिए, दुसरे के सामने ज्ञानी बनने के लिए शास्त्र पढ़ते हैं, तभी तो उनके अन्दर सन्यास लेने का भाव पैदा नहीं होता। बहुत शास्त्रों के अध्ययन की वनस्पत मेरी भक्ति भली है। कम से कम परमात्मा में, सन्तो में मन तो लगा है।

जन-जन डुबे पाप में सबके सिर अभियोग।
चोर सभी भाई बने, कैसे मिटेंगे रोग ?

हर स्वाध्याय प्रेमी तो भोगों में डुबा है, । सबके सिर पर पाप के अभियोगों का बोझ है। पापी ज्ञानी हाने का दंभ भर रहे हैं अब सही मार्ग-दर्शन कौन करेगा ? जब डाक्टर स्वयं ही रोगी हो तो रोग का उपचार कौन करेगा ?

एक दिवस जंगल में कीड़े-मकोड़ो की सभा का आयोजन हूआ ? पतंगो और बरसाती पंखवाले कोड़ों का आपस में विवाद था। पतंगो के सम्राट से पंख वाले कीड़ों ने कहा, भाई पतंगो हमारी और तुम्हारी जाति एक है हम और तुम दोनों चार-इन्द्रिय जीव है। हमारा-तुम्हारा आकार प्रकार भी एक सा है इसलिए हमें अपनी जाति में शामिल कर लो, ताकि आपस मे बेटी व्यवहार हो सके। पतंगो का सम्राट बहुत होशियार था- उसने कहा और तो सब ठीक है, हम आपको अपनी जाति में शामिल तो कर लेंगे लेकिन उसके पहले एक परीक्षा देनी होगी !

पंखवाले कीड़ो के मुखिया ने कहा, बेशक ! आप हमारी परीक्षा ले लें, तब अपनी जाति में मिलाइये।

सांझ होने को आई तो पतंगो के सम्राट ने पंखवाले कीड़ों से कहा, जाओ शहर में देखकर आओ दीये जले की नहीं ?

पंखवाले कीड़े भागे-भागे गए और थोड़ी ही देर में वापस लौट आये। पतंगो के सम्राट से, शहर मे दीये जल गये हैं, काफी रोशनी फैल गई है, शहर दीयों की रोशनी से जगमग-जगमग करने लगा है।

पतंगो के सम्राट ने कहा - बस यहाँ से चले जाओ, हम तुम्हें अपनी जाति में शामिल नहीं कर सकते। हमारी जाति का सदस्य दीपक देखकर कभी वापस नहीं आता है। वह वही सर्वस्व अर्पण कर देता है, अपने प्राण निछावर कर देता है। असली पतंगे की यही तो पहचान है।

और में कहता हूं असली श्रावक की, स्वाध्याय प्रेमी की मुमुक्षु की यही पहचान है कि वह मुनि चरण के दीपक को देखते ही उनकी ज्योति में निछावर हो जाता है, उनके सत्संग मे डूब जाता है। घर-दुकान मकान

का उसे पता ही नहीं चलता। पतंगा ज्योति को देखकर अपने आपको रोक ही नहीं सकता। तुरन्त समर्पित हो जाता है। बरसाती कीड़ा ज्योति को देखकर दूर भागता है, उसकी गर्मी से ही डर जाता है। अभव्य मिथ्या दृस्टि मुनियों के निकट नहीं जाता, उनके चरण सानिध्य में स्वाध्याय नहीं करता। वह तो बरसाती कीड़ों की भांति मच्छरों मक्खियों के साथ उड़ना पसन्द करता है।

मैं आपकी शरण को प्राप्त होता हूं। इस पतंगे ने ज्योति को पहिचान लिया है पतंगा आया है ज्योति के पास जलने के लिए, अपना सबकुछ अर्पण करने के लिए। यही तो ज्योति की महत्ता और पतंगे का अर्पण है। आप भी परमात्मा की शरण चले, परम ज्योति को पहिचाने, पतगे बने और समाहित हो जाये। सब कहो परमात्मा से मैं आया शरण तुम्ह री महका दो जीवन क्यारी।

बस आज इतना ही

आदिनाथ दिगम्बर जैन नया मन्दिर
प्रतापगढ़ (राज.)

दिनांक २५-८ ९१
रविवार

२२-२३

साधक स्वयं साधन है

ध्यान तट पर बाट मेरी जोहना ।
मैं प्रभु की प्रीत लेकर आ रही,

पाप जो मैंने किये स्वीकार कर लूं,
तप-त्याग से निज का शृंगार कर लूं ।
जो अनादि से अजान अब तक रहे,
उस अधर में प्रभु का प्यार भर लूं ।।

मन की वेदी में बिठाकर प्रभु को साथ ला रही
मैं प्रभु की प्रीत लेकर आ रही.... ।

संवेदना से गूंथकर अपनी कहानी
और सरिता सी उफनती मेरी जवानी
भावि–भगवान निज में छुपाये
श्वांस की बाती जला, काया अजानी

हारकर अनेकों बार विधि में समर में
जीत की ज्योति लेकर मैं आ रही

त्याग का परिचय पिपासा से करा दूं
ध्यान का परिचय समाधि से करा दूं ।
उठती जो हर वक्त मेरे गगन में
भावना का मेल भाषा से करा दूं ....।।

मूल पद्य :- न संस्तरोऽश्मान तृणं न मेदिनी ।
विधानतो नो फलको विनिर्मितः ॥
यतो निरस्ताक्ष-कषायः-विद्विषः ।
सुधीभिरात्मैव सुनिर्मलो मतः ॥ २२ ॥

हिन्दी पद्य :- विधीवत् शुभासन समाधि का न है आसन ।
पाषाण पुंज-तृण न है काष्ठ का आसन ॥
है नाथ नाशे विषयादिक जिसने सारे ।
हैं शुद्ध आसन वही जग में हमारे ॥ २२ ॥

अन्वयार्थ - विधानतः — विधान रुप से समाधि का साधन

न संस्तरोऽश्मा	— न संस्तर (आसन) है न पाषाण है
न तृणम्	— न तृण पुंज है
न मेदिनी	— न पृथिवी है और
विनिर्मितः फलकः	— नहीं बनाया गया काष्ठ का फलक (चौकी पाटा) ही है
यतः	— क्योकि
सुधीभिः	— बुद्धिमन्तों के द्वारा
निरस्ताऽक्ष-कषाय	— विषयाकषायरुपी
विद्विष	— शत्रुओं से रहित
सुनिर्मलः	— निर्मल
आत्माएव	— आत्मा ही
मतः	— (ध्यान का आसन) माना गया है ।

भावार्थ :- ध्यान का आसन न संस्तर है न पाषाण है न तृण है न भूमि है और न काष्ठ फलक (चौकी–पाटा) है किन्तु जिसके अन्तर से विषय-कषाय रुप शत्रु दूर हो गये है, उसी निर्मल आत्मा को ज्ञानी जनों ने ध्यान का आसन माना है ।

मूल पद्य :- न संस्तरो भद्र ! समाधि–साधनम् ।
न लोक-पूजा न च संघ–मेलनम् ॥
यतस्ततोऽध्यात्म–रतो भवाऽनिशम् ।
विमुच्य सर्वामपि बाह्य वासनाम् ॥२३॥

हिन्दी पद्य :- हे भद्र ! साधन समाधि का न है आसन ।
न लोक पूजा अरु न हैं संघ साधन ॥
संसार की तजो मन से वासनाएं, ।
निज आत्म लीन होकर तज दो कषाएं ॥ २३ ॥

अन्वयार्थ :-

भद्र !	— हे भद्र !
यतः	— क्योंकि
न संस्तरः	— न संस्तर (आसन)
न लोक पूजा	— न लोक पूजा और
न च संघ मेलनम्	— न संघ सम्मेलन
समाधि साधनम्	— समाधि के साधन है
ततः	— इसलिए
सर्वामपि	— सब ही
बाह्य वासनाम्	— बाहरी वासनाओं को
विमुच्य	— छोड़कर
अनिशम्	— निरन्तर
अध्यात्मरतः	— अध्यात्म में निरत
भव	— रहो !

भावार्थ :- हे भद्र ! समाधि का साधन न संस्तर है न लोक पूजा हैं और न संघ का मेला जुटाना हैं इसलिए सभी बाहरी वासनाओं को छोड़कर अपने अध्यात्म में निरन्तर निरत रहो ।

२२-२३

साधक स्वयं साधन हैं

ओम नमः सिद्धेभ्यः
धर्मप्रेमी भव्यात्माओ !

आचार्य देव ! इस काव्य में कुछ विशेष सूत्रों का निरुपण कर रहे हैं। एक आत्म-साधक, आत्म-पिपासु समाधि-आराधक को समाधि में डूबने के लिए, परमात्म-तत्व को उपलब्ध होने के लिए, आत्म की पाने के लिए क्या करना चाहिए ? समाधि के, निर्विकल्प ध्यान के साधन क्या हैं ? समाधि के उपकरण क्या है ? समाधि में बाधक तत्व कौन-कौन से हैं ?

ध्यान का आसन न तो संस्तर हैं, न पाषाण है, ना भूमि है, न काष्ठ का फलक है, न तृण है। जिसके हृदय से, आत्मा से, अन्तस् से विषय कषाय के शत्रु निकल गये हैं, जिसकी आत्मा निर्मल हो गई है, ज्ञानीजनों ने उसे ही ध्यान का आसन कहा है।

द्वितीय श्लोक के सूत्र हैं..........समाधि का साधन न आसन है और न लोक-पूजा हैं, न संघ का सम्मेलन हैं इसलिए सभी वासनाओ को छोड़कर निरन्तर अपनी आत्मा में डूबो।

कब आयेगा ध्यान भीतर ? जब भीतर कोई वासना न हो। वासना आत्मा को गन्दी करती हैं, आत्मा को अशुद्ध करती हैं, अपावन बनाती हैं। वासना-कामना के अभाव में ध्यान घटता हैं, अचाह की स्थिति में ध्यान

फलित हैं। जैसे ही वासनायें—कामनायें गिरेगी, तब स्वयं के भीतर जाने में कोई अड़चन न रहेगी। अड़चन खतम हो गई, बाधा समाप्त हो गई। तब ध्यान बिना विधि के भी फलित हो जाता हैं। विधियों की जरुरत तो इसीलिए हैं कि तुम्हारा जीवन ग्रस्त व्यस्त हैं। सुत्रों का सहारा लो, आंख बन्द करो तो कुछ क्षण को मन रुक पाता हैं। आंख खोलों तो बाहर भाग जाता हैं, ध्यान बाहर भाग जाता हैं। जैसे हाथ से किसी को छुओं तो स्पर्श दूसरों को मिलता हैं। और खुद न छुए, चुपचाप स्थिर बैठ जायें तो खुद का स्पर्श शुरु हो जाता है।

आचार्य कह रहे हैं कि पहले होश पूर्वक अपनी वासनाओं को कामनाओ को होश पूर्वक देखो, तो वासनायें भागने लगती है, अपने आप गिरने लगती है। भोग व्यर्थ दिखने लगते हैं, मन उनसे उदास होने लगता है, उनसे रिक्त होने लगता है। ध्यान घटने लगता है। प्रकाश भीतर गमन करने लगता है। एक घटना कहता हूं —

एक भक्त प्रतिदिन मंदिर जाता था। मंदिर शहर से दूर, नगर से बाहर श्मशान के निकट था। वह रात्रि में घण्टों परमात्म-भक्ति में लीन रहता था। उसने परमात्मा से कहा, मैं कई वर्षों से तुम्हारी पूजा-उपासना कर रहा हूं, लेकिन आज तक तुम्हारा दर्शन नहीं पाया हैं। अब मेरी आंखे कमजोर पड़ रही है, दिखाई भी कम पड़ने लगा है। कम से कम एक बार तो दर्शन दे दो, ताकि प्रसन्नता पूर्वक मर सकूं। कही से आवाज आई, आकाश वाणी हुई, मैं तेरे ही भीतर हूं। तू अपनी वासनाओं को मारकर ध्यान तट पर बैठे समाधि लगा मैं वहां आ रहा हूं। तू स्वय मुझसे मिलना नहीं चाहता है और कहता है कि तुम्हारा दर्शन नही होता……—

ध्यान तट पर बांट मेरी जोहना
मैं प्रभु की प्रति लेकर आ रही,
पाप जो मैंने किये स्वीकार कर लूं
तप-त्याग से निज का शृंगार कर लूं।
जो अनादि से अजान अब तक रहे,
उस अक्षर में प्रभु का प्यार भर लूं॥
मन की वेदी में बिठाकर प्रभु को साथ ला रही
मैं प्रभु की प्रीत लेकर आ रही
संवेदना से गूंथकर अपनी कहानी

.और सरिता सी उफनती मेरी जवानी
भावि—भगवान निज में छुपाये
श्वांस की बाती जला, काया अजानी
हारकर अनेकों बार विधि के समर में
जीत की ज्योति लेकर मैं आ रही
त्याग का परिचय पिपासा से करा दूं
ध्यान का परिचय समाधि से करा दूं
उठती जो हर वक्त मेरे गगन में
भावना का मेल भाषा से करा दूं
जिस ज्ञान से एक भी कण न अछूता
उस ज्ञान का प्रकाश लेकर आ रही
ध्यान तट पर बांट मेरी जोहना
: की प्रीति लेकर आ रही।

अन्तर्ध्वनि गूंजी तुम मेरा निर्विकल्प ध्यान में, समाधि के तट पर मेरा इन्तजार करो, मैं परमात्मा का प्यार लेकर आ रही हूँ, पावन प्रीति लेकर आ रही हूँ। लेकिन एक शर्त है ध्यान तट से उठना मत, ध्यान छोड़कर भागना नहीं। बाहर से कैसी भी आवाज आये, कोई भी बुलाये, कितना भी प्रलोभन दे, कितना भी आकर्षित करे, लेकिन जाना मत, ध्यान तोड़ना मत। स्वयं के परमात्मा से मिलना चाहते हो तो ध्यानस्थ हो जाओ, ध्यान में डूब जाओं।

परमात्मा का इन्तजार करो, लेकिन किसी बगीचे में नहीं, नदी के किनारे भी नहीं, किसी टॉकीज या होटल में भी नहीं, किसी स्कूल के गार्डन में भी नहीं, ध्यान के तट पर, ध्यान के एकान्त में इन्तजार करने पर परमात्मा मिलता है, आत्मा की प्रीति उपलब्ध होती है।

वह धनपति परमात्म ध्यान में एकाग्रचित्त हो बैठ गया। बाहर से किसी ने आवाज दी, मालिक फैक्ट्री में आग लग गई है। आवाज कानों से टकराई। एक झटका लगा, घबड़ाया, लगा कि घर जाकर देख आऊं। लेकिन परमात्म-दर्शन का व्यामोह आड़े आ गया। परमात्म-दर्शन होगा, तब उससे वरदान मांग लूंगा। मन पक्का करके पुनः ध्यान करने बैठ गया, पांच मिनिट बाद पुनः आवाज आई, मालिक ! घर में आग लग गई। पहले की बनस्पत थोड़ा ज्यादा घबड़ाया। सोचा, जाकर देख आऊं। यह सब क्या हो रहा है? कहीं परमात्मा नाराज न हो जाए, इस भय से पुनः

ध्यान करने बैठ गया। लेकिन मन तो फैक्ट्री और मकान पर भाग गया। सोचने लगा, बुरे फंसे, यह भी कोई ध्यान है ? परमात्म-दर्शन का यह भी कोई तरीका है ? क्या मतलब ऐसे ध्यान से? मन में द्वन्द चल ही रहा था कि तीसरी बार पुनः आवाज आई! किसी ने पुकारा, मालिक ! बीवी बच्चे मकान के नीचे दबकर मर गये है। धैर्य का धागा टूट गया। सब्र का बांध फूट गया। उठा और सीधा घर की ओर भागा। जाकर देखा तो न फैक्ट्री जली थी, न मकान गिरा था, न बीवी-बच्चे मरे थे। मात्र एक परीक्षा थी, वह फैल हो गया। एक साथ दो काम नहीं हो सकते, एक मयान में दो तलवारे नहीं रह सकती।

आचार्य देव कहना चाहते है कि अगर तुम समाधि लेना चाहते हो तो पहले उसके साधनों को समझ लो। तुम्हारे ये साधन समाधि के काम न आ सकेंगे। बाह्य साधन मिला सकते है अन्तरंग से नहीं। अन्तरंग के मिलन में अन्तरंग साधन काम आ सकेंगे।

ध्यान का आसन न संस्तर है, न पाषाण है, न तृण है, न भूमि है और काष्ठ का फलक हैं। फिर क्या है साधन! साधन जिसके अन्तस् से विषय-कषाय रूप शत्रु निकल गये है उसी निर्मल आत्मा को ज्ञानीजनों ने ध्यान का आसन माना है।

हे भद्र! समाधि का साधन न आसन है, न लोक पूजा है, और न संघ का सम्मेलन है। इसलिए सभी बाहरी वासनाओं को छोड़कर अपनी आत्मा में निरन्तर डूबे रहो।

समाधि का साधन संस्तर नहीं है। शायद साधक सोच ले कि कोमल-सुकोमल संस्तर बिछ जायेगा तो शरीर को आराम रहेगा, कष्ट नहीं होगा तो समाधि अच्छी हो जायेगी। तो इस भूल में मत रहना। संस्तर का सम्बन्ध तो शरीर से है आत्मा से नहीं। शरीर से ममत्व भाव घटाने के लिए ही तो समाधि ग्रहण की हैं। इसलिए संस्तर से भी कैसा मोह। धीरे-धीरे शरीर कृश होगा, कमजोर होगा, तकलीफ होगी यह सच है। लेकिन उस कष्ट को शरीर की तकलीफ को मृदु संस्तर से दूर नहीं किया जा सकता। उसे दूर करने में आत्मा के निर्ममत्व भाव, निर्मल परिणाम, समत्व भाव ही कारण है।

समाधि का साधन पाषाण भी नहीं है। शायद साधक सोच ले कि किसी वन प्रान्त में, एकान्त में सुन्दर से पाषाण शिला समाधि का साधन बन जायेगी, तो वह भी साधन नहीं है। साधन कुछ और हैं। साधन बाहर नहीं, भीतर खोजो, स्वयं में खोजो।

समाधि का साधन काष्ठ का फलक भी नहीं है। समाधि लेने वाले को इन सबसे मोह त्याग देना चाहिए। हो सकता है एक ही पाटे पर लेटते लेटते मोह हो जाये और साधक अन्तिम समय भी उसी फलक पर लेटने का प्रयास न करे, इसलिए कहना पड़ा कि समाधि का साधन फलक भी नहीं है।

अक्सर आदमी सोचता हैं कि परमात्मा बहुत दूर हैं। इतनी पूजा भक्ति करते हैं फिर भी दिखाई नहीं पड़ता है। कहीं दूर-सुदूर छिपा हुआ है। उसके पास तक आवाज नहीं पहुंचती है। अगर पास होता तो कब का मिल गया होता, या दिखाई पड़ गया होता। यह तार्किक निष्पत्ति है कि जिसे बहुत पूजा-भक्ति के पांव द्वारा चलकर भी न पाया जा सके, तो स्वभावतः मानना होगा कि बहुत दूर है। हमारे नन्हें-नन्हें पांव, हमारी छोटी-छोटी आंखे उसे कैसे देख सकेगी, हमारे छोटे-छोटे हाथ उसे कैसे छू सकेंगे ? शायद अनन्त दूरी है हमारे और उसके बीच। लेकिन यह तार्किक निष्पत्ति सत्य नहीं है।

भगवान महावीर कहते है कि परमात्मा दूर नहीं है, परमात्मा निकट से भी निकट है, पास से भी पास है, उसे चलकर पाने की जो चेष्टा करेगा, उसके लिए वह दूर अति दूर होता जायेगा। उसे जो निर्विकल्प ध्यान में, समाधि में बैठकर, एकाग्रचित्त होकर स्वयं में डूबेगा तत्क्षण परमात्मा को पा लेगा, बस यू समझो–दौड़े की चूके, चले कि भटके ठहरे की पाया, रूके कि पहुंचे। भगवान महावीर के इस स्वर्ण सूत्र को हृदय-मंजुषा में सम्हाल कर रख लो। रुकने का अर्थ ऊपर से रुकना नहीं, भीतर से रूकना है। चले कि परमात्मा से दूर चले, रूके कि परमात्मा के करीब आये। पूर्णतया ठहर जाओ तो पहुंच ही गये, पा ही गये। क्योंकि परमात्मा तो प्रत्येक जीव की अन्तरात्मा में विराजमान ही हैं। आप भागते है, दौड़ते आपाधापी करते हैं इसलिए स्वयं को नहीं देख पाते हैं। स्वयं से स्वयं का परिचय नहीं कर पाते है। स्वय के पास बैठो तो स्वयं का परिचय हो। इसलिए बहुत भटक लिये हो, थक गये होगे अतः थोड़ा रूको, थोड़ा थमे तो स्वयं से परिचय हो सके आपको फुर्सत कहां है, आंखे तो सदा बाहर ही बाहर पदार्थो को ताकती रहती हैं पदार्थों में ही अटकी रहती हैः स्वयं को देखो तो कैसे देखो ?

परमात्मा इसलिए नहीं मिलता कि दूर है, बल्कि वह इसलिए नहीं मिलता को अति पास है, एकदम निकट है, इतने पास है कि आँख खोली की वह विदा हो गया। आँख बन्द रखी तो सामने है। हाथ फैलाया कि दूर हो गया, मुट्टी खोली कि वह दूर हो गया, भाग गया। आंख खोली की चूके, आंख बन्द की कि पाया। बड़ा अद्‌भुत है परमात्मा। परमात्मा प्रवृत्ति

से नहीं, क्रिया से नहीं, पाया जाता है। निवृत्ति से, अक्रिया से, सहजता से पाया जाता है उसे। उस निवृति को, अक्रिया को भगवान महावीर ने निर्विकल्प ध्यान कहा है निर्विकल्प समाधि कहा है। अब दौड़ना नहीं है, भागना नही है मात्र ठहर जाना है, रुक जाना है और सहजता से स्वयं में स्वयं को देखना हैं।

अब मात्र शरीर को ही नही ठहरना हैं, मन को भी ठहराना हैं, मात्र शरीर का हलन-चलन नही रोकना हैं, मन का भी रोकना हैं। देह को तो कोई भी रोक सकता हैं। एक से एक आसान लगाने वाले मिल जायेंगे। उनका तन तो ठहरा हुआ हैं, लेकिन मन प्रतिक्षण भाग रहा है। शरीर को तो ठहराना ही हैं लेकिन मन को भी ठहराना हैं। शरीर जम जाए और मन भाग जाए तो कोई सार नही। भोगी तो भटक गये तन दौड़ा दौड़ाकर तृष्णा का, कामना का दूस्पूर गड्ढा भरते-भरते और कुछ योगी भटक गये आसन का, समाधि का प्रदर्शन करते—करते। भोगों का तन और मन दौड़ता हैं लेकिन योगी का खाली मन दौड़ता हैं। भोगी का मन भटकता हैं संसार में, विषय—भोग में, और योगी का मन भटकता हैं स्वर्ग-मोक्ष की कल्पना में। इसलिए भगवान महावीर कहते हैं कि मन को भी वहां से हटाओ और स्वयं में लगाओं। जीवन के सारे रहस्य स्वयं में ही छिपे हैं। अब कहीं बाहर भटकने की जरुरत नहीं जो कुछ हैं स्वयं में हैं।

लेकिन आदमी बड़ा अद्‌भुत हैं, बिना सहारे के नहीं चल सकता और बिना सहारे के नहीं जी सकता। उसे पग-पग पर सहारा चाहिए। यही सहारा तो भटकाता है। अब बाहर की नहीं भीतर के सहारे की आवश्यकता हैं। परमात्मा तो एकदम पास हैं, जरा उनसे मिलो, वो आत्मा में डूबे हैं परमात्मा के मार्ग पर चल रहे हैं। अगर परमात्मा के दर्शन नहीं कर पाये तो कम से कम परमात्मा के प्रतिरुप सन्तों के, मुनियों के दर्शन करो। कवि पलटु कहते हैं।

भैरव भगवंत के चरण को ध्याईकै।
ज्ञान की बात से नाहि टरना ॥

अगर भगवान के चरण का ध्यान न पायें, भगवान के चरण न पहिचान पाओ, तो कहां हैं भगवान के चरण ? खोजो जरा ध्यान में डूब कर खोजो ?

"तव पादौ मम हृदये, मम हृदय पदद्वयलीनम्"

आपके चरण—कमल मेरे हृदय में बिराजमान है, अंकित हैं।

अब किसी और मंदिर में नहीं जाना है। स्वयं के हृदय में गहरे उतरोगे तो पा जाओगे उसका मंदिर।

अगर परमात्मा तुम्हारी समझ से बाहर हो तो सन्तों के चरण पूजो "भेख भगवंत के चरण को ध्याइके" भगवान के वेशधारी कोई मिल जाए, उनका प्रतिरुप कहीं दिख जाए, तो उनके चरण को हृदय में बसा लेना। भगवान को तो आप पहचान भी नहीं सकते, वह तो अरूपी हैं, निराकार हैं, कहां झुके, किस दिशा में झुके ? कैसे झुके ? झुकने के लिए कोई सहारा चाहिए। इसलिए अगर परमात्मा को नहीं पहिचान सको, तो कोई बात नहीं। कम से कम आंखे निर्मल रखना और जब भी आंखों के सामने से मुनि गुजरे तो चरणों में झुक जाना। परमात्मा के प्रतिरुप मुनियों की आंखों में झांकना उनकी आंखों में तुम्हें परमात्मा की छवि दिखाई पड़ेगी। उनकी मुद्रा को ठीक से देखना उसमें तुम्हें परमात्मा की झलक मिलेगी।

भगवान के चरणों में ध्यान लगे तो शुभ, और न लगे तो गुरू के चरणों में ध्यान लगाना। जो अभी देह में हैं, यानि दिगम्बर वेष में हैं। भगवान अभी उनकी देह में समाया हुआ हैं। इसीलिए तो हम मुनियों को जिन मुद्रा धारी कहते हैं। सागर अभी गागर में उतरा हुआ हैं, जिसने गागर के नीर को समझ लिया, समझ लो उसने सागर की यात्रा के लिए प्यास पैदा कर ली।

भेख भगवंत के चरण को ध्याइके
ज्ञान की बात से नाहि टरना॥

जब ऐसे ज्ञानवान दिगम्बर सन्त मिल जाए। अगर ऐसी शुभ घड़ी आ जाए, ऐसा शुभ मुहूर्त आ जाये दिगम्बर-मुनि के चरण मिल जाए, जिनमें जिनराज की थोड़ी प्रतीति होती हो, जिनवाणी का अमृत जिनके मुख से झरता हो, जिसमें अध्यात्म का विवाद हो, परमात्मा की पुकार हो, ओंकारजी की ध्वनि गूंजति हो, आत्मा जगति हो, तप-त्याग की प्रेरणा मिलती हो, तो फिर डर कर भागना मत, सामने से हटना मत। फिर स्वयं को पूर्णतया अर्पित कर देना। उनको देखकर ही ध्यान फलित हो जायेगा, उनके चरण सानिध्य में ही प्यास पैदा हो जायेगी। किसी ने एक दिन पूछा था... ... .

समाधि का क्या अर्थ है ? समाधि का अर्थ है अब तुम धर्म से भी मुक्त हो जाओ। अब किसी के भी सहयोग की जरुरत नहीं हैं। पूर्ण आत्म निर्भर हो जाओ। क्योंकि सहयोग का अर्थ हैं संघर्ष शेष हैं, द्वैत

शेष हैं। मित्रता का अर्थ है शत्रुताशेष है। प्रेम का अर्थ है घृणा शेष है। कण-कण में परमात्मा दिखाई पड़ता है, इससे यह बात स्पष्ट है कि अभी परमात्मा और पदार्थ दो है। अभी कण भी है। जबकि समाधि की दशा में मात्र चेतन आत्मा है। मात्र चैतन्य का अनुभव ही है। जरा भी विकल्प नहीं है।

ध्यान का अर्थ है पहले तू को छोड़ो तो मैं अपने-आप छूट जायेगा। तू को भी छोड़ो और मैं को भी छोड़ो। समाधि का अर्थ है जहाँ न मैं है और तू है। क्योंकि मैं का अर्थ है कि तू विद्यमान है, और तू का अर्थ है कि मैं विद्यमान हैं। मैं तो तू के सामने ही खड़ा होता हैं। नारी तो दूसरे के सामने शृंगार करती हैं। जहां मैं और तू का भाव बिलीन हुआ, समझो वही शून्यता का जन्म हुआ।

अभी तो आदमी को आदमी नहीं मिलता। परमात्मा की खोज तो बहुत मुश्किल है। परमात्मा को पाने के पहले आदमी बनो, आदमी से मिलो, फिर परमात्मा से मिलना। तप-त्याग-संयम से जीवन का शृंगार करो; तब आदमी कहलाओगे अन्यथा तुम में और पशु में क्या अन्तर हैं?

ध्यान का अर्थ हैं साधक की एक ऐसी स्थिति जहां वह नितान्त अकेला रह जाये, वहां कोई भी न हो "मैं" भी न बचे, न मैं बचे, न तू बचे। मैं का अर्थ है अभी तू भी है और तू का अर्थ है मैं भी है। बस जहां मै और तू दोनों खो जाये वही निर्मल आत्मा समाधि का पात्र है।

आचार्य कह रहे है कि साधन को ही साध्य बना दिया है। मार्ग ही मंजिल बन गया है। यात्रा ही गन्तव्य हो गया है। खोजी में ही खोज का अन्तिम बिन्दु छिपा है, कहीं और नहीं हैं, इसलिए अब और कोई साधन मत अपनाओ. अब स्ववं को साधन बनाओ, स्वयं को सिंहासन बनाओ। निर्मल आत्मा के सिंहासन पर बठो छोड़ो बाह्य सिंहासन को, बहुत बैठ लिया उस पर। उस पर बैठकर भी क्या पाया? पाया नही मात्र खोया ही खोया है। अगर शरीर का सम्मान हुआ है तो आत्मा का अपमान भी हुआ हैं। यह क्यों भूल जाते हो, जहां देह का सम्मान होता हैं वहां आत्मा का अपमान भी होता है। आओ उस आत्म-अपमान की भूल का प्रायश्चित करे और समाधि के सरोवर में डुबकी लगाये! आखिर कब तक बाहर भटकते रहोगे, कब तक बाह्य पदार्थो में उलझे रहोगे। बाह्य सिंहासन शाश्वत नही, शाश्वत सिंहासन तुम्हारे भीतर छिपा है। जो कषायों के मल के नीचे दवा पड़ा है। मलबा बाहर निकालकर बाहर फेंको और उस निर्मल आत्मा के सिंहासन पर बैठो।

आचार्य कह रहे है कि अब वक्त आ गया है साधक के अन्दर परमात्म मंदिर बने। अब साधक स्वयं ही मंदिर बने, स्वयं ही भगवान बने। ईट पत्थर के मंदिर से काम नही चलेगा। अब बाह्य साधनों से काम न चलेगा भगवान महावीर ने मनुष्य को भगवान होने की संभावना दी है। भगवान कहीं और नही स्वयं तुम्हारे मनुष्य भव के बीज में छिपा हैं। उसे प्रगट करना है। इसलिए बीज को ठीक भूमि दो, जल सीचों, खाद दो, सुरक्षा करो, सूर्य का प्रकाश पड़ने दो। उसके खोल को, आवरण को गलने दो। प्रकृति के प्रतिकूल अनुकूल वातावरण में पलने दो, तभी वह अंकुरित होगा, ऐसे ही समाधि की साधना से परमात्मा प्रगट होग ।

आचार्य कह रहे हैं कि अब न भगवान की जरूरत है, न उनके गुणगान की जरुरत हैं। बहुत गुणगान कर चुके हो, मंदिरो में बहुत सिर पटक लिये हो, बहुत यात्राये कर ली हैं, बहुत शास्त्र पढ़ लिये हैं, बहुत मंत्र जाप कर लिये हैं बहुत उपदेश कर लिए और सुन लिए हैं, अब ध्यान करो, उस परमात्मा से मिलो, जो तुम्हारे भीतर ही छिपा हैं। आओ मैं तुम्हारी समझ का द्वार खोलता हूं, अब भगवान हो जाओ। इससे कम पर राजी मत होना। तभी तो साधना सम्यक् समझी जायेगी। अब देर न करो उठो अपनी गरिमा को पहिचानो। देखो वह आंचल पसारे खड़ी है, उसे संभालो। उठो अपनी गरिमा की अभिव्यक्ति करो। तुम्हारी गरिमा तुम्हें ही व्यक्त करना पड़ेगी। अब अपनी आत्मा में आकर ठहर जाओ। देखो तुमने बहुत प्रार्थनायें कर ली हैं, तुमने बहुत यात्रायें कर ली हैं, तुमने बहुत उपासनायें कर ली हैं। बहुत तीर्थो के दर्शन कर लिए हैं। मात्र पुण्य ही कमाया हैं। अब तुम अपने पास लौट आओ, अपने आपके सत्य को समझने को, पकड़ने की कोशिश करो। अब भक्ति नही करना है-समाधि की साधना करनी है।

काव्य के रहस्य को समझो। काव्य बहुत गूढ़ है। ग्रन्थ को, काव्य को पढ़ना आसान है लेकिन रहस्य को समझना और आचरण में उतरना बहुत काठन हैं।

शास्त्र वचन समझना सरल है
आचरण करना
तदनुरुप जीना हैं अति कठिन
आचरण करने चलोगे
तब पता चलेगा

कि आचार्यों के वचन
कुन्दकुन्द के वचन
प्रतिपल—प्रतिपग
हजार कठिनाईयां पैदा कर रहे है
जो पढ़ने में सरल थे
आचरण में गरल लग रहे हैं।

सुनते समय शब्द प्यारे लगते है, मधुर लगते है लेकिन जब आचरण की बात उठती है मिमियाने लगते है। फिर मधुर शब्द ही कटु हो जाते हैं। सरल शब्द गरल हो जाते है। खाली पानी अच्छा लगता है लेकिन आचरण रूपी कुनेन की गोली के साथ कटु लगता है। इसलिए कह रहा हूं—काव्य के रहस्य को समझो—शब्दों पर मत जाओ। शब्द तो कभी-कभी एक जैसे होते हैं, लेकिन अभिप्राय और भावना के कारण अर्थ अलग-अलग हो जाते है। प्रेम में वही शब्द कहा जाता है, क्रोध में वही शब्द कहा जा सकता है। प्रशंसा में वही शब्द कहा जा सकता है, निन्दा में वही शब्द कहा जा सकता है। सच्चाई में वही शब्द कहा जा सकता है, त्याग मे वही शब्द कहा जा सकता है। अभिप्राय से शब्द का अर्थ बदल जाता है। जैसे रसोई बनाने वाले को भी महाराज कहते हैं, हलवाई को भी महाराज कहते हैं, शहर के दादा को, गुण्डे को भी महाराज कहते है। काशी के पण्डो को भी महाराज कहते है। और मूढ़ों को व्यंग्य में महापंडित कहते है और पंडित को भी मूर्ख कहते है। थोड़ा काव्य में झांको, अर्थ को तलाशो। किसी ने पूछा था....।

धर्म और मोक्ष में क्या अन्तर है? प्रश्न बहुत अच्छा हैं, धर्म और मोक्ष का समझना भी अनिवार्य है। धर्म और मोक्ष में बहुत अन्तर है। धर्म साधन हैं और साध्य हैं, धर्म कारण है और कार्य हैं। धर्म कुछ परतन्त्र हैं और मोक्ष पूर्ण स्वतंत्र हैं। जब तक दूसरा है तब तक परतन्त्रता रहेगी, क्योंकि दूसरे की मौजूदगी ही परतन्त्रता है। जब तक दो अड़चन रहेगी। भगवान महावीर कहते हैं कि मोक्ष के लिए अद्वैत चाहिए तभी पूर्ण स्वतन्त्र हो सकोगे। जब मात्र आत्मा ही शेष बचे, तब पूर्ण स्वतन्त्रता ऊपलब्ध होगी, जब तक दूसरा हैं तब तक सीमा हैं, दूसरा सीमा की रेखा खीचता हैं। आपने कभी ख्याल किया जब आप बाथरूम में अकेले होते हैं तब एक तरह की स्वतंत्रता होती है, एक तरह की मस्ती होती हैं। आप नहाते नहाते गीत गाते हैं, गुनगुनाते है। अगर कोई सामने आ जाए तो

गुनगुनाना बन्द हो जायेगा, मस्ती खो जायेगी। और जितना मधुर बाथरुम में गाते हो, किसी के सामने गाने गाओ तो शरमा जाओगे। कहने पर भी गीत न गाओगे। दूसरों की मोजूदगी में परतंत्रता है, दूसरे की मौजूदगी में सिमटना है। इसलिए धर्म यानि द्वैत और मोक्ष यानि अद्वैत, परम अद्वैत, परम स्वतंत्रता है।

मोक्ष का अर्थ है तुम डूब गये परमात्मा में और परमात्मा डूब गया तुम में। तुम डूब गये सर्व में यानि केवलज्ञान में और सर्व उतर गया तुम में। बून्द समा गई सागर में और सागर उतर गया बन्द में। अब कोई दूसरा न रहा, आत्मा ही परमात्मा हो गयो।

मोक्ष है परम लक्ष्य और धर्म है मार्ग .... उस परम लक्ष्य को पाने का। मोक्ष पूर्ण जाग्रत चैतन्य अवस्था नाम है। मोक्ष का अर्थ है मुक्ति यानि जहां जरा भी परतंत्रता नहीं। अभी तो आप परतंत्र हैं। आपका सुख पराधीन है।

भगवान महावीर की दो ही मुख्य खोजे हैं–मोक्ष–गंतव्य, सन्यास मार्ग। मोक्ष सन्यास योग धर्म-साधना का चरम पुरस्कार है। इसलिए मोक्ष परम लक्ष्य है और उस का धर्म सन्यास है—मार्ग उस परम लक्ष्य को पाने का, अगर मोक्ष को पाना है तो सर्वप्रथम सन्यास ग्रहण करो, दिगम्बर साधु बनो। क्योंकि उसे सन्यास से ही पाया जाता है, और कोई पाने का उपाय नहीं है। अकेले होना है तो समाधि ग्रहण करो। और उसमें इतने डूब जाओ कि तुम नितान्त अकेले हो जाओ ताकि उस परम शून्यता का आलिंगन करने मुक्ति श्री स्वयं चलकर आ जाये। एक साधारण सी नारी का प्रेम पाने के लिए अकेला होना पड़ता है तब क्या तीन लोक को स्वामिनी को पाने अकेले नहीं बनोगे ? साधक समाधि में ही अकेला हो सकता है।

सभी दर्शनकारो ने चार पुरूषार्थ कहे धर्म-अर्थ, काम-मोक्ष। भारतीय संस्कृतियां यदि अधिक से अधिक ऊपर उठी तो धर्म तक उठी। और यह बात बड़े मजे की है मोक्ष धर्म के भी पार है। धमं से भी अतीत है। और भगवान महावीर कहते है कि मुक्त तो कोई तभी होता है जब धर्म से भी ऊपर उठ जाता है, धर्म से भी मुक्त हो जाता है, धर्म से भी छूट जाता है, यह आखिरी बन्धन है, बड़ा प्रीतिकर, बड़ा मधुर बन्धन है। योगिन्द्र देव आचार्य परमात्म-प्रकाश ग्रन्थ में धर्म का छोड़ने की बाबत कहते है।

अप्पहँ जे वि विभिण्णवढ तेविहवंति ण णाणु
ते तुहुं वि परिहरिवि णियमिं अप्पु वियाणु ।।१०६।।

हे शिष्य: धर्म अर्थ-काम ये आत्मा से भिन्न है, ये ज्ञान नहीं है इसलिए इन तीनो को छोड़कर नियम से अपनी आत्मा को जान।

यह भी बड़े साहस की बात हैं कि ऐसा कहना कि धर्म भी। काम और अर्थ छोड़ने की बात सभी करते हैं लेकिन धर्म छोड़ने की बात कोई नहीं करता है। लेकिन यहां यह समझ लेना कि यह धर्म किससे छोड़ने को कहा जा रहा हैं। जो निर्ग्रन्थ मुनि हो गये हैं, और समाधि आकाँक्षा से पूर्ण भरे हुए हैं, समाधि में डूबना चाहते है, उनसे यह बात कहीं जा रही है। आप अपने ऊपर मत लगा लेना। इसलिए मैंने कहा शब्दों के रहस्य को समझो। जिनने धर्म को आत्मसात् कर लिया है। शुद्धोपयोग में. आत्मा में डूबने की स्थिति में पहुंच गये है। जो चरम ऊचाइयों को छूने वाले है। आत्म साधना की सफलता के शिखर पर पहुंचने वाले है, उनसे कहा जा रहा है कि अब सीढ़ी का विकल्प छोड़ो, सीढ़ी का ख्याल छोड़ो, सीढ़ी से मोह मत करना। सीढी ने परम लक्ष्य तक, गन्तव्य तक पहुंचा दिया है, और उसे धन्यवाद देने लौटकर नहीं आना है। धर्म की सीढ़ी ने अपना काम कर दिया है, व्यवहार धर्म ने अपना पूरा-पूरा फर्ज निभा दिया है। तुम्हें निश्चय में, मंजिल में पहुंचा दिया है इसलिए अब नीचे लौटने की आवश्यकता नहीं है। जो अभी सीढ़ी के करीब ही नहीं आये है उनसेध र्म छोड़ने की सीढ़ी छोड़ने को बात नहीं कही जा रही। जिनने धर्म को जाना हीनहीं है, धर्म को समझा ही नही उनसे यह बात नही कही जा रही। गृहस्थों के लिए धर्म तो परम उपादेय है, उनका कल्याण धर्म ग्रहण करने में ही है।परमात्मप्रकाश की टीका में लिखा है—

> प्राथमिकानाँ चित्त स्थितिकरणार्थ विषय-कषाय-दुर्ध्यानिवंचनार्थं च परंपरया मुक्ति कारण-मर्हदादि परद्रव्य ध्येयम्, पश्चात् चित्ते स्थिरीभूते साक्षान्मुक्ति कारणं स्वशुद्धात्म-तत्व मेव ध्येयं नास्ति एकान्त: एवं साध्य साधक भावं ज्ञात्वा ध्येय विषये विवादो न कर्तव्य: इति ॥१३४॥

प्रथम अवस्था में मन को रोकने के लिए, विषय-कषाय से, दुर्ध्यान से बचने के लिए, अर्हन्त आदि की भक्ति रुप धर्म उपादेय है। क्योंकि वह परम्परा से मुक्ति में कारण है। जब चित्त स्थिर हो जाये, तब शुद्धात्मा का ध्यान करना चाहिए, उसके पहले नही। साधन और साध्य के विषय में विवाद करना है अच्छा नही है। जो आत्मा की गहराई में पहुंच गये

है, ऐसे मुनिराज अब धर्म से भी ऊपर उठें।

ऐसे कितने हो दर्शनकार है जो कहते हैं कि काम के त्याग को सन्यास कहते है। कितने ही कर्मों के फल के त्याग को धर्म कहते है। और कई मनीषी कहते अच्छे बुरे सभी कर्म दोष युक्त हैं, इसलिए त्यागने योग्य है। और ऐसे भी विद्वान है जो ऐसा कहते है कि दान-पूजा-भक्ति यज्ञ हवन रूप कर्म त्यागने के योग्य नही हैं। लेकिन भगवान महावीर और दिगम्बर आचार्य कहते है कि

ग्रहस्थाश्रम में पाप कर्म तो सर्वथा त्याज्य है और दान-पुजा भक्ति-आरती, यज्ञ-हवन परम आदरणीय है। ग्रहस्थ अशुभ कर्म का त्याग करे तथा शुभ को ग्रहण करे। पाप से बचे तथा पुण्य कार्यों में रचे पचे क्यों कि पूण्य भी धर्म है- शुभ परिणामे धर्मः पुण्यं भवति मुख्यवृत्या,
अशुभ परिणामेन भवत्य धर्मः पापम् ॥७१॥

शुभ परिणाम से पुण्य होता है, धर्म होता है तथा अशुभ परिणाम से अधर्म होता है, पाप होता है। तथा "मिथ्यात्व-रागादि रहित परिणामः तत् परिणत् पुरूसो शुद्धो भवति" मिथ्यात्व और विषय-कषाय रूप राग, तथा धर्मानुराग से रहित पुरूष शुद्ध होता है। ग्रहस्थ अशुद्ध है क्योंकि मिथ्यात्व-और अशुभ राग में परिणमन करता-रहता है इसलिए पहले शुभ बनने का प्रयास करे। दान-पूजा, भक्ति-आरती, हवन रूप धर्म के नीर से पाप कीच को धोये। गृहस्थ के लिए धर्म ही उपादेय है। उसके लिए धर्म चिन्तामणी रत्न के समान है।

धर्म का अपना एक जगत है, उसका अपना एक चमत्कार है, अपना अद्वितीय अतिशय है, अपना प्रभाव है। जो इस जगत में प्रवेश करता है, तो धर्म उसके द्वारों को खोलता है। पाप से ऊपर उठाता हैं। धर्म कहता हैं तुम पाप करने पैदा नहीं हुए हो, शरीर तुम्हारा नहीं हैं तुम चैतन्य हो। धर्म चैतन्य की प्रथम याद दिलाता है, आत्मा का प्रथम स्मरण कराता है। और समाधि में चैतन्य का स्वाद चखाता है, चैतन्य को प्रथम गंध देता है। इसलिए जब भी कोई धर्म से जुड़ता है तब बड़ी और ही बात हो जाती है। और पाप से नाता टूटकर पुण्य से नाता जुड़ जाता है। गृहस्थाश्रम में यदि पति-पत्नि के हृदय मे धर्म पैदा होता है तो उनके बीच जो काम का, शरीर का वासना का नाता था नहीं रहा, टूट गया, धर्म से नाता जुड़ गया, मन धर्म की ओर मुड़ गया आपस में आत्मिक प्रेम पैदा होता। और काम-वासना से भरे व्यक्ति के आस-पास स्वार्थ की, भोग की दुर्गन्ध बरसती रहती है। और धर्म से भरे व्यक्ति के पास ताजे फुलों की

गंध बरसती पाओगे।

धर्म तप-त्याग तक ले जायेगा, प्रेम--वात्सल्य से जोड़ेगा, और अधर्म ईर्ष्या से पाप से वैमनस्यता से जोडेगा प्रतिस्पर्धा से जोड़ेगा। जब आत्मा में धर्म पैदा होता है तो मंदिर उपासना गृह पूजा हो जाते हैं। धर्म ग्रन्थ महत्वपूर्ण हो जाते हैं, मुनि महत्वपूर्ण हो जाते हैं। सत्संग करना सदवचनों का सुनना, स्वाध्याय करना रस देने लगता है, अन्तर की वीणा प्रभु गीत गाने लगती है, मन-वीणा में परमात्मा की धुन बजने लगती है। हृदय-तार-तार झंकृत होने लगता है। प्रज्ञा के वातायन खुलने लगते हैं। पदार्थ और परमात्मा के बीच भेद दिखाई पड़ने लगता है। प्रत्येक प्राणी चाहे वह कितना ही साधारण हो, असाधारण दिखाई पड़ने लगता है।

धार्मिक व्यक्ति के जीवन-स्वर सहयोग की भाषा बोलने लगते है संघर्ष और ईर्ष्या के स्वर नहीं बोलते। धर्म का काम मात्र परमात्मा का स्मरण दिलाना है और समाधि का काम अप्रगट परमात्मा की प्रतीति है। ध्यान मे उसकी झलक मिलती है, चेतना जग रही हैं इस बात की प्रतीति होती हैं। धर्म प्रारंभ है और मोक्ष अन्तिम परिणति है। इसलिए कहा कि धर्म भी छूटेगा।

अण्णु जि तित्थु म जाहि जिय अण्णू जि गुरूउ म सेवि।
अण्णु जि देउ म चिंति तुहुँ अप्पा बिमलु मुएति॥ ९५॥

हे जीव तू आत्म-तीर्थ को छोड़कर अन्य तीर्थ को मत जा, अन्य गुरु की सेवा मतकर। अन्य देव को मत पूज, मत ध्या। रागादि मल से रहित तेरी आत्मा ही तीर्थ हैं उसी के दर्शनकर, वही गुरु हैं उसकी ही सेवा कर, वही देव हैं उसका ही ध्यान कर।

आचार्य देव यहां पर निर्ग्रन्थ मुनिराजों को सम्बोधन कर रहे हैं। प्रवृत्ति से निवृत्ति की ओर ले जाना चाहते हैं। समाधि की गहराई में ले जाकर आत्म-अमृत का पान कराना चाहते हैं, इसलिए कहा कि अब अपनी आत्मा को पहिचानो। यह उपदेश गृहस्थों के लिए नहीं मुनियों के लिए हैं, क्योंकि गाथा की टीका से ध्वनित होता हैं कि -

यद्यपि व्यवहार नयेन निर्वाण स्थान चैत्य-चैत्यालयादिकं
तीर्थ भूत पुरूष गुण स्मरणार्थं तीर्थ भवति। प्राथमिकापेक्षया
सविकल्पापेक्षया चित्त स्थिति करणार्थ तीर्थंकर पुण्य हेतु भुतं

साध्य साधक भावेन परंपरया निर्वाण कारणं च जिन प्रतिमा-
दिकं व्यवहारेण देवो भव्यते ।

क्योंकि व्यवहार नय से निर्वाण स्थान, चैत्य-चैत्यालय और पुराण पुरूषों का स्मरण किया जाता है। सविकल्प अवस्था मे रोकने के लिए पुण्य के हेतु भूत तीर्थकरों की उपासना साध्य-साधक से की जाती है जो परम्परा से मुक्ति में कारण इसलिए व्यवहार से जिन प्रतिमा को भी देव कहते हैं। ग्रहस्थाश्रम में गृहस्थों के लिए यही उपादेय हैं। अब दुसरे काव्यों के सुत्रो की देखे।

न संस्तरो भद्। समाधि साधनं,
न लोक पूजा, न च संघ मेलनम्।
यतस्ततोऽध्यात्मरतो भवानिशं,
विमुच्य सर्वामपि बाह्य वासनाम्॥

हे भद्र! समाधि का साधन न तो आसन है, न लोक पूजा है और न ही संघ का सम्मिलन है, अतः तू तो संसार की समस्त वासनाओं का परित्याग करके सतत् आत्म-भाव में लीन रह।

आचार्य देव कह रहे हैं कि समाधि के साधन विभिन्न आसन— योगाभ्यास सिंहासन भी नहीं है। और लोक में मेरी कितनी पूजा है कितनी ख्याति है। लोग कितनी प्रशंसा करते है, लोग मुझे कितना मानते हैं। इन बाह्या प्रशंसाओ के ढ़र से भी समाधि उपलब्ध न होगी। पहले प्रशंसा के पर्वतों से, सिंहासनो से नीचे उतरो और असलियत का ज्ञान करो। तथा समस्त पदों का त्याग करो एक घटना कहता हूं

एक चींटा रीशा गया, रुठ गया, जिद पर अड़ गया कि मैं तो इंग्लैण्ड की महारानी एलिजाबेथ के महल में रहने वाली चींटी के साथ शादि करुंगा। गम्भीर समस्या उपस्थित हो गई समस्या सुलझाने भारत के सभी चींटे-चींटियां एक स्थान पर एकत्र हुए। सबने अपनी अपनी तरीके से समझाया। लेकिन चींटा तो अपनी जिद पर अड़ा रहा। अन्ततोगत्वा यह इंग्लैण्ड तक पहुची। बातों का उनके कोई सिर-पैर तो होता नहीं है। बिना पंख के ही सब जगह पहुंच जाती है। इंग्लैण्ड की महारानी ने मंजुरी दे दी, लेकिन एक शर्त रख दी कि चींटा वहां से कोई सामान को लेकर नहीं आयेगा। उसकी जितनी भी आवश्यकतायें हो सब यहीं पूरी कर दी जावेगी चींटा सम्पन्न था भारत का सम्राट चींटा था काफी ऐश्वर्य था

बड़ी धूमधाम से बरात रवाना हुई इंग्लैण्ड में बरात का राजकीय स्तर पर स्वागत किया गया । इंग्लैण्ड की महारानी के साथ शादी हो रही थी दूर-दूर से चींटे-चींटियां आये । शादी की रस्म-अदा करने का समय आया भांवर पड़ने का समय आया। रानी ने कहा चींटा दुल्हा को ससम्मान मण्डप में लाना चाहिए । भारतीय चींटा बहुत प्रसन्न था । इतना वैभव उसने पहली बार देखा था । उसका भी अहंकार जाग्रत हो गया । वह अपने साथ अपना सुन्दर सिंहासन लाया था कमरे में उस पर बैठकर अपने साथियों से बात चीत, हंसी-मजाक कर रहा था । अचानक रानी कमरे में पहुंच गयी । सिंहासन पर बैठा है चींटा । रानी आग - बबूला हो गई उसने पूछा यह सिंहासन कहां से आया है और कौन लाया है ? दुल्हा चींटा ने कहा यह हमारा खानदानी सिंहासन है, भारत से हम इसे अपने साथ लाये हैं ।

रानी ने कहा, सिंहासन उठाओ और यहां से बाहर निकल जाओ। ऐसे अहंकारियों से लिए सिंहासन प्रेमियों के लिए हम अपनी बेटी नहीं देंगे । क्या यहां भी तुच्छ वैभव का प्रदर्शन करने आये हो ! लौट जाओ अपने देश बरात वापस लौट आयी आज तक सभी चींटे कुंवारे घूम रहे हैं, उनकी शादी नही हुई ।

जिनके साथ सिंहासन जुड़े है, जो भौतिक पदों से चिपके हैं, जिनका परिग्रह से नाता है, ममत्व भाव है उनकी बारात मंदिर तक आकर, साधु के पद तक आकर लौट जाती है । क्योंकि अभी मुक्ति प्यारी नहीं, ख्याति पूजा प्यारी है । सिंहासन प्यारा है, आत्मा नहीं, उनका धर्म के साथ, आत्मा के साथ जरा भी सम्बन्ध नहीं है ।

लोक पूजा भी समाधि में बाधक हैं । उससे भी बचो । जब समाधि ग्रहण करोगे, लोगों को आश्चर्य होगा । भीड़ तुम्हें देखने आयेगी, तुम्हारे तप-त्याग की प्रशंसा करेगी । प्रशंसा के रूपयों से तुम्हें खरीदेगी, इसलिए सावधान रहेगा । प्रशंसा के मोल पर बिक मत जाना । प्रशंसा के शब्दों से बचना । प्रशंसा का जहर पीना ही मत अन्यथा समाधि का अमृत विष हो जायेगा ।

"न च संघ मेलनम्" संघ का सम्मेलन भी नहीं करना ! जब कोई साधु समाधि स्वीकार करता है तो उसकी सेवा के लिए अड़तालीस मुनिराज उपस्थित होते है । समाधि का समाचार सुनते ही पुण्य लाभ लेने आते हैं । अड़तालीस मुनि मेरी सेवा में संलग्न हैं, मैं क्षयक साधु हूं ऐसा अहंकार भी पैदा नहीं होना चाहिए । क्योंकि साधुओं का सम्मेलन भी समाधि को

साधन नहीं है। अगर समाधि के समय, ध्यान के समय इतना भी ख्याल आ जाये कि मैं काफी ख्याति प्राप्त साधु हूँ। मुझे देखने लाखों नर-नारि आ रहे हैं तो वह भी सम्यक् समाधि नहीं है। यही जैन-दर्शन की विशेषता है कि वह कहता है कि अन्तिम समय अपने आपको भी भूल जाओ। अन्तिम समय परमात्मा को भी याद मत करना, अन्यथा गड़बड़ी हो जाएगी, परमात्मा भी बाधा बन जायेगा। परमात्मा को भी बीच में मत लाना अन्यथा सब गड़बड़ हो जायेगा। अब तो एक मात्र अपनी शुद्धात्मा का ध्यान उसका ही पीन करना। इसलिए कहा, कि एक मात्र निर्मल आत्मा ही समाधि का आसन है।

आत्मा निर्मल कब है उसमें से क्रोध-मान--माया—लोभ के कंकर-पत्थर निकल गये। वासना कामना की काई निकल गई, नीर एकदम निर्मल हो गया। अहंकार की लहरें उठना बन्द हो गई। स्वयं का प्रतिबिम्ब दिखाई पड़ने लगा। अगर वासनायें विद्यमान हैं तो मन बाहर दौड़ जायेगा, वह धनपति ध्यान करने बैठा-बाहर से आवाज आई.........मालिक फैक्ट्री में आग लग गई, फैक्ट्री जल रही है, उसका ध्यान बाहर चला गया। उसका मन जलने लगा। मोह कांपने लगा दूसरी आवाज आई मकान गिर गया, वह अपने को सभाल न सका, उसका ध्यान भी गिर गया। तीसरी बार आवाज आई.........बीवी बच्चे मर गये, उठकर भाग गया। फैक्ट्री देखने गया। लेकिन वहाँ तो सब ज्यों का त्यों था। वह तो एक मात्र परीक्षा थी, बाहर न आग लगी थी, न फैक्ट्री जली थी, न बीवी-बच्चे मरे थे।

वह तो मात्र एक प्रतीक था कि फैक्ट्री जल गई यानि मिथ्यात्व जल रहा है, जो संसार का निर्माता है। जिससे कर्मों का परिवार पलता है, उसमें आग लग गई है। मकान गिर गया यानि परिग्रह का पर्वत ढह गया, परिग्रह का पहाड़ गिर गया है, वासनाओं-कामनाओं का महल गिर गया है। बीवी-बच्चे मर गये यानि मोह-राग-अनुराग मर गया। मन का आकाश निर्मल-स्वच्छ साफ हो गया। ज्ञान का सूरज उग गया है, प्रज्ञा का प्रकाश फैलने लगा है। लेकिन मिथ्यादर्शन-मिथ्याज्ञान-मिथ्या चारित्र की बदलियों की गड़गड़ाहट ने ध्यान तोड़ दिया, पुनः वापस बुला लिया। और वह धनपति उठकर भाग गया। सत्य हाथों में आते-आते रह गया। बाह्य पदार्थों से मन को हटाओ एक भी पदार्थ तुम्हारा नहीं है। भगवान तो कहते हैं कि जब ध्यान की, समाधि की सिद्धि का समय आयेगा तब परमात्मा से, गुरुओं से भी मन को मोड़ना पड़ेगा, उनका ख्याल भी छोड़ना पड़ेगा। परमात्म प्रकाश में योगिन्द्रदेव लिखते है.........!

अप्प वंदउ खवणु ण वि अप्पा गुरउ ण होउ ।
अप्पा लिंगिउ एक्कुण विणाणिउ जाणइजोउ ॥

आत्मा बौद्ध का आचार्य नहीं हैं, दिगम्बर नहीं हैं, श्वेताम्बर नहीं हैं, गुरु नहीं हैं, आत्मा का एक भी लिंग नही हैं, एक दंडी, त्रिदडी, हंस, परमहंस, सन्यासी, जटाधारी, मु ंडित कोई भी भेषधारी नही है। आत्मा तो मात्र ज्ञान स्वरुप हैं । उस आत्मा को मुनि–ज्ञानी ध्यानारूढ़ होकर जानता हैं ।

एक बात स्पष्ट हो गई कि ऐसी निर्मल–पवित्र–शुद्ध आत्मा को ध्यान में लीन मुनि ही जान सकता हैं। श्लोक रहस्यपूर्ण हैं–अर्थ गहन हैं आपकी धारणा को चोट लगेगी। चोट लगना भी चाहिए, तभी तो मिथ्या मान्यता की दीवार गिरेगी। आत्मा दिगम्बर भी नही हैं श्वेताम्बर भी नही हैं, बौद्ध भी नही हैं। इनसे आत्मा का क्या मूल्य। आत्मा एक दंडी भी नही हैं, द्वि–दंडी, त्रि–दंडी भी नही हैं। आत्मा जयधारी भी नही हैं, भेषधारी भी नही हैं. आत्मा में एक भी लिंग नही हैं, फिर आत्मा कैसी हैं, हिन्दू भी नही, मुसलमान भी नही, सिक्ख भी नही, ईसाई भी नही तो फिर कैसी हैं आत्मा ? आत्मा तो ज्ञान स्वरूपी है ।

एक बार एक मुमुक्षु ने कहा, मेरी तथा सर्वज्ञ की आत्मा में जरा भी अन्तर नही हैं, मेरी आत्मा भी परम विशुद्ध हैं, पास में ही कमण्डल रखा हुआ था, उसमें पानी भरा था, मैंने कहा क्या सागर का पानी और इस कमण्डल का पानी एक हैं, उसने कहा हाँ, तो मैंने कहा, एक काम करो इसमें तूफान उठाओ, नावे चलाओ, गोताखोरो से कहो कि गोता लगाये और मोती-माणिक खोज कर लाये, मुमुक्षु घबड़ाया बोला इस छोटे मे करमण्डल मैं नाव कैसे चल सकती हैं ? तूफान कैसे उठ सकते हैं, मोती माणिक्य कैसे मिल सकते हैं ? इसके लिए तो सागर की जरूरत पड़ेगी। बस तुम में और सिद्धात्मा में यही अन्तर है । तुम अभी एक पोखर के गन्दे पानी हो। तुम्हारा पानी गन्दा है, मोह-माया, कामना-वासना की काई जमी हैं, राग-द्वेष के कीड़े-मकोड़े घूम रहे हैं, और परमात्मा का नीर सागर हो गया है, उसमें विराद्वता आ गई हैं, ज्ञान विशाल हो गया हैं, परमशुद्ध हो गया है, अपने आपको सागर में समाहित कर दो, तो परमात्मा हो जाओगे, विराट् हो जाओगे, सागर में पैदा होते है, शुद्धता का मोती गृहस्थाश्रम के तालाब में नही, मुनियों के सागर में ज्ञान का मोती उसे उपलब्ध होता हैं जो निर्विकल्प ध्यान की गहराई में गोता लगाता हैं ।

गोताखोर जब गहराई में जाता है तो बाहर का सब कुछ भूल जाता है एक लक्ष्य रहता है एक ही ज्ञेय रहता है मोती प्राप्त करना। गृहस्थाश्रम में चित्त का इतना निर्मल होना असंभव है। प्रवचनसार की टीका लिखते हुए जयसेनाचार्य कहते है..........

"आर्त–रौद्र ध्यान परिणतानाम् गृहस्थानाम् निश्चय धर्म अवकाशो नास्ति"

आर्त–रौद्र में परिणमन करने वाले गृहस्थों के पास निश्चयधर्म यानि निर्विकल्प ध्यान में रमण करने की फुर्सत कहां है। आप इसका अर्थ यह मत ले लेना कि जो आर्त–रौद्र ध्यान में डूबे हैं उनको ध्यान की सिद्धि न हो, तो कोई बात नहीं, क्योंकि हम तो आर्त–रौद्र ध्यान से दूर हैं, हमें ध्यान की, निश्चय धर्म की प्राप्ति हो जायेगी। ऐसा सोचना ही मत, अन्यथा अनर्थ हो जायेगा। आपका परिग्रह, आपका संसार आर्त–रौद्र ध्यान का ही प्रतीक है। आर्त–रौद्र ध्यान का अभाव होते ही परिग्रह छूट जाता है। परिग्रह के सद्भाव में कुध्यान का अभाव त्रिकाल में भी संभव नही है, स्वयं को धोखा मत देना, अगर कहते हो कि गृहस्थों को ध्यान होता है तो यह मात्र आत्म-वचना है।

आचार्य कह रहे हैं कि प्रत्येक साधक को अपना परमात्मा निर्मित करना है तो बाह्य साधनों से बचो, क्योंकि तुम्ही हो मूर्तिकार, तुम्ही हो मूर्ति, तुम्ही हो वह पत्थर जिसकी मूर्ति बनती है। तुम्ही को तो इस अनपढ़ पाषाण से मूर्ति बनानी है। तुम्हारे अतिरिक्त कोई भी नही बनायेगा। मनुष्य ही सब कुछ है। वीणा भी वही है और संगीत भी वही हैं, स्वर ध्वनि भी वही है, मनुष्य के भीतर सब है, मात्र स्वयं को समझना है, स्वर में जो बाधक तत्व है, उन्हें हटाना है, वीणा को व्यवस्थित करना है टूटे तारों को जोड़ना है और ढ़ीले तारों को कसना है, अखण्ड बनाना है, मूर्ति छिपी है अनगढ पत्थर में, अनगढ़ पाषाण को काटना छाँटना है, व्यर्थ को अलग करना हैं, असार से सार को पृथक करना है, कुछ जोड़ना नही हैं मात्र व्यर्थ का तोड़ना है, आपने देखा होगा दिगम्बर जैन मूर्तियों में कही पर भी जोड़ नही हैं, उनमें जरा भी कुछ जोड़ा नही गया, बलिक अनगढ़ पाषाण को तराश तराश कर मूर्ति रुप बनाया गया है, उसमें जो मूर्ति छिपी थी उसे उजागर किया गया है। उसमें से व्यर्थ का निकालकर फेंका गया है। आपको भी और कुछ नहीं करना, मात्र व्यर्थ का जो एकत्रकर लिया हैं उसे अलग करना है, तो ही परमात्मा प्रगट होगा। और जिस समय वह प्रगट होगा, वह तुम्हारा ही होगा, पराया नहीं। वे भी तुम्हारी सांसों में रमा होगा, वो तुम्हारे ही हृदय की धड़कन होगा, वो

तुम्हारे प्राणों का स्पन्दन होगा।

इतना याद रखो, यदि परमात्मा को पर वस्तु की भांति पा भी लिया तो एक दिन वह छूट जायेगा। जैसे दूसरे अन्य पदार्थ छूट जाते हैं, वो भी छूट जाते हैं। इसलिए भगवान महावीर कहते हैं कि स्वयं को ही पा लेना, एक मात्र पा लेना हैं। धन पा लोगे छूट जायेगा, मंदिर बना लोगे छूट जायेगा, भवन बना लोगे छूट जायेगा, यश-प्रतिष्ठा छूट जायेगी। सब यही पर छूट जायेगा। अगर इसी तरह परमात्मा को भी पदार्थ की भांति पाया तो वह भी छूट जायेगा। जो बाहर है वो तुम्हारा नहीं हो सकता, तुम्हारे भीतर ठहर नहीं सकता। भगवान महावीर ने शुद्ध स्वभाव को ही परमात्मा कहा है। प्रज्ञा की हथौड़ो से तराश कर व्यर्थ का कचरा निकाल दो। तराशो जीवन के अनगढ़ पाषाण को और मूर्ति का रूप दो। बस असार में सार को निकालने का नाम ही समाधि है। स्वयं साधन हो स्वयं साध्य हो। स्वयं वीणा हो, स्वयं वादक हो, स्वयं संगीत हो, स्वयं गीत हो, स्वयं गीतकार हो उठाओ, अपनी वीणा को और समाधि की अंगुलियां फेरकर परमात्मा के गीत गाओ। बस इतना ही याद रखो परमात्मा पदार्थ की तरह, ज्ञेय की तरह नहीं जाना जाता, ज्ञाता की तरह जाना जाता है।

अगर आत्मा पर भरोसा आ जायेगा तो श्रद्धा पैदा होगी। श्रद्धा पैदा होगी तो भक्ति पैदा होगी। भक्ति पैदा होगी तो आचरण पैदा होगा आचरण पैदा होगा। उससे ध्यान पैदा होगा, समाधि पैदा होगी। और जब सम्यक् समाधि लगेगी तो स्वयं का परमात्मा पैदा होगा, फिर उसका अनुभव होगा। इसलिए कहा, सारे विकल्पों को छोड़कर एक मात्र आत्मा का ध्यान करो।

किसी ने एक दिन आकर कहा कि मेरी आप पर बहुत श्रद्धा हैं, मेरा मार्ग-दर्शन करे। "यह घटना प्रतापगढ़ की है" मैंने कहा, जल्दी मत करो। ठहरो इतनी जल्दी हृदय मत खोलो। नहीं, महाराज आप पर बहुत श्रद्धा हैं, मेरी गहरी आस्था है। पहले यह बताओ तुम्हारी स्वय पर श्रद्धा है? वे कहते है अपने पर तो नहीं है, फिर तुम मुझ पर श्रद्धा कैसे करोगे? श्रद्धा तुम्ही करोगे न? तुम्हें अपने पे श्रद्धा नहीं हैं तो अपनी श्रद्धा पर कैसे श्रद्धा होगी? वो तुम्हारी ही श्रद्धा हैं न? असल तुम कुछ पाना चाहते हो और नहीं पा पाये हो, उसे मेरे आशीर्वाद से पाना चाहते हो, इसलिए यहां आये हो, इसलिए कह रहे हो मेरी आप पर श्रद्धा हैं, जब मुझसे बड़ा आश्वासन मिल जायेगा तो श्रद्धा मिल जायेगी, मर जायेगी, बड़े की ओर बह जायेगी। हर व्यक्ति आकांक्षा पूरी करने आशीर्वाद का सहारा खोजता

हैं। सहारे की आदत के कारण हर जगह सहारा खोजता हैं। लेकिन भगवान महावीर कहते हैं व्यवहार में श्रद्धा करना तो अनिवार्य हैं लेकिन निश्चय से अपना ही सहारा काम आता हैं। इसलिए अब तुम अपने ही सहारे बनो। कोई किसी का सहारा नहीं हैं। अपने पैरो पर भरोसा करो। अपने पे भरोसा आ जायेगा तो परमात्मा पे भरोसा आ जायेगा। और जिसे अपने पर भरोसा नहीं आया, उसे परमात्मा पर क्या भरोसा आयेगा। और यदि जिसका अपने पर भरोसा नहीं आया और किसी पर भरोसा आ भी गया तो सन्देह से भरा होगा।

सन्तो पर सच्ची श्रद्धा पैदा होगी तो निश्चित ही आचरण की ओर कदम जायेंगे। व्यक्ति अकिंचन्य बनने लगेगा, स्वयं की ओर उसका ध्यान मुड़ने लगेगा।

मैं अकिंचन्य बन गया हूं, द्वार पर आकर तुम्हारे
त्याग की सरीता उफनती ढ़ह रहे विधि के कगारे।
मैं जिधर भी देखता हूँ, खुशियां आँचल पसारे,
आज निष्फल हो रहे मोह के परितोष सारे
मैं मुमुक्षु बन गया हूँ द्वार पर आकर तुम्हारे॥
मैं अकिंचन्य बन गया हूं द्वार पर आकर तुम्हारे॥
तपस्या के पालने में ध्यान ने मुझको झुलाया
पुण्य के मधुर करो ने लोरियां गाकर उठाया
भक्ति के साथ चलते भावि सपने क्वाँरे
चरण की रज बन गया हूं द्वार पर आकर तुम्हारे
मैं अकिंचन्य बन गया हूं द्वार पर आकर तुम्हारे।
कामना के पालने ने मुझको था है झुलाया
आश के दीपक जला थपकियाँ देकर सुलाया
लोरियों के संग सोते मोह के सपने प्यारे
किन्तु अब सब रो रहे मोह सम्बन्ध सारे
मैं श्रमण बन गया हूँ कैसे उनको सम्हारे
मैं अकिंचन्य बन गया हूँ द्वार पर आकर तुम्हारे॥

जब भी कोई परमात्म-ध्यान को उपलब्ध होता हैं तो वह अकिंचन्य बन जाता हैं अपनी सुध-बुध खो देता हैं।

ध्यान का अर्थ हैं-स्वयं पर ध्यान देना। अभी तक पर पदार्थों पर

ध्यान दिया, उनका ही ख्याल रखा; अब स्वयं का ख्याल रखना। स्वयं पर जहां दृष्टि ठहर गई, रुक गई, स्वयं को जिसने देख लिया स्वयं की चिन्ता जिसने कर ली, स्वयं की खोज में जो लग गया बस उसी का नाम ध्यान हैं, आप ध्यान तो चौबिस घण्टे कर रहे है, लेकिन पर पदार्थ का कर रहे हैं। आपका ध्यान-अध्यान तो बहुत अच्छा हैं। अब वही ध्यान स्वयं की ओर लौट आये, आप यहां बैठे-बैठे भी ध्यान कर रहे है, आपका ध्यान दुकान पर, मकान पर हैं. पुरुष पर हैं, नारी पर है, धन पर है, भोजन पर हैं, किसी की शक्ल पर हैं और किसी का ध्यान आज का इनाम जीतने पर हैं। बच्चो का ध्यान एक-एक शब्द पर हैं कि आज का ईनाम हमें जीतना हैं। ध्यान को सीखना नहीं हैं, मात्र कनवर्ड करना हैं, रूपान्तरित करना हैं उसकी दिशा को बदलना हैं। कार तो चल रही हैं लेकिन वह रिवर्स गेयर में, पीछे की ओर चल रही हैं। यदि उसका गेयर बदल दिया जाये, टाप गेयर में डाल दिया जाये तो मंजिल आ सकती है। कार में गति तो हैं ही, पहिये घूम तो रहे हैं, तो आपको भी अपना गेयर बदलना है, पर पदार्थ से स्वयं की ओर स्वयं को मोड़ना है। और समाधि का अर्थ भी यही हैं कि पर पदार्थों से स्वयं को हटाकर स्वयं में केन्द्रित कर देना हैं।

आचार्य कहना चाहते हैं कि ध्यान स्वयं पर दोगे तभी वह सच्चा माना जायेगा। गुरू आपके सामने न हो और उनके प्रति भक्ति भाव नयन; श्रद्धा बनी हुई है तो आपकी श्रद्धा सच्ची है, और यदि उन्हें देखने के बाद आप प्रणाम करते हैं तो भक्ति अधूरी है। क्योंकि भय के कारण भी प्रणाम हो सकता है, लोभ के कारण भी प्रणाम हो सकता है, अगर सामने आता हुआ देखकर गुरु चरण में झुक रहे हो, तो यह तो ऐसा ही हुआ पुलिस वाला चौराहे पर पर खड़ा है इसलिए बायें चलो, गाड़ी बाये से मोड़ो और नहीं है तो कहीं से भी गाड़ी मोड़ दो, पुलिस वाला होता तो तुम बाये चलते और नहीं हैं तुम जहां चाहो चलो। परमात्मा है इसलिए तुम झुक रहे हो, तो यह झुकना सम्यक् नहीं है। उनकी अनुपस्थिति में भी झुकना होता रहे तो समझना श्रद्धा सच्चीं है।

मैं अकिंचन बन गया हूं द्वार पर आकर तुम्हारे
त्याग की सरीता उफनती ढ़ह रहे विधि के कगारे

साधक परमात्मा से कह रहा है कि आपकी महिमा अचिन्त्य है, आपके द्वार पर आते-आते मैं मुमुक्षु हो गया, आत्म-पिपासु हो गया,

परमात्मा का रसिक हो गया, परमात्मा का दीवाना हो गया। आपकी वीतराग मुद्रा मन को भा गयी। समझ में आ गया है कि आप इतने शांत, आनन्दित क्यों है ? क्योंकि आपने समस्त पर-पदार्थों से स्वयं को पृथक कर लिया हैं, आप पूर्ण अकिंचन्य बन गये है। मैं भी अकिंचन्य बनने के लिये आया हूं। आपको देखकर मेरी प्यास पैदा हो गई है। त्याग की सरिता का आनन्द बढ़ गया है क्योंकि वह अपने से मिलने सागर की ओर जा रही हैं। उसका प्रियतम सागर उसे पुकार रहा है। वह कर्म रूपी प्रलोभनों को छोड़ती, किनारों को तोड़ती, नगर-गांवों को छोड़ती जा रही है। मैं भी मुमुक्षु बन गया हूं।

मुमुक्षु का अर्थ बहुत गहरा है "मोक्तुम इक्षु इति मुमुक्षु" जो मोक्ष का इच्छुक है निर्ग्रन्थ श्रमण है, दिगम्बर मुनि है वही सच्चा मुमुक्ष है।

आचार्य समंतभद्र कहते है कि निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुनि ही मुमुक्षु हो सकता है।

विहाय यः सागरवारिवाससं वधूमिवेमां वसुधावधुं सतीम्।
मुमुक्षु रिक्ष्वाकु कुलादिरात्मवान् प्रभुः प्रवव्राजसहिष्णुरच्युतः॥

जब आदिनाथ मुमुक्षु हुए तो वे इस पृथ्वी रूपी महिला को त्याग करके मुनि हो गये। और ऐसे मुनि बने कि संसार के कठोर से कठोर उपसर्ग और परीग्रह उन्हें आत्म ध्यान से च्युत न कर सके। कुलटा स्त्री को छोड़ना तो आसान है लेकिन पतिव्रता, शीलवान स्त्री को छोड़ना बहुत मुश्किल है। जब अन्तरंग में परमात्मा की प्यास पैदा हुई, मुमुक्षु बने तो पलक झपकते ही सब कुछ छोड़ दिया। साधारण वैभव छोड़ना तो आसान है लेकिन जो वैभव स्वर्ग से, इन्द्र के द्वारा प्राप्त हुआ हैं उसे छोड़ना कठिन है। लेकिन आदिनाथ ने तो वह दिव्य वैभव भी छोड़ दिया। असली मुमुक्षु परिग्रह से, भोग से चिपकता नहीं है, भोगों का त्याग करके तुरन्त साधु हो जाता है।

"मुमुक्षु कौन है ? जिसने समस्त परिग्रह को छोड़ दिया है, निर्ममत्व भाव को उपलब्ध हो गया है, समस्त आशाओं से ऊपर उठ गया है, जो आत्मा में डूब गया है, अकिंचन्य हो गया है वही मुमुक्षु हैं। अभी अपने आपको मुमुक्षु कहलाने वाले मुमुक्षु हैं, भोगी हैं, विषय-लम्परी हैं, आत्म-वंचक हैं। इनके पास ढोंग हैं, जीने का ढंग नहीं। गधे वे सिंह की खाल पहन ली हैं, असली सिंह नहीं हैं। ये असली मुमुक्षु नहीं है।

असली मुमुक्षु तो दिगम्बर मुनि हैं । जिन्होंने स्वयं का साधन और साध्य बना लिया है । और समाधि का साधन भी स्वय की आत्मा है और साध्य भी स्वयं की आत्मा है । सारा रहस्य बून्द में ही छिपा है, बून्द को ही सागर होना है । स्वयं ही पाषाण है, स्वय ही शिल्पी है और स्वयं ही मूर्ति है । प्रभु करे आप अपने अनगढ़ पाषाण को परखे, पहिचाने और तप त्याग की छैनी से स्वयं के परमात्मा की मूर्ति गढ़े, निर्मित करे । बस इतना याद रखे आप स्वयं साधन है और स्वयं ही साध्य है।

बस आज इतना ही ।

आदिनाथ दिगम्बर जैन नया मन्दिर
प्रतापगढ़

दिनांक २६-८-९१
सोमवार



राजकुमार एवं श्रीपाल मिण्डा परिवार सहित

२४

पत्थर हीरे नहीं है

एकान्तीय ज्ञान ने
किस हद तक
बदला हैं, नक्शा
कि उसने
शास्त्र तो क्या
संतो को भी न बख्शा

मूल पद्य :- न सन्ति बाह्या मम केचनार्थाः।
भवामि तेषां न कदाचनाऽहम् ॥
इत्थं विनिश्चित्य विमुच्य बाह्यं।
स्वस्थः सदा त्वं भव भद्र ! मुक्त्यै ॥२४॥

हिन्दी पद्य :- बाह्यर्थ मेरे नही कुछ भी न किंचित
इस भांति में भी उनका हूं न कदाचित
यो चिन्त बाह्य विकल्प विचार छोड़ो
हे भद्र स्वस्थ्य हो जा मुख जग से मोड़ों

अन्वयार्थ :-

केचन बाह्य	—	कोई भी बाहरी
अर्थ.	—	पदार्थ
मम	—	मेरे
न सन्ति	—	नहीं हैं
अहम्	—	मैं भी
तेषाम्	—	उनका
न कदाचन	--	कदापि
भवामि	—	हूँ
इत्थम्	—	इस प्रकार
विनिश्चित्य	—	पक्का निश्चय करके
बाह्यंविमुच्य	—	बाह्य से सम्पर्क छोड़कर
भद्र !	—	हे भद्र ! आत्मन
त्वम् सदा	—	तुम सदा
स्वस्थः भव	—	अपनी आत्मा में स्थिर रहो

भावार्थ :- कोई भी बाहरी पदार्थ मेरा नहीं है और न मैं कभी उनका हूं ऐसा दृढ़ निश्चय कर हे भद्र पुरुष ! बाह्य वस्तुओं को छोड़कर तू मुक्ति प्राप्ति के लिये सदा अपनी आत्मा में स्थिर रह।

२४

पत्थर हीरे नहीं है

ओम नमः सिद्धेभ्यः ३
धर्म प्रेमी भव्यात्माओं !

आचार्य अमितगति कहते है कि अगर तुम्हारी आँखे खुल गयी है, आँखे स्वच्छ - निर्मल हो गई हो। तुम्हे प्रकाश नजर आता हो तो अन्धकार छोड़कर प्रकाश में आओ। कब तक कीड़े मकोड़ो की भाँति अंधेरे में जिओगे और भटकोगे। यदि जीवन का मूल्यांकन कर लिया हो जीवन की महत्ता का ज्ञान हो गया हो, तो स्वयं का आदर करो। असत्य-सत्य के बीच फर्क नजर आ गया हो तो सत्य का पान करो और असत्य के विष का वमन करो।

आत्मा का दर्शन करने वाले ज्ञानी को अन्य कोई वस्तु अच्छी नही लगती। ज्ञानी का मन आत्मा के सिवाय अन्य किसी पदार्थ में नही लगता क्या यह सच नही है ? जिसने मरकतमणि को जान लिया, क्या उसको कांच पसन्द आयेगा ? जिसका चित्त आत्मा में लग गया उसके मन में दूसरे पदार्थो की जरा भी वांछा नही रहती। आज का श्लोक बहुत गहरा है।

हे परमात्मा ! संसार में कोई भी पदार्थ मेरा नही है और न मैं उसका हूं। न कोई मेरा है न मैं किसी का हूं। इसलिए हे भव्य प्राणी, हे आत्मन, हे मुमुक्षु ! तु सब पदार्थो को छोड़ दे। अगर तू आत्म तत्व का

परमसत्य का लाभ लेना चाहते है, परम सुख को पाना चाहते हो तो "विमुच्य बह्य'" बाह्य पदार्थों को, भौतिक पदार्थों को त्याग दे। ताकि स्वयं को सदा सदा के लिए रोगों से मुक्ति मिल जाये, जो आत्मिक सुख में बाधा उत्पन्न करते है दुःख देते है, उनसे परे हो जाओ। काव्य में दो वाक्य महत्वपूर्ण है – न मैं तुम्हारा हूं न तुम मेरे हो। हमारा तुम्हारा सम्बन्ध समाप्त है। दूसरा वाक्य है 'स्वस्थः सदा त्वं भव भद्र मुक्त्यं:" सदा स्वस्थ रहूं। स्वस्थ कौन है ? जो समस्त दोषों से रहित है उसकी शरण में चले इसका अर्थ हुआ कि हम बीमार है। गहन रोग है, जन्म-मरण का इसलिए जो उपचारक है, जानकार है, उसकी शरण में चले। आचार्य भी रोगी है, तभी तो जिनेन्द्र भगवान की उपासना में लीन हैं। परम स्वास्थ्य लाभ चाहते हैं, इसलिए परम सर्जन, परम वैज्ञानिक भगवान के उपासक है आराधक है। एक घटना आपसे कहूं... ...!

एक फकीर स्त्री थी। संसार-शरीर भोगों से उदासीन थी। किसी जंगल में नदी के तट पर घास फूस की कुटिया में रहती थी उसने कुटिया के सामने एक छोटी सी फुलवारी भी लगा रखी थी। एकान्त प्रिय थी। कुटिया से भी छोटा उसका संसार था वह अपने आप में लीन रहती थी। उसकी फुलवारी में सुन्दर-सुन्दर फूल खिले थे। एक दिन एक साधु उसके यहाँ मेहमान हुआ। जंगल का मार्ग था, जो भी वहाँ से गुजरता, रात हो जाती तो वही विश्राम करता। शाम एक साधु वहां से गुजरा और उसके उपवन में ठहर गया। सुबह का समय था, फकीर स्त्री भीतर थी व साधु बाहर। उसने आवाज दी राबिया बाहर आओ और देखो प्रकृति की गोद में कितने सुन्दर फूल खिले है, देखो सूर्य उदित हो गया है, बाहर कितना आलोक बरस रहा है तुम कब तक भीतर रहोगी ? पृथ्वी के सौन्दर्य का पान करो।

फकीर स्त्री ने भीतर से आवाज दी, साधुजी बाहर का सोन्दर्य बहुत देख लिया अब भीतर आ जाओ, बाहर खिले फूल मुरझा जायेगे बाहर का प्रकाश समाप्त हो जायेगा, जहाँ सदा बसत है। फकीर स्त्री की बात बहुत गहरी थी।

आचार्य अमितगति भी यही कह रहे है कि बाहर की कृत्रिम सुन्दरता से कब तक प्यार करोगे। कब तक फंसे रहोगे ? आओ! भीतर आओ! स्वयं के भीतर आओ और देखो अनन्त गुणों के कितने सुन्दर-२ फूल खिले कोटि-कोटि सूर्य से भी ज्यादा प्रकाश तुम्हारे भीतर है।

जो भीतर बुला ले उसी का नाम ध्यान है। जो अन्तस् से मिलाये उसी का नाम धर्म है। जो स्वयं की सत्ता से मिलाये उसी का नाम परमत्याग

है । अन्तस् की बगिया में ही शाश्वत सौन्दर्य के फूल खिले है । असली सौन्दर्य तो तुम्हारे भीतर है उसे पहिचानने की कोशिश करो । कब तक मृग-मरि–
–चिका से मूर्छित होकर घूमोगे ?

संसार में दो प्रकार के प्राणी है. एक वे है जो भौतिक सुन्दरता से प्रेम करते है और उसी के आगोश में प्राणान्त हो जाते है : और दूसरे वे लोग है जो अन्दर के सौन्दर्य से प्रेम करते है । स्वय के परमात्मा का स्पन्दन करते है और अजर-अमर हो जाते है । एक बाहर का यात्री है और एक भीतर का यात्री है । भीतर का यात्री ध्यान सामायिक–प्रेमी होती है और बाहर के यात्री विषय लम्पटी होते है ।

फकीर स्त्री ने कहा, भीतर आ जाओ । वह तो मात्र प्रतीक है, मोक्ष लक्ष्मी कहती है कि तुम भी भीतर आ जाओ आत्म शांति कहती है भीतर आ जाओ । बाहर तुम्हारा कुछ भी नही है. न तुम उनके हो और न वे तुम्हारे हैं । समझो इस स्वर्ण सूत्र को समझो इस इस शाश्वत नियम को । पर पदार्थ पकड़ने का पागलपन क्यों करते हो ।

अहो आश्चर्य ! इसान कहता है. कि पृथ्वी मेरी है, ये भारत मेरा है. ये जमीन मेरी है । ये सम्पत्ति मेरी है । ये रूपया मेरा है लेकिन पैसा तो कभी नही कहता कि मैं तुम्हारा हूं पता नही कितनों के हाथों से निकल कर आया है । कितनों को मोहित किया है उसने पता नही कितनों ने उसका आदर किया है. उसे सम्हाल कर तिजोरी में रखा है । उसकी पूजा की हैं, उसे अर्घ्य भी समर्पण किया हैं, फिर भी वह नहीं कहता कि मैं तुम्हारा हूं । लेकिन अज्ञानी ऐसा कहता है. कि ये रुपया मेरा है, मै इसका मालिक हूं।

दो स्थितियां है मैं और मेरा । ना समझना इस बात को पहिले मेरा आता है । उसके बाद मैं आता है, लेकिन आपकी धारणा होगी पहिले मै बाद में मेरा आता है. लेकिन गहराई में जाओगे तो पाओगे कि पहले मेरा और बाद में मै आता हैं । आप मार्ग से जा रहे है एक युवती दिखी. किसी ने पूछा कहो कैसे फस गये उसके प्रेम में ! वह सुन्दर थी नहीं ऐसा नहीं वासना ने उसे सुन्दर बना दिया । पहिले वासना जगी, बाद में सुन्दर लगी । वासना–कामना के अभाव में कोई वस्तु सुन्दर नहीं लगती । भीतर कामना थी इसलिए अच्छी लगी । पहिले कारण हैं, बाद मे कार्य है वासना कारण है और प्रेम कार्य है । पहिले मेरा है, बाद में 'मैं' है। जहां मेरा हैं वहां स्वामित्व है । जहां स्वामित्व हैं, वहाँ अहंकार हैं, और जहाँ अहंकार हैं वहाँ वस्तु की सुरक्षा है । यह पदार्थ मेरा हैं, मैं इसका मालिक हूं । सिद्धान्त कहता हैं, कि न मैं इसका हूं और न ये मेरे हैं । इसलिए "इत्थं

विनिश्चित्य विमुच्य बह्म " इस प्रकार विचार कर समस्त पदार्थो का त्याग करो ।

विज्ञान कहता हैं, कि सब प्रकृति का हैं । इंसान का कुछ भी नहीं और वेद कहता हैं सब परमात्मा का हैं, मनुष्य का कुछ भी नही हैं । जैन दर्शन कहता हैं कि सब कर्म की देन हैं । पुण्य पाप का खेल हैं । धर्म और विज्ञान में दो स्थितियां हैं । दोनों में दो मूलभेद हैं । विज्ञान भी उन्हीं बातों को कह रहा है जिन्हें धर्म कहता हैं लेकिन उसका जोर यंत्र पर हैं, और धर्म का जोर चेतना पर हैं विज्ञान व वेद मनुष्य के अंदर के अहकार को तोड़ना चाहता हैं, पर भगवान महावीर मनुष्य को अहंकार से पूर्णतया मुक्त कराना चाहते हैं। यह धरती का टुकड़ा यहीं रह जायगा। तुम पृथ्वी को बांट लेते हो लेकिन आकाश को बांटे तो जाने ? ये उड़ते बादल मेरे है लेकिन सत्य तो ये है, कि ये तुम्हारे नहीं है। ये बादल तो आकाश के भी नही है । ये तो बरसने के लिए हुए हं । तुम्हारा वैभव भी बादलों के समान है, जो हर क्षण तुम्हारे हथों से पार हो रहा है । इस वैभव को अपना मत कह देना अन्यथा बहुत गहरी सजा पाओगे । मोह की जजीरे पांव में पड़ जायेगी संसार के बाहर कारागृह से नही निकल सकोगे । कर्मी के पहरेदार बहुत पैनी दृष्टि वाले हैं, उनसे बचना मुश्किल है । अगर भूल से भी अपना कह दिया तो फंस जाओगे ।

वेद कहता हैं, सब परमात्मा का है, किसी भी वस्तु पर मालकियत मत जमाना । परमात्मा के पदार्थ की चोरी करना ही मत, पदार्थों से मोह करना ही मत । ये सब परमात्मा के गुप्तचर घूम रहे हैं। परमात्मा सबकी आत्मा से छिपा है। ये सब गुप्तचर अपने रूप जाल में फंसाकर संसार से बाहर जाने नहीं देते । इन मायावी-बहुरूपियों से बचना । संसार के किसी भी पदार्थ पर अपना अधिकार, आरोपित करना ही मत अन्यथा... ... .? ये पदार्थ तुम्हारे नहीं है, अगर अपना बनाया तो पकड़ जाओगे । वैसे भी हम किसी का माल हड़प कर ले, चुरा ले, अधिकार जमा ले तो रिपोर्ट होती है, पकड़े जाते हैं। सजा होती है । विगत भूलो का दुष्परिणाम तो भोग ही रहे हो । अब अपने अपराधों की क्षमा माँगो और संसार से पार हो जाओ ।

विज्ञान भी कहता है, कि मनुष्य का कुछ भी नहीं है । डार्विन कहता है, कि मनुष्य बन्दर का विकास है, पशु का विकास है यद्यपि यह कथन एकदम असत्य हैं। हां इतना अवश्य हैं, कि मनुष्य अपनी पाशविक वृत्ति के कारण पशु है । क्योंकि मनुष्य काम-भोग की पाशविक वृत्ति से पैदा हुआ हैं, इस अपेक्षा पशु की संतान कहा हो । आदमी पहले पशु के

समान था, अब यंत्र के समान हो गया हैं और यह कथन सच भी लगता है. आदमी यंत्र है तभी तो इतनी हिंसा के बाद भी नहीं पसीजता। यदि मनुष्य होता तो द्रवित हो जाता । हिटलर, मुसोलनी, स्टेलिन, औरंगजेब ये यत्र थे, इनके अंदर आत्मा नही थी तभी तो वे इतनी हिंसा कर पाये । वर्तमान में मनुष्य भी यंत्र के समान हो गया हैं, उसे तो अपनी आत्मा का सवेदन सुनाई नहीं पड़ता । तब दूसरे के दिल की धड़कन और चेतना क्या दिखाई देगी ?

जब विज्ञान ने कहा कि मनुष्य पशु है, तो मनुष्य के अहंकार को चोट लगी, उसकी प्रतिष्ठा को धक्का लगता । वेद कहता है, कि मनुष्य परमात्मा की अनुपम कृत्ति है, तो बड़ा सम्मान मिलत है । सिनी गर्व से फुल उठता है । मैं प्रधानमंत्री का लड़का हूं, इतना मात्र कहने से छाती फुल उठती है । मस्तक ऊंचा हो जाता है, और कोई परमात्मा की संतान को पशु कहे, बदरों का विकास कहे तो इससे बड़ा अपमान क्या होगा। विज्ञान थोड़ा और आगे बढा तो उसमें पशु जो यंत्र के समान है ।और पशु यानि मनुष्य । विज्ञान मनुष्य को यत्र के समान बनाना चाहता है ।

मनोवैज्ञानिकों ने अभी नये प्रयोग किये है, उन्होने यंत्र के कछुए बनाये है, जो अपने आप धुप से छांव में खिसक आते है । उन यांत्रिक कछूओं को छांव में रखा जाता है, तथा धीरे-धीरे उन पर धुप का प्रभाव डाला गया तो वे धीरे-धीरे छांव में खिसक आये । कवि कहते है, कि पतगा ज्योति का दीवाना है, लेकिन विज्ञान कहता है, उसके अंदर मेकेनिकल रीति से कीया होती है ! जैसे ही उस पंतगे को ज्योति दिखाई पड़ती है, उसका पक्ष ज्योति की तरफ झूकना शुरु हो जाता है । तो विज्ञान ने सिद्ध किया पहिले मनुष्य को पशु कहा और बाद में यंत्र बना दिया। इसलिए मनुष्य इतनी हिंसा कर रहा है . हिंसक आदमी शासक बना हुआ है । अब ऐसा लग रहा है, यदि विज्ञान सफल हो गया तो अन्तत; आदमी मशीन हो जायेगा और धर्म सफल हो गया तो मनुष्य परमात्मा हो जायेगा । दोनों ही अहकार छीनने की बात करते है । लेकिन विज्ञान अहकार को तोड़ेगा तो आदमी नीचे गिर जायेगा, क्रूर हिंसक हो जायेगा । और धर्म अहकार को तोडेगा तो आदमी ऊंचाई को पालेगा, परम अहिंसक हो जायेगा । अगर आपको भी काव्य की पंक्तियों पर आस्था आजाये कि न ये पदार्थ मेरे है और न मैं इन पदार्थों का हूं तो ममत्व भाव घट जाये । एक बात मजे कि है किसी भी परमात्मा ने आज तक घोषणा नहीं कि मैं इन पदार्थो का मालिक हूं । घोषण तो नौकर करते है । और जो जितनी घोषणा करता

है समझना वह उतना बड़ा नौकर है। सती नारी घोषणा नहीं करती मात्र आचरण करती है। और वेश्या प्रदर्शन करती है, कि मैं सती हूं जो नहीं है उसकी घोषणा करती है जरा समझ लेना। हम वही घोषणा करते हैं, जो नहीं होते, उसे सिद्ध करने का प्रयास करते हैं। वीतरागी कभी घोषणा नही करता कि मैं क्या हूं वह मात्र आचरण करता है।

विज्ञान यंत्र बनाता है, और धर्म परमात्मा बनाता है तोड़ो अपने ममत्व भाव को, छोड़ो अपने अहंकार को और ध्यान सामायिक से अपने भीतर मरक आओ। 'विमुच्य बह्म' सब छोड़ दो। लेकिन त्याग किसका? मैंने ग्रहण ही नही किया तो त्याग किसका करुं। पदार्थ के प्रति समत्व का भाव, न छोड़ने का भाव न मेरा कुछ है, तो छोड़ कैसे? न मेरा कुछ है, तो पकड़ू कैसे? दोनो के बीच में समत्व भाव ही ध्यान है, सामायिक है।

सोचो, जरा ध्यान से सोचो। किसी भी चीज को अपना कहने में तुम्हें शर्म नही आती। सब प्रकृति का पुण्पोदय से मिला है। उस प्रकृति को और पुण्य को धन्यवाद दो कि तूने वे मुझे परायी वस्तु के उपयोग का मौका दिया, अन्यथा मैं कब मर जाता। इसलिए मेरा विवेक जाग्रत हो गया है, मैं समस्त पर पदार्थों से ममत्व भाव छोडता हूं।

त्याग जीवन का तथ्य है, और धर्म भोग है त्याग जीवन का तथ्य है, जीवन का निचोड़ है, जीवन का सार है। आत्म योग का नाम ही ध्यान है, सामायिक है। तथाकथित पंडित-विद्वान यह कहते मिल जायेगा, कि त्याग तो जड़ की क्रिया है। त्याग तो पुण्य बंध में कारण है और पुण्य संसार में कारण है। समझना कहने वाला महामुर्ख है।
कुछ पंक्तियां है ....

त्याग को बन्ध समझ मत त्यागो
व्यर्थ न भटको एकान्त अनुरागो
भोग हृदय की दुर्बलता है, त्याग हृदय का धन है
तप-त्याग के युगल-मिलन में आंदलीत जीवन है
मुक्ति चरण को पुण्य बंध कह मत भागो
त्याग को बंध समझ मत त्यागो
ज्ञान की धारा मुक्त जब चाहे जैसे बह जाये
नीर अगर न बंध कुलों में तो कैसे गीत पाये?
त्याग जीवन हैं, जीवन त्याग है, मत भोगों को मांगो
त्याग को बंध समझ मत त्यागो

त्याग बिन व्यर्थ हैं सब कुछ, त्याग बिन मोक्ष कहां है ?
नीर बिन तरंगित हो जो, वो सिंधु कहां हैं ?
यौवन की उद्दाम तरंगे, त्याग के रस में पागे
त्याग को बंध समझ मत त्यागो
भोग मिमिट कर रह जाता हैं त्याग फैल लहराता
जो राग में चुप रहता हैं, वही विराग को गाता
त्याग जीवन का भूल गीत है, आओ गाओ गाओ जागो
त्याग को बंध समझ मत भागो

भोग हृदय की दुर्बलता हैं। त्याग हृदय का धन है। वासना कामना हृदय की सबसे बड़ी कमजोरी हैं। कोई भोग वासना को जीत नहीं पाता तो नया मार्ग दे देता हैं। पागलों की भांति भोग को योग का. संयोग को समाधि का मार्ग बता देता हैं। त्याग को, उपवास को जड़ की क्रिया बता रहा हैं। आत्मा तो खाती पीती नहीं स्वाद नहीं लेती, शरीर तो जड़ हैं, फिर ऐसे लोगों को सब्जी पूड़ी के स्थान पर गोबर खिलाकर देखो। तब पता चलेगा की चेतन खा रहा हैं या अचेतन खा रहा हैं। आचार्य कुन्दकुन्द ने समयसार में कहा है कि............

रत्तो बंधादि कम्मं मुञ्चादि विराग संपण्णे
एसो जिणोव देसो, तम्हा कम्मेसु मा रज्ज

रागी कर्मो से बंधता हैं। और विरागी कर्मों से छूटता हैं। ऐसा जिनेन्द्र ने कहा हैं, इसलिए राग मत करो।

आचार्य कुन्दकुन्द देव इस चार चरण के श्लोक में चार बाते कह रहे है, पहिले चरण में रागी कर्म का बंध करता हैं, रागी कौन ? जो विषय-कषाय में अपाद कण्ठ डूबा हैं। जो भोगों में जन्यापाद ल रहा हैं, और कह रहा हो कि त्याग तो जड़ की क्रिया हैं, वह रागी है। "रत्तो बन्धादि कम्मं' रागी ही कर्म का बंध करता है। विरागी को कर्म का बंध नहीं होता।

"मुञ्चदि विराग सम्पण्णे" जो विराग सम्पन्न है वही कर्मो से मुक्त होता हैं। रागी कर्मों का क्षय नहीं कर सकता। जो संन्यास से सम्पन्न है, वही कर्मों का क्षय करता हैं। यह बात कुन्दकुन्द आचार्य अपनी तरफ से नहीं कह रहे हैं 'ऐसो जिणोव देसो' ऐसा जिनेन्द्र देव का उपदेश हैं। 'तम्हा कम्मेसु मा रज्ज' इसलिए राग मत करो। एक चरण में बंध का

कारण बता दिया। दूसरे चरण में बंधन से छुटने का उपाय बता दिया और तीसरे चरण में वीतराग परम्परा की अक्षुण्णता का निर्देश कर दिया उपदेश का पात्र बना दिया की कौन हैं। तथा अंतिम चरण में स्पष्ट आदेश प्रतिपादित कर दिया कि किंचित भी राग मत करो किसी ने एक दिन कहा था..............महाराज श्री सम्यग्दृष्टि का भोग तो निर्जरा में कारण हैं, इसलिए हम गृहस्थों को कर्म का बंध नही होता।

हां आप सच कह रहे है, लेकिन यह पूर्ण सत्य नही है, कुन्दकुन्दाचार्य ने इस सम्बन्ध में लिखा है —

उपयोग मिंदि एहिं दव्वाणा-मचेद जाण मिदराणं।
ज कुणदि सम्मदिट्ठी तं मव्वणिज्जर निमित्तं ।।९३।।

सम्यग्दृष्टि जीव चेतन-अचेतन पदार्थों का भोग करते हुए भी निर्जरा को प्राप्त होता।

सम्यकदृष्टि का भोग निर्जरा में कारण है, उसे भोग भोगते हुए भी कर्म का बन्ध नही होता, लेकिन कौनसे सम्यकदृष्टि को बध नही होता सम्यकदृष्टि दो प्रकार के होते हैं सराग सम्यकदृष्टि व वितराग सम्यकदृष्टि चौथे, पांचवे छठवे गुणस्थान वाले जीवों को सराग सम्यकदृष्टि माना है, और सातवे गुणस्थान से बाहरवे गुणस्थान तक आत्मसाधकों, मुनियों, वितराग सम्यकदृष्टि माना है। मात्र दूध कहने से काम नही चलता दूध के अनेक भेद है, सभी दूधों में से घी नही निकलता और नही सभी दूध चाय बनाने के काम आते है गाय, भेंस बकरी, ऊंटनी शेरनी अकऊआ और पप्पू की मम्मी का दूध भेंस के दूध में चिकनाहट ज्यादा है वनस्पत गाय के बकरी के दूध में वनस्पत गाय के दूध में तथा अकऊआ का दूध जहर होता है वो मारने का काम करता है गाय, भेंस का दूध शरीर पुष्ट करने का काम करता है माँ का दूध पप्पू के लिए जीवन का वरदान सिद्ध होता है, दूध-दूध में अंतर है—

कुन्दकुन्द कहते है कि अगर आप वीतरागी सम्यकदृष्टि मुनि है। आहार विहार के समय निर्जरा होगी मुनिराज खाने के लिए नही जीत बल्कि जीने के लिए खाते है। वह भोजन भी निर्ममत्व भाव से शरीर को जीवित रखने के लिए, तप करने के लिए लेते है, और आप... ...? रागपूर्वक भोजन करते है, मनपसन्द भोजन करते है, समयसार ग्रन्थ में आप जैसे रागियों की बात नही है, वीतरागियों मुनियों की, बाबत कथन है। कही अपने आपको सम्यग्दृष्टि समझकर भोगों मे डूब मत जाना अन्यथा अनर्थ हो जायेगा। जयसेनाचार्य कहते है, कि सरागवीतराग भेदेन द्विधा

सम्यकदृष्टि भवति । सराग और वीतराग के दो भेद है ।

वीतराग सम्यक्ते जाते साक्षात् अबंध को भवति
इतिमत्वा वयम् सम्यग्दृष्य: सर्वथा बंधो मास्तिति नव्यक्तयं

जहाँ सराग सम्यक्तत्व के आगे वीतराग सम्यक्त्व होता है वह साक्षात् स्पष्ट रूप से अबधक होता है, इससे यह निष्कर्ष निकाला कि हम भी सम्यग्दृष्टि है, और हमें भी बंध नही होता ऐसा नही समझना चाहिए क्योंकि यहां पर इस ग्रंथ में ।

"अत्रतुग्रंथे पंचम गुण स्थानान् उपरितन गुणस्थान वर्तिनां वीतराग सम्यग्दृष्टिनाँ मुख्य वृत्या ग्रहणं, सराग सम्यग्दृष्टिनां गौण वृत्येति व्याख्यानात सम्यग्दृष्टि व्याख्यान काले सवर्त्रं तात्पर्येणज्ञातव्यम् ।"

पंचम गुणस्थान से ऊपर वाले वीतराग सम्यग्दृष्टि को मुख्य रूप से ग्रहण किया है । आचार्य कहते है; अपने-आपको वीतरागीं सम्यग्दृष्टि समझकर भोगो में मत डूब जाना । आचार्य कुन्द कुन्द को समझो उनका जोर त्याग पर हैं । त्याग के सम्बन्ध में उपनिषद् का शब्द बड़ा सुन्दर है ।

तेन त्येक्तेन भुंजीया: जो छोड़ते है, वे भोगते है । जिसने छोड़ा उसी ने भोगा है । इसका अर्थ यह हुआ कि हम त्याग देगे, तो भोग, भोगने के योग्य हो जावेगे । असल में हम स्वार्थी है, इसलिए महावाक्यों को भी अपने अनुसार बदल लेते है । क्योंकि हम जो अर्थ निकालते है वे हमारे स्वार्थ से पैदा होते है । हमने महावाक्यों को बदल दिया, बेइमान आदमी से और क्या अपेक्षा रख सकते है ।

एकान्तीय ज्ञान ने
किस हद तक
बदला है, नक्शा
कि उसमे
शास्त्र तो क्या
संतो को भी न बख्शा

तथा कथित पंडितों ने शास्त्रों के गाथार्थ को बदला ही लेकिन सन्तों को भी नहीं बख्शा । उनको भी निंदा आलोचना पर उतर आये । उनके द्वारा लिखित शास्त्रों क अर्थ हा बदल दिये त्याग का अर्थ ध्यने लिया

कि यहां दान करेगें तो पुण्य मिलेगें और पुण्य से पुनः वैभव मिलेगा। परलोक में आनन्द रहेगा भगवान महावीर कहते हे कि याद रखना पाने के लिए दान करता है, उसे वह तत्व नही मिलेगा, वह आत्मा का भोग नही मिलगा, जो आगामी भोगो की आशा से छोडता है मिलने के लिए छोडता है, तो उसने छोड़ा। कहाँ है ? उसने तो सिर्फ मिलने की आशा से बैंक में खाता खोला है, तो उसे आगम कि सम्पदा का इंतजार है जो यह कह कर दान कर रहा कि मुझे स्वर्ग मिल जाए, तो निश्चित समझना कि वह छोड़ नही रहा, वह सिर्फ आगे के लिए हाथ पसार रहा है। आगामी समय के लिए मुट्ठी कस रहा हे। बात बहुत गहरी है परिणामों का परिणाम बहुत सूक्ष्म है वह कह रहा है कि हे भगवान यहां तो मिला ही है अब वहाँ भी ? यानि वहाँ भी चाहिए। अगर वहां पर मिलने का पक्का हो जाये तो हम यहाँ पर थोड़ा ज्यादा दान कर सकते हे।

लेकिन इस सूत्र का अर्थ कुछ और ही है जो छोड़ता है उसे मिलता है। जो मिलने की शर्त पर छोड़ता है उसे नही मिलता हे, [सम्यग्दर्शन, आत्मयोग] शर्त पर छोडना तो ऐसा ही है जसे कोई किसी को ब्याज पर रकम उधार दे रहा हो। या व्यापार करने के लिए रूपया व्यय कर रहा हैं, जैन दर्शन में इसका नाम भी सम्यक्दान नहीं हैं। जिसने निःस्वार्थ भाव से, त्यागा उसने आत्मा को भोगा है।

"तप त्याग के युगल-मिलन में आन्दोलित जीवन है। जहां पर तप और त्याग का मिलन है, ज्ञान और ध्यान का सम्मेलन हैं, वही पर आत्मा का भोग है, और वही पर संवर व निर्जरा है।

भोग सिमिट कर रह जाता है त्याग फैल लहराता
जो राग मे चुप रहता है वही विराग को गाता

भोगी व्यक्तियों के चहेरे पर झुरियां पड़ती जाती है, शरीर का ओज समाप्त हो जाता है, और सम्यक त्याग अनन्त आकाश में अनन्तकाल तक लहराता है, सुगन्ध लुटाता है। जो एक बार परमात्मा हो जाता है, तो युगों युगों तक उसकी गाथाये गायी जाती।

तप त्याग के राज को वही खोल सकता है, जिसने वितराग पाला हो, संयास को ग्रहण किया हो। जो विषय-कषाय से पचेन्द्रिय के भोगा से ऊपर उठ गया हो। असंयमी-भोगी संयास और सन्यासी की महिमा क्या जाने। त्याग जड़ की क्रिया नहीं चेतन की क्रिया हैं।

एक जौहरी का मरण हो गया। काफी पैसेवाला था। धीरे धीरे

सम्पदा खत्म होने लगी। एक दिन उसकी विधवा पत्नि ने अपने पप्पू से कहा घर चलाने में परेशानी हो रही है। इसलिए तू जौहरी अंकल के पास चला जा, ये कुछ हीरे रखे हैं, इन्हें बेच आ। पप्पू हीरे लेकर जौहरी की दुकान पर गया। जौहरी ने हीरे देखे और कहा बेटा अभी बाजार बहुत मंद हैं, इन्हें कुछ महीने के बाद लाना। यदि रूपयों की जरुरत हो तो ले जाओ यदि ज्यादा परेशानी में हो तो दो-तीन घंटे मेरे यहाँ आ जाया करो। पप्पू जौहरी के यहाँ काम सीखने जाने लगा।

तीन माह के बाद जौहरी ने पप्पू से कहा आज हीरों का बाजार बहुत तेज है। जा घर से हीरे उठा ला। अलमारी से हीरे उठा लिये उन्हें देखते रह गया। मां के सामने हीरे कचरे में फेंक दिये। मां ने कहा बेटे तूने यह क्या किया ? उसने कहा मां जब तक अज्ञानी था तब तक ये हीरे थे। ये हीरे नहीं पत्थर है। ये पत्थर हीरे नहीं हैं। जब असलियत का ज्ञान होता हैं। त्याग चेतन की क्रिया नजर आती है मिथ्याज्ञान में त्याग जड़ की क्रिया दिखता है। पत्थर हीरे दिखते है। सत्य असत्य नजर आता है।

जौहरी बहुत समझदार था। अगर वह प्रथम दिन ही हीरों को नकली कह देता तो पप्पू को उस पर विश्वास नहीं आता। पप्पू सोचता यह मेरी गरीबी का नाजायज फायदा उठाना चाहता है। मेरे असली हीरों को नकली कहकर सस्ते में लेना चाहता है। जौहरी ने पहिले पप्पू को हीरो पर कढ़ाना सिखाया। उसके बाद कहा, कि अब हीरे घर से लाओ आचार्य देव भी अगर शुरु से कहते परिग्रह छोड़ दो तो बात असंगत लगती। जब देह और आत्मा का भेद नजर आ गया तो कह सब आत्मा से भिन्न है इन्हे छोड़ दो। पत्थर हीरे नहीं है।

आचार्य कहना चाहते है कि जो पचेन्द्रिय विषयों को ग्रहण करके बैठे हो, सुख का कारण समझ रहे हो मात्र दुख का कारण है, इसलिए इन सबको त्याग दो।

अब तो त्याग उपजने दा मन में
तन कितना बुढ़ा हो चूका----है।
कब तक भोगों से खेलोगे ?
मरण तो गले तक आ पहूंचा
दो दिन का खाना पीना है
फिर स्वयं देह मौन हो लेगी
और न अब विषयों को भोगो
दुनिया सौ-सौ नाम धरेगी

पत्थर हीरे नहीं है

डूबा है, हर संसारी, भोग सिंधु के तट पर आकर
और तुम अब तक खेल रहे हो, इतरा इतरा कर
मन की प्यासे तन की आशा पूरी करने से मिट जायेगी
यह सच है, कुछ आंसू, कुछ आहों में जिंदगी बट जायेगी
आपने जो एकत्र कर रखा है ये पत्थर है हीरे नहीं
इनके ऊपर उठे अन्यथा संसार तुम्हारे ऊपर हंसेगा ।

बस आज इतना ही

आदिनाथ दिगम्बर जैन नया मन्दिर
प्रतापगढ़

दिनांक २७-८-९१
मंगलवार

२५

लो समाधि हरो व्याधि

थमते ही सांसो के संसार बदल जायेगा
स्व–परिजन बदलेंगे परिवार बदल जायेगा ।
मिचते ही आँखों के छूट जायेंगे सब अपने,
यह गांव-गली बदलेगी घर-द्वार बदल जायेगा

अपने–पराये बदलेंगे, इतिहास बदल जायेगा
शत्रु–मित्र बदलेंगे तो विश्वास बदल जायेगा ।
नये सम्बन्ध बनेंगे फिर नया रुप मिलेगा,
फिर से भाषा बदलेगी और भाग्य बदल जायेगा ।।

जीवन की धारा बदलेंगे, श्रम भी बदल जायेगा
विधि का क्रम बदलेगा तो धर्म बदल जायेगा ।
भाव मात्र बदलेगे तो कर्म बदल जायेगा
व्यापार बदलेगा तो बाजार बदल जायेगा ।।

रंग—ढंग बदलेगा आकार बदल जायेगा,
गर पुनः जनम गये तो कोई पहिचान नही पायेगा
पुण्य—पूंजी बदलेगी तो मोह बदल जायेगा
संयम घटते ही विस्तार बदल जायेगा ।।

मूल पद्य :- आत्मानमात्मन्यवलोक्यमान-
स्त्वं दर्शन-ज्ञान-मयो विशुद्धः
एकाग्र-चित्तः खलु यत्र तत्र
स्थितोऽपि साधुर्लभते समाधिम् ।।२५।।

हिन्दी पद्य :- निज में निजात्म को लखना भव्य जीव
प्रज्ञान दर्शन विशुद्ध जड़ से अजीव
एकाग्रचित्त जिसका जहां भी हुआ है
पाता समाधि साधु जिन ने कहा हैं ।।२५।।

अन्वयार्थ :-

आत्मानम्	- अपनी आत्मा को
आत्मनि	- अपने आप में
अवलोकयमानः	- साक्षात् करते हुए
त्वम्	- तुम
दर्शन-ज्ञान-मयः	- अनन्त दर्शन-ज्ञानमय
विशुद्धः	- विशुद्ध हो
खलु	- निश्चय से
यत्र तत्र अपि	- जहां कहीं भी
स्थितः	- स्थित
एकाग्रचितः	- एकाग्रचित्त
साधुः	- साधु
समाधिम्	- समाधि को
लभते	- प्राप्त करता है।

भावार्थ - हे आत्मन ! तू अपने आत्मा में अपने आपका अवलोकन कर। तू दर्शन ज्ञान मयी और विशुद्ध स्वभाव वाला हैं इस प्रकार से एकाग्रचित्त होकर जहां कहीं भी साधु अवस्थित होता हैं वहीं वह समाधि को प्राप्त कर लेता हैं।

२५

लो समाधि हरो व्याधि

ओम नमः सिद्धेभ्यः ३
धर्म स्नेही भव्यात्माओं

विगत काव्य में चर्चा हुई थी कि जौहरी के पुत्र ने कला सिखी और हीरों का पारखी हो गया। फिर उसे पत्थर फेंकने में देरी नही लगी। कसौटी हाथ में आती हैं तो वस्तु की परख में देरी नही लगती हैं। समीचीन ज्ञान का जागरण होते ही पदार्थों की भोगासक्ति बिलीन हो जाती हैं। अज्ञान का कुहरा ज्ञान का सूर्योदय होते ही नष्ट हो जाता हैं। इस काव्य में आचार्य देव कह रहे है कि अब तो अपने पास सरक आओं। ज्ञान के प्रकाश में पहिचानों कि चारों तरफ काम-भोग, विषय-कषाय के सांप घूम रहे हैं। जरा भी हिले-डुल कि वे डस लेंगे, डक मार देंगे। अपने दृष्टा स्वभाव को पहिचानों, परमात्मा के ज्ञाता-दृष्टा स्वभाव पहिचानो। आत्मा को, परमात्मा को कौन देख सकता हैं? इस संदर्भ में आचार्य कह रहे हैं।

हे आत्मन्! हे आत्म-पिपासु! हे चिदात्मा! हे चिदानन्द! तू स्वयं में स्वयं का अवलोकन कर, क्योंकि तू तो दर्शन-ज्ञान स्वभावी हैं। एकाग्रचित्त होकर के अपने आपको देख। जो साधु एकाग्रचित्त होता हैं वही अपनी आत्मा का दशन लाभ कर पाता हैं।

आत्मा का दर्शन कौन करता हैं ? निर्ग्रन्थ साधु । कौन सा साधु ? जो एकाग्रचित्त हो गया हैं, ध्यान की गहराई में उतर गया हैं। जिसकी समस्त प्रवृत्तियां समाप्त हो गई हैं, ऐसा साधु ही आत्मा का दर्शन करने में सक्षम हैं । आत्म— दर्शन की बहुत गहरी शर्त हैं । फिर तो गृहस्थों को आत्म दर्शन त्रिकाल में भी संभव नहीं हैं । आत्म–दर्शन बच्चों का खेल नहीं, तप–त्याग–ध्यान का मेल हैं । एक घटना आपसे कहता हूँ—

किसी माँ का इकलौता बेटा मर गया। वह उसे बहुत चाहती थी अत्याधिक प्रेम करती थी । वह उसका सब कुछ था। वह उसकी लाश लेकर गांव में घूमने लगी । वह द्वार–द्वार दस्तक देने लगी कि कहीं कोई औषधि मिल जाये । कोई तंत्र मंत्र कर दे । किसी का आशीर्वाद फल जाय, राम भी लक्ष्मण के शव को कन्धे पर लेकर छह माह तक फिरे थे । मोह बड़ा जादुगर हैं, आँखों पर पर्दा डाल देता हैं। विवेक को सुला देता हैं। वह भी पुत्र व्यामोह में शव को लेकर घूमने लगी । वह रोती तो लोग भी उसके साथ रोने लगते । गांव के लोग उसके साथ प्रेम करते थे, क्योंकि गांव की काफी शीलवान प्यारी महिला थी । उसका पति भी मर चुका था । अभी उसका पहला घाव ही नहीं भरा था और दूसरा घाव पैदा हो गया । कोढ़ में खाज हो गई । इसी बेटे के सहारे जीती थी । और यह बेटा भी चल बसा । वह नितान्त अकेली हो गई । ऊपर से अकेली हो गई तथा भीतर से मर गई, । भीतर ही भीतर मर गई । उसने किसी भी तरह पति के वियोग को सहन कर लिया । लेकिन तब उसके साथ अति हो गई । उसका आखिरी सहारा भी छिन गया । उसका आखिरी भविष्य भी छिन गया । जीवन सुहाग गया तो गया, जीवन का सहारा भी चला गया, अब सब तरफ अन्धेरा था ।

किसी समझदार ने उससे कहा, अरे पागल ! हम रागियों के द्वार पर द तक देने से क्या होगा ? हम खुद दुखी हैं । तू ऐसा कर गांव के बाहर उद्यान में एक जैन मुनि आये हैं, तथा वहीं पर अपनी साधना में लीन हैं । बहुत बड़े तपस्वी हैं काफी विशाल मन हैं उनका तू उनके पास जा । शायद उनके आशीष से कुछ हो जाए । वह तो अपने बेटे की लाश को लेकर गई । मुनिराज के चरणों में लाश को रख दी और कहा, आप स्वयं अन्तर्यामी हैं । आप स्वयं मेरे दुख को देखे, मेरी पीड़ा को जाने । अभी मैं जवान हूं । मेरा पति परलोक सिधार गया । मेरा बेटा भी चल बसा । अब आप ही कुछ करे । और वह जोर–जोर से रोने लगी । उसकी पीड़ा का सिन्धु उमड़ पड़ा । आँसूओं की अविरल धारा बह निकली ।

मुनिराज ने कहा कुछ उपाय करूंगा। तू दुखी हैं तो कुछ न कुछ तो करना ही पड़ेगा। उसकी हिम्मत लौट आई। आशा की नन्हीं सी किरण उतरी। उम्मीद का दीपक जला, उसके ताप में उसके आंसू सूख गये, उसने कहा, कितनी देर लगेगी, मुनिराज ने कहा, देरी मेरे कारण नहीं तेरे कारण हैं, तू जितने जल्दी एक काम करके आयेगी, उतनी जल्दी तेरा काम हो जायेगा, तू एक काम कर गांव में जा और किसी घर से चार दाने धान के मांग ला। लेकिन ऐसे घर से मांगना जहां कोई मरा न हो, कभी मौत घटित न हुई हो, मौत ने कभी दस्तक न दी हो।

वह शीघ्र भागी, वह भूल ही गई क्या ऐसा घर मिलना संभव है? लेकिन जब कोई अपने दुःख में डूबता है तो कौन गणित लगाता है, शायद कोई घर हो, जहाँ मौत कभी घटित न हुई हो, और जब दिगम्बर मुनिराज कहते हैं तो जरूर कोई घर होगा, वह घर–घर द्वार–द्वार दस्तक देने लगी; मांगने लगी कि चार दाने धान के दे दो। लोगों ने बोरियां खोल दी। उन्होने कहा, चार दाने क्या पूरी बोरी लेकर जाओ। हम सारा खलिहान तुम्हारे घर पर उडेल दे। लेकिन क्षमा करे, हमारे ये दाने काम न आयेंगे। इन पर मौत की छाया पड़ चुकी है। हमारे घर में बहुत मौते हो चुकी है, जिन्दा तो बहुत कम है, मरे बहुत है। हमारे बाप मरे। बाप के बाप मरे, माँ मरी, माँ की माँ मरी। हमारे भाई मरे, भाई के भाई मरे। किसी की पत्नी मरी, किसी के पति मरे, किसी के बेटे मरे। जिन्दा तो बहुत कम है। दो चार बचे है, लाखों मरे है।

वह घर-घर घूमी तो एक बात साफ होने लगी कि मौत तो घटती है। हर आदमी को, हर प्राणी को घटती है। मेरे साथ अपवाद नहीं हो सकता। धान के दाने माँगते–मांगते उसकी प्रज्ञा जाग गई और उसका पतझड़ मधुमास में ढ़ल गया। उसके आँसू गंगाजल में बदल गये। उसका अज्ञान तिरोहित हो गया। उसका मोह विगलित हो गया। जब मुनिराज के आश्रम की ओर लौटी तो एक दम शांत थी।

शिष्य गुरु के पास से अध्ययन करके लौट रहे थे, कि उन्हें रहस्यपूर्ण नाटक नजर आया। ये मुनिराज ने क्या किया? अब क्या होगा? क्या इसे धान के दाने मिल गये? क्या बेटा जी उठेगा? अब मुनिराज के वचन का, शास्त्रों के कथन का क्या होगा? शिष्य घबड़ा गये। उन्होंने गुरू के पास जाकर कहा, गुरूदेव! बड़ा अनर्थ हो गया। जो स्त्री तुम्हारे द्वार से रोती हुई गई थी। अब वह बड़ी शांत, प्रसन्नचित्त, आनन्दित चली आ रही हैं। गुरुदेव आप महाव्रती हैं, अगर इसे जिन्दा न कर पाये तो..........?

आपके वचन का क्या होगा ? लगता हैं उसे धान के दाने मिल गये हैं । वह बड़ी शांत आ रही है, वह दाने लेकर आ रही है, उसके चेहरे पर जरा भी दु ख की छाया नहीं हैं। लगता हैं उसे धान के दाने मिल गये है ।

मुनिराज ने कहा अरे, रूको, ठहरों, उसे आने भी दो इतनी जल्दी निर्णय क्यों- करते हो ? हम भी दूसरों के जीवन का निर्णय जल्दी कर लेते है । जीवन भर जीते है लेकिन स्वय के जीवन का कोई निर्णय नही कर पाते । सड़कों पर लोग चलते है, एक दूसरे के जीवन का निर्णय करते हुए चलते है और उन्हें स्वयं नहीं मालूम कि उनके पीछे कौन आ रहा है, पीठ के पीछे कौन आ रहा है, गधा आ रहा है या घोड़ा आ रहा है । स्त्री आ रही है या पुरूष आ रहा है, लड़का आ रहा है, या लड़की आ रही है । मेरे पीछे कौन आ रहा है । आगे चलने वाले को इतना भी ज्ञान नही है । और क्षण मात्र में हम दूसरों के जीवन का निर्णय कर लेते है। गुरु ने कहा, इतनी जल्दी निर्णय मत लो, ठहरो, रूक जाओ । उसे धान से भी वड़ी चीज मिल गई है । उसे जीवन का रहस्य मिल गया है। उसे जीवन की 'की' मिल गई है । वह समझ कर और सभल कर आ रही है । उसके अन्दर ज्ञान की किरण उतर गई है । उसका अन्धेरा कट गया है । उसके अन्दर ज्ञान का दीपक जल गया है । प्रज्ञा के प्रकाश से उसे अपना-पराया नजर आ गया है । अरे भले मनुष्यों ! क्या ज्ञात नही दर्शन-ज्ञानमयी स्वभाव प्रज्ञा के प्रकाश में ही दिखाई पड़ता है । तुम लोग उसके सम्बन्ध में निर्णय मत लो । परमात्मा की वाणी, सर्वज्ञ की वाणी कभी असत्य नहीं हो सकती। क्या तुम्हें ज्ञात नहीं, निकली हुई श्वांस और धनुष से निकला तीर वापस नहीं आता। मुख से एक बार शब्द निकल जाये तो दुबारा लौटकर नहीं आता । साज से गीत निकल जाये तो दुबारा उसमें प्रवेश नहीं होता : देह से जो प्राण एक बार निकल गये बस निकल गये । दुबारा देह में प्राण डाले नहीं जा सकते । चिन्ता मत करो मेरा वचन मिथ्या नहीं होगा ।

और जैसे हो वह मुनिराज के चरणों में गिरी और उसने कहा, जन्म मरण से बचाने वाली दीक्षा मुझे दें । उसने आंख उठाकर भी नहीं देखा, बेटे की लाश की तरफ । उसने श्रावको से कहा, जाओ । मरघट में जला दो, क्योंकि आज एक बात का पता चल गया है कि मौत तो जीवन की अनिवार्य घटना है । जो देर-अदेर सबके जीवन में घटती है । दो—दिन पहले कि, दो दिन बाद, सात दिन पहले कि, सत्तर साल बाद इससे क्या फर्क पड़ता हैं । मौत तो सुनिश्चित हैं । जो सुनिश्चित हैं उससे लड़ना, संघर्ष करना व्यर्थ

है। मैंने मौत के अस्तित्व को स्वीकार कर लिया है। उसकी स्वीकृति में ही मेरे भीतर ज्ञान-किरण उतरी है। और जो पैदा हुआ है उसे मरना ही है। जो जवान है बूढ़ा होगा ही। जो आज अकड़ा है कल टूटेगा ही। जो आज आकाश छू रहा है कल धूल चाटेगा ही। मौत तो घटने ही वाली है।

थमते ही सांसो के संसार बदल जायेगा
स्व—परिजन बदलेंगे परिवार बदल जायेगा।
मिचते ही आँखों के छूट जायेंगे सब अपने,
यह गांव-गली बदलेगी घर-द्वार बदल जायेगा॥
अपने-पराये बदलेंगे, इतिहास बदल जायेगा
शत्रु-मित्र बदलेंगे तो विश्वास बदल जायेगा।
नये सम्बन्ध बनेंगे फिर नया रुप मिलेगा,
फिर से भाषा बदलेगी और भाष्य बदल जायेगा॥
जीवन की धारा बदलेगी, श्रम भी बदल जायेगा,
विधि का क्रम बदलेगा तो धर्म बदल जायेगा।
भाव मात्र बदलेंगे तो कर्म बदल जायेगा
व्यापार बदलेगा तो बाजार बदल जायेगा॥
रंग-ढंग बदलेगा आकार बदल जायेगा,
गर पुनः जनम गये तो कोई पहिचान नही पायेगा
पुण्य – पूंजी बदलेगी तो मोह बदल जायेगा
मयम घटन ही विस्तार बदल जायेगा॥

जिस समय ये सांसे थमेगी, ठहरेगी तो सारा ससार बदल जायेगा। जब तक ये आंखे खुली हैं, साँसे आ जा रही हैं तभी तक तेरा और मेरा हैं, अपना और पराया है। और जैसे ही ज्योति बिदा हो जाती है, पलक गिर जाती है तो ससार असार हो जाता है। ससार की पहिचान खो जाती है। जरा नींद आने पर आदमी भूल जाता है कि कौन अपना है और फिर कौन पराया है। जानते हैं नींद का क्या अर्थ होता है?

नींद का अर्थ है कि सोने वाला अपने आपको भूल गया कि मैं कौन हूं? हिन्दू कि मुसलमान, श्वेताम्बर कि दिगम्बर, सिक्ख कि ईसाई, स्त्री कि पुरुष, बाप कि बेटे, गरीब कि अमीर, सुन्दर कि असुन्दर, विद्वान कि मूर्ख, यही तो भूल जाता है सोने वाला कि मैं कौन हूं। यह तो छोटी मृत्यु है। नींद की दूती है, मौत की हल्की सी प्रतिदिन की सूचना है, मृत्यु का एक

नमूना है, जब बड़ी नींद आती हैं, मृत्यु आती हैं तब पता चलता हैं कि रोज रात छोटी मौत, नींद अपने आगोश में समेट लेती थी और मधुर मधुर सपनों की लोरिया गाकर सांसो का हरण करती थी, आज उसने बड़ा आक्रमण किया हैं छोटी मौत नींद आकर कहती हैं कि अभी भी अपना ध्यान कर लो, एकाग्रचित्त होकर पहिचानो कि मेरा नचर क्या हैं, मेरा स्वभाव क्या हैं, मेरी निपत्ति क्या हैं ?

"आगम में कहा है" एकाग्रचित्तः निरोधो ध्यानम्" एक पदार्थ पर स्थित होकर चिन्ता का, विकल्प का निरोध करना ध्यान है। लेकिन मेरा चिन्तन कहता है कि यह तो साधक की प्रारंभिक अवस्था हैं। मन को रोकने के लिए निर्देश किया है। ध्यान तो और गहरी चीज हैं। क्योंकि जब कोई शुक्ल ध्यान में डूबता हैं, ध्यान में गहरे से गहरे उतरता जाता हैं, परम शून्यता की स्थिति में आ जाता है तो 'एकाग्रचित्त निरोधो ध्यानः' नहीं रह जाता क्योंकि ऐसी परम शून्यता की स्थिति में विचार भी नहीं उठते, किसी भी प्रकार का किंचित भी ख्याल नहीं आता सागर एकदम शांत हो गया। संकल्प-विकल्प की तरंगों से मुक्त हो गया हैं। हवाये उसे स्पन्दित नहीं कर पाती, तूफान तरगित नहीं कर पाते, सागर पूर्णतया शान्त हो गया, स्वय का प्रतिबिम्ब स्पष्ट दिखाई पड़ने लगा है, उसका नाम ध्यान हैं। ऐसी परम शान्तता का नाम ही परमात्मा हैं, शून्यता की अनुभूति का नाम ही सत्य हैं। ध्यान का प्रारंभ कब और किसे होता है इसका खुलासा समय सार ग्रन्थ की टीका में जयसेनाचार्य लिखते है.......।

> आर्तरौद्र ध्यान परित्याग लक्षण निर्विकल्प सामायिक स्थितानां यत् शुद्धात्म रूपस्य दर्शनम्-अनुभवनं-अवलोकन उपलब्धिः संवित्तिः प्रतीतिः ख्यातिः अनुभूतिः तदेव निश्चय नयने निश्चय चारित्र आविनाभावि निश्चय सम्यक्त्वं वीतराग सम्यक्त्व भण्डते ।।

आर्त-रौद्र ध्यान का त्याग कर देना है लक्षण जिसका ऐसे निर्विकल्प सामायिक-समाधि में स्थित रहने वाले जो जीव है उनको जो शुद्धात्मा का अनुभव है, स्वरुप का दर्शन है, अनुभव है, अवलोकन हैं, उपलब्धि है, संवित्ति है, प्रतीति है, ख्याति है, अनुभूति है वही निश्चय से निश्चय सम्यक्त्व या वीतराग सम्यक्त्व कहा जाता है।

आचार्य कहना चाहते है कि दिगम्बर मुद्रा में ही आर्त-रौद्र ध्यान का अभाव असंभव है। और जो साधु एकाग्रचित्त होकर स्वयं में ठहर गया,

शुद्धात्मा के अनुभव में डूब गया उसी का नाम निश्चय सम्यग्दर्शन है। और वह निश्चय सम्यग्दर्शन सकल चारित्र के सद्भाव में ही होता है। इसलिए दो बाते निश्चित हो गई कि निश्चय सम्यग्दर्शन और आत्मा का अनुभव, शुद्धोपयोग ग्रहस्थ को नहीं होता।

जहाँ जीवन की सारी आधि-व्याधि मिट जाती है उसका नाम है समाधि। लो समाधि हरो व्याधि। समाधि की शून्यता में जो उपलब्ध होता है उसका नाम ध्यान है इसलिए कहा एकाग्रचित्त हो जाओ। यह एकाग्रता भी प्राथमिक अवस्था है। साधना का प्रारंभ है, व्यर्थ के विकल्प जाल से मुक्त कराना है इसलिए कहा कि एकाग्रचित्त हो जाओ। लेकिन ध्यान एकाग्रता नहीं है, ध्यान शून्यता है। ध्यान और एकाग्रता में काफी भिन्नता है। एकाग्रता कारण है और ध्यान कार्य है। एकाग्रता प्रारभ है और ध्यान अन्त है। बस इतना ख्याल रखो कि एकाग्रता ध्यान नहीं है। साधारणतया लोग समझते है कि चित्त को एकाग्र कर लेना ध्यान है। एकाग्रता तो बहुत छोटी बात है। एक विद्यार्थी भी एकाग्र हो जाता है, एक प्रेमी भी एकाग्र हो जाता है, एक व्यापारी भी फोन पर एकाग्र हो जाता है, एक वैज्ञानिक भी एकाग्र हो जाता है। लेकिन इतना अवश्य है कि इनका लक्ष्य अलग-अलग है और आत्मसाधक की एकाग्रता का अभिप्राय अलग है। आत्म साधक एकाग्र होकर पुण्य का बन्ध करता है। व्यापारी, एकाग्र होकर पाप कमाता है और साधु-ध्यान की गहराई मे उतर निर्जरा करता है। बस इतना याद रखो कि एकाग्रता मे भी बाहर एक बिन्दु शेष रह जाता है जिसको हम मन को एकाग्र करते है। लेकिन एकाग्रता में भी साधक परपदार्थ का सहारा लेता है, बाहर ही रहता है, भीतर नही। क्योंकि एकाग्रता में किसी नाम पर, किसी प्रतिमा पर, किसी विचार पर, किसी शब्द पर, किसी मंत्र पर, हम अपने को एकाग्र करते है। इसलिए एकाग्रता का अर्थ हुआ कि चित्त अभी बाहर से जुड़ा है। परमात्म-प्रकाश की टीका में ब्रह्मदेव सूरी ने लिखा है कि सिद्धो का ध्यान करना भी चेतन परिग्रह है, वह भी पर समय है, यदि केवलज्ञान को उपलब्ध करना है तो स्वयं का ध्यान करो, स्वसमय में लौटो लेकिन यह ध्यान तो बारहवें गुणस्थान के अन्तिम समय में संभव है। ध्यान बड़ी दूसरी बात है। जो सोचते है कि परिग्रह के बीच में रहकर एकाग्रचित्त होकर ध्यान हो जायेगा तो वे गलत सोचते है। वे बहुत बड़ी भ्रांति में है। वे कुछ समय को मन को बाह्य विकल्प से हटाकर चिन्तन में लगाकर पुण्य कमा सकते है, लेकिन आत्म दर्शन नहीं कर सकते है, निर्जरा नहीं कर सकते है।

ध्यान का बाहर से कोई सम्बन्ध नहीं है। ध्यान का अर्थ है बाहर से असम्बन्धित हो जाना। एकाग्रता का बाहर से सम्बन्ध है और ध्यान का भीतर से सम्बन्ध है। तो ध्यान का अर्थ हुआ चित्त का व्यापार बाहर न चलता हो, चित्त बाहर के जगत् से मुक्त हो गया हो, चित्त बिलकुल निस्पंद हो गया हो, चित्त बिलकुल शून्य हो गया हो। चित्त अगति को, अचंचलता को उपलब्ध हो गया हो। ध्यान का अर्थ है भीतर कुछ भी चलायमान न हो, सब कुछ ठहर गया हो। कोई गति, कोई व्यापार, स्पन्दन न रह जाए, उस अवस्था का नाम ध्यान है।

श्लोक की प्रथम पंक्ति तो देखो कितनी प्यारी है और क्या कह रही है..........। "आत्मा-नमात्म-न्यवलोक्य मानस" तू अपने आप में अपनी आत्मा को देख! चिन्तन कर, पर पदार्थ का सहारा ले ऐसा नहीं कहा। तू समस्त बाह्य व्यापार से मुक्त होकर आत्मा में आत्मा के द्वारा, आत्मा का, आत्मा के लिए, आत्मा का सहारा लेकर देख कि तू क्या है? तेरा दर्शन-ज्ञानमयी आत्मा कितनी सुन्दर है। चित्त से सारी चिन्ताओं का निरोध होना ध्यान है। शून्यता में एक भी बिन्दु नहीं रह जाता, वहां टिकने का, ठहरने का दूसरा कोई आधार नहीं रह जाता। सब निराधार हो जाता है। आत्मा स्वयं अपनी आधार बन जाती है। अन्तरात्मा की खोज का नाम ध्यान है। स्वयं के भीतर उतरने का नाम ध्यान है किसी ने एक दिन पूछा था.........

प्रार्थना और ध्यान में क्या अन्तर है?

दोनों में काफी अन्तर है प्रार्थना प्रवृत्ति आत्मक और ध्यान निवृत्ति आत्मक है। प्रार्थना शब्दात्मक होती है और ध्यान निःशब्दात्मक होता है। प्रार्थना भक्ति पूर्ण समर्पण है और ध्यान मौन समर्पण है वहां तो सब छूट जाता है सब धर्म शास्त्र छूट जाते हैं समयसार भी छूट जाता है, नियमसार भी छूट जाता है, वेद भी छूट जाता है, कुरान भी छूट जाता है। वहां न हिन्दू होता है न मुसलमान होता है, न श्वेताम्बर होता है, न दिगम्बर होता है। ध्यान में तो हिन्दू हिन्दू नहीं होता मुसलमान-मुसलमान नहीं होता, जैन-जैन नहीं होता मात्र एक ध्याता है, आत्मा का संवेदन होता है प्रार्थना में प्रार्थी होता है लेकिन ध्यान में तो कोई नहीं बचता! ध्यान में तो मन भी नहीं बचता। प्रार्थना में तो मांगने वाला खड़ा रहता है। लेकिन ध्यान में मन भी नहीं बचता। मांगने वाला मन भी तिरोहित हो गया। मन भिखमंगा है। वह तो सदा मांगता ही रहता है। मन का भिखारी कहता है और मिले, और मिले और मिले। प्रार्थना में पुकारना होता है, हाथ

जोड़ना पड़ते हे, आँख खोलना पड़ती है और याचना करना पड़ती है। तथा ध्यान में मौन होना पड़ता है। आसन लगाकर बैठना होता है, आँखे बन्द रखना होती हैं। और जो उसमें समग्र भाव से मौन होने लगता हैं जो भीतर प्रज्ञा का अपने आप दीया जलने लगता है। अकम्प उसकी लौ होती हैं। ध्याता के भीतर सुगंध फूटने लगती है। हृदय कमल खिलने लगता है।

ध्यान स्वयं में स्वय का किया जाता है और प्रार्थना किसी ओर से की जाती है ध्यान किसी से नहीं किया जाता हैं और प्रार्थना किसी ओर से की जाती है। ध्यान किसी से नही किया जाता। ध्यान का दूसरे से कोई सम्बन्ध नही हैं। ध्यान तो स्वयं का परिवर्तन है, स्वयं को निर्दोष बनाने की एक रासायनिक प्रक्रिया हैं। और प्रार्थना तो परमात्मा आस्था बढती है तथा ध्यान करने से स्वय परमात्मा बनते है यही ध्यान और परमात्मा में मौलिक अन्तर है, फर्क है। प्रार्थना का मूल अधिकारी गृहस्थ और ध्यान मुनियो का लक्षण है। परमात्मा बनना है तो ध्यान करो और सांसारिक इच्छाये पूरी करना है तो प्रार्थना करो।

प्रार्थना करते समय तो अन्य का ख्याल रहता है लेकिन ध्यान के समय तो स्वय का भी ध्यान नहीं रहता। जैसे सोते समय स्वयं का ध्यान आ जाये तो समझना जाग रहे हो, नींद नहीं लगी है। स्वप्न देखते सयय यदि यह ख्याल आ जाये कि मैं स्वप्न देख रहा हूं तो समझना कि मैं जागा हुआ हूं। स्वप्न देखने के लिए नींद जरुरी है, ध्यान के लिए निस्परिग्रही होना आवश्यक है। ध्यान में एक मात्र आत्मा का आनन्द बरसता है। ऐसे अनुपम ध्यान को 'साधुलंभते'' ही प्राप्त कर सकता है। योगी ही प्राप्त कर सकता है भोगी नहीं। असंयमी प्राप्त नहीं कर सकता। जीसस ने कहा है सुई के छिद्र में से ऊंट निकल सकता है लेकिन परिग्रही को स्वर्ग नही मिल सकता। कितनी गहरी बात कही जीसस ने! स्वीकार है उन्हें, कि सुई के छिद्र में से ऊट का निकलना, यह भी संभव है लेकिन एक परिग्रही को आत्म-दर्शन, एक भोगी को शुद्धात्मा का संवेदन, एककामी, विजय लम्परी को निश्चय सम्यग्दर्शन, आत्मानुभव असंभव हैं। ज्ञानार्णव ग्रन्थ में शुभचन्द्राचार्य कहते हैं.................सूर्यपश्चिम से उग सकता हैं, आकाश में फूल लग सकत हैं, गधे के सींग उग सकते हैं यह सब सभव हैं लेकिन भोगी असयमीयों को गृहस्थो को आत्मा का दर्शन असंभव है। सारी बाते सभव है प्रकृति का क्रम बदल सकता है लेकिन गृहस्थ को आत्म दर्शन, निश्चय सम्यग्दर्शन नहीं हो सकता। निश्चय सम्यग्दर्शन कहो, वीतराग सम्यग्दर्शन

कहो, स्वरूपाचरण चारित्र कहो, शुद्धोपयोग कहो, स्वसंवेदन कहो, एक देश शुद्ध निश्चयनय कहो, जो कहना है सो कहो, लेकिन इतना याद रखो ये सब उपलब्धियां गृहस्थाश्रम में असंभव है। आचार्य देव कह रहे है कि "साधुर्लभते" इन्हें साधु ही प्राप्त कर सकता है। किसी ने पूछा था महाराज श्री विचारहीनता और निर्विचारता में क्या अन्तर है ?

दोनों मे काफी अन्तर है-निर्विचार का अर्थ हैं कि जिसने बुद्धि-पूर्वक विचारों का त्याग किया है, जो विचारो को जन्म देने में सक्षम नहीं है, वह विचारहीन है। यानि विचारहीन का अर्थ जिसमें विचारों का कोई पता ही नहीं है। जिसमें विचार का अभाव है वह विचारहीन है। निर्विचार होने से व्यक्ति विचारहीन नहीं हो जाता। पशुओं की विचारणा शक्ति नहीं होती, और ये विचार से भी गई बीती अवस्था है, और मनुष्य शील प्राणी है, यह पशु से भी ऊपर की अवस्था है। यूं समझे सन्त निर्विचार होते है, पशु अविचार अवस्था है और मनुष्य विचारशील अवस्था है। अविचार - विचार और निर्विचार ये तीन अवस्थाये है। तो जिसके पास सोचने - समझने की सामर्थ्य नहीं है वह विचारहीन है, सन्त तो निर्विचार की स्थिति में होते है। और ध्याता का पहला लक्षण है निर्विचार स्थिति को उपलब्ध, होना। सन्त प्रार्थना से भी ऊपर की स्थिति मे रहते है। क्योंकि प्रार्थना तो विचारो से भरी होती है। उसमें शब्दों का उच्चारण ही उच्चारण होता है।

उस विधवा ने सन्त से कहा कि ऐसा भी एक घर नही है जहां मौत ने अपने निशान न छोड़े हो। हर घर मौत का शिकार हुआ है, मेरे साथ कोई नई घटना नहीं घटी है। स्वयं का विचार पैदा होना भी ध्यान है, किसी भी प्राणी में ध्यान का अभाव नहीं होना है, साधु स्वय के ध्यान मे डूबे है और आप पर के ध्यान में आर्त-रौद्र ध्यान में डूबे हैं, केवली भगवान में, सिद्ध भगवान में ध्यान का अभाव है, अरिहन्त भगवान में उपचार से ध्यान कहा है, अरिहन्त भगवान में मन का अभाव हैं, और विशेष बात यही है कि मन रहते हुए मन की विस्मृति हो जाए उसी का नाम ध्यान है, वैसे ध्यान के अनेक भेद है, एक बात को एकाग्र होकर सुनना भी ध्यान है।

मैं गृहस्थाश्रम में था, स्कूल जाने के लिए निकला था, कि देखा एक बूढ़ी स्त्री पानी भर कर लौट रही है, उसके सिर पर दो मटके थे, एक मटका बगल में दबा था, और एक हाथ में बाल्टी थी और भैंस को भी हाँक रही थी। तो मैंने कहा 'नन्ही बऊ' कोई भी एक काम कर ले भैंस हांक ले या पानी भर ले नहीं तो मटका नीचे गिर जायेगे, तो उसने कहा, बेटा तू भी

एक काम कर ले, या तो स्कूल चला जा या मुझे समझा ले। तेरा ध्यान मेरी ओर है कि मेरे मटके न फूट जाए और मैं तेरी ओर देख रही हूं कि तेरा ज्ञान ना छूट जाए, बेटा जा स्कूल जा, मेरे मटको की चिन्ता मत कर, तू मुझे मत सम्हाल पहले अपने आपको सम्हाल, अपना ध्यान रख, मेरा नहीं, दूसरे को नहीं स्वयं को सभालो इसी का नाम है और यही जीव का स्वभाव है, संसार की प्रत्येक घटना प्रेरणा से भरी होती है, हर पदार्थ ध्यान की ओर इशारा करता है कवि पलटु के जीवन की घटना है........

एक दिन वे मार्ग से गुजर रहे थे और एक आदमी हाथ में मशाल लेकर जा रहा था, वे खड़े हो गये। उन्हें वैराग्य उत्पन्न हो गया, मधु मक्खियों को देख कर, मधु मक्खियां कितना श्रम करती है। फूलों के पराग कण-कण बून्द बून्द एकत्र करती है। हजारों-हजारों मधु मक्खियों के श्रम से छत्ता भरता है। और फिर आता है एक आदमी, मशाल जलाकर, लूट ले जाता है ऐसे ही हम जिन्दगी बसाते है फिर आता है काल मशाल लेकर चिता की तरह लूटकर ले जाता है। कवि पलटु ने मृत्यु को पहिचान लिया, और यह निश्चित समझो जिसने मृत्यु को पहचाना, उसे वैराग्य हो ही जायेगा मृत्यु का दर्शन वैराग्य का जन्म है। जीवन को जरा गौर से देखेगा, मृत्यु को छिपा हुआ पायेगा। व्यवहारिक जीवन तो नगर नारी के घूंघट जैसा है पीछे तो लूटने की वासना छुपी हैं, मौत छिपी हैं। जहाँ भी पर्दा उठाओगे मौत को छिपा पाओगे, और मौत ने बहुत रूप बना रखे हैं, अनेक रूपों में, अनेक वेशों में वह सजी होती हैं। इसलिए धोखा हो जाता हैं, लेकिन जो जरा सजग होकर देखेगा तो धोखा नहीं खायेगा। जिसका धोखा टूट गया. जिसे जीवन में यह समझ में आगया कि जीवन में कुछ भी एकत्र करो, सब यही छूट जायेगा, हाथ खाली के खाली रहेंगे, प्राण रिक्त के रिक्त रहेंगे। उसके जीवन में वैराग्य पैदा न होगा तो क्या होगा।

आंखे देखने वाली हो तो वैराग्य पैदा होगा ही। सिर्फ अन्धे वैराग्य से बचने का प्रयास करते हैं. सिर्फ बहरे वैराग्य से बचने की कोशिश करते हैं। जिनके पास देखने वाली आँखे है और सोचने वाला चित्त है वह तो किसी भी बहाने, किसी भी निमित्त को पाकर वैराग्य को उपलब्ध हो जायेगा।

लाओत्सू के जीवन में भी वैराग्य ऐसे हो घटा, उन्हें वैराग्य हुआ वृक्ष से गिरते हुए एक सूखे पत्ते को देखकर, सूखा पत्ता वृक्ष से टुट रहा है और उनका ध्यान स्वय से जुड़ रहा है, उनने उसे गिरत देखा और स्वयं का ख्याल आ गया कि एक दिन मैं भी ऐसा ही झड़ जाऊंगा. गिर जाऊंगा, अपनी भी गिरने की बारी आयेगी, आखिर कब तक डटे रहेंगे, वृक्ष से जुड़े

रहेंगे ? यह वृक्ष का पत्ता जब तक हरा था, जब तक इसका जीवन था, जब तक ये वृक्ष से जुड़ा था, कुछ क्षण तक पत्ता हरा था, रस से भरा था, पक्षी इसके आस-पास गीत गाते थे, मधुमक्खियां भिनभिनाती थी. भंवरे डोलते थे, आज सूख गया, अब न कोई पक्षी गीत गायेंगे, न मधुमक्खियाँ आयेगी, न तितलियां उड़ेंगी, आज यह पत्ता रसहीन हो गया है, रस के स्रोत से जुदा हो गया, मिट्टी में मिल गया, मैं भी एक दिन चल पडूंगा, ऐसे ही जीवन वृक्ष से गिर पडूंगा और मिट्टी में मिल जाऊंगा । पत्ता मिट्टी से ही ऊपर उठा था और मिट्टी में ही मिल गया ।

लाओत्सू को दिखाई पड़ते ही स्वयं का ध्यान आ गया कि मै भी क्या हूं ? आज हरा, कल सूखा । आज खड़ा, कल गिरा, आज जिया, कल मरा, आज मदमाता यौवन, कल बौराता जीवन, कुछ भी नहीं बचेगा पर्याप्त था इतना ध्यान, वैराग्य का झरना फूट पड़ा ।

जोवन की धारा बदलेगे, श्रम भी बदल जायेगा
विधि का क्रम बदलेगा, धर्म भी बदल जायेगा ।
भाव मात्र बदलेगे तो आचरण भी बदल जायेगा
व्यापार बदलेगा तो बाजार बदल जायेगा ।।

जीवन की धारा बदलते ही जीवन का श्रम भी बदल जाता है । जो श्रम भौतिकता के प्रति हो रहा था वही श्रम आत्मा के प्रति होने लग जायेगा, आपका मोह बदलेगा तो साँसारिक पुरुषार्थ आध्यात्मिक पुरुषार्थ का रुप भी बदल जायेगा, जीवन का गन्दा नाला गंगा की ओर मुड़ जायेगा, गंगा में शामिल होने के लिए भावों को बदलना जरूरी है, संसार की लीला का दर्शन कर लिया है, तथा स्वय की आत्मा पर आस्था पैदा हो गई है, इसलिए अब मैं आत्म-दर्शन करने के लिए दिगम्बर मुद्रा को ग्रहण करुंगा, अभी तक गलत व्यापार किया है, गलत व्यक्तियों की संगति की है, क्योंकि व्यापार बदलते ही बाजार बदल जाता है, जहां आपकी सगति बदलेगी, असयमियों की सगति से बचेंगे, उनके स्वाध्याय से बचेगे तो जीवन का सत्य नजर आयेगा. संतो के रत्नों का बाजार नजर आयेगा और तुम उस बाजार के जौहरी बन जाओगे, स्वयं पर ध्यान आते ही व्यक्ति आत्म जौहरी हो जाता है ।

किसी ने पूछा था क्या गृहस्थों को आत्म-दर्शन नहीं होता ? यदि आत्म-दर्शन मुनियों को होता हैं तो वह कैसा हैं, कृपया बताइये ?

कौन बांध पाया है शब्दों में
जो निर्बंध रही हो अब तक
उस तर्कातीत प्रतीति को
उस पावन अनुभूति-को
कौन बांध पाया है शब्दों में ?

जिसको निर्विचार मन ने धोया
निर्विकल्प ध्यान साधना से सजोया
कैसे व्यक्त करूं मैं उसको
आतम की विमल-विभूति को
कौन बांध पाया है शब्दों में ?

वो भी पा नहीं सकता है इसको
चक्षु श्रवा बन सुना हो जिसने
और वो भी पा नहीं सकता इसको
वक्र चित्त चरण-चंचल हो जिसके
कौन बांध पाया है शब्दों में ?

वो भी पा नहीं सकता इसको
चक्षु-श्रवा बन सुना हो जिसने

खाली जिसने आँखों से और कानों से सुना हो, उसे भी आत्मा की अनुभूति नहीं मिल सकती। आप कितने भी शास्त्र पढ़ ले, कितना भी अभ्यास कर ले लेकिन अनुभूति तो नहीं मिलेगी। यूं समझे पर्दे पर भोजन के चित्र देखने से भूख नहीं मिटेगी। खाली शास्त्रों का पठन करने से आत्मानुभव नहीं होगा। आत्म-दर्शन होगा तदनुरुप सम्यक आचरण करने से।

जिसने एक बार ध्यान से सुन लिया तो उसके भीतर सन्यास की घटना घटेगी ही की कल ही बात है एक सज्जन सामने ही बैठे प्रवचन सुन रहे थे, श्वेताम्बर थे, उदयपुर से आये थे चूंकि वे प्रवचन के समय मेरे सामने ही बैठे थे, उन पर मेरी नजर पड़ी। उनकी आंखो से झर—झर आंसू टपक रहे थे और फिर वे बीच में ही उठकर पीछे जाकर बैठे गये। जब मैं प्रवचन समाप्त करके आया तो वे मेरे पास आये उन्होने चरण वन्दना की उस समय भी उनकी आंखों में आंसू थे। उन्होने जाते-जाते कहां कि तीन साल से आपकी बात सुन रहा था, आज पुण्योदय से दर्शन का अवसर मिला है और यह मेरा प्रथम और अन्तिम दर्शन है।

अतः कभी आपके दर्शन को नहीं आऊंगा । काफी लोग कमरे में बैठे थे। सब आश्चर्य से उनकी तरफ देखने लगे । मैंने पूछा आखिर बात क्या है ? आप प्रवचन मे काफी आंसू बहा रहें थे, और अभी भी आपकी आंखों में आँसू है ? उन्होंने कहा, कि आज पहली बार आत्मा की बात सुनी, तो मन आतुर होने लगा कि चल पड़ू आपके साथ और त्याग यह सारा परिधान और हो जाऊ नग्न दिगम्बर साधु ! फिर डर लगा। पत्नी है बच्चे हैं, पुरा परिवार है उन सबका य ने क्या होगा। अगर दुबारा आपको सुनने आ गया तो निश्चित ही मेरा यह परिधान छूट जायेगा । मैं इसलिए रो रहा था डर के कारण कि मुझे भय ने सताया कि अगर मैंने ध्यान से पुरा प्रवचन सुन लिया तो घर वापस न लौट सकूगा ! आप मुझे क्षमा करे। अच्छा नमोस्तु ! मैं चलता हूं । मैं-मैं ज्यादा देर भी आपके सामने नहीं रुक सकता। और रोते – रोते आंसू बहाते नमस्कार करके चले गये।

प्रवचन सुनते-सुनते उन्हे अपनी आत्मा का ध्यान आ गया। वे क्षण भर को एकाग्रचित्त हुए और घटना घट गई। इसलिए आचार्य देव कह रहे हैं एकाग्रचित्त हो कर स्वयं से पहिचान करो, स्वयं के पास सरक आओ और जब स्वयं पास सरक आओगे तुम्हारा दर्शन-ज्ञान स्वभाव तुम्हें मिल जायेगा ग्रन्थों के कितने पन्ने पलटते रहो कुछ नहीं होगा। बस आज इतना ही।

आदिनाथ दिगम्बर जैन नया मन्दिर
प्रतापगढ़

दिनाँक २८–८-९१
बुधवार

२६

अकारण कुछ भी नहीं

क्षण भंगुर जीवन के-तीन सुमन जीवन के
प्रेम की सुवास घोल नेह का बोल-बोल
खरीद लिए मोह ने अक्षय के अक्षर-अमोल
पलभर में बिक गये, मंहगे क्षण जीवन के
तीन सुमन जीवन के—तीन सुमन जीवन के
चचल भोगी मन कामना के रथ पर चढ़
नश्वर को चूम रहा प्रीति-प्यार के पथ में बढ़
भौरे सम चूम लिए पराग-कण यौवन के
तीन सुमन जीवन के-तीन सुमन जीवन के
अंजली से टपक रहा, जीवन का गंगा जल
मृत्यु की धूप में दरक रहा देह का महल
माटी को अर्पित है जीवन महल कंचन के
तीन सुमन जीवन के-तीन सुवन जीवन के

मूल पद्य :- एकः सदा शाश्वतिको ममाऽऽत्मा
विनिर्मलः साधिगम—स्वभावः
बहिर्भवा सन्त्यपरे—समस्ताः
न शाश्वताः कर्म-भवाः स्वकीयाः ॥२६॥

हिन्दी पद्य :- हे आत्म तत्त्व अविनाशी सदा हमारा
नित्य निरंजन सदैव सुज्ञान वाला
बाकी जगत के सब अर्थ बहिर स्वरुप
वे हे अशाश्वत् शुभाशुभ कर्मरुप ॥ २६ ॥

अन्वयार्थ :-

मम	– मेरा
आत्मा	– आत्मा
सदा एकः	– सदा एकाकी
शाश्वतिकः	– शाश्वत
विनिर्मलः	– निर्मल
साधिगम स्वभाव	– अभिगम (ज्ञान) स्वभाव से युक्त है।
अपरे	– अन्य
समस्ताः	– समस्तः
बहिर्भवा	– बाहरी पदार्थ
कर्म-भवाः	– कर्म जनित है
स्वकीयाः	– वे अपने (ओर)
शाश्वताः	– शाश्वत
न सन्ति	– नहीं है !

भावार्थ :- मेरा आत्मा सदा एक और नित्यस्वरुप है सर्व मलों से रहित और ज्ञान स्वभावी है और इसके सिवाय और जितने भी बाहरी पदार्थ और राग-द्वेषादि हैं वे सब कर्मजनित है और अशाश्वत है।

२६

अकारण कुछ भी नहीं है

ओम नमः सिद्धेभ्यः ३
धर्म प्रेमी भव्यात्माओं

एक सम्राट दाह पीड़ा से अत्यन्त पीड़ित था। असह्य पीड़ा थी काफी उपचार करवाया, लेकिन परिणाम कुछ न निकला। नगर का सम्राट था, कोई साधारण आदमी तो था नही, बिमारी भी बड़ी थी, बड़े आदमियों की बिमारियाँ भी बड़ी होती है और बड़े आराम से जाती हैं। गरीब बिमारी गरीब होती हैं, इसलिए शीघ्र चली जाती है, क्योंकि मेहमान तो तभी रुकता है घर में जब उसका सम्मान अच्छा होता हैं, आव-भगत अच्छी होती है। बिमारी भी वहीं रुकती है जहां अच्छे बिस्तर, सुकोमल शय्या, स्वादिष्ट पदार्थ और रोगी को देखने वाले अधिक मिलते है। सम्राट के उपचार हेतु चतुर वैद्य आये, होशियार डॉक्टर आये, अनुभवी हकीम आये लेकिन लाभ न हुआ। बिमारी का निदान कोई न कर पाया। सब हार गये। अकस्मात नगर में दिगम्बर मुनि का आगमन हुआ। मन्त्री जैन था, मुनि भक्त था। उसने मुनिराज से सम्राट की बिमारी की बाबत निवेदन किया।

मुनिराज ने कहा, यदि णमोकार मन्त्र का उच्चारण करते ही चन्दन घिसकर शरीर पर लगाया जाय तो शरीर की दाह कम हो सकती

है। लेकिन चन्दन स्वय रानियाँ घिसे और णमोकार मन्त्र का उच्चारण करते हुए घिसे। मंत्री आशीर्वाद लेकर सीधा महल में आया, और उसने सम्राट से कहा, आज मैं सुखद समाचार लाया हूं। आपके लिए महान तपस्वी दिगम्बर आचार्य का आशीर्वाद लाया तथा रोग के उपचार के लिए औषधि पुछकर आया हूं। रानियां सभी वहीं पर उपस्थित थी। रोग शमन की एक नई किरण उतरी। सबने कहा, आप देरी न करे शीघ्र कहे, हमारे लायक सेवा बताये। हर स्त्री चाहती है कि उसका सुहाग सदा निरोग रहे। प्रसन्न रहे, आनन्दित रहे। मंत्री ने कहा, विधि तो बहुत आसान है। मात्र आप लोगों को नमोकार मन्त्र का उच्चारण करके चन्दन घिसकर, इनके सारे शरीर पर लगाना है। मन्त्री ने कहा, मैं चन्दन भी अपने साथ लाया हूं।

सम्राट की आठ रानियां थी, सब चन्दन घिसने बैठ गई। उनके हाथों की चुड़ियां अत्यधिक शोर कर रही थी। चुडियों की तीव्र आवाज से सम्राट को दाह वेदना और बढ़ गई।

क्या आपको ज्ञात है? दिन निकलने के पहले रात और गहन हो जाती है। घाव मिटने के पहले गहन खुजली पैदा करता हैं। सम्राट की वेदना और बढ़ गई एक तो देह में असह्य वेदना और उपर से चुड़ी की खनखनाहट, झनझनाहट, सम्राट झुंझला उठा। उसने कहा, कितनी आवाज हो रही है। ये चुड़ियां कौन बजा रहा है? सुनते ही सभी रानियों ने हाथ में एक-एक चुडड़ी बचाकर शेष चुड़िया उतार दी। सुहागवती नारी कभी भी हाथ खाली नहीं रखती, हाथ में कम से कम एक चुड़ी तो अवश्य रखती हैं, पहनती है। चन्दन घिसना चालू रहा, लेकिन आवाज बन्द हो गई।

सम्राट को लगा, शायद चन्दन का घिसना बन्द कर दिया है, इसलिए आवाज नही आ रही है। उसने पूछा, क्या चन्दन घिसना बन्दकर दिया है। मंन्त्री ने कहा नहीं, राजन! चन्दन तो घिसा जा रहा है, वह कैसे बन्द हो सकता है। जिन कारणों से आवाज उत्पन्न हो रही थी, अशांति पैदा हो रही थी। मात्र उन कारणों को हटाया गया है, रानियों ने हाथ में चुड़िया कम कर दी, अर्थात एक-एक चुड़ी शेष रखी है। चुड़ियां टकराना बन्द हो गयी है इसलिए आवाज आना बन्द हैं।

सम्राट का विवेक जाग गया, प्रज्ञा का अवतरण हो गया। वह स्वयं की गहराई में उतर गया, डीप गहरे चला गया। चिन्तन की गहराई से उत्तर मिला, प्रज्ञा ने द्वार खटखटाय, समझ ने दस्तक दी और

ज्ञान ने कहा कि जब तक दो हैं, तब तक संघर्ष रहेगा, संघर्ष रहेगा तो, तनाव रहेगा और तनाव रहेगा तो कष्ट रहेगा। शरीर के साथ तादत्म्य दुःख में कारण हैं, कष्ट में कारण हैं, पीड़ा में कारण हैं। जब तक चुड़िया अनेक थी, तब तक उनसे आवाज आ रही थी और एक होते ही आवाज खो गई। सम्राट ने सोचा पर पदार्थ से सम्बन्ध मात्र दुख में ही कारण हैं, मैं भी तो शरीर से जुड़ा हूं, पर पदार्थ से जुड़ा हूं इसलिए तो दुखी हो रहा हूं। मेरी आत्मा भी तो एक हैं। कौन किसका साथ देता है? मैं भी क्यों न अपने स्वभाव में लौट आऊं? पर पदार्थ से सम्बन्ध त्याग दूं। और सम्राट समस्त पदार्थों का मोह त्यागकर स्वयं के पास सरक आया अपने आप में खो गया। स्वयं की गहराई में डूब गया। कई महिनों की पीड़ा का उसे भान ही न रहा। पीड़ा समाप्त हो गई। देह का कष्ट मिट गया।

अगर सत्य को जानना है, स्वयं को जानना है, शाश्वत सुख को पाना हैं, तो जो स्व महीं हैं, आत्मा नहीं हैं, उससे तादात्म्य तोड़ना होगा। अनात्म से समस्त तादात्म्य तोड़ना होगा और विघटन से उपरान्त जो शेष बचना हैं उसका नाम ही आत्मा हैं, उसका नाम ही परम सत्य है। जो परिवर्तन शील को छोड़ता हैं तो अपरिवर्तन शील हैं उसको पा लेता है। सामायिक ध्यान में गहरे उतरे और सोचो किस-किस से तुम्हारा तादात्यय सम्बन्ध हैं। शरीर से है, विचार से है, भाव से है। मोह जनित इन दीवारों को गिरा दो। उन कारागृहों से स्वयं को मुक्त करो, जो कि परिवर्तनशील हैं। जो भी परिवर्तन शील हैं जानो कि वह आप नही है इस ज्ञान को, स्मरण को श्वांस प्रश्वांस में स्थायी करो। उसे हर क्षण, हर पल अपन प्राणों में निनादित होने दो।

यही बोध हर क्षण रहे कि बाह्म पदार्थ की सत्तायें मेरी नहीं है यह स्मरण खोने न पावे। सुबह से सांझ-साँझ से सुबह यह बोध गहरा करते जाये। शरीर को हमेशा पर जाने, दूसरा जाने, पराया समझे, यह शरीर मैं नहीं हूं यह मन भी मैं नहीं हूं, आती – जाती स्वांश भी मैं नहीं हूं। शरीर प्राण मन ये भी मैं नहीं हूं बस इसी स्मृति साधना से क्रमशः तादात्म्य की मोहनिद्रा टूटेगी और सत्य का जागरण होगा, सम्यग्दर्शन का उद्भावन होगा। जैसे कोई गहरी निन्द्रा में सोया हो और कोई निरन्तर पुकारे आवाज दे तो वह जाग जाता है, उसकी नींद टुट जाती हैं। सामायिक की गहराई मे स्वयं को बुलाकर स्वयं की ही नींद तोड़नी है। सामायिक साधना ध्यान स्वयं को बुलाने, स्वयं को जगाने की विधि और पद्धति है। देह और आत्मा के बीच भेद स्पष्ट होता है और हम उससे दूर होने लगते है, भिखारीपन,

शरणार्थीपन मिटता हैं और अपने गृह में आते हैं और स्वयं के मालिक बनते हैं। और यह सामायिक का अल्प परिवर्तनशील से नाता तोड़ना ही कमश अपरिवर्तन शील केन्द्र से नाता जोडना बन जाता हैं। और फिर सामायिक साधना का आप वाष्पीकरण का नीर अनन्ताकाश की यात्रा पर निकल जाता है। बस यही सार है साधना का।

सम्राट चिन्तन की गहराई में चला गया। सत्य का हाथ लग गया मैं एकांकी हूं, मैं अकेला हूं। अकेला यहां आया हूं, अकेला जाऊंगा, सबको छोड़कर वन की ओर चल पड़ा। दिगम्बर मुद्रा ग्रहण की ओर आत्मध्यान में डूब गया।

एक चुड़ी ने उसे अकेलेपन का बोध करा दिया, वह अपने पास लौट आया। हम सब भी अपने पास सरक आये, और स्वयं का निरिक्षण करे एक बार में एक ही फूल खिलता हैं, आम के वृक्ष पर आम का ही फूल लगेगा, इमली का नहीं। सन्यास से ही सत्य का फूल खिलेगा, भोग के वृक्ष पर परमात्मा का फूल न लगा हैं और न कभी लगेगा। आत्मा निश्चय की अपेक्षा से शाश्वत हैं, नित्य हैं, विमल है, कर्मों से रहित हैं, ज्ञान स्वाभावी है। मात्र इतना ही ख्याल पैदा हो जाये कि ज्ञान से रमण करना मेरा स्वभाव हैं। तो परिवर्तनशील से मोह-ममता घटने लगेगी, राग द्वेष कम होने लगेगा। जन्म-मरण दोनों मेरे कारण है, उनका कर्ता मैं हूं उनका भोक्ता मैं हूं।

आदमी अकारण पैदा नहीं होता। पूर्व में चाहा होगा, कर्म कमाया होगा, पिछले जन्म में तरह-तरह की कामना की होगी, उसका ही परिणाम उसका ही पुरस्कार तुम्हारा जन्म हैं।

जन्म भी अकरण नहीं हैं। वह भी हमने स्वयं चुना है। वह भी हमारा ही चुनाव है। जन्मों-जन्मों की वासनाओ, आकांक्षाये अभीप्सा ही पैदा कराती है नया जन्म दिलाती है। जन्म-जन्म की प्रार्थनाओं से कोई पुरुष बन गया, कोई स्त्री बन गया. कोई नपुंसक बन गया, यह सब जन्मों जन्मों को आकांक्षाओ का परिणाम हैं। स्वयं ने ही इसे सजोया हैं, स्वयं ने ही उसे अर्जित किया है। स्वयं ने ही बीज की तरह बोया हैं। अब हम सब उसकी फसल काट रहे हैं। यद्यपि यह बात सच है कि हमने कब बीज बोये थे, उसकी स्मृतियां बोझिल हो गयी हैं। बिना बीज बोये तो फसल आ नहीं सकती। और दूसरे की फसल हम काट नहीं सकते।

मेरा जन्म-मरण अकारण नही, सकारण है। बिना कारण तो कभी कोई काम नही होता, न ही किसी जीव की उत्पत्ति होती हैं। मैंने भी

कभी किन्ही पर्यायों में, कभी किन्हीं योनियों में, कभी किन्ही गतियों भाव किये होंगे. कामना की होगी उसका फल यह मेरा जन्म हैं। मेरी इच्छा मेरी कामना का ही परिणाम हैं कि मैं जन्म ले रहा हूं। जन्म-मरण मेरी इच्छा के विरुद्ध नहीं हैं। हां इतना अवश्य है कि जन्म मरण हम जैसा चाहे वैसा तुरन्त नही घट सकता। मन कहे कि फलानि स्त्री के गर्भ से मेरा जन्म हो जाय तो तात्कालिक जन्म नही हो सकता। न तो हमें जन्म का पता है और न हमें मरण का पता हैं कि किस घर में जन्म होने वाला हैं। देवगति में अवश्य अवधिज्ञान से जान लिया जाता हैं।

जब हमें जन्म का ही पता नहीं हैं तब मरण का पता भी कैसे चल सकता हैं। आपका जन्म होता हैं मैं भी जन्मता हूं लेकिन जन्म के पहले मेरी इच्छा कभी नहीं जानी जाती कि मैं कहाँ किस गति में, किसके गर्भ से पैदा होना चाहता हूं। मेरी इच्छा मेरी स्वीकृति पर निर्भर नहीं है। जब भी हम पाते है तो अपने को जन्मा ही पाते है। यूं समझे ! हम एक मकान बनाते है, तब मकान से यह नही पूछते कि तू बनना चाहता है या नहीं। मकान की अपनी कोई इच्छा नहीं है। आप बनाते है मकान बन जाता हैं। इसी प्रकार आपसे भी तो आपकी मर्जी नहीं जानी जाती। आपका कर्म आपको जन्माता है, आप जन्म जाते है। माता-पिता तो मात्र तुम्हारे जन्म में निमित्त होते है। उनने तुमको पैदा नहीं किया है, तुन्हें बनाया नहीं है। तुम्हारे जन्म में वे कारण बने है, निमित्त बने है। यदि आपका जन्म आपकी इच्छा से हुआ है तो किसी सम्राट के यहां पैदा होगे, गरीब के यहां कौन पैदा होना चाहेगा ? यदि माता-पिता ने जन्म दिया है तो फिर काला रूप क्यो जन्मा ? लूला-लंगड़ा, अपाहिज, कानी सन्तान को जन्म क्यों देगे ? माता-पिता तो मात्र एक द्वार है, जहां से आप निकले है, जैसे किसी वैरियल से कोई बस पास हो जातो है। वैरियल यह नहीं कहता कि मैंने बस को जन्म दिया। बस ऐसा ही जन्म हमारा हो गया है।

आप स्वयं सोचे कि जिस जन्म के पहले हमसे पूछा ही नहीं जाता तो फिर उसे मेरे कहने का क्या अर्थ है ? और न ही मौत आयेगी तो पूछ कर आयेगी। न ही मौत पूछेगी कि श्रीमान ! क्या इरादे हैं ? चलना या नहीं चलना हैं ? मौत तो आपको एक सेकण्ड का भी समय न देगी। बस वह तो आयेगी और ले जायेगी ऐसी ही बिना पूछे, द्वार पर बिना दस्तक दिये बिना। बिना किसी पूर्व सूचना के, बिना आगाह किये, बस मौन खड़ी हो जायेगी और उठाकर ले जायेगी। जब जन्म-मरण स्वयं की मर्जी से नहीं घटती तब उसे अपना पागलपन नहीं तो और क्या हैं ? जिस जन्म

में मेरी मर्जी नहीं । जिस मौत में मेरी मर्जी नहीं तो उसे अपना कहने का भी अधिकार नहीं । जिस मौत में मेरी मर्जी नहीं तो उसे अपना कहने का भी अधिकार नहीं । आत्मा तो शाश्वत हैं, न आत्मा का जन्म होता हैं और न आत्मा का मरण होता हैं ।

जीसस अपनी मां मरियम के साथ बाजार गये हुए थे । एक स्थान पर धर्म चर्चा में बैठ गये एक पादरी का उपदेश चल रहा था । मां बाजार चली गई वे उपदेश सुनते रहे । मां लौटकर आई और किसी से उसने कहा मेरे बेटे जीसस से कहना मां तुम्हारा इन्तजार कर रही हैं, शीघ्र जाओ । सन्देश दिया कि मां बाहर बुला रही हैं, तब जीसस ने कहा You tell That Women No body is my mother No body is my father जाओ उस स्त्री से कहना न मेरी कोई मां हैं और न कोई मेरा पिता है । I am also Alone आई एम आलसो एलॉन मैं अकेला हूं । और जीसस वहीं बैठे रहे ।

आचार्य भी यही कह रहे हैं मैं अकेला हूं, और अकेला जाऊंगा । शरीर मरेगा, सड़ेगा, गलेगा, जवान और बूढ़ा होगा लेकिन आत्मा तो ज्यो रहेगी । जन्म–मरण के दो किनारों के बीच जीवन का पानी बह रहा है, वह भी मेरा नहीं हैं । और जो उसे अपना कहता हैं वह भी पागल है । आत्मा का जन्म–मरण नहीं होता । व्यवहार की अपेक्षा से पर्याय का, शरीर का जन्म–मरण होता हैं । व्यवहार की दृष्टि से माता–पिता है, निश्चय में तो कोई भी माता-पिता नहीं हैं । हम अकेले आये हैं, अकेले जायेंगे । आज तक का रिकार्ड है इतिहास साक्षी है कि कोई किसी के साथ नहीं गया । हां कोई मरा तो श्मशान में उसे जलाने को गये, लेकिन साथ जलने को गये है । चिता पर लेटाने को गये लेकिन साथ में लेटने को नहीं, आग लगाने को गये लेकिन आग बुझाने को नहीं हमेशा को दफनाने गये, कब्र में लेटाने को गये लेकिन स्वय लेटने को नहीं । आप कह सकते है कि जुड़वा बच्चों का जन्म देखा जाता है, तब जीव अकेला कहाँ आया ? वह साथ साथ आया है । यह सब ऊपर से दिखता है । साथ–साथ जन्म लेने वाल भाई–बहनों के विचार अलग-अलग होते हैं, व्यवहार भिन्न-भिन्न होता हैं, बोली भिन्न-भिन्न होते है । दोनों का संवेदन अलग-अलग हैं । एक बीमार रहता है दूसरा स्वस्थ रहता हैं । श्वांस दोनों की भिन्न हैं । रेल के डिब्बे से दो यात्री एक साथ प्लेटफाम पर उतर जाये तो इसका अर्थ यह नहीं हैं कि साथ-साथ आये हैं । साथ साथ जन्म लेने वालों का मरण अलग अलग हैं, भोजन एक हैं लेकिन दोनों के विचार भिन्न-भिन्न हैं । इससे विदित होता है कि जीव अकेला आता है अकेला जाता हैं और अपने सुख–दुख का भोतका

अकेला होता हैं।

न शाश्वता कर्म भवा स्वकीया

हमें किसी ने बनाया नहीं है। हम स्वयं अपने निर्माता हैं। हमारे स्वयं के कर्म ने हमें बनाया है। हमारा संसार हमने ही बनाया है, इसलिए स्वयं के पुरुषार्थ से मिटाना होगा। कोई दूसरा उसे नहीं मिटा सकेगा। बचपन यौवन बुढ़ापा सब में तुम ही कारण हो, कोई दूसरा नहीं।

क्षण भंगुर जीवन के तीन सुमन जीवन के
प्रेम की सुवास घोल नेह का बोल-बोल
खरीद लिए मोह ने अक्षय के अक्षर-अमोल
पलभर में बिक गये, महंगे क्षण जीवन के
तीन सुमन जीवन के—तीन सुमन जीवन के
चंचल भोगी मन कामन के रथ पर चढ़
नश्वर को चूम रहा प्रीति-प्यार के पथ में बढ़
भौरे सम चूस लिए पराग-कण यौवन के
तीन सुमन जीवन के
अंजली से टपक रहा, जीवन का गगा जल
मृत्यु की धूप में दरक रहा देह का महल
माटी को अर्पित है जीवन महल कचन के
तीन सुमन जीवन के, तीन सुमन जीवन के

जीवन के तीन सुमन बड़े नाजुक है, बहुत कोमल है। हाथ लगाते ही मुरझा जाते है। जैसे फूल हाथ लगाते ही मुरझा जाते है, छूईमुई का पौधा हाथ लगते है शर्मा जाता है। जीवन के फल की कामना – वासना के हाथों का स्पर्श होते ही मुरझा जाते है। जीवन के फूल को भोग का स्पर्श हो जाये तो मुरझा जाते है।

पप्पू जब छोटा होता है तब कितने प्रेम से बोलता है. उसका बोलना कितना प्यारा लगता है। उसके एक-एक शब्द कितने मधुर और प्यारे लगते है, हृदय में अमृत सा घोल जाते है, पप्पू प्रेम के शब्द बोल-बोलकर मोहित कर लेता है अपने मोह से फसां लेता है, और अक्षय आत्मा के अनमोल धन को मीठे अक्षरों का मूल्य चुकाकर खरीद लेता है। किसी स्त्री ने एक दिन पूछा था मेरा पप्पू बहुत अंगूठा चुसता है क्या कारण है? सभी बच्चे अंगूठा क्यों चुसते है?

छोटे बच्चे, पप्पू अपना ही अंगूठा पीते है, या पैर का अंगूठा

पकड़कर चूसने लगते है, हाथ का अंगूठा चूसने लगते हैं। उसका कारण यह है कि उनको ये भी चीजे मालूम पड़ती हैं कि यह कोई चीज पड़ी है उठा लो। जैसे वे कोई चीज मुंह में उठाकर डाल लेते है वैसे अपना अंगूठा मुंह में उठाकर डाल लेते है। अभी तो अपना पता नहीं हैं। यह अंगूठा अपना है इसका बोध तो कुछ महिनों बाद होगा।

बच्चा हर चीज मुंह में डालता है, क्योंकि उसके पास अभी एक ही अनुभव का स्रोत है मुंह। आपने खिलौना दिया, और उसने मुंह में डाला, क्योंकि अभी उसकी एक ही इन्द्रिय विशेष सक्रिय हुई हैं–स्वाद की रसना की। वह चखकर देखता है कि ये हैं क्या? क्यों कि बच्चे की पहली इन्द्रिय मुंह है। जो सक्रिय होती है, उसे पहला अनुभव स्तन चूसने का हुआ है। उसी अनुभव से वह सारी चीजों की तलाश करता है. वह वपने ही हाथ का अंगूठा मुंह में डालकर चूसने लगता है, शायद इस ख्याल से कि शायद कोई चीज है, जिसको चूस रहा है। बड़े होने पर, समझ का विकास होने पर उसे पता चलता है कि यह तो अपना ही हाथ है तो चूसना छोड देता हैं। और एक मजे कि बात कहूं जब बच्चा पैदा होता है तो उसे जो पहला अनुभव होता है वह मैं का नहीं, तू का है। मनोवैज्ञानिक ने इस बात की खोज की है और इस मैं और तू के रहस्य का उद्घाटन किया है। पप्पू की पहली नजर मां पर पड़ती है। स्वयं को तो नवजात शिशु देख दी नहीं सकता। वह तो दर्पण देखेगा तब पता चलेगा कि यह मेरा चेहरा हैं। पप्पू को अपना चेहरा तो पता नहीं चलता। पप्पू को पहला अनुभव माँ का होता है; तू का होता है। डाक्टर को देखता होगा, नर्स को देखाता होगा मां देखता होगा, दीवाल-मकान को देखता होगा रंग–बिरगे लटके खिलौनों को देखता होगा, लेकिन तू मैं का तो उसे पता नहीं चलता।

आप कभी ख्याल करना छोटे बच्चों के सामने दर्पण रख दो तो वे उनको भी ऐसे देखते हैं जैसे कोई दूसरा बच्चा हो। टटोलते है, थोडे चिंतित भी होते हैं, थोडे डरते भी है, क्योंकि अभी इतना विश्वास तो पैदा ही नहीं हुआ कि मैं हूं क्योंकि मैं का पता ही नहीं है। आईने के पीछे जाकर देखते हैं, सरक कर कि कोई बैठा है? किसी को न पाकर किं कर्तव्य विमूढ़ हो जाते हैं।

पप्पू को जैसे ही अपना पता चलता है, तब तू का धीरे-धीरे साफ पता होने लगता है कि कौन-कौन तू है। इस तू के कारण वह सोचने लगता है कि मैं भिन्न हूं। क्योकि मां कभी होती है, कभी

चली जाती है । वह मां को तो जाते देखता है, आते देखता है फिर धीरे-धीरे एहसास होता है कि मैं तो यही रहता हूं जब मां नहीं होती तब रहता हूं यानि तू पहले आता है और मैं बाद में आता है । इसी प्रकार आध्यात्मिक जगत मै भी तू पहले जायेगा, परिग्रह पहले जायेगा और मैं बाद में जायेगा । जब तू चला गया तो मैं ज्यादा देर नहीं टिक सकता। यह मैं तो तू की छाया की तरह ही आया था और तू की छाया की तरह चला जायेगा । इसलिए आगम में कहा है पहले बाह्या परिग्रह का त्याग करो बाद में अन्तरंग परिगृह में का त्याग करना । पहले बाहर से अपना नाता तोड़ो बाद में अन्तरग नाता जोड़ना ।

अकारण कुछ भी नही होता हं । निमित्त का उपादान पर प्रभाव पड़ता हे । भगवान महावीर कहते हैं कि प्रत्येक घटना के पीछे कोई न कोई आधार अवश्य होना है घटना का निराधार नो कुछ भी घट नहीं सकना । घटना में कोई न कोई निमित्त होता है । चाहे व्यवहार निमित्त से चाहे निचश्य निमित्त हो । उपकरण होते है, उनके सहारे के बिना घटना घट नही सकनी । चेष्टा होती है, यत्न होती है, प्रयत्न होता है प्रयास होता है. जिनको भाग्य या दैव्य कहते है। वे भी उस घटना को घटाने में सहयोगी होते है ।

घटना के पोछे कोई न कोई कारग अवश्य होता है । घटना घटती है तो अकारण नही घट सकती चाहे वह कारण प्राकृतिक हो, मानसिक हं, पौद्गलिक हो, आत्मिक हो । घटना घटती है तो कर्ता भी होगा । घटना घटती है तो बुद्धि-अबुद्धि पूर्वक घटना की चेष्टा भी होगी पूर्व संस्कार खड़े होगे ।

भूख लगी तो शरीर ने आधार बनाया । भूख उठी इसको आप शरीर की आवश्यकता समझ लेते हो । क्योंकि पहले भी इसे शरीर की आवश्यकता की तरह जाना है । अगर यह पहलीबार ही लगती तो शायद आप पहचान भी नहीं पाते कि भूख है । शायद आप समझते कि पेट में दर्द है । पहले दिन का बच्चा भी पहली ही घड़ी पैदा होते ही जो भूख पैदा होती है तो उसे अनुभव कर लेता है और गोदी में लेटाते ही मां के स्तन को पकड़कर चूसने लगता है । यह खबर है इस बात की कि यह स्तनपान बहुत बार अनेकों बार पहले भी कर चुका है । अन्यथा स्तनपान कसे करता ? पूर्व संस्कार चाहिए । पूनर्जन्म चाहिए । नहीं तो यह नवजात शिशु कैसे जानता कि भूख लगी है ? और यह स्तन मेरे भूख की पूर्ति करेगे । वह कैसे स्तन से दूध को पीता ? अगर इसने पहले कभी नहीं पिया था । तो स्तनपान

यह सिद्ध करता है कि पहले इसने दूध पिया है । सारा अतीत पीछे से काम कर रहा है । भूख लगी शरीर ने आधार दिया, संस्कार ने पहिचाना फिर आपने चेष्टा की । क्योंकि भूख लगी तो चेष्टा करनी पड़ेगी । भीख भी मांगने गये, तो भी चेष्टा करनी पड़ेगी, हाथ जोड़ना पड़ेगा, गिड़गिड़ाना पड़ेगा । दुकान गये तो भी चेष्टा करनी पड़ेगी, ग्राहकों को नमस्कार करना पड़ेगा, विज्ञापन करना । चोरी करने गये, तो भी चेष्टा करनी पड़ेगी, सावधानी से दबे पांव घुसना पड़ेगा । धर्म के अनुकूल या प्रतिकूल कुछ भी करो तो भी चेष्टा करनी पड़ेगी ।

जब आप चेष्टा करेंगे, तब आपका मन कर्ता भी होगा बिना करने वाले को चेष्टा कैसे होगी । इसीलिए नियति बाद का अर्थ है चेष्टा का अभाव । और चेष्टा का अभाव यानि कर्ता का अभाव । और ऐसा असभव है । क्योंकि कर्ता का अभाव तो कभी नहीं हो सकता । बुद्धि-अबुद्धि पूर्वक कर्ता तो अवश्य होगा । आगम का कथन है कि छटवें गुणस्थान तक जीव बुद्धि-पूर्वक कर्ता होता है तथा सातवें गुण-स्थान से दसवें तक अबुद्धि पूर्वक कर्ता होता है यानि अबुद्धि-पूर्वक राग होता है और ग्यारहवे गुणस्थान में राग रहता है क्योंकि कषाय का उपशम किया है, अभाव नहीं किया इसलिए किसी भी कवि भी कार्य के पीछे कारण तो अवश्य होता है ।

विनिमला साधिगम स्वभाव:

आत्म शुद्ध-निर्मल है, ज्ञान स्वाभावी है लेकिन वर्तमान में नहीं अभी नहीं, वर्तमान में तो आत्मा अशुद्ध ह, कषायों से अनुरंजित है । लेकिन संयम को अंगीकार लोगे तो आत्मा शुद्ध हो जायेगी और परम-ज्ञान को उपलब्ध हो जायेगी । ऐसी योग्यता आत्मा में विद्यमान है मात्र शुद्ध-बुद्ध कहने से आत्मा शुद्ध नहीं हो जाती, शुद्ध बुद्ध बनने के लिए पुरूषार्थ करना अनिवार्य होता है ।

देवता ने कहा-अज्ञानी वह नहीं तुम थे, तुम अपना ध्येय भूल गये हो, तुम्हारे भीतर छल और कपट भरा है, तुम चौबिसों घण्टे अनात्म भाव में रमण करते हो । मैं तुम्हें अभिशाप देता हूं कि जब तक तुम अपने पापों का प्रायश्चित नहीं करोगे, संयम नहीं लोगे तब तक तुम चैन से नहीं रह सकोगे, और जितना लोगों को गुमराह किया है, भ्रष्ट किया है उतना तुम भी अस्पताल में तड़फ-तड़फ कर मरोगे ।

और सुना है वह वक्ता अस्पताल में तड़फ तड़फ कर मरा । देवता ने कहा, मैं जा रहा हुं वह मूच्छित हो गिर पड़ा । उसे बीमारी ने पकड़ लिया ।

और वह दवा मांगते-मांगते मरा । अगर आत्मा शुद्ध थी, अजर-अमर थी तो फिर औषधि की क्या जरुरत थी, अस्पताल जाने की क्या आवश्यकता थी।

आचार्य देव ! कह रहे है कि स्वयं के कर्म स्वयं के भटकाते है, और स्वयं का सम्यक् पुरुशार्थ उपर उठाता है । कुछ भी अकारण नही है, संसार भी सकारण हैं और मोक्ष भी सकारण हैं । माता-पिता से मिट्टी की देह का जन्म मिल है इसमें एक राज छिपा है । तुम अगर इसे खोज लो तो अमृत पुत्र हो जाओगे जैसे दूध में घी छिपा है, तुम्हारे भीतर परमात्मा छिपा है सिर्फ उसे सम्यक् साधना से व्यक्त करना हैं । उसे व्यक्त करने वाली साधना का नाम ही ध्यान है, सामायिक है । बस इतना याद रखो अकारण कुछ भी नही ।

बस आज इतना ही

आदिनाथ दिगम्बर जैन नया मन्दिर
प्रतापगढ़ (राज.)

दिनांक २९-८-९१
गुरुवार

२७

रोगों का घर

कितनी ऊषा कितनी संध्या
तुमने गुजारी भोग में ?
कितने कुसुमों के प्याले तोड़े
काम-तृप्ति के योग में ?
जिस ग्वालिन की गगरी ऊपर
मन ललचाया वो ठीठक गई ।
जिस प्याली को हाथ बढ़ाया
अपने-आप वो छलक गई ।।
फिर भी न मन संतोष को पाया
तृप्ति भागी दूर — दूर
हाय रे भोगी तेरी किस्मत
तेरे प्रति कितनी क्रूर-क्रूर ।।
जीवन पथ पर अथ से इति तक
पलभर मिला विराम नहीं
मिली न मंजिल खोया सब कुछ
जीवन गया - बेकाम यहीं......

मूल पद्य :- यस्याऽस्ति नैक्यं वपुषाऽपि सार्द्धं, ।
तस्याऽस्ति किं पुत्र-कलत्रः मित्रैः ।।
पृथक्कृते चर्मणि रोम कूपाः ।
कुतो हि तिष्ठन्ति शरीर मध्ये ।।२७।।

हिन्दी पद्य :- जिसका न एक्य अपने निज के तनु से ।
फिर पुत्र मित्र कहता कैसे वचन से ।।
यदि चर्म को तनु से पृथक करेगे ।
आश्रय विहीन वे रोम कहां रहेगे ।।२७।।

अन्वयार्थ :-	
यस्य	– जिनका
वपुषा अपि	– शरीर के भी
साद्धम्	– साथ
न ऐक्यम्	– ऐक्य नहीं है
तस्य	– उसका
पुत्र कलत्र-मित्रैः	– पुत्र स्त्री और मित्रों के साथ
किम (ऐक्यम) अस्ति	– एक्य कैसे सम्भव है ?
चर्मणि	– चर्म के
पृथक	– पृथक कर देने पर
शरीर मध्यें	– शरीर के मध्य में
रोम कूपाः	– रोम कूप
हि	– निश्चय से
कुतः	–
तिष्ठन्ति	– रहेगे ?

भावार्थ :- जिसका शरीर के साथ भी एकत्व नहीं है उसका तो पुत्र स्त्री और मित्रों के साथ एकत्व कैसे सम्भव है चर्म के शरीर से पृथक कर देने पर रोम कूप (छिद्र) शरीर में कैसे रह सकते है ?

२७

रोगों का घर

ओम नमः सिद्धेभ्यः
धर्म प्रेमी भव्यात्माओं !

कितनी ऊषा किती संध्या
तुमने गुजारी भोग में ?
कितने कुसुमों के प्याले तोड़े
काम—तृप्ति के योग में ?
जिस ग्वालिन की गगरी ऊपर
मन ललचाया वो ठिटक गई।
जिस प्याली को हाथ बढाया
अपने-आप वो छलक गई
फिर भी न मन संतोष को पाया
तृप्ति भागी दूर दूर।
हाय रे भोगी तेरी किस्मत
तेरे प्रति कितनी क्रूर क्रूर
जीवन पथ पर अथ से इति तक
पलभर मिला विराम नहीं।
मिली न मंजिल खोया सब कुछ

जीवन गया—बेकाम यही
अब अन्तस् में कर अन्वेषण
भोग से सरक कर दूर-दूर
ज्ञान—ध्यान में डूब बावले,
मोह को करने चूर—चूर

भगवान महावीर कहना चाहते हैं यदि तुमने संसार की असलियत देख ली हो, जीवन का विश्लेषण कर लिया हो। तुम्हारी आंखों से ससार के दृश्य गुजर गये हो और वे तृप्त हो गई हो, तो अपने जीवन के बारे मे सोचो। अपनी देह के बारे में भी सोचो। तुम्हारा अपना कौन है, किसे तुम अपना कहते हो। तुम्हारा इस जग में कौन हैं ? उसके बारे में ध्यान करो, उसके बारे में सोचो ?

जिसका अपने शरीर के साथ भी एकत्व नही हैं, भला उस आत्मा का पुत्र, स्त्री और मित्र आदि से एकात्व सम्बन्ध क्या हो सकता हैं ? यदि शरीर पर स चमड़ी पृथक कर दी जाए तो उसमें रोमकूप ठहर ही कैसे सकता हैं? बिना आधार के आधेय कैस टिक सकता हैं ? एक घटना आपसे कहता हूं............।

एक युवक आत्मा-हत्या के इरादे से एकान्त स्थान में गया, वन में पर्वत पर चढ़ा। जब वह मरने के करीब जा रहा था, चट्टान पर से कूदने नदी में, एक साधु पास ही रहता था, उसने देखा और दौड़ कर उस रोक लिया। उस साधु ने रोक लिया, उस साधु ने कहा, सुनो भी मेरी भी सुनो! बात क्या है ? क्यों मरने की कोशिश कर रहे हो ?

उस युवक ने कहा, मेरे पास कुछ भी नही हैं। मैं एकदम निर्धन व्यक्ति हूं। मैंने बहुत प्रयास कर लिए, हार चुका, जीवन से थक चुका। परमात्मा मुझसे नाराज हैं, जैसे परमात्मा उसका दुश्मन हो ? परमात्मा नाराज नही तुम्मारा मुकद्दर नाराज हैं, किस्मत खराब हैं, उसने कहा, जो भी काम करता हूं घाटा ही घाटा लगता हैं, जो भी छूता हूं मिट्टी हो जाता है, सोना छूता हूं, मिट्टी हो जाता हैं, जहां जाता हूं हार मिलती हैं, जहां हाथ डालता हूं मार मिलती हैं, आखिर सहने की भी एक सीमा होती हैं, अब इस जिन्दगी से ऊब गया हूं, मेरे पास कुछ भी नही हैं, मैं मरना चाहता हूं।

उस साधु ने कहा, मरने से पहले एक काम कर जाओ, तुम्हारी गति सुधर जायेगी, पाप कट जायेंगे, तुम तो मर ही रहे हो ? मुझे थोड़ा फायदा

हो जायेगा, उसने पूछा, क्या काम है ?

साधु नें कहा, ऐसा करो, इस नगर का जो सम्राट है वह मेरा भक्त है, वह बड़ा झक्की किस्म का आदमी है, सनकी किस्म का आदमी है, अजीब चीजें एकत्र करने का उसे शौक है, मैं तुम्हारी आँखे बिकवा देता हूं, लाख रुपये कम से कम मिल जायेंगे, पहले आंख बेच दो, बाद में तुम मर जाना, वैसे भी तुम तो मर ही रहे हो, मरते-मरते मेरी मनोकामना पूर्ण कर जाओ, तुम्हारा मुझ पर बड़ा उपकार होगा, मुझे एक गुरुकुल खोलना है, जिसके लिए मुझे एक करोड़ रूपयों की आवश्यकता है, अपनी आँखे बेचने जाओं, बड़ा उपकार मानूंगा तुम्हारा, बड़ा एहसान होगा तुम्हारा मुझ पर, तुम्हारा शरीर तो व्यर्थ जा ही रहा है, अगर तुम्हारे नेत्रदान से मेरा लाभ हो गया तो —— इसमें तुम्हारी हानि भी नहीं है, अगर सम्राट मौज में आ गया तो वह तुम्हारे कान भी खरीद लेगा, दांत भी खरीद लेगा, वह सनकी किसम का है, वह इसी तरह के काम करता है, तुम चलो मेरे साथ।

वह युवक कुछ कह भी नहीं सका साधु को और साथ में चल दिया, कहता भी क्या, वह तो मरने ही जा रहा था, मगर उसने विचार किया कि मेरी आँख का एक लाख रुपया मिल सकता है। तो एकदम गरीब नही हूं मैं।

सम्राट के महल तक पहुचते-पहुंचते उसने तय कर लिया कि आँख बेचना ठीक नही है। मरने की तो भूल ही गया, साधु भीतर गया और सम्राट को समझा बुझाकर बाहर ले आया। युवक को दिखाया सम्राट ने कहा कि ठीक है, युवक से कहा, तुम्हारी आंखे बहुत सुन्दर हैं ये एक लाख रूपये और मुझे दे दो अगर तैयार हो तो मेरे आदमी आँखे निकालने को तैयार है।

उस युवक ने कहा, आपने मुझे क्या समझ रखा है ? क्या मैं मूर्ख हूं पागल हूं आंखो को बेचूंगा. सम्राट ने कहा, अगर ज्यादा रुपये चाहिए हो तो बसा कहो। दो लाख कहो, तो दो लाख दूं जितने मांगोगे उतने रुपये दूंगा।

साधु ने सम्राट को राजी कर लिया था कि ये जितना मांगे उतना देना युवक ने कहा, आप कैसी बात करते हैं। आंखो के अभाव में सम्पत्ति का क्या मूल्य। आंखे ही तो मुख्य अंग है और तुम कहते हो कि बेच दो। ऐसा तो असम्भव हैं. आँखे देने के बाद मेरे पास बचेगा भी क्या ? सम्राट ने कहा, तो बीस लाख दे दूं। उसने कहा, आप कैसी बात करते है, भला कोई अपनी आँख भी बेंचता है ?

सम्राट ने कहा डरो मत। अगर और ज्यादा रुपये चाहिए हो

तो कहो। ये आंखे बहुत प्यारी है। युवक ने कहा, मैं किसी भी कीमत पर अपनी आंखे नहीं बेचुंगा। सम्राट ने कहा तो एक काम करो, कान मुझे दे दो। पच्चीस लाख रूपये तुम्हें देता हूं। उसने कहा, नहीं। एक करोड़ रूपये देता हूं, पाँव मुझे दे दो। युवक झूझला उठा और साधु की तरफ मुड़कर कहा, क्या आप मुझे मारना चाहते हैं। आप साधु होने के लायक नहीं हैं। आप हत्यारे दिखाई पड़ते हैं।

साधु ने कहा, तुम तो मरने ही जा रहे थे, इसमें तुम्हारा नुकसान क्या हैं? सम्राट ने कहा, खैर कोई बात नहीं, मैं दांत खरीदने को तैयार हूं, कहो क्या इरादा हैं तुम्हारा ? और तुम तो मरने ही जा रहे हो।

उस युवक ने कहा, मैं बेचना नहीं चाहता। कोई आदमी होश में अपनी आंखे बेचेगा ?

साधु ने कहा, भाई ! तुम ही तो कह रहे थे, तुम्हारे पास कुछ हैं ही नहीं। तुम तो मरने जा रहे थे। उसमें आँख भी मरती, कान भी मरते, पांव भी मरते। हाथ भी मरते, दांत भी मरते। सब मर जाता। और तुम कहते हो तुम्हारे पास कुछ भी नहीं हैं। और जब एक करोड़ मिल रहे आंख कान के। अभी अपना और सामान वेचो दो-चार करोड़ दिलवा दूंगा।

वह युवक तो क्रोध में भड़क उठा। उसने कहा, तुम हत्यारे हो, तुम साधु नहीं हो। तुम साधु नही हो। तुम मुझे मारकर धन कमाना चाहते हो।

साधु ने कहा, फिर मरने के बाबत क्या ख्याल हैं ? उसने कहा अब मैं किसी भी हालत में मर नहीं सकता। आज मुझे पहली दफा पता चला कि मेरे पास आँखे हैं, जिन्हें मै लाखों में नहीं बेच सकता। लेकिन आँखों के लिए मैंने कभी परमात्मा को धन्यवाद नहीं दिया, उनका उपकार नहीं माना। मैं रोना ही रोता रहा कि मेरे पास यह नहीं है, वह नहीं हैं। मैं शिकायत ही करता रहा। अभी अपने पुण्य को भी धन्यवाद न दे सका, हमेशा उसे हेय कहता रहा। मेरी जिन्दगी शिकायतो की एक लम्बी कहानी हैं। तुमने मुझे समय पर चेता दिया, समय पर जगा दिया, समय पर सावधान कर दिया। अन्यथा आज यह शरीर..................?

उस साधु ने कहा, इसलिए मैं तुम्हें यहाँ ले आया था। अब तुम्हारी मर्जी जो तुम्हें करना हैं करो ! लेकिन इतना याद रखो मैं हत्यारा नहीं, हत्यारे तो तुम हो, जो कामना वासना का विष पीकर शरीर के साथ दुर्व्यवहार कर रहे हो, शरीर को समाप्त कर रहे हो, आत्मा के गुणों का घात कर रहे हो।

वह युवक साधु के चरणों में गिर पड़ा और क्षमा याचना करने लगा। आपने मुझे नया जीवन दिया, नई रोशनी दी, नई दिशा दी, पुनः जीने की कला सिखायी। आपका यह उपकार मैं कभी नहीं भूल सकता और वह सिसक सिसक कर रोने लगा। आसूओं से उसने साधु के चरण पखारे। आप जल से ही साधु के चरणों का अभिषेक कर ले तो बहुत हैं।

मैं भी आपको सावचेत करने आया हूं, जगाने आया हूं कि आप भी अपने शरीर की कीमत करे। देह का मूल्यांकन करे। देह के स्वर्ण-पात्रों को परखो। इसमें बिष नहीं अमृत भरो।

उस युवक की कहानी और आपकी कहानी एक ही है। आप ही है वह युवक जो शरीर के साथ दुर्व्यवहार करते आ रहे है। प्रतिपल आत्महत्या कर रहे हैं, मात्र फांसी लगाकर मरना, जलकर मरना, जहर खाकर मरना ही आत्म-हत्या नहीं हैं, शरीर के साथ गन्दा व्यवहार करना, इसका दुरुपयोग करना, भोगों में फंसना ही आत्मा की हत्या करना है।

वह युवक साधु से कह रहा था क्या तुम हत्यारे हो, जो मुझे मारना चाहते हो ? मरने के बाद धन मेरे किस काम का ?

मैं कहता हूं कि वह साधु हत्यारा नहीं, युवक हत्यारा हैं और उस युवक की भांति आप सब हत्यारे हैं। कोई धन की लालसा में, कोई पद की लालसा में, कोई रुप की लालसा में इन्द्रियों को बेच रहे है, उन्हें भोगों का दास बना रहे है। क्या यह इन्द्रियों की हत्या करना नहीं है। आत्म हत्या ही हत्या नही देह के साथ दुर्व्यवहार करना भी हत्या हैं। आप सब कषायी है क्योंकि कषायों से भरे हैं। और जानते है कषाये किसे कहते हैं ? 'यः हमन्ति-ध्वनन्ति-कषन्ति इति कषायाः'। जो आत्मा को कसती हैं, धुनती हैं, बरबाद करती है वह कषाय कहलाती हैं। और आप कषाय सहित हैं।

उस दिन से युवक की जिन्दगी बदली। शिकायत समाप्त हुई जीवन का नया अध्याय प्रारंभ हुआ। प्रार्थना प्रारभ हुई। स्वयं के प्रति ध्यान जाग्रत हुआ। उस दिन से वह प्रतिदित मंदिर में जाकर परमात्मा को धन्यवाद देने लगा कि हे प्रभु ! आपकी मेरे परकितनी अनुकंपा हैं। तुमने मुझे आँखे दी। जो मैं दस लाख में भी नहीं बेच सकता था। दस लाख क्या एक करोड़ में भी नही बेच सकता था। तुमने मुझे इतना दिया कि मेरी पात्रता भी नही थी, तो भी दिया। बस इतना ही जानता हूं तुमने सब कुछ प्रेम से ही दिया होगा, वात्सल्य से ही दिया होगा, करुणा से ही दिया होगा। मुझे और कुछ नही चाहिए। जो दिया वो ही क्या कम हैं ?

साधु ने युवक से इतना ही तो कहा था कि मैं आश्रम बना रहा हूं,

मूल पद्य :- संयोगतो दुःख मनेक–भेदं; ।
यतोऽश्नुते जन्म वने शरीरी ॥
ततस्त्रिधाऽसौ परिवर्जनीयो ।
यियासुना निर्वृतिमात्मनीनाम् ॥ २८ ॥

हिन्दी पद्य– बाह्य पदार्थ संयोग के दुःख अनेक ।
पाता हैं जीव बनकर फिर एक अनेक ॥
यदि चाहते परम् पद जो सौख्य कारी ।
त्रियोग से तजो तुम भव की बिमारी ॥ २८ ॥

अन्वयार्थ :-

यतः	– क्योंकि
शरीरी	– प्राणी
जन्म वने	– संसार रुपी वन में
संयोगतः	– संयोग के कारण
अनेक विधम्	– अनेक प्रकार के
दुःखम्	– दुःख को
अश्नुते	– पाता है
अतः	– इसलिए
आत्मनीनाम्	– अपनी कल्याणकारिणी
निर्वृतिम्	– मुक्ति को
यियासुना	– प्राप्त करने की इच्छा वाले पुरुष को
असौ	– वह संयोग
त्रिधा	– तीनों प्रकार से
परिवर्जनीयः	– परित्याग कर देना चाहिये ।

भावार्थ :- बाह्य पदार्थों के संयोग से अर्थात् उनमें ममत्व भाव स्थापित करने से हीं यह प्राणी भव कानन में अनेक प्रकार के दुःखो को पाता है इसलिये अपनी मुक्ति के इच्छुक जनों को चाहिए कि वे मन-वचन काय से समस्त बाह्य पदार्थो के ममत्व का परित्याग करें ।

मूल पद्य :- सर्वं निराकृत्य विकल्प-जालं ।
संसार-कान्तार-निपात हेतुम् ॥
विविक्तमात्मानमवेक्ष्य माणो ।
निलीयसे त्वं परमात्म तत्वे ॥ २९ ॥

हिन्दी पद्य- ंसार सागर निपात विकल्प जाल ।
इनको तजो बनो तुम दीन द ा न ।
निज से अभिन्न लखना नि ज आत्मा को ।
परमात्म लीन होकर शुद्धात्मा हो ॥ २९ ॥

अन्वयार्थ :- संसार कान्तार निपात- संसार रुपी वन में पतन के

हेतुम्	– कारणभूत
सवम्	– सभी
विकल्प जालम्	– विकल्प जाल को
निराकृत्य	– हटा करके
विविक्तम्	– एक मात्र
आत्मानम्	– आत्मा को
अवेक्ष्यमाणः	– देखते हुए
त्वम्	– तुम
परमात्म तत्वे	– परमात्म तत्व में
निलीयसे	– लीन रहो

भावार्थं :- संसार मन में परिभ्रमण कराने वाले सर्व विकल्प जालों को दूर करके एकमात्र सबसे भिन्न अपनी आत्मा को देखते हुए हे आत्मन् ! तुम परमात्म तत्व में लीन हो ।

लम्बा चाकू बनाया जा सकता है।

एक मनुष्य के शरीर के भीतर इतना मैग्नीशियम होता है जिसके द्वारा आधे दर्जन-फ्लेश फोटो तैयार किये जा सकते है।

एक मनुष्य के शरीर के भीतर इतना पोटेशियम होता है जिससे एक खिलौना-तोप का नष्ट किया जा सकता है।

एक मनुष्य के शरीर के भीतर इतनी गंधक होती है कि जिससे एक कुत्ते के पिस्सू मारे जा सकते हैं।

एक मनुष्य के शरीर के भीतर इतना फॉसफोरस होता है कि दियासलाई की बीस डिब्बियां तैयार हो सकती हैं।

एक मनुष्य के शरीर के भीतर इतनी चर्बी होती है जिससे साबुन के एक दर्जन डण्डे बन सकते हैं।

एक मनुष्य के शरीर के भीतर इतना तांबा होता है जिससे एक नया पैसा तैयार हो सकता है।

एक मनुष्य के भीतर इतना पानी होता है कि एक छोटा बच्चा पप्पू आसानी से स्नान कर सकता है।

यह शरीर की स्थिति है। आपके शरीर में इतना मेटेरियल है, जिसकी कीमत मुश्किल से पच्चीस - पचास रुपये होगी। और उसकी सुरक्षा में आप लाखों रुपया व्यय कर देते है। यह शरीर तो एक मुठ्ठी राख है इससे ज्यादा नही है। जो यह पाँच छह फिट का शरीर दिख रहा है, जिस दिन इस पिंजड़े में से प्राणों का पंछी उड़ जायेगा, ज्योति विदा जायेगी तो अर्थी सजेगी, श्मशान तक जायेगी, चिता पर चढ़ेगी, अग्नि लगेगी और तुम्हारी देह धू-धू करके जल जायेगी अन्त में एक मुठ्ठी राख हो जायेगी। शरीर तो प्रतिक्षण मौत के मुंह में रखा हुआ है, क्या उसे बचाने की कोशिश करते हो। आत्मा को बचाने का श्रम करो जो शाश्वत है। देह के कैद से उसे मुक्त करो। जिसके साथ तुम्हारा जरा भी परिचय नहीं है, जिसे तुमने आज तक पहिचाना भी नहीं है। स्वय के सत्य के प्रति अनजान हो अब उससे परिचय करो। आखिर कब तक भटकोगे भोगों की आश में। उनका कोई अन्त नहीं है।

> कितनी ऊषा कितनी संध्या तुमने गुजारी भोग में ?
> कितने कुसुमों के प्याले तोड़े काम तृप्ति के योग में ?

पता नहीं जीवन में कितनी सुबह गुजर चुकी है और कितनीं बार

सूरज उग चुका है और ढ़ल गया है । कितनी संध्याये आई और चली गई । फिर भी जीवन में प्रकाश नहीं उतरा । पता नहीं तुमने कितनी रातें कामना की शय्या पर गुजारी है और कितने प्याले तोड़कर फेंक दिये । पता नहीं कितनों की अस्मत लूट चुके हो और कितनी दुल्हनों के घूंघट उघाड़ चुके हो । जब मन में कामना-वासना का सागर लहराया, काम का तूफान उठा और तुमने क्या-क्या नहीं किया ? वासनाओं की पूर्ति के लिए तुमने शादी की, दो देहों का मिलन हुआ, दो हड्डीयाँ आपस में टकरायी, दो कंकालो का मिलन हुआ, आपस में टकराये, घर्षण हुआ, कुछ देर को हिले डूले, क्षणिक सुख हुआ लेकिन वह सुखाभास था । सुख नहीं था, सुख का आभास था । अगर दैहिक मिलन ही सुख का कारण होता तो तीर्थंकर, राम तथा पांडव आदि सन्यास क्यो ग्रहण करते ? काम की अग्नि में आहुति देते-देते ऊब गये, आत्मा झुलस गई, पाया कुछ नहीं मात्र आग ही हाथ आई तो सन्यास के नीर से कामाग्नि का शमन किया।

जिस ग्वालिन की गगरी ऊपर मन ललचाया वो ठिठक गई
जिस प्याली को हाथ बढ़ाया वो अपने-आप है छलक गई

जब-जब मन में वासना उठी; कामना उठी, इच्छाएं पैदा हुई तो उसका शमन करने दौड़ पड़े । जहाँ भी नजर दौड़ाई रुप सी अप्सराये नजर आई और तुमने उन्हें अपनी कामना का शिकार बनाया । नजर मिलते ही वे अपने-आप ठिठक गई । जिस प्याली को हाथ-बढ़ाया वो अपने आप छलक गई । प्याली का रस लिया, उसे छककर पिया, प्यास बुझाई और फेंक दिया । बेचारी प्याली प्यासी निगाहों से देखती रह गई । प्यास शमन के सम्मान का उसे पुरस्कार अपमान-अपकार मिला । फिर भी मन तृप्त न हुआ, मन संतोष को उपलब्ध न हुआ । तुमने पद चाहा पद मिला, धन चाहा धन मिला, मकान चाहा मकान मिला, रुप चाहा रुप मिला, सम्मान चाहा सम्मान मिला इसके बावजूद भी मन तृप्त न हुआ । संतोष को प्राप्त न हुआ । क्योंकि ये सब विनाशिक है, क्षण—भंगुर हैं, मिटने वाले है, फिर इनसे कैसा नाता ? ये पर तृप्ति में कारण नहीं, बल्कि ये तो अग्नि में ईन्धन का काम करते है, और उकसाते है । कामना दौड़ाती है, तृष्णा भटकाती है । तृष्णा तो एक दुष्पुर गड्डा है उसे कितना ही भरो खाली का खाली रहता हैं । बल्कि जितना भरो उतना रिक्त होता जाता है । तृष्णा का गड्डा भरने की बहुत ही चेष्टा कर ली अब एक ही चेष्टा बाकी हैं । एक ही

पुरुषार्थ, एक ही श्रम बाकी है। इस देह के मंदिर के देवता से पहिचान बाकी है। देह की ज्योति का दर्शन बाकी है। वह ज्योति अकेली है। कोई सगी साथी नहीं है। अभी ज्योति जल रही है, प्रकाश है स्वयं को पहिचान लो, अपने पास लौट आओ, अपने सत्य के पास आ जाओ। ध्यान को, सामायिक को उपलब्ध हो जाओ तो जीवन के सारे रहस्य खुल जायेंगे। तुम्हारे ये भवन नही मरघट हैं। अगर जीवन के सत्य का देखना चाहते हो तो जाओ श्मशान में और रात–बिताओ ध्यान सामायिक करो। जीवन की असलियत का ज्ञान करो। बुद्ध अपने शिष्यों को मरघट में ध्यान करने पहुंचाते थे। जाओ वही बैठो और देखो जलती हुई चिताओं को। तब तक देखते रहो जब तक कि तुम्हें अपने स्वयं की देह जलती दिखाई न पड़ने लगे। जिस समय तुम्हें ऐसा लगे कि मैं स्वयं ही चिता पर जल रहा हूं। जब तक स्वयं को जलते न देख लो, तब तक लौटकर मत आना मरघट से। लोग अर्थियां लेकर आते, चिता पर धरते आग लगा देते, रोते-धोते। शरीर जल जाता धूं – धूं करके घास-फूंस जैसा, राख पड़ी रह जाती, हड्डियां शेष बच जाती, जंगली जानवर आते घसीट कर ले जाते. कुत्ते-भेड़िये आते शव को खाते, मानव देह की दुर्दशा हो जाती। उसे देखते-देखते लगता स्वयं का ध्यान आता कि ऐसा ही तुम्हारे साथ भी होने वाला है। आज किसी का नम्बर आया है, कल तुम्हारा भी आ जायेगा। कितना समय लगेगा काल को आने में।

माखन चोरी करके तूने
भार कम कर दिया ग्वालिन का
लेकिन मेरे श्याम बता-तू
इस रीति गागर का क्या होगा ?
पल–पल चली श्वांस की मथनी
तब चिकनाई ऊपर—आई
खून—पसीना एक हुआ तो
श्रम से चुपड़ी इस मटकी पर
यह मटकी है भर—पाई"
नजर तुम्हारी क्यों अटकी
ओ अनहोने आज बता तू
मेरी मटकी क्यों—पटकी ?
सहमी सकुची शरमाई
कैसे लाज बचा निज की ?

तुम तो निष्ठुर होकर आये
मेरी मटकी मा भटकी ॥
रीति गागर लेकर के मैं
कैसे अपने घर को—जाऊं ?
भरदे मेरी रीति गागर
या टुकड़े—टुकड़े करके जाऊं ?
व्यर्थ क्यों रोती अोरी पगली !
अरिहंत नाम को जप ले तू
रीति गगरी तुरन्त भरेगी
मधुर मिठास को चख ले तू ॥
प्रभु नाम के चमत्कार से
रंग बदलेगा मटकी का ॥
सदाचार के नवनीतों से
सुधरेगा जीवन भटकी का ॥

अभी भी कुछ नही बिगड़ा अरिहंत का नाम जप ले तू। हे आत्मन् व्यर्थ क्यों रोती है तू । बस इतना ही ख्याल पैदा हो जाए कि आज तक किसकी मटकी शाश्वत रही ? देर अदेर सबकी फूटी हैं । ग्वालिने कहती है कृष्ण से, हे कृष्ण ! हमारी मटकी में नवनीत देखते ही क्यों दौड़े चले आते हो ? अगर इतना ही माखन खाने का शौक हैं तो सदाचार की गाये पालो और आत्मा का अमृत आत्मा का नवनीत चखो। क्या परायी गागर पर नजर डालकर चोरी करते हो, पाप कमाते हो ? भोगी मन कृष्ण है, और विषय भोग मक्खन हैं। जो यौवन की मटकी में नवनीत के समान भरे हैं। श्याम यानि काल मौत सांसों का नवनीत खाने देह की मटकी को फोड़ देता है।

गागर से यानि शरीर से हमारे पुराने सम्बन्ध है। अभी तक गागर को ही, शरीर को ही जाना हैं, भोग का ही स्वाद चखा हैं। यौवन की मटकी को देखकर, काम का, भोग का मक्खन खाने टूट पड़े हैं। क्योंकि गागर से हमारी पहिचान हैं। उसका ही हमें ज्ञान हैं, उसका ही हरपल ध्यान हैं। एक दिन आता हैं काल और एक हल्की सी कंकरी मारकर जीवन की गागर को तोड़ देता हैं, लूट लेता हैं जीवन के यौवन के मक्खन को।

जो जन्म-जन्म से मथकर एकत्र किया, श्रम कर-कर के जो एकत्र

किया, पूजा-मन्नत करके जिसे प्राप्त किया, नौ माह गर्भ की पीड़ा के उपरान्त जिसे पाया। तिल-तिल करके जो बड़ा वही तो एक दिन लूट जाता है, जीवन की गागर टूट जाती है।

टूटी मटकी यानि बुढ़ापा मन को बड़ी पीड़ा देता है, क्योंकि इसके साथ हमारा तादात्म्य सम्बन्ध जो है। अब मैं कहता हूं कि टूटी मटकी को भूलो और जिसने मटकी फोड़ी है, उठो उसे खोजो, उस दिशा की ओर चले, और उसे अपने वश में करें। बहुत देख लिया यह जीवन, बहुत जी लिए इस टूटी मटकी के साथ। यह बात तो एकदम साफ है कि यहां हर ग्वालिन की मटकी भोग रुपी कृष्ण फोड़ जाते हैं। कितने ही संभल कर निकलो, नजर बचाकर चलो, आखिर उसकी नजर पड़ ही जाती है। माखन चोरी हो ही जाता है। इसलिए मटकी को बचाने का एक ही उपाय है कि अरिहन्त नाम जपो, अरिहन्त का स्वाद चखो तो टूटी मटकी जुड़ जाये। गया नवनीत वापस आ जाये, क्षण-भंगुर जीवन शाश्वत हो जाये, अमर हो जाए।

जो जोड़ से बना है, संयोग से बनता है, जो पदार्थों से मिलकर बनना है: एक दिन वह पिघल जाता है, टूट जाता है, बिखर जाता है। मकान ईंटों के जोड़ से बनता है, चूना-मिट्टी के संयोग से बनता है इसलिए एक दिन जीर्ण-शीर्ण हो जाता है, खण्डहर हो जाता है। दो का संयोग है जन्म और मरण का योग है इसलिए यह जीवन भी बिखर जायेगा। उस अखण्ड को खोजो, जो अविनाशी है. उस अचिन्त्य को खोजो जो अविनश्वर है, अजोड़ है, कहीं खण्ड नहीं है। उस तक मौत नहीं पहूंचती, काल उसका स्पर्श नहीं कर पाता, मृत्यु उस पर आक्रमण नहीं कर पाती। उस अजोड़ को ध्यान-सामायिक से खोजो। शरीर में तो जोड़ ही जोड़ है, छिद्र ही छिद्र है। शरीर तो छलनी के समान है, इसमें तो कुछ जरा भी ठहरता नहीं है। सर्दी-गर्मी-वर्षा किसी को भी सहन नहीं कर पाता।

> ऐ रिसने वाले जर्जर घट तुझसे कैसे नाता जोड़ू
> मैं क्यों न त्याग चलूं ? मैं क्यों न त्याग चलूं ?
> जो नीर परस से गले, पवन के झोके से घबड़ाये
> जिसकी क्षण-भगुर सीमा में खग बन्दी हो जाये
> मैं मुक्त गगन का पंछी क्यों नीड़ से नाता जोड़ूं ?
> मैं क्यों न त्याग चलूं ?

मैं भूल गया था राह मोक्ष की, भोगों के इस मेले मे
मैं भूल गया था पावन पथ मोह के इस रेले में
अब पता चल गया हैं मुझको, मैं भी क्यों न नाता जोड़ूं
मैं क्यों न त्याग चलूं ?
मैं चलूं तुम्हारे पद-चिन्हों पर जिनवाणी पाथेय रहे
जो लक्ष्य नयन साधे हैं वो हरदम गेय रहे
मर्त्य करो से, मर्त्य-सरो से मोह को अपने भेद चलूं
मैं क्यों न त्याग चलूं ?

आपके शरीर की औकात कितनी है ? उसकी क्षमता क्या है ? हल्का नीर का परस होते ही गलने लगता है, शीत वायु से घबड़ाता है। देह की कारा में असीम बन्दी बना हुआ है। क्या देह से स्नेह करते हो ? अरे आत्मा से प्रीति करो, प्रेम करो जो शाश्वत हें तुम्हारी है। देह के घोंसले में आत्म-पंछी कैद है। मुक्त होना उसका स्वभाव है। अन्तावाश का मुक्त पंछी है आत्मा। अगर देह का मूल्यांकन करना आ जाये तो पंछी मुक्त हो सकता हैं।

उस युवक ने कहा, यह जिन्दगी, यह तन बहुमूल्य है इसे किसी भी किमत पर बेचने को राजी नहीं हो सकता। क्या यह भी सच नहीं है कि आपने इसे कभी धन्यवाद नहीं दिया। इसकी उपयोगिता का मूल्याँकन नहीं किया। इसका कभी भी सदुपयोग नहीं किया।

आप जरा सोचिये ! अगर आपके पास ये आंखे नहीं होती तो आप रूप का अववोकन कसे करते ? सौन्दर्य का पान कैसे करते ? काश तुम्हारे पास आंखे न होती तो क्या आप यह हरियाली देख पाते, क्या खिलते फूल देख पाते ? क्या सन्तों को देख पाते ? क्या परमात्म मूरत को देख पाते ? आँख होकर भी क्या तुमने खिलते फूल देखे हैं। चाँद-तारों पर नजर दौड़ाई है ? क्या सन्तों को देखा है ? क्या परमात्मा की मूरत देखी है ?

अन्धे होते तो रोते-कि हे प्रभु तूने मुझे रोशमी क्यों नहीं दी ? मेरा क्या पाप हैं ? तूने मुझे पृथ्वी का सौन्दर्य देखने का मौका क्यों न दिया ? मैं आकाश में बने इन्द्र-धनुष्य को देखने को तरसता हूं मैं सूर्य का प्रकाश देखने को तरसता हूं, मैं सन्तों के दर्शन करने को तरसता हूं। हे परमात्मा ! तूने मुझे अन्धा क्यों बनाया ? तूने मेरी रोशनी क्यों छानी ? यह तुम शिकायत जरुर करते। शिकायत किये बिना आप न रहते।

बहरों से पूछो, तो रोते हैं कि हमने आज तक आवाज नहीं जानी, ध्वनि नही सुनी, संगीत नहीं सुना। गीतों का आनन्द नहीं जाना। सन्तों की वाणी नहीं सुनी, परमात्मा के भजन नहीं सुनें। माता-पिता की आवाज भी नहीं सुनी। पता नहीं आवाज क्या है ? संगीत क्या है ?

गूंगे से पूछो, बोल नहीं सकता, कितना रोता है, कितना तड़फता है भीतर ही भीतर कि काश ! मैं बोल सकता होता। मुझे भी कुछ कहना है, कुछ बोलना है, गीत गुनगुनाना है, मुझे भी कुछ भाव व्यक्त करना है। परमात्मा पर मेरी भी गहरी श्रद्धा है, परमात्मा से मेरा गहरा प्रेम है। मैं भी उनकी प्रशंसा करना चाहता हूं, तुम्हारे गीत गाना चाहता हूं। हे प्रभु ! तूने मुझे इतना मूक क्यों बनाया ? इतना दीन क्यों बनाया ? और यह भी सच है कि आपने अपनी वाणी के लिए परमात्मा को कभी धन्यवाद नहीं दिया।

आचार्य देव कहना चाहते हैं कि देह की इस धूल को धन्यवाद दो कि इसने तुम्हे शिव का द्वार खोलने का मौका दिया है। अगर यह शरीर न होता तो तुम साधना कैसे करते। शरीर हैं तभी तो सुख-दुःख का ख्याल आता हैं, और परमात्मा ध्यान की ओर कदम बढ़ते हैं। शरीर मिला है-इसका सदुपयोग करो, इसके भीतर अमृत भरा हैं-जो खोजो। बिमारी के आलय में परम स्वास्थ्य छिपा है उसे खोजो। रोगों के घर में परम स्वास्थ्य छिपा हैं ढूंढो उसे।

बस आज इतना ही

आदिनाथ दिगम्बर जैन नया मन्दिर
प्रतापगढ़ (राज.)

दिनांक ३०-८-९१
शुक्रवार

२८-२९
दुःख देने आये हैं

शादी में बैण्ड बाजे
इसलिए बजवाते है
उनके शोरगुल में
सत्य-आवाज छुपाते हैं
किसी ने पूछा
बैण्ड-बाजों से
लोग तुम्हे क्यों बजा रहे है ?
कहा बाजों ने
ये हमें बजा रहे है
हम भी इनको जता रहे हैं
जो आ रही हैं डोली में
वो इन्हे जीवन भर बजायेगी
इसीलिए हम शोर मचा रहे है ॥

मरने के पहले ये आँखे मुझे दे दो । तुम्हारा शरीर अगर फालतू हैं, बेकार हैं, काम का नही हैं तो मुझे दे दो । मैं भी आपसे कहता हूं आप भी अपना यह शरीर मुझे दे दें । ताकि मैं इसमें अनन्त गुणों का एक आश्रम बना सकूं । प्रत्येक इन्द्रिय को ब्रह्म की शिक्षा दे सकूं । इस शरीर के आंगन में परमात्मा के अनन्त गुणों का उपवन बसा सकूं । आत्म-गुणों की सुरभित कलियाँ खिला सकूं । जीवन बगिया को महका सकूं ।

उस युवक की समझ में आ गया । सामने बैठे युवको की समझ में आ जाये तो अच्छा । वह कहने लगा, अब मैं वापस लौटता हूं, आत्म-हत्या नही करुंगा । तुमने मेरी प्रज्ञा के दरवाजे खोल दिये। तुमने मेरे भीतर ज्ञान का दीपक प्रज्वलित कर दिया । अभी तक मैंने इसके साथ दुर्व्यवहार किया । अपनी इन्द्रियों का दुरुपयोग किया । मैंने इनकी महत्ता को नही जाना । हमेशा इसे वीभत्स कहा, गन्दा कहा और विषय भोगों मे लगाया, आज मैं अपने अपराधों की क्षमा मांगता हूं ।

आचार्य देव कहना चाहते हैं कि यह शरीर भी तुम्हारा नहीं है। पुण्योदय ने उधार दिया है; इसका सदुपयोग करना सीखो । यू समझ इसे ....तुम्हारी मुठ्ठी में एक रत्न रखा है, अगर इसका सदुपयोग करके भवन-मकान, महल बना लोगे तो जीवन की सुरक्षा हो जायेगी और मुट्ठी में रखकर सो जाओगे तो रत्न गिर जायेगा । रात नींद लगेगी, मुठ्ठी खुल जायेगी, रत्न गिर जायेगा और कोई लेकर चला जायेगा । यह जो वीभत्स गन्दा शरीर मिला है, इसका उपयोग कर लोगे तो अजर-अमर हो जाओगे।

करो अन्वेषण, खोजो इस शरीर के भीतर क्या छुपा है । शरीर के गर्भ में कौन-कौन से पदार्थ छुपे हैं । यह शरीर क्षण-भगुर है लेकिन अपने भीतर शाश्वत को छिपाये हुए हैं । यह तो निश्चित ही छुटेगा । यह तुम्हारा नहीं हैं, इसके छुटने के पहले इसे पहिचान लो भेद-विज्ञान कर लो शरीर और आत्मा के बीच भेद की रेखा खींच लो । देखो इस शरीर के भीतर क्या हैं ? देखो यह कितना विचित्र है, प्रकृति ने खूब तूलिका चलाई हैं। धोखा खा जाओगे, ऐसा इन्तजाम किया हैं । हड्डी-मांस मज्जा के वीभत्स ढेर पर बड़ी सुन्दर चमड़ी चढ़ा दी है । यह व्रणों से युक्त है. रोगों का घर हं । इसमें घाव ही घाव है, मवाद ही मवाद भरी हैं । रोग ही रोग भरे हैं । भद्रबाहु संहिता में लिखा है मानव शरीर में पाँच करोड़ .... रोग विद्यमान रहते हैं । सब नयन पांवडे बिछाये बैठे हैं कब बाह्य पदार्थ का निमित्त मिले और म प्रगट हो जायें एक रोग नहीं मिटता की दूसरा पैदा हो जाता है । एक बीमारी हटती हीं

कि दूसरी पैदा हो जाती है जरा सा निमित्त मिलता है और नया रोग पैदा हो जाता है, किसी को हार्ट-अटेक, किसी को कैंसर हो जाता है, किसी को बुखार चढ़ जाता है, किसी को पिलिया हो जाता है। बीमारी कहीं बाहर से नहीं आती है, भीतर से ही आती है। शरीर तो कभी भी स्वस्थ नहीं रहता फिर इसके साथ कैसी प्रीति इसके साथ जितना प्रेम जतवाते हो, जितना मधुर व्यवहार करते हो उतना ही यह शरीर धोखा देता है ! जिस शरीर के साथ जीवन भर भोग का व्यापार चलता है वही तुम्हारे साथ दगा करता है शरीर तो शिक्षा देने आया है। इससे कुछ पाठ सीखो, शिक्षा ग्रहण करो। देवो का शरीर सुन्दर होता है, सप्त - धातु से रहित होता है, रोगों से रहित होता है, लेकिन वह सयम के योग्य नहीं होता है। और मनुष्य का शरीर सप्त—धातु सहित होता है, मल से भरा होता है, वीभत्स होता है तो भी संयम के योग्य होता है। सोना सुन्दर होता है लेकिन सोने की भूमि पर बीज नहीं हो सकते। मिट्टी काली होती है कुरुप होती है लेकिन बीज बोने पर हरी-भरी हो जाती है। लेकिन गन्दा शरीर भी पवित्र हो सकता है। आचार्य कह रहे कि..........

जिस शरीर का आत्मा के साथ तादात्म्य सम्बन्ध नहीं है तो फिर पुत्र-कलत्र, घर—मकान ये कैसे तुम्हारे हो सकते है ? शरीर तो अति निकट है और बीवी-बच्चे तो दूर हैं, बाहर है, वे कैसे तुम्हारे हो सकते है। जरा संसार की असारता का ज्ञान तो करो। खीचों अपनी रंग —बिरंगी सुनहरी चमड़ी को, उठाओ अपनी गोरी-काली चमड़ी का और देखो भीतर क्या बह रहा है। क्या कोई सुगन्धित पदार्थ हैं, क्या कोई पवित्र वस्तु हैं ? जरा अपने घुंघराले काले बालों को तो देखो, जिनको सवारते हो, जीवन भर जिनकी सुरक्षा कर रहे हो। यदि वही सिर का बाल खाते समय भोजन में आ जाये, तो भोजन का सारा रस समाप्त हो जाता है।

पाश्चात्य देशों के डॉक्टरों का कहना है कि मनुष्य का शरीर तो रोगों का घर है, फिर भी मनुष्य इतने दिनों तक कैसे जिन्दा है ? यह देखकर हम सबको आश्चर्य होता है। शरीर के संदर्भ में वैज्ञानिकों ने अन्वेषण किया और बताया कि एक मनुष्य के भीतर इतनी शक्कर होती है जिससे सौ प्याली चाय मीठी हो सकती है।

एक मनुष्य के शरीर के भीतर इतना चूना होता है कि एक पचास ग्राम के गोल पत्थर को सफेद किया जा सकता है।

एक मनुष्य के शरीर में इतना लोहा होता है कि जिससे एक इंच

२८-२९

दुःख देने आये है

ओम नमः सिद्धेभ्यः ३
धर्म प्रेमी भव्यात्माओं !

संसारी प्राणी बाह्य पदार्थों के संयोग के कारण ही संसार-वन में अनेक प्रकार के दुखों को भोगता हुआ भ्रमण कर रहा है। इसलिए आत्म कल्याण के इच्छुक जनों को मन-वचन-काय से इन पदार्थों का त्याग कर देना चाहिए। संसार सागर में गिराने वाले समस्त संकल्प विकल्प का त्याग करके अपनी अचिन्त्य आत्मा का ध्यान करो। हे आत्मन् ! तू अपनी आत्मा में डूब, अपनी आत्मा का रस ले।

संसार में दुख के कारण क्या हैं? दुख के हेतु क्या हैं? दुख में निमित्त क्या हैं? दुख किन कारणों से उत्पन्न होता है उसका पता लगाओ। अगर तुम पीड़ित हो, क्लान्त हो, सन्तृप्त हो तो उसका कारण क्या है, उसकी खोज करो। भगवान महावीर कहते हैं कि दुख पदार्थ में है, या सुख स्वयं में है उसका निरीक्षण करो। तुम किस कारण से दुखी हो उसका अन्वेषण करो। वास्तव में पदार्थ में दुख नहीं है, पदार्थों के प्रति जो राग भाव है, ममत्व भाव है, मोह भाव है, आसक्ति का भाव है वही दुख में कारण है। इसलिए हे आत्मन् ! उनसे ममत्व भाव छोड़कर अपनी आत्मा में ठहर जा। आत्मा में आत्मा का ध्यान कर। एक घटना आपसे कहता हूं-

मैंने सुना है एक पति अपनी पत्नी से बिदा ले रहा था अपने छोटे पप्पू को छोड़कर। पप्पू अभी मात्र तीन माह का था। वह तो ठीक से अपने बाप को पहचानता भी नहीं था। पति ने पत्नी से कहा, मैं परदेश जा रहा हूं, पप्पू का पूरा-पूरा ध्यान रखना। तुम जरा भी चिन्ता मत करना, और पप्पू को अन्तिम प्यार करके बिदा लेकर चला गया। पिता को गये बारह बरस हो गये। पप्पू बड़ा हो गया है। एक दिन उसने माँ से कहा, पापा कहां गये है, कब तक आयेंगे? मां ने कहा, बेटा! तेरे पापा धन कमाने परदेश गये है, कुछ समय के बाद आ जायेंगे। वह अपने मित्रों को अपने पिता के साथ घूमते, बात करते हुए देखता तो उसको भी अपने पिता की याद आ जाती। पिता की याद में रो उठता, मां उसे समझाती, खिलौने देकर बहलाती और कहती कि मैंने तेरे पापा को चिट्ठी लिख दी है, वे आने ही वाले हैं। बस तू थोड़ा और इन्तजार कर। संयोगवशात् पिता का पत्र आया, समाचार आये कि मैं पांच तारीख को पहुंच रहा हूं, पप्पू समाचार सुनते ही नाचने लगा। उसने मां से कहा-पिताजी को लेने शहर मैं जाऊंगा, माँ ने उसे बहुत समझाया, कहा बेटा, तू देहात में रहता है और शहर बहुत बड़ा होता है। वहाँ तरह-तरह के लोग होते है। बड़ी-बड़ी गलियाँ होती है तू रास्ता भटक जायेगा। बच्चो की जिद, कौन टाल सकता है। वैसे भी बाल हठ में बच्चे प्रसिद्ध है—मां तुम जरा भी चिन्ता न करो, मैं मार्ग नहीं भूलूंगा, जरा भी नहीं भटकूंगा, पिताजी को लेने शहर जाने दो, अन्ततोगत्वा जिद करके वह अपने मित्रों के साथ शहर चला जाता, है शहर का मामला, बड़े—बड़े होटल, बड़ी - बड़ी धर्मशालायें और ठण्डी का मौसम, एक होटल में जाकर ठहर जाता है, बामुश्किल उसे एक कमरा मिला।

रात उसी होटल में एक धनपति का आगमन हुआ, कमरे सब भरे हुए थे। उसने बैरे से कहा कैसे भी करके एक कमरा दो। उसने बैरे की तरफ सौ रुपये का नोट बढ़ाते हुए कहा, ये नोट सम्हालो और मेरी व्यवस्था करो। पैसे में बहुत ताकत होती है, पैसे से क्या नहीं हो सकता। बैरे ने उसे अपना कमरा खाली करके दे दिया। पास के कमरे में गांव का बालक ठहरा हुआ था। अचानक उसके पेट में असह्य पीड़ा हो गई, भयंकर दर्द उठा। वेदना से वह कराह उठा। जोर से रो उठा। बेचारे मित्र भी क्या करते, रात्रि का समय, ठण्डा मौसम और भयकर वेदना। वह चीखने लगा बगल के कमरे में धनपति ठहरा था उसकी नींद में दखल पड़ा। जाग उठा। उसने चौकीदार से कहा, जाओ देखो कौन रो रहा हैं। उससे कहो या तो चुप हो जाओ, या होटल के बाहर चले जाओ। जाकर चौकीदार

ने देखा कि गांव से आये छोटे बालक के पेट में असह्य वेदना हो रही है। धनपति आया उसने भी देखा की बच्चा पेट–दर्द की वेदना से तड़फ रहा है उसका दिल न पिघला, बल्कि और क्रोधित हो गया। उसने क्रोधित होते हुए कहा, यह सबकी नींद खराब कर रहा है निकालो इसे कमरे से बाहर।

चौकीदार ने कहा मालिक ! रात ठण्डी बहुत है और ये परदेशी है बेचारा रात को अकेला कहां जायेगा। उसके संगी-साथियों ने भी धनपति से क्षमा माँगी और कहा हम रात कहां जायेगे, अकेले ? धनपति उन पर बरस पड़ा और गुस्से में बालक को दो–चार चांटे भी जड़ दिये। चौकीदार को कुछ रूपये देते हुए कहा, कि लो ये रूपये खर्च कर लेना लेकिन इस मूर्ख को, नालायक को यहां से बाहर निकाल दो।

चौकीदार ने बच्चे को उठाया और होटल से बाहर निकाल आया कड़ाके की ठण्ड जनवरी का महिना। ठण्डी हवाये, ओस को बौछार। रात भर ठण्ड में ठिठुरता रहा। उसके ऊपर बर्फ जम गई। बर्फ के साथ-साथ उसकी सांसे भी जम गई और वह हमेशा हमेशा के लिए सो गया। धनपति को रात को आराम से नींद आई। वह तो बिदा हो गया। दीपक की ज्योति बुझ गई। टिमटिमाती ज्योति बिदा हो गई।

सुबह धनपति उठा और चौकीदार से पूछा रात वाले बच्चे का क्या हुआ ? वह तो मर चूका साहब।

धनपति ने व्यंग्य में कहा, कैसे मूर्ख माता–पिता है जब बच्चे की परवरिश ही नहीं कर सकते तो पैदा क्यों करते हैं ? मृत बच्चे के साथी से पूछा यह किसका लड़का है और कहां रहता है ?

साथियों ने कहा, हम सब पास के गाँव से आये हैं। धनपति भी उसी गांव का रहवासी था। वह गांव उसकी जन्मभूमि था। उसके मन में जिज्ञासा पैदा हुई। उसने पुछा किसका बच्चा था– उत्तर मिला, फलाँ –फलाँ आदमी का लड़का है। आज उसका पिता परदेश से लौटने वाला है, इसलिए यह अपने पिता को लेने आया था। बारह वर्ष बाद धनपति अपने गांव लौटा था। पुत्र प्रेम में ही वह वापस लौटा था। बेटा तो देह छोड़कर जा चुका था। वह दहाड़ मारकर गिर पड़ा। उसे गोद में उठा सीने से लगा लिया। चीख-चीख कर रोने लगा।

जब द्वार पर जीवन खड़ा था, जीवित सांसे सप्त स्वर में लयबद्ध गा रही थी तब तो यह संगीत रास न आया। पुत्र यह उसी का ही पुत्र था। ममता का सागर उमड़ पड़ा। पहले भी यही बच्चा था और अब भी बच्चा यही है। पहले अनजान था, अज्ञात था इसलिइ क्रोध से, घृणा से भरा था।

अब ज्ञात था, अपना था, जिगर का अंश था, ममता जाग पड़ी, इसलिए रो पड़ा । पदार्थ का संयोग–वियोग दुख सुख में कारण नहीं, पदार्थ के प्रति मूर्च्छा सुख दुख में कारण है ।

सच है अनासक्ति का सम्बन्ध वस्तुओं से नहीं विचार से है। अनासक्ति का सम्बन्ध बाह्य से नहीं अन्तस् से है : अनासक्ति का सम्बन्ध संसार से नही स्वयं से है।

संसार के पदार्थ का सामने होना दुख में कारण नहीं, मन का उनमें होना दुख का कारण है। मूर्च्छा का, ममत्व भाव का मन से निकल जाना ही समत्व भाव है और यही समत्व भाव परम सुख में कारण हैं।

मन की लीला बड़ी अद्भुत हैं, बहुत निराली हैं । वह तो कभी तृप्त होता ही नहीं हैं ।

मन चाहा कभी न पा सका
मन चाहा जीवन न बीता सका
कैमी मन की प्रीति हैं यह भी नहीं, वह भी नहीं
मन तृप्त कभी होता नहीं
सुख की इच्छा क्यों करने लगा
दुख से क्यो अब भगने लगा
जानता हूं जगत रीत सुख–दुख सदा रहना नहीं
कुछ भी यहां टिकता नही
मेरा यहाँ कुछ भी नहीं
संयोग में भी रोता रहा
उस मिलन से क्या हुआ, जहां रोना कभी मिटना नहीं
जब मन तुम्हारा बदला नही
मन कही लगता नही
इस कामना से क्या हुआ
इस साधना से क्या हुआ
यदि बसा सका मैं सुख का नया संसार नही
मेरा यहां कुछ भी नही

मन की स्थिति बड़ी विचित्र हैं, मिल जाता हैं तो तृप्त नही होता और नही मिलता हैं तो रोता रहता हैं। जो पदार्थ सामने हैं, स्वयं के हैं उनको तो भोगता नही हैं और पर पदार्थ की इच्छा करता हैं, उन्हें पाने पुरुषार्थ करता हैं, श्रम करता हैं, दौड़ता हैं, पा लेता हैं तो तृप्त नही होता, सुख दुख का भाव बना ही रहता हैं, कभी भी समाप्त नही होता। पता

नही कितने युग बीते, कितनी पर्यायें पार कर चुके, कितनी पर्यायें निकल गई, कितनी बार सुख की आकांक्षा की, कितनी ही बार पकड़ा लेकिन सुख तो पानी के बबूले की तरह हैं। पानी का बबूला कितना प्यारा लगता हैं, कितना सुन्दर प्रतीत होता हैं और जैसे ही उसे हाथ से छूते हैं, पकड़ते है फूट जाता हैं दूर से भोग बड़े सुन्दर प्रतीत होते हैं, दूर के रिश्ते बहुत अच्छे लगते हैं। ऐसा लगता है कि हमारे रिश्तेदार हमारे यहां आ जाए। हमारे मित्र घर आ जाये, उनसे मिलना हो जाए, तो उनका संयोग हो जाए और यदि वे घर में आ जाते हैं, तो मन खुश हो जाता हैं, और यदि वे ज्यादा दिन ठहर जाए, तो जाने का नाम न ले तो मन दुखी हो जाता है। जहां सुख था वही दुख उत्पन्न हो जाता हैं। जिस समय वस्तु मिलती हैं तो लगता हैं सुखी हुए और भोगने लगते है तो दुख प्रतीत होता है।

मन आश बन्धाता हैं, प्रलोभन देता हैं, भरोसा दिलाता है कि सुख मिलेगा और जैसे ही पदार्थ मिल जाता हैं तो दुख प्रारंभ हो जाता है, मन धन चाहता हैं और तिजोरी में अत्यधिक धन भरने लगता है तो उसकी सुरक्षा के लिए मन दुखी हो जाता हैं। महलों में जो रहते है वे गरीबो से ईर्ष्या करते हैं, जो झोपड़ों में सोते हैं, क्योंकि वे सोते हैं, ऊनकी नींद देखने योग्य हैं उनका सौन्दर्य अनूठा है। घोड़े बेचकर सोते हैं ? घोड़े नहीं हैं उनके पास। यह कहावत उनके लिए लागू होती हैं जिनके पास घोडे है ही नहीं। वे घोड़े बेचकर सोते हैं। जिनके पास घोड़े है वे सोते ही नहीं हैं। घोड़े इतने हिनहिनाते हैं कि सोये ही कैसे ? तो जिनके पास धन रूपी घोड़े है उनकी नींद हराम हैं। वे सो नहीं सकते।

गरीब सोता है अमीर के मन में ईर्ष्या होती है। गरीब को भोजन करते देखो। जिस उत्साह से, जिस प्रेम से, जिस आनन्द से भूख उसे पकड़ती है और वे सूखी रोटी नमक के साथ खाकर आनन्दित होते है। वैसा आनन्द धनपतियों के पास कहाँ मेवा-मिष्ठान खाकर भी ? इसलिए धनपति ईर्ष्या से भर जाता है।

भिखमंगा बड़ी आशा और आकांक्षा से देखता है महलों की तरफ कि निश्चित ही वहां सुख बरस रहा है। और आश्चर्य तो इस बात का है कि महलों में रहने वाले भिखमंगों की ओर देखते है। इनकी ताजगी, इनके हंसने की आभा, इनके चलने की रौनक, इनकी मस्ती दो-चार आने कमा लिये दिन में और बस बात खतम हो गई। घर आये मस्ती में और पत्नी के साथ बच्चों के साथ प्रेम से बैठकर भोजन किया, हंसे-बोले-मुस्काये। लेकिन धनपतियों के पास इतनी फुर्सत ही कहां हैं कि चैन से दो रोटी

खाये, पत्नी से बात करे। उनका भिक्षापात्र तो कभी भरता ही नहीं है।

कोई धनवान हो जाता है तो हम कहते है कि बड़ा पुण्यात्मा जीव है, बड़ा सौभाग्यशाली हैं। शुभ कामनाये देते है, गाली देने वाले गाली भी देते हैं। लेकिन हम कभी धनपति के मन से नहीं पूछते कि तुम्हारे भीतर कैसे-कैसे-कौन-कौन से नरक पैदा हो रहे है। तुम कैसे और कितने दुख में फंस गये हो। न वह शांति से भोजन कर सकता, क्योंकि धन कमाने में शांति मर गयी, भूख पलायन कर गयी। भीतर इतना अहंकार भर गया कि रोटी खाने की जरूरत ही न रही। धन इतना कमा लिया कि भोजन करने की सुविधा न रही जीवन में। धन इतना कमा लिया, उसकी दौड़ धूप में इतने व्यस्त हो गये कि शरीर की कौन फिक्र करे? कौन भोजन करे ठीक से? और कौन ठीक से, चैन से सोये? सदा सोचा कि जब धन कमा लेंगे, करोड़पति-अरबपति हो जायेगे तब चैन से सोयंगे-बिस्तर लगाकर, चादर तानकर चैन की बंशी बजाकर। लेकिन इस बीच सोना ही भूल गये। धन तो हाथ में आ गया लेकिन भूख खो गई। नींद और भूख के अभाव में धन क्या करे, धन के आते ही जीवन की सारी शैली बिकृत हो जाती हैं, जीवन व्यवस्था बिगड़ जाती है।

धनपति से पूछो उसका दुख। वह न तो सो सकता है और न चैन से भोजन कर सकता है, न प्रेम से हंस सकता है आप उसके कारागृह को समझ ही नहीं सकते। जब आप धनपतियों के पास शुभ-कामनाएं लेकर जाते है और कहते है कि धन्यभाग है, यह सब पिछले जन्म के पुण्य-कर्म का फल पा रहे हो, भोग रहे हो। जब कि वह इसी जन्म के पाप कर्म का फल भोग रहा हैं। क्योंकि पापानुबन्धि पुण्य के उदय में न चैन से सो सकते हैं और न चैन से खा सकते है।

जिन्हें आप अच्छा समझते हैं जरा उन राजनीतिज्ञों से पूछो, जब चुनाव जीत जाता है, सफल हो जाता है, पद पर पहुंच जाता हैं। हिटलर से पूछो, मुसोलिनी से पूछो, नेपोलियन बोनापार्ट से पूछो, क्या पाया हैं। सिवाय पीड़ा के कुछ भी नही पाया है। जीवन अच्छा खासा जीवन एक महानरक बन गया। एक बड़ा दुख स्वप्न जिसका कोई अन्त आता मालूम नहीं होता और अन्ततः आत्म-घात हाथ में रह जाता है। लेकिन इतिहास इनकी प्रशंसा में कहानियाँ लिखेगा और जगत को भरमाये। इनको इतिहास सफल पुरूष मानेगा, बिजेता मानेगा। ये संसार के सबसे ज्यादा दुखी इंसान इतिहास पुरुष बन जायंगे। जब ये विकृत लोग हैं, पागल लोग हैं इनका तो नाम ही नहीं लेना चाहिए कि भविष्य में हिटलर मुसोलिनी चंगेज खां हुए थे।

अगर आप ऐसे इतिहासों को पोंछने लगे तो आपका सारा जीवन इतिहास ही पूछ जायेगा, क्योंकि सिवाय युद्धों के, युद्ध में जीतने हारने वालों के और तुम्हारा इतिहास कुछ भी नहीं हैं। पुराण पुरुषों की भगवन्तों की सन्तों की तो उसमें भनक भी सुनाई नहीं पड़ती। उसमें तो विकृत आत्माओं का ही शोरगुल सुनाई पड़ता हैं, भूत–प्रेतो का ही शोरगुल सुनाई पड़ता है। और ऐसे पागलों का इतिहास पागलों को ही पसन्द आता है।

संयोग में भी रोता रहा।
वियोग में भी रोता रहा।।

उस संयोग से उस मिलन से क्या लाभ हुआ? मिलन के उपरान्त रोना नहीं मिटा, दुख समाप्त नहीं हुए, मन तृप्त नहीं हुआ, आकांक्षाये पूर्ण नहीं हुई, मन कहता है कि अपने बेटे की शादी कर दूं घर में पुत्र वधु आयेगी तो सुखी हो जाऊंगा, शांति हो जायेगी, सुख उतर आयेगा, लेकिन सांसारिक संयोग ऊपर से मधुर दिखते हुए बड़े कटुक है। ससार पकड़ना आसान मालूम पड़ता है लेकिन आसान नहीं है। संसार ऊपर से जितना आसान दिखता हैं, भीतर से उतना ही कठिन है। हम लोगों ने संसार को ऊपर से आसान बना लिया है।

किसी की शादी होती है; बैण्ड बाजे बजाते है, नाचते–गाते है, फूल माला पहनाते है, वातावरण को ऐसा रुप देते हैं जैसे शादी के उपरान्त स्वर्ग का, सुख का द्वार खुल रहा हो। जबकि नरक का, दुख का द्वार खुल रहा है। एक बार शादी हो गई किसी की, लोग आशीर्वाद देकर विदा हो गये। जो आशीर्वाद देकर विदा हो जाते है, वे भी अच्छी तरह जानत है कि अब ये दुखी होंगे। क्योंकि स्वय भुक्त भोगी है फिर भी ऊपर से मुस्कान बिखेर रहे हैं, आशीर्वाद दे रहे है। शादी के समय घर द्वार को आप कितना सजाते है, दुल्हा–दुल्हन को कितना सजाते है। कितना आकर्षण पैदा करते है ताकि बच्चा शादी के नाम पर फँस जाए और हमारी तरह ही नरक की नाली का कीड़ा बन जाए और हमारी तरह ही सॉसारिक यातनाये सहते चला जाए। याद रखो शादी सुख का द्वार नही, सुख का द्वार है, शादी स्वर्ग में प्रवेश नहीं नरक में प्रवेश हैं। बच्चों को शादी के समय इसलिए सजाते है, नये वस्त्र पहनाते है ताकि नये वस्त्रों के प्रलोभन में आकर फंस जाय और असलियत से परिचित न हो पाए। किसी ने मुझसे पूछा था शादी के समय बैण्ड–बाजे क्यों बजाये जाते है?

शादी में बैण्ड—बाजे
इसलिए बजवाते है
रनके शोरगुल में
सत्य-आवाज छुपाते है
किसी ने पूछा
बैण्ड बाजो से
लोग तुम्हें क्यों बजा रहे है ?
कहा बाजों ने
ये हमें बजा रहे हैं
हम भी इनको जता रहे है
जो आ रही हैं डोली में
वो इन्हें जीवन भर बजायेगी
इसीलिए हम शोर मचा रहे है ।।

कुछ पंक्तियाँ और है... ...

बडी धूमधाम से खुश होकर
लोग कर रहे थे, नव दम्पत्ति का अभिनन्दन
अति शीघ्र टूटे तुम्हारा बन्धन
नित नये विवाह का हो आयोजन
ताकि दावत में मिलता रहे भोजन ।।

किसी ने पूछा था, आपसी सम्बन्ध इतने शीघ्र जीर्ण—शीर्ण क्यो हो जाते है ?

साँसारिक सभी सम्बन्ध स्वार्थ से भरे होते है । उनमें स्वार्थ का पानी भरा होता है । सम्बन्ध बनाते है, तो इसलिए कि कुछ पाना है । मित्रता गौण है, पाना महत्वपूर्ण है । मित्रता साधन है—पाना साध्य है ।

सांसारिक सम्बन्ध चाहे कितने ही गहरे मालूम पड़ें, गहरे हो नही सकते । क्योंकि आप जिससे जुडते है, सम्बन्ध बनाते है उससे सम्बन्ध बनाने का, जुड़ने का कोई सवाल ही नही है । अगले व्यक्ति से कुछ पाना है, वह पा लिया, स्वार्थ पूर्ण हो गया बात खतम हो गई। इसलिए स्वार्थ पूर्ण होते ही हम मित्र को ऐसे फेंक देते है जैसे चूसा हुआ गन्ना बेकार हो जाता है, चलाई हुई कारतूस बेकार हो जाती है आम चूस लिया रस चला गया खोल फेंक दिया । जब तक आम चूसा न था तब तक आम को बड़ा सम्हाल कर रखा था । जब तक कारतूस चली न थी, तब तक बड़ी हिफाजत थी ।

तब तक ऐसा लगता था:-मानो हीरा सम्हाल रहे हो। अब चल गई कारतूस बच गया खोल व्यर्थ हो गया ।

स्वार्थ पूर्ण होते ही हम भी मित्रों को ऐसे ही भूल जाते है जैसे कूड़ा करकट हो। छत पर जाने के लिए सीढ़ियों का उपयोग किया, छत आ गई उन्हें भूल गये। संसार में मित्रों का उपयोग भी साधन की तरह होता है । जब तक काम नहीं होता है तब तक हाथ जोड़ते है। जैसे एक नेता एक वोट के लिए सबके हाथ जोड़ता हैं। जब नेता द्वार पर हाथ जोड़कर खड़ा होता है तब ऐसा लगता है कि कितने भक्ति भाव से, कितनी श्रद्धा से द्वार पर आया हैं। उस समय लगता है कि हमारी यह व्यक्ति बहुत कीमत कर रहा है। और मजे कि बात यह है कि पद पर पहुंचते ही नेता अपने मतदाता को वोट को भूल जाता है, पहिचानने से इन्कार कर देता है। संसार के सभी संबन्ध स्वार्थ की नींव पर खड़े होते है, जो एकदम कच्ची होती है जरा सा वजन रखते ही ढ़ह जाती धस जाती है, ईमारत गिर जाती है। हमारे सभी सम्बन्ध ऊपरी होते है, मोह जन्म होते है इसलिए शीघ्र टूट जाते हैं । हमारे जितने सम्बन्ध है, स्वार्थ को सम्बन्ध है, देह के सम्बन्ध है । जहां देह का सम्बन्ध है, जहॉ देह का सम्बन्ध है वहा गहराई कैसे होगी ? हमारे आपसी सम्बन्धों को तीन स्थितियां है। एक स्थिति है मोह की, दूसरी स्थिति है प्रेम की और तीसरी स्थिति है भक्ति की ।

जब प्रेम में आसक्ति का, स्वार्थ का प्रवेश हो जाता है तो मोह बन जाता है और प्रेम वासना से, आसक्ति से रहित होता है तो भक्ति बन जाता है । यदि प्रेम स्वार्थ के दलदल में गिर जाये तो मोह हो जाता है और आसक्ति से मुक्त हो जाये तो भक्ति बन जाता है ।

यदि गहराई में जायेंगे तो पायेंगे कि प्रेम कोई अवस्था नहीं मात्र एक संक्रमण है । अगर स्वयं को शीघ्र संभाला तो प्रेम भक्ति बन जायेगा और न संभाला तो भोग की ज्वाला से झुलस कर मोह बन जायेगा ।

वैसे प्रेम अपने आप में एक यात्रा है मोह और भक्ति के बीच की यात्रा है, आपने स्वयं अनुभव किया होगा – कि जब प्रेम वासना का रुप लेता हैं, आसक्ति का रुप लेता है तो मोह बन जाता है, दुख देने लगता है, और जब प्रेम परमात्मा के प्रति, सन्तों के प्रति झुकता है तो भक्ति बन जाता है, परम-प्रसाद देने लगता है, अगर आपने पप्पू को प्रेम किया है, अगर आप मां है पप्पू को प्रेम किया है, अगर आप पति है पत्नी हैं पत्नी को प्रेम किया हैं, पत्नी है पति को प्रेम किया है, मित्र को प्रेम किया है, तो मात्र इस प्रेम में दुख ही पैदा हुआ होगा और

आपने सन्तो को प्रेम किया हैं तो आनन्द ही बरसा होगा ।

मां अगर अपने पप्पू को निःस्वार्थ, आसक्ति रहित प्रेम करने लगे तो पप्पू में उसे महावीर दिखाई पड़ने लगेंगे, राम की छवि नजर आने लगेगी पप्पू चलेगा महावीर का बचपन नजर आयेगा, वह बेटा चलेगा पग घुंघरु बजेंगे कृष्ण नजर आने लगेंगा।

जहां भी प्रेम वासना से, आसक्ति से मुक्त होता है वही परमात्मा को देखने का द्वार खुल जाता है, अगर आपने राम की भांति अपनी पत्नी को सीता के रूप में देखा तो पत्नी की चेतना में परमात्मा दिखाई पड़ने लग जायेगा, देह का भोग बन्द हो जायेगा और जीवन आदर्श होता जायेगा। और यही संयोग दुख से मुक्त कराने में कारण बन जायेगा।

प्रेम जब वासना से ऊपर उठता है, ऊँचाई पर उठता है, तो इसमें पंख लग जाते हैं, मोह के पत्थर हट जाते हैं, कामना का फन्दा छूट जाता हैं, तब वह भक्ति की तरफ उड़ने लगता हैं, जब वह भक्ति की तरफ उड़ने लगता, और जब प्रेम पंछी वासना के, काम के पत्थर के नीचे दब जाता है, स्वार्थ की गले में फांसी लग जाती हैं, आसक्ति से घिर जाता हैं, तो मोह हो जाता हैं, मर जाता हैं, अन्धा हो जाता है सड़ जाता हैं।

प्रेम दोनों के बीच में हैं । ध्यान रखना अगर आपने वासना को जन्म दिया तो प्रेम का पानी नीचे की ओर बहेगा, गड्ढे की ओर बहेगा क्योंकि पानी का स्वभाव नीचे की ओर बहना है, वासना, नीचे की ओर जाती है। पानी को ऊपर चढ़ाना है तो आयोजन करना पड़ता है, शक्ति लगानी पड़ती है पुरूषार्थ करना पड़ता है यानि साधना करनी पड़ती है, भोग से ऊपर उठना पड़ता है, संयोग का त्याग करना पड़ता है ।

प्रेम और भक्ति से ही कोई परमात्मा को पाता हैं और प्रेम वासना से कोई परमात्मा से चूकता है, संसार को पाता है। यद्यपि प्रेम शब्द एक सा लगता हैं लेकिन दोनों में काफी अन्तर है। अभी तक आपने साँसरिक देह जन्य प्रेम जाना है, उससे ही आपका परिचय हुआ है, इसलिए संयोग दुख का कारण बना, संसार में भटकने में कारण बना । आध्यात्मिक प्रेम से आप अछूते हैं, अनभिज्ञ हैं, अपरिचित हैं, अनजान हैं। प्रेम-भक्ति-मोह तीनों में काफी अन्तर है। दरअसल बात यह हैं कि न तो आप प्रेम को जानते हैं और न भक्ति को जानते हैं। आप मात्र स्वार्थ को जानते हैं, आपने निम्नतम दशा जानी प्रेम की ।

आपकी अवस्था ऐसी है किसी आदमी ने बर्फ को ही खाया हो, उसी की ही जाना हो और न तो पानी जाना, हो न तो भाप जानी हो।

बर्फ को ही जानता है सख्त पत्थर की भांति जमा हुआ। अगर आप उसे समझाये कि एक ऐसी भी दशा है बर्फ पानी बन जाता है, पिघल जाता है बहता है तो वह मानेगा नहीं कि यह पत्थर जैसी चीज कैसे पिघलेगी, कैसी बहेगी। यदि आपका परिचय पानी से है तो आप विश्वास कर सकेंगे कि पानी बहता है। बर्फ तो जमा है सख्त है, मृत है, पानी जीवन्त है पानी की एक और उच्च दशा है, वह भाप की है। पानी वाष्पीभूत हो जाता है तो आकाश की तरफ उठने लगाता है फिर यंत्र की जरूरत नही पड़ती। अदृश्य में खोने लगता है वह भक्ति है।

भगवान महावीर कहते हैं जीवन के तीन रूप है एक बर्फ की तरह जमा हुआ मोह। एक पानी की तरह बहता हुआ प्रेम एक भाप की तरह उड़ता हुआ भक्ति। भक्ति भाप है, बर्फ मोह है पानी प्रेम है।

उस धनपति को सुबह पता चला कि यह पुत्र मेरा है रोने लगा। जब तक मोह नहीं था, रोया नहीं, सम्बन्ध का पता चला तो रोने लगा। इसलिए आचार्य देव को कहना पड़ा पर पदार्थो का संयोग मात्र दुख में ही कारण हैं। धनपति का पहले नींद के प्रति मोह था, बच्चे का रोना अखर रहा था। और जब पता चला कि पुत्र मेरा है मरण को प्राप्त हो गया है तो रोने लगा।

दुनियां किसको कहते प्यारे
जादु का एक खिलौना
मिल जाए तो मिट्टी जैसा
खो जाए तो सोना है ।।

संसार जादु के खिलौने के समान है, आकर्षित करता है लेकिन सुख नहीं देता। सांसारिक पदार्थ मिल जाये तो मिट्टी के समान है और खो जाए तो सोना है मिल जाता है वह मिट्टी का हो जाता है। जिस स्त्री के पीछे पागल थे, मिल गयी तो मिट्टी हो गयी, आकर्षण खो गया जिस पुरुष के पीछे पागल थे मिल गया तो पागल हो गये। मिल जाये तो मट्टी खो जाए तो सोना। न मिले तो मजनू। मजनू सौभाग्यशाली था लैला नहीं मिली, सोना बनी रही। इतने सौभाग्यशाली सभी मजनू नही होते। मजनूओं को लैला मिल जाती है और तब गले मे फांसी लग जाती है कहानी समाप्त हो जाती है इसलिए इतिहास इनके नाम नही दोहराता। इतिहास तो अपने स्वप्न में है क्योकि लैला मिली ही नही, मिल जाती तो बच्चू को पता चलता कि लैला संयोग मिलन कितना दुखदायी है मिल जाती तो नमक-तेल का पता चल जाता। नही मिली, सोने की है मिल

जाती तो मिट्टी की हैं । स्वयं की तिजोरी का धन मिट्टी है दूसरो की तिजोरी का धन सोने का है । मन बदमाश है जो अपने पास है स्वयं का उससे रस नहीं लेता है जो दूर है, अपने पास नहीं है उसमें रस लेता है मन उनये सुख की आशा करता है जबकि वे सभी पदार्थ क्षण–भंगुर है, पानी के बुल-बुले के समान है ।

लक्ष्मी-इन्द्र धनुष के समान चंचल है ।युवावस्था कोयले के समान सारहीन है । नारी-प्रेम जीर्ण - शीर्ण वृक्ष के समान शक्तिहीन हैं । विभूति के समान अस्थिर हैं कीर्ति–बालू के ढेर के समान अस्थायी हैं । आयु-तिनके की अग्नि के समान क्षण ध्वंसी है । वैभव नवीन वृक्षों के समान हवा कें झोंकें से गिरने समान हैं ।

पदार्थ के प्रति राग दुःख हैं और पदार्थ के प्रति विराग सुख है । जिन-जिन के प्रति राग है वे सब दुःख में कारण है । प्रथमानुयोग ग्रन्थ में जिनसेनाचार्य ने लिखा है बच्चे-बच्चियां भी अपने माता-पिता के दुश्मन है । आप अपने ही घर में अपने दुश्मन को पाल रहे हैं । आप कह सकते हैं कि दुश्मन कैसे ?

आपने इन्हें जन्म देने के लिए अपने ब्रह्मचर्य को खोया, अपनी शक्ति को खोया । उनकी आकांक्षा के पीछे दैहिक रुप से कमजोर हुए । बच्चों को पालने के लिए जीवन भर पुरुषार्थ किया, समय का व्यय किया । उनके लिए सम्पत्ति एकत्र की जिसके लिए अनाप-शनाप, नैतिक-अनैतिक काम किये । धर्म कार्य छोड़े । आत्म-ध्यान नहीं किया । बाद में यही सन्तान बड़ी होने पर अपना हिस्सा मांगती हैं, माता पिता के साथ अशुभ व्यवहार करती है । हिस्सा न मिले तो बाप को मारती पिटती है, घर से बाहर निकाल देती हैं । जुता लेकर मारने दौड़ती हैं । सोचो सन्तान का संयोग सुख में कारण हैं या दुःख में कारण हैं । सन्तान का मोह ही संसार सागर में पतित कराता हैं ।

मधुशाला में एक शराबी देर रात तक बैठा रहा । दूसरे शराबी नें कहा, क्या बात है आज घर नहीं जाना क्या ? उसने कहा, जाकर करुं भी क्या, अभी शादी नहीं हुई । दूसरे शराबी ने कहा, हद हो गई तुम इसलिए यहाँ बैठे हो, मैं तो यहाँ इसलिए हूं कि घर पत्नि है । घर जाएं तो कैसे ? जितनी देर करके जाऊं उतना अच्छा । क्योंकि घर की पत्नी में रस नहीं रहा । मिल जाए तो मिट्टी, खो जाए तो सोना । उसने कहा, जितनी देर से जाऊं उतना अच्छा, जल्दी जाने में उससे डर लगता है । जल्दी जाऊंगा तो वह बोलती–चिल्लाती मिलेगी । वह सोती मिले तो

अच्छा। सभी पत्नियां ध्यान रखना रात पति देर से क्यों आते हैं ? और सभी पति ध्यान रखना कि पत्नि पीहर जाने के बाद महिनों बाद क्यों आती है ? संयोग दुःख में कारण है। एक–इन्द्रिय का संयोग दुःख में कारण है, पदार्थ का भोग दुःख में कारण है। विशालकाय हाथी स्पर्श-इन्द्रिय के अधीन होकर मनुष्य के वशीभूत होकर दुःख सहता है। पतंगा नैत्र के अधीन हो अपने जीवन का बलिदान कर देता है। मृग श्रोत–इन्द्रिय के अधीन हो सुन्दर गान सुनता हुआ बाणों से घायल हो भयंकर दुःख सहता हुआ मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। वृक्षों को छेदने की शक्ति रखने वाला भौंरा घ्राण–इन्द्रिय के वशीभूत हो सुकोमल फूल पाँखुड़ी में कैद हो प्राणान्त हो जाता है और मछली रसना-इन्द्रिय के अधीन होकर आटे के लोभ में कण्ठ फसा अपनी जीवन लीला समाप्त कर देती है। एक-एक इन्द्रिय की दासता का यह परिणाम है और जो पाँचों इन्द्रियों का दास है, तो उसकी कितनी दुर्गति होगी ? उसका सारा जीवन गोबर तलने में गुजर जायेगा।

एक पंडित ने स्वप्न देखा कि कड़ाई में गोबर तल रहा हूं। अब पंडित को ऐसे स्वप्न नहीं आयेगें तो कैसे स्वप्न आयेगें ? ऐसे स्वप्न तो सामान्य गृहस्थ को भी नहीं आते हैं। वह सोकर उठा, तो काफी घबड़ाया। दौड़ा-दौड़ा निमित्त ज्ञानी के पास गया उसका फल पूछने। अपने अशुभ स्वप्न को सुनाया। निमित्त ज्ञानी ने कहा, बड़ा, वशुभ सपना देखा है आपने। पंडित ने पूछा सपने में गोबर तलने का क्या फल है ? निमित्त ज्ञानी ने कहा, फल बाद में बताऊंगा, पहले ग्यारह रुपये निकालो। पंडित ने कहा, अगर ग्यारह रुपये ही देने होते तो मैं गोबर क्यों तलता ? मावा "दूध का खोवा" नहीं तल लेता।

आपकी भी यही स्थिति है संयम लेना होता तो अभी तक क्यों इन्द्रिय भोग करते। आप भी जीवन की कड़ाही में गोबर तल रहें हैं। जिसने विषय भोग में जीवन गुजारा है या गुजार रहे है वे जीवन में मात्र गोबर तल रहे हैं जीवन की कढ़ाही में गोबर भी तला जा सकता हे। सन्त जीवन की कढ़ाही में मावा तल रहे और जनमानस को बाँट रहे हैं और असंयमी पंडित जीवन की कढ़ाही में गोबर तल रहे हैं और वही बाँट रहे हैं। जिसके पास जो होगा वही तो बांटेगा। कल परात्म-प्रकाश में बड़ी सुन्दर बात निकली.................

जब दुःख की अति होती है, दुःख गहन होता है तो सुख की आकांक्षा पैदा होती है। जीवन तो कीचड़ में खिले कमल के समान हैं। अगर दुःख की अति हो गई हो और सुख की गहन प्यास पैदा हो गई हो तो काम की

कीचड़ से ऊपर उठो और बोधि-सुमन खिलाओ। विषयों की कीचड़ से ऊपर उठो भक्ति कमल खिलाओ। तुम अभी एक लोहा हो और लोहा होना अभिशाप नहीं वरदान हैं क्योंकि लोहा ही पारस का परस पा सोना होता हैं। सन्त चरण के पारस का स्पर्श करके सोना बन सकते हैं। लोहा भी सोना हो सकता हैं। देह की कीचड़ में परमात्मा का कमल खिल सकता है; विषयों की गंध में बोधि-सुमन खिल सकता है। अभी तुम स्वर्ण नहीं हो, जग लगे लोहे हो, तुम अभी कमल नहीं कीचड़ हो, तुम अभी स्वस्थ नहीं, रोगी हो, लेकिन परम स्वास्थ्य को उपलब्ध हो सकते हो। अगर बोधि-सुमन खिलाने की तीव्र आकाँक्षा हो तो विषयों से उपर उठो, देह के ममत्व भाव से ऊपर उठो समत्व भाव को जन्म दो। जीवन के बीज पर ध्यान-सामायिक का नीर सींचों ताकि बोधि-सुमन खिल सके।

पदार्थ का मोह छोड़े, समस्त संयोगों से ऊपर उठो। ये संयोग तो मात्र दुःख देने आये हैं। अब संयोग नही, परमयोग को उपलब्ध हो जाओ ताकि दुःख के कारण मिट जाये और बोधि-सुमन खिल जाये, लोहा-पारस हो जाये। बस इतना मानकर चलो कि ये भौतिक पदार्थ मात्र दुःख देने आये हैं। इनसे बचने का उपाय क्या है ?

> सर्वं निराकृत्य – विकल्प -- जालं,
> संसार – कान्तार – निपात – हेतुम् ॥
> विविक्तमात्मा नम वेक्ष्य – माणो
> निलीयसे त्वं परमात्म — तत्वे ॥

संसार बन में परिभ्रमण करने वाले सर्व-विकल्पों को त्याग करके एक मात्र सबसे भिन्न अपनी आत्मा को देखते हुए, हे आत्मन् ! तू परमात्मा में लीन हो जा।

आचार्य कह रहे हैं अब समदृष्टि को उपलब्ध हो जाओ। संसार के सारे विकल्पों को त्यागों, क्या दिया उनने तुम्हे ? सांसारिक सभी सुख पानी पर खीची गई रेखा के समान हैं। पता नहीं कितनी बार भोगा और छोड़ा, आया और गया। सुख भोग भी नहीं पाते कि मिट जाता हैं, रेखा बन भी नहीं पाती कि मिटना प्रारंभ हो जाती है। इसलिए इन सबको त्यागों और आत्मा में लीन हो जाओ।

सांसारिक सभी सुख दुःख में ही कारण है, संसार वन में गिराने वाले है भटकाने वाले है। अगर परम सुख चाहते हो, तो अपने आपको उस योग्य बनाओ। शेरनी का दूध स्वर्ण-पात्र में ही ठहरता है, परम

सुख का अमृत परम – पात्र में ही ठहरता है। सांसारिक सुख भोगकर व्यक्ति स्वयं को धोखा दे रहा ह।

एक कहानी पढ़ी थी। एक शहर में एक अद्भुत दुकान खुली, जहाँ कोई भी युवक जाकर अपने लिए योग्य पत्नी ढ़ूंढ़ सकता था। एक युवक उस दुकान पर पहुंचा। दुकान के अन्दर उसे दो द्वार मिले। एक पर लिखा था कम उम्र की युवा पत्नी और एक पर लिखा ज्यादा उम्र की अनुभवी प्रौढ़ पत्नी। युवक ने पहले द्वार पर धक्का लगाया और अन्दर पहुंचा। फिर उसे दो द्वार मिले। पत्नी वगैरह कुछ न मिली। फिर दो दरवाजे। पहले पर लिखा था सुन्दर दूसरे पर लिखा था साधारण। युवक ने पुनः पहले द्वार में प्रवेश किया। वहां न कोई सुन्दर था न कोई साधारण। फिर दो दरवाजे मिले। जिस पर लिखा था अच्छा खाना बनाने वाली और खाना न बनाने वाली। युवक ने फिर पहला द्वार चुना। स्वाभाविक हैं आप भी यही करते। उसके सामने फिर दो दरवाजे आये। जिस पर लिखा था सुन्दर गीत गाने वाली और न गाने वाली। युवक ने पुनः पहले द्वार का सहारा लिया और अब की बार दो दरवाजों पर लिखा था दहेज लाने वाली और न दहेज लाने वाली। युवक ने फिर पहला दरवाजा चुना। वहां भी कोई नहीं। फिर दो दरवाजे मिले। जिन पर लिखा था कुंवारी बच्चे रहित और दूसरे पर लिखा था बच्चों सहित। ठीक हिसाब से चला, गणित के अनुसार चला, समझदारी से। प्रथम द्वार पर दस्तक दी, परन्तु इस बार उसके सामने एक दर्पण लगा था और उस पे लिखा था आप बहुत अधिक गुणों के इच्छुक हैं समय आ गया हैं, एक बार अपना चेहरा भी देख लें।

शाश्वत सुख को पाने के पूर्व आदमी को ध्यान सामायिक के दर्पण में अपना चेहरा देखना होगा, जो अपना चेहरा देखेगा, उसकी चाह गिर जायेगी, सत्य के निकट आ जायेगा, विराट् बनने में लग जायेगा, जितनी बड़ी वस्तु हैं, हैं, उतना बड़ा पात्र भी चाहिए. चाह भटकाती हैं, चाह राह बनाती है, चाह की आह में व्यक्ति अपना चेहरा भूल जाता है, उसने चाह का सहारा लिया एक द्वार से दूसरे द्वार में ले गई। दिया कुछ नहीं मात्र आश बंधानी गई। हर द्वार दो द्वार पर ले गया। कुछ मिला नहीं, हर द्वार खाली मिला, एक द्वार से दूसरे द्वार–करते-करते भटक गया, भीतर घुसता गया। 'संसार कान्तार निपात् हे तुम' चाह ढ़पोल शंख है, देती कुछ नहीं मात्र आश बन्धाती है, वादा करती है, लुभाती है देती कुछ नहीं।

जो इस सत्य को पहिचान लेता है, तो वह संसार से फिर कुछ भी नहीं मांगता, क्योंकि संसार में पाने जैसा कुछ भी नहीं है, जो स्वयं

में डुबा और स्वयं को पहिचाना उसे सब मिल जाता है, जो मांगता है, उसे कुछ भी नहीं मिलता, आदमी मांगने के नाम पर स्वय को धोखा देता है, उसे लगता है कि मैंने कुछ एकत्र कर लिया है, मौत से बच जायेंगे, लेकिन मौत किसी न किसी द्वार से प्रवेश कर ही जाती है और चोटी पकड़कर ले जाती है ।

आदमी की इच्छाये बड़ी असंगत है, बड़ी मूर्खतापूर्ण है? एक भिखारी ने लाटरी का टिकट खरीदा और भगवान से प्रार्थना की कि हे परमात्मा, मुझे लॉटरी का पहला इनाम दे दो ताकि मैं एक कार खरीद सकूं, पैदल मांगते-माँगते मेरे पांव घिस जाते हैं ।

कार में भी भीख माँगेगा, बड़े-बड़े सम्राट क्या है, भिखारी इतनी सम्पदा होने के बावजूद भी तो उनका भिखा-पात्र नहीं भर पाता, आदमी क्या मांग रहा है; जो जन्मों जन्मों से भोगता आया उन्हीं वस्तुओं को, जिनसे उसने सिवाय दुख-संताप पीड़ा के और कुछ नहीं पाया ।

भगवान महावीर कहते है कि अगर जीवन दुख से घिर गया है, मोह ने अपना अधिकार जमा लिया है, ससार के सारे पदार्थ दुख को आतुर है वो एक काम करो "विविक्तमात्मा नम वेक्ष्यमाणो" एकमात्र आत्मा को देखते हुए "त्वम निलीयसे परमात्म तत्व' तुम आत्मा में लीन हो जाओ । एक मात्र आत्मा शेष बची है और मौत ने सब पर कब्जा कर लिया है । जीवन में सब खो दिया है मात्र आत्मा बची है, अब अपने को बचाओ, उठा भागों अपने भीतर की तरफ । जीवन में चारो ओर से दुख के अंगारे बरस रहे है, कागज की देह में आग लगी है. अब इस घर को छोड़ने के सिवाय कोई दूसरा उपाय नहीं है । मोह के घर से निकलकर बाहर आ जाओ लोग तुम से कहेंगे पलायनवादी हो रहे हो, आत्म-हत्या कर रहे हो. ससार के भोगों से डर कर भाग रहे हो । तो भगवान महावीर कहते है कि जब मौत के छापामार घर को घेर रहे हैं । अग्नि के गोले बरसा रहे हो, कर्मो की बमवारी कर रहे हो तो पलायन ही समझदारी है, जहाँ दुख हो वहां से भाग जाना ही समझदारी है ।

और इतना अवश्य ध्यान रखना जो दुख से बचता हैं तो उसके लिए सुख के द्वार खुलने की पूर्ण संभावना हो जाती हैं । लेकिन सुख कहीं बाहर नहीं हैं । सुख तुम्हारा स्वभाव हैं, ससार बाहर है. आत्मा भीतर हैं, जितना बाहर जाओगे सुख से दूर होते जाओगे, जितना भीतर आओगे सुख के करीब आते जाओगे ।

पप्पू एक धनपति के घर नौकरी करता था । एक दिन उसने कहा,

मालिक मैं काम छोड़ना चाहता हूं क्योंकि यहां काम करते हुए मुझे कई साल हो गये हैं पर अभी तक आपको मेरे ऊपर विश्वास नहीं हैं, धनपति ने कहा, अरे पागल ! कैसी बात करता हैं ! होश में आओ ! तिजोरियों की सभी चाबियाँ तो तुझे सौंप रखी हैं । और क्या चाहता हैं ? और कैसा विश्वास ?

पप्पू ने कहा, बुरा मत मानना सरकार ! लेकिन उसमें से एक भी चाबी-तिजोरी में लगती कहाँ हैं ?

जिस संसार का तुम अपने आपको मालिक समझ रहे हो, चाबियों का गुच्छा लटकाये घूम रहे हो, हाथ में उछालते फिरते हो, बजाते फिरते हो क्या कभी उसमें से मोक्ष का ताला खोलने में एकाध चाबी काम आयी ? ताला खुला मोक्ष का कि बस चाबियों के गुच्छे कमर मे लटकाये, घूम रहे हो ? और इसकी ही आवाज का मजा ले रहे हो, देखना आप गौर से, कई स्त्रियां कमर में कितना बड़ा चाबी का गुच्छा लटका कर आती है मंदिर, इतने ताले चाहे घर में न हो जितनी चाबियाँ लटकाई है । मगर आवाज खनक सुख देती है अहंकार को आदर मिलता हैं ।

जरा ध्यान से देखो तुम्हारी सब चाबियाँ व्यर्थ है । कुछ माया जोड़ी धन एकत्र करके देखा पद एकत्र करके, सम्मान पाकर देखा, परिग्रह के पहाड़ खड़ करके देखा, काम में डुबे, धन कमाया, मोह किया रास रचाया, संसार बढ़ाया खुब शास्त्र पढ़े लेकिन एक भी चाबी काम न आई ।

भगवान महावीर कहते हैं एक भी भौतिक चाबी अध्यात्मिक ताले में नही लगती । और जैसे ही सब चाबीया फेंक देते हो वैराग्य को, सन्यास को, ध्यान को,सामयिक को उपलब्ध हो जाते हो अनन्त सुख का द्वार शुरू का द्वार खुल जाता है । संसार से सब तरह से वितराग होने पर ही ताला खुलता हैं मोक्ष का द्वार वितरागता की चाबी से ही खुलता है । इसलिए कहा कि आओ आत्मा में डूब जाओ । समस्त विकल्प छोड़कर अपनी आत्मा में लीन हो जाओ तभी द्वार खुलेगा ।

बस आज इतना ही ।

आदिनाथ दिगम्बर जैन नया मन्दिर
प्रतापगढ (राज.)

दि. ३१-८-९१
शनिवार

३०-३१

फिर हम कठपुतली सिद्ध होंगे

अभी तो वर्तमान में तुम जो हो उसके कारण भी तुम्ही हो "निजार्जित कर्म विहाय देहिनो न कोपि कस्यापि ददाति किन्चन ।" स्वयं के कर्म का फल भोग रहे हो, कोई दुसरा फल देने वाला नही हैं। यानि अभी तुम जो हो, कल जो थे और आगे जो होंगे उसके कारण तुम ही हो, बस इस बात का ध्यान रखना कि उपादान भी तुम हो, और कारण भी तुम हो। ये आधार भूत है। स्वयं के पाप से बचने का लूकने छिपने का कोई उपाय नही है। भगवान महावीर ने मनुष्य को बचने के लिए छिपने के लिए, कोई ओट नहीं छोडो। इसलिए महावीर का साक्षात्कार आत्म साक्षात्कार हैं, महावीर का दर्शन आत्म दर्शन है। महावीर को समझ लेना स्वयं को समझ लेना है। इसलिए यह आरोप मत लगाना कि परमात्मा ने हमारा भाग्य लिखा है, परमात्मा ने नही तुमने स्वयं अपना भाग्य लिखा है।

मूल पद्य :- स्वयं कृतं कर्म यदात्मना पुरा ।
फलं तदीयं लभते शुभाऽशुभम् ॥
परेण दत्तं यदि लभ्यते स्फुटं ।
स्वयं कृतं कर्म निरर्थकं तदा ॥ ३० ॥

हिन्दी पद्य - जो जीव कर्म करता जैसा यहाँ पर ।
पाता फल शुभाशुभ उसका यहाँ पर ॥
ईश्वर प्रेरित यदि कोई कर्म भोगे ।
निज के उपार्जित कर्म निरर्थ होवे ॥ ३० ॥

अन्वयार्थ –

आत्मना	– अपने द्वारा
पुरा	– पहिले
यतं कर्म	– जो कर्म
स्वयम् कृतम्	– स्वयं किये गये है
तदीयम्	– उनका
शुभाऽशुभम् फलम्	– शुभ और अशुभ फल
स्फुटं	– स्पष्ट रुप से
लभते	– प्राप्त होता हैं
यदि	– यदि
परेण दत्तम्	– दूसरे के द्वारा दिया गया
लभते	– सुख दुःख प्राप्त होता है
तदा	– तब
स्वयं कृतम् कर्म	– स्वयं के किये गये कर्म
निरर्थकम्	– निरर्थक हो जावेगें

भावार्थ – हे आत्मन् ! जिस जीव ने पूर्वकाल में जो कर्म स्वयं उपार्जित किये है वह उनके शुभ और अशुभ फल पाता है यदि कोई दूसरे के द्वारा दिये गये शुभ या अशुभ फल को प्राप्त होने लगे तब तो अपने किए कर्म निरर्थक हो जावेगे ।

मूल पद्य :- निर्जार्जितं कर्म विहाय देहिनो ।
न कोऽपि कस्याऽपि ददाति किंचन ।
विचार यन्नेवमनन्य – मानसः ।
परो ददातीति विमुच्य शेमुषीम् ॥ ३१ ॥

हिन्दी पद्य - निज के उपार्जित शुभाशुभ कर्म छोड़ ।
देता न कोई सुख–दुःख के किंचित मोड़ ॥
कर्ता स्वयं तू अपना न अन्य कोई ।
एकाग्र चित्त होकर शिव शुद्ध होई ॥ ३१ ॥

अन्वयार्थ –

निजार्जितम्	– अपने उपार्जित
कर्म	– कर्म के
विहाय	– सिवाय
कोऽपि	– कोई भी अन्य पुरुष
कस्याऽपि देहिनः	– किसी भी प्राणी को
किंचन	– कुछ भी
न ददाति	– नहीं देता है
एवम्	– ऐसा
विचारयन	– विचारते हुए
आत्मन्	– हे आत्मन् !
परः	– दुसरा कोई
ददाति	— देता हैं
इति	— इस प्रकार की
शेमुषीम्-विमुच्य	— बुद्धि को छोड़कर
अनन्यः मानसः	— एकाग्रचित्त हो

भावार्थ— अपने उपार्जित कर्मों को छोड़कर कोई भी प्राणी किसी भी प्राणी को कुछ भी सुख या दुःख नहीं देता है ऐसा विचार करते हुए । हे आत्मन् ! तू एकाग्र चित्त हो और दुसरा देता है, इस बुद्धि को छोड़ । इस प्रकार विचार करने से इष्ट-अनिष्ट प्राप्ति के निमित्त मात्र बनने वाले प्राणियों पर राग-द्वेष उत्पन्न नहीं होता ।

३०-३१

फिर हम कठपुतली सिद्ध होंगे

ओम नमः सिद्धेभ्यः ३
धर्म प्रेमी भव्यात्माओं !

हे आत्मन् । जिस जीव ने पूर्व मे जो कर्म अर्जित किये है वह अच्छा बुरा शुभ-अशुभ फल पाता हैं। यदि कोई दूसरे के द्वारा दिये गये शुभ अशुभ फल को प्राप्त होने लगे तो सब अपने किये कर्म निरर्थक हो जायेगे।

हे आत्मन् ! स्वयं के द्वारा उपार्जित कर्मों को छोड़कर कोई भी प्राणी किसी भी प्राणी को कुछ भी, जरा भी सुख या दुख नही देता है, ऐसा विचार करके तू अपनी आत्मा में एकाग्रचित्त हो जा। तू अपनी आत्मा में ठहर जा। एक घटना आपसे कहूं -

एक सम्राट अपनी रानी को लेकर मुनि-दर्शन को गया। रानी अत्यन्त मुनि भक्त थी। धर्म के प्रति उसकी गहन आस्था थी। रानी की ही प्रेरणा से सम्राट धर्म से जुड़ा था। उसके अन्दर जो कुछ भी थोड़ी-बहुत धार्मिक भावना पैदा हुई थी वो रानी के कारण से हुई थी। वैसे भी स्त्रियों में धार्मीक भावना ज्यादा होती हैं। रानी सम्राट को लेकर मुनिराज के दर्शन को गई। वेश्या का वहां पर अचानक आना हुआ। उसने देखा नगर का सम्राट रानी के साथ मुनि के पास बैठा है। वह लौटने लगी। रानी ने देखा, एक स्त्री मुनिवर के दर्शनार्थ आई और हमें देखकर लौट गई। वह उठी और

दौड़कर रोकते हुए कहा, बहन ये साधु का दरबार है, यहाँ पर सभी बराबर है। कोई छोटा-बड़ा नहीं है, कोई राजा रंक नहीं है। यही तो वह सागर है जहां आकर सारी नदियाँ पवित्र हो जाती है। यही तो वह स्थान है जहां अविरल समता का नीर बरसता है। यही तो वह उद्यान है जहां सबके लिए प्रेम के सुमन खिलते हैं। यही तो वह आसमान है जहां समता का सूरज उगता है और ज्ञान का आलोक बांटता है। वेश्या का हाथ रानी के हाथ में था। वेश्या शरमाई-सकुचाई-लजाई सी सहमी खड़ी थी। वह अन्दर ही अन्दर हीन भावना से भर गई। उसके पाप उसे धिक्कारने लगे। मन के आईने में पापों के प्रतिबिम्ब बनने लगे। उसे स्वयं के प्रति घृणा पैदा हो गई उसे अपने कुकृत्यों से ग्लानि पैदा हुई। आत्म-निन्दा से भर गई। वह तो मुनिराज के दर्शन करने आई थी। सोचा था, दूर से दर्शन करके, भोगों की प्रार्थना करके, आशीर्वाद लेकर लौट आऊंगी। विगत कुछ दिनों से धन्धा कम चल रहा है। मुनिवर को देखते ही उसे लगा कि अपने पापों का, काली करतूतों का चिट्ठा उनके सामने खोल दे, और हमेशा-हमेशा के लिए प्रायश्चित लेकर पापों से मुक्त हो जाऊं? ये पाप चुभते है, काटते हैं। सोचा अपने पापों की क्षमा मांग लूं, लेकिन हिम्मत न हुई और वापस लौटने लगी।

वेश्या को लगा नगर का सम्राट सन्त के निकट बैठा है। कई बार मैं उसके दरबार में नाची हूं। सम्राट का दिल बहलाया हैं और अगर उसने देख लिया तो मुझे पता नही कौनसी सजा दे। डरकर लौटने लगी रानी ने कहा बहिन डरो मत। साधु का द्वार है सबके लिए खुला हैं। गंगा किसी एक के लिए थोड़े ना बहती है, उसका नीर तो सबके लिए है। यहां क्या पुण्यात्मा क्या पापात्मा, क्या ज्ञानी क्या अज्ञानी, क्या मूर्ख क्या विद्वान। रानी ने कहा, आओ बहिन मेरे साथ भीतर आओ। वेश्या के प्रति रानी की आत्मीयता बढ़ गई, प्रेम बढ़ गया, सम्बन्ध गहरा गया। लगा इसके साथ मेरा कोई सम्बन्ध है। रानी उसका हाथ पकड़कर मुनिराज के निकट ले गई। और मुनिराज को प्रणाम करते हुए कहा-मेरा इसके प्रति इतना गहन प्रेम उमड़ रहा है, इसके प्रति आत्मीयता गहरी क्यों होती जा रही हैं? एसा लग रहा हैं कि अब कभी भी इसका हाथ नही छोड़ूं यह सदा मेरे साथ रहे।

मुनिराज अवधि ज्ञान के धारी थे। उन्होने अवधि ज्ञान लगाया और कहा तुम पूर्व जन्म में सगी बहिने थी। तुम्हारा और इसका पूर्व जन्म का सम्बन्ध हैं, इसलिए आपस में इतना प्रेम उमड़ रहा हैं। साधु के

वचनो से दोनो के मन में जिज्ञासा पैदा हो गई । एक वेश्या और एक रानी । दोनो के बीच जमीन आसमान का अन्तर ? पूर्व जन्म की दोनो सगी बहिने एक डाल पर खिले दो फूल, एक योगी के चरण में और एक भोगी शरण । एक परमात्म चरण का आनन्द ले रहा है, एक गुलदस्ते में सजा है । और एक मलिनी के पग तले रौंदा जा रहा है एक ही उपवन में खिले फूल एक किसी के जुड़े पर, एक किसी के कोट पर टंगा है। यह सब किस्मत का खेल है । उन दोनो ने सविनय मुनिराज से कहा- हमारे अतीत के बारे में कुछ बताये ।

मुनिराज ने कहा, पूर्वभव में तुम दोनों एक धनपति की कन्या थी। वेश्या बडी बहिन और रानी छोटी बहिन थी। बड़ी की रूचि दैहिक-प्रदर्शन, दैहिक-आकर्षण-शृंगार में बहुत थी । स्वयं सजाती, नये-नये वस्त्र पहनती, कामुक-अंगों को अर्द्ध-नग्न रखती और सज संवर कर सड़कों पर निकलती। लोगो को आकर्षित करती। उसकी एक ही महत्वाकांक्षी थी कि मैं रुप-लोलुपी भंवरों को अपना दीवाना बनाकर गाफिल करती जाऊं। वे आहे भरे और मैं निकल जाऊं। वह उन्हें मूर्ख बनाती, उनके अन्दर वासना जगाति, क म पैदा करती और मुस्काकर गुजर जाती । सड़कों पर मटककर चलना, कमर लचका कर चलना, लोगों को रीझाना और निकल जाना । देह का प्रदर्शन करने के कारण, अगों के कारण, अन्तरंग उफनती वासना के कारण तुम वेश्या बनी हो।

उस समय लोक-लाज के कारण, कुल मर्यादा के कारण तुम खुलकर काम-भोग की तृष्णा न बुझा सकी। लेकिन अंगों का प्रदर्शन खुलकर किया, खुब किया। उस सयय तुम्हारी वासनाये उन्मुक्त थी, तुम स्वतंत्र थी। तुमने अपने यौवन का खुलकर, स्वच्छन्द होकर दुरुपयोग किया। मन चौबिसों घण्टे पाप-पंक से भरा रहता था। कलुषित परिणामों से मरण हुआ, इसलिए तुम वेश्या बनी। पूर्व की वासनायें अब प्रगट हो रही हैं। पूर्व का अग प्रदर्शन अब लुट रहा है। पूर्व के आशिक, दीवाने-परवाने देह की गन्दगी चाटने तुम्हारे पास आ रहे हैं। नया कुछ भी नहीं, पुराना सम्बन्ध उभर कर सामने आ रहा है। पूर्व जन्म की वासना ने तुम्हें खा लिया, इसलिए तुम अपने शरीर को बेच रही हो। और ये तुम्हारी छोटी बहन, बहुत धार्मिक थी। नित्य पूजा-पाठ करती, देव-दर्शन-अर्चन करती। सन्त चरण का ध्यान करती, मुनि-चरण में अध्ययन करती। एक जन आर्यिका के पास रहकर इसने स्वाध्याय किया, ग्रन्थों का अध्ययन किया। इसका जीवन अत्यन्त सात्विक था। सदा सादा वस्त्र पहनती थी; तब तुम इसकी हँसी उड़ाती थी। जब यह सादा भोजन

करती, तुम इसकी हँसी उड़ाती। धर्म के, शील के प्रभाव के कारण से यह रानी हुई है। तुम तन के प्रदर्शन के कारण नगरनारी बनी और यह धर्म-आचरण के कारण रानी बनी है। वेश्या फूट-फूट कर रोने लगी। सन्त चरण में अपने पापों का प्रायश्चित मांगने गिर पड़ी क्षमा याचना करते हुए मुनिराज से कहा, प्रभु! क्षमा करो, मुझे मेरे पापों से मुक्त करो, उससे बचने का उपाय बताओ। मैं हर प्रकार से तप करने को राजी हूं, तैयार हूं।

तुम ब्रह्मचर्य व्रत और पांच अणुव्रतों का पालन करो, तुम्हारा उद्धार हो जायेगा। उसने मुनिराज से अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रत को ग्रहण किया। जीवन पर्यन्त व्रतों का पालन किया। जीवन के अन्त में समाधि पूर्वक मरण करके स्वर्ग में देव हुई। प्रत्येक प्राणी का जीवन उसके पुरूषार्थ पर टिका हुआ है। वह अपने कर्मो का फल भोगता हैं। स्वयं बीज बोता हैं और स्वयं फसल काटता है।

स्वयं कृतम् कर्म यदात्मना पुरा
फलं तदीयं लभते शुभाऽशुभम्।

जीव पूर्वकाल में अपने उपार्जित किये शुभ-अशुभ कर्म का फल भोगता हैं। जैसे व्यक्ति स्वप्न का कर्ता-भोक्ता स्वयं होता है। आपने कभी ख्याल किया स्वप्न में किसी नारी को प्रेम किया। सपने में कोई स्त्री तो होती नहीं, आप ही होते है। सपने में कोई स्त्री तो होती नहीं स्वयं की धारणा होती हैं, अतृप्त वासना होती है हो सकता हैं अपनी ही तकिया को छाती चिपकायें पड़े हो, सपना देख रहे हो। जागकर इधर-उधर देखते हो, कोई नजर नहीं आता हंसते हो अपने ऊपर कि ये पागलपन है लेकिन सपने में ऐसा नहीं लगता कि हम स्वयं ही स्त्री बने हैं, हम स्वयं ही पुरुष बने हैं बल्कि सपने में थोड़ा सा सुख मिल जाता है जितना जागने की स्त्री में नहीं मिलता। क्योंकि जाग्रत अवस्था में तो नारी प्रेम मे हजार बाधायें उपस्थित होंगी लेकिन स्वप्न में तो कोई भी नहीं है तुम अकेले ही हो, तुम्हारी भावनाओं का खेल है। वहां कोई दूसरा नहीं है। यही स्थिति जीवन की भी है। प्रत्येक प्राणी स्वप्न की भांति स्वयं ही कर्म करता हैं और कर्म भोक्ता हैं। जीवन के सुख-दुःख में किसी दूसरे का जरा भी हस्तक्षेप नहीं हैं।

अपने सुख-दुःख का निर्माता मनुष्य स्वयं है। जिसे आप सुख मान लेते हैं वह सुख महसूस होता है और जिसे दुख मान लेते हैं वह दुःख

महसूस होता है । कई दफा तो आप दुःख को भी सुख मानकर उसका जीवन पर्यन्त आनन्द लेते रहते हैं। पहली बार जब कोई बीड़ी–सिगरेट पीता है तो सुख नहीं मिलता, दुःख ही मिलता है, खांसी आ जाती है, आंखो में आंसू आ जाते हैं, धुआं सिर में चढ़ जाता हैं । चक्कर मालूम होता है, घबराहट पैदा होती है । आखिर धुआं ही है गन्दा धुआं है । उसको भीतर ले जाने में सुख कैसे हो सकता है ? फिर धीरे-धीरे अभ्यास करते हैं ।

"रस्सी आवत–जात ही सिल पर पड़त निशान करत—करत अभ्यास जड़ मति होत सुजान ।" रस्सी पत्थर पर आती जाती रहे तो निशान पड़ जाते हैं । अभ्यास करते करते दुःख सुख बन गया । पहले जड़मति थे, अकल न थी, मूर्ख थे देखा देखी सिगरेट पी धुआं पिया और मजा न आया । फिर बुद्धि आ गई अभ्यास से पीना फेशन हो गया, जीवन की एक आवश्यकता बन गई । यदि न पिये तो मल नहीं उतरता, पेट साफ नहीं होता, ऐसी मिथ्या धारणा बन गई । और मजे से पीने लगे । पहले पीने में कष्ट था अब बिना पिये कष्ट मिलने लगता है । शराब पहली दफा पिओ तो कड़वी, तिक्त, बेस्वाद लगती है । फिर धीरे-धीरे वही अच्छी लगने लगती, शराब जैसी निकृष्ट गन्दी, तिक्त–कड़वी वस्तु मधुर लगे तो यह क्या हैं, मात्र अभ्यास और मन की मान्यता ।

अगर आप भी अपने जीवन के सुख-दुःख का ठीक से निरीक्षण, या छान-बीन करेंगे तो पायेंगे कि जिसे तुमने सुख मान लिया, सुख जिसे तुमने दुख मान लिया, वह दुख । जिन–जिन वस्तुओं में तुमने दुख आरोपित किया हे उनमें पुनः विचार करो, तटस्थ भाव से, वैज्ञानिक दृष्टि से निरीक्षण करो तो आप हैरान हो जायेंगे कि आपके सुख आपकी मान्यताओं की उपज हैं । जो मान लिया, जो धारणा बना ली वही सुख जो धारणा के विपरीत वही दुख ।

जैसे जागोगे और देखोगे तो पाओगे कि सुख दुःख के कर्ता तुम स्वयं हो । तुम स्वयं अपने कर्मों का फल भोग रहे हो । भगवान महावीर की वाणी का यही रहस्य है कि तुम अपने कारण सुखी अपने कारण दुखी हो । कोई किसी को सुखी–दुखी नहीं बना सकता । सब अपने-अपने कर्मों का फल भोगते हैं । जीवन के इस गहनतम रहस्य को समझो और अपने कर्म को सुधारो । तप–त्याग से स्वयं को निखारो ।

भगवान महावीर ने इस मिथ्या धारणा को तोड़ा कि सृष्टि का कर्ता भगवान है, जीव का कर्ता भगवान है । इस पृथ्वी पर ऐसा कोई भी परमात्मा नहीं है जो हमें चलाता हो, उठाता हो, जिलाता, और मारता हो । अगर हम

परमात्मा की सन्तान है तो दुखी क्यों है ? क्या कभी ऐसा संभव है कि बाप आराम से रहे, गुलछर्रे उड़ाये, ऐशो-आराम की जिन्दगी बिताये और बेटा एक-एक रोटी के टुकड़े को मोहताज रहे, दर-दर भटके, भीख माँगे ? क्या इसमें बाप का अपमान नहीं है ? क्या बाप निष्ठुर और कठोर है, पत्थर-दिल है कि अपने बेटे को दो रोटी नहीं खिला सकता ? यदि सन्तान को पालने की ताकत सामर्थ्य नहीं थी, तो सन्तान को क्यों जन्म दिया ? पशुओं के पास भी कम से कम इतनी करुणा अवश्य होती है कि वे भी अपनी सन्तान के लिए दाना-पानी एकत्र करते है। यदि हम उस परमात्मा की संतान है तो निश्चित ही वह हमारे लिए सुख-सुविधा जुटायेगा, दुख से मुक्त करायेगा। क्योंकि परमात्मा को हमने परम करुणावान माना है। आपका प्रश्न हो सकता है कि बेटा अपने आचरण-दुराचरण के कारण दुखी है, तो यह बात स्पष्ट हो गई कि बेटा अपने कर्म का फल पा रहा है, इसमें बाप का क्या हाथ ? दूसरी बात अगरबेटा दुराचारी है तो ये सस्कार कहां से आये ? सोचना होगा, संस्कार तो परम्पराओं से और पैतृक पीढ़ी से आते है। परमात्मा तो सर्व सामर्थ्यवान है क्या वह अपनी सन्तान के संस्कार नहीं सुधार सकता ? साधारण पिता भी अपनी सन्तान को अच्छे सस्कार देने की कोशिश करता है और अपनी पूर्ण-जिम्मेदारी निभाता है। तब क्या परमात्मा का अपनी सन्तान के प्रति कोई कर्तव्य नहीं है ? नहीं ऐसा कहना अपराध है। परमात्मा तो अरुपी-अजन्मा, परमवीतरागी है, अखण्ड ब्रह्मचर्य का धारी है वह हमें कैसे पैदा कर सकताहै।

अगर परमात्मा हमे जिलाता मारता हैं तो हम उसके हाथ की कठ पुतली हुए। जैसे एक मदारी या कठपुतली का नचाने वाला पुतलियों की डोर खींच खींच कर नचाता हैं, वैसे ही परमात्मा हमे नचा रहा हैं। हम परतंत्र हो गये और परमात्मा परम स्वतंत्र हो गया। वह जैसा हमे नचाये, चाहे जैसा हमें दुख दे। अगर हम परमात्मा की सन्तान होकर भी दुखी हैं तो ईसका अर्थ हुआ कि परमात्मा भी दुखवादी हैं क्योंकि जिसके पास जो हे वही तो देगा। अगर परमात्मा दुखवादी हैं तो व्यर्थ हैं फिर धर्म भी व्यर्थ हैं। फिर तुम तो एक असहाय मछली के समान हो गये। जब परमात्मा चाहेगा सुखी बना देगा, और जब चाहेगा तब दुखी बना देगा। मुक्ति भी पराधीन हो गई।

धार्मिक व्यक्ति स्वयं को परमात्मा की सन्तान नही मानता, वह परमात्मा के प्रति कृतज्ञता तो प्रगट करता हैं लेकिन स्वयं को परमात्मा की सन्तान नही कहता, ऐसा तो अधार्मिक कहता हैं कि सब परमात्मा कर रहा हैं ऐसा कहने में सुविधा भी मिलती हैं कि स्वयं का सारा उत्तरदायित्तव समाप्त

हो जाता हैं। सारी जिम्मेवारी समाप्त हो जाती है। तुमने पाप भार किसी ओर के कन्धो पर रख दिया। परमात्मा को फंसा दिया और स्वयं को बचा लिया। आप कहने लगते हैं कि मैं क्या करु ? जैसा परमात्मा करवा रहा हैं, वैसा मैं कर रहा हूं। करते आप स्वयं हैं और हो तो भी वही हैं। बीच में परमात्मा को लाकर हल्का हो जाते हो, स्वयं के हाथो में कुछ रहा,अपराध न रहा, पुण्य-पाप न रहा, नास्तिक प्रकृति पर छोड देता हैं। कम्युनिष्ट इतिहास पर डाल देता हैं। फ्रायड अचेतन मन पर डाल देता हैं और अधार्मिक पर मात्मा पर डाल देता है, राजनैतिक राजनीति पर छोड देता हैं, और कोई अर्थ शास्त्र पर डाल देता है। लोग सोचते हैं कि हमारा भाग्य किसी ओर ने लिखा है। 'जबकि भाग्य तो स्वयं लिखते है, कोई ओर तुम्हारा भाग्य लिखने वाला नही हैं, भाग्य तुम्हारा ही हस्ताक्षर हैं, यह हो सकता हैं कि तुम्हे अपना अतित याद न हो। तुम्हारा ज्ञान कमजोर हो अपना लिखा भाग्य न पढ पाते हो अपने ही हस्ताक्षर न पहचान पाते हो। अगर आप स्वयं की गहराई मे जायगे, आगम पर श्रद्धा करेगे तो निश्चित ही अपने पूर्व कृत कर्मों का खेल पायेगे। जिस दिन तुम्हें सत्य का ज्ञान होगा कि मैं स्वयं ही अपने सुख दुख का मालिक हूं तो जीवन का आचरण सुधर जायेगा। क्योंकि तुम अपने मालिक हुए।

अगर परमात्मा ने हमें बनाया है तो उसके हाथ के खिलौने हो गये सारी जिम्मेदारी उसकी। पुण्य पाप की जिम्मेदारी उसकी हम कुछ नही कर सकते हम पराधीन हैं परतंत्र हैं, अब मोक्ष भी कारागृह सिद्ध होगा। जब-जब उसकी ईच्छा होगी पहुंचा देगा, जब इच्छा होगी बुला लेगा। अगर इच्छा न भी होगी तो भी जाना होगा बिना इच्छा के मोक्ष भी दुख दाइ होगा; जब हम परतंत्र ही हैं तब पुण्य करो, धर्म करो शुभ करो यह, क्यो कहा जाता हैं? जब परमात्मा को मोक्ष पहूंचाना हैं पहुचा देगा। अच्छे काम करना होगा, करा लेगा क्योकि हम तो उसके हाथ की कठपुतली हैं। लेकिन भगवान महावीर दुसरे पर जिम्मेदारी डालने में राजी नही हैं। तुम स्वयं अपने उत्तरदायी हो तुम स्वयं कर्ता-भोक्ता हो स्वयं अपने कर्मो का भार ढो रहे हो, स्वयं परमात्मा को बीच मे मत लाओ, पूर्व में जो बोया था वर्तमान में उसकी फसल काट कर स्वाद ले रहे हो। अगर वर्तमान मे दुखी हो तो पूर्व में दुख के बीज बोये होंगे, अगर सुखी हो तो सुख के बीज बोये हैं। किसी ने एक दिन पुछा था :-

क्या मेरी किस्मत में दुख ही दुख लिखा हैं ? क्या सुख जरा भी नहीं है ? क्या परमात्मा मुझसे नाराज हैं ? क्य परमात्मा ने मेरा ऐसा भाग्य क्यो लिखा ?

कोई किसी का भाग्य नही लिखता, सब अपना अपना भाग्य लिखते हैं। परमात्मा को क्या गरज पड़ी है तुम्हारा भाग्य लिखने की। क्या तुमने उसे अपने जैसा निठल्ला, बेकार, फालतू समझ रखा है ? वह तो परम वित-रागी है अपने स्वभाव में डुबा है। जीवन का सुख दुख तुम्हारे हाथ में है। जैसा लिखोगे वैसा ही पाओगे। विषाद लिखोगे विषाद पाओगे, आनन्द लिखोगे, आनन्द पाओगे। तुम जो चुनोगे वही मिलेगा, तुम जो मन में बसा लेते हो वही तुम्हारा भाग्य बन जाता हैं, तुम जो चुन लेते हो वही भाग्य बनकर आ जाता है। स्वयं का भाग्य प्रति क्षण, प्रतिपल हम स्वयं ही लिखते हैं। स्वयं का लिखा ही काम आता हैं, किसी दूसरे का लिखा काम नहीं आता। लौकिक अदालत भी दूसरे के द्वारा लिखे पर विश्वास नहीं करती। यदि उस लिखे पर आपके सिगनेचर है, हस्ताक्षर है तो अदालत विश्वास करेगी, अन्यथा एप्लीकेशन खारिज हो जायेगी, नामंजूर हो जायेगी।

अगर दूसरा कोई हमारा विधाता है, हमारा भाग्य लिखता हैं तो फिर ये धर्म-कर्म, सदाचार का पालन, दान-पूजा-भक्ति-अर्चना सब व्यर्थ है। सावधान नियतिवाद की, भाग्यवाद की धारणा से बचो। धार्मिक आदमी नियतिवादी-भाग्यवादी नहीं होता। वह तो पुरुषार्थवादी आस्थावान होता। नियतिवादी-भाग्यवादी होना तो अधार्मिक-कामी-भोगी, विषय-लोलुपी व्यक्ति का लक्षण है। क्योंकि उसकी आत्मा खो गयी हैं, इसलिए दूसरे पर टाल रहा हैं। भाग्यवादी-नियतिवादी नास्तिक है, धार्मिक नहीं अधार्मिक है। और अधार्मिक आदमी का एक ही लक्षण है वह अपनी आत्मा को स्वीकार नहीं करता है। वह तो अपने से बचना चाहता है, अपने ऊपर जिम्मेदारी उठाने का साहस ही नहीं करता, कमजोर है। सब कुछ परमात्मा पर डाल देता है, या नियतिवाद कहकर टाल देता है।

भगवान महावीर कहते हैं कि भाग्य किसी पर मत टालो। स्वयं के पूर्वकृत अस्तित्व को स्वीकारो और वर्तमान को सुधारो, समता धारो। पूर्व के ही सिगनेचर है जीवन पृष्ठों पर जरा आंख खोलकर, होश-पूर्वक देखो। सिगनेचर शब्द बड़ा प्यारा है सी योर नेचर See Your Nature अपने स्वभाव को देखो, अपने जीवन को देखो, अपने इतिहास को देखो कि उसके उपर सिगनेचर किसके है ? अगर ध्यान से देखोगे तो अपने ही सिगनेचर पाओगे, और स्वयं की स्वीकृति हैं See your Fucher अपना भविष्य देख लो आगामी जीवन सम्यक पाओगे, यह तो भूलकर भी मत कहना कि तुम्हारा भाग्य किसी दूसरे ने लिखा है। तुम्हारे भाग्य का कोई दूसरा निर्माता नहीं हैं।

एक घटना आपसे कहूं....

एक आदमी मरा, जो-जो करने योग्य था, करके मरा, जो मनुष्य की आकांक्षाये थी करीब-करीब पूरी करके मरा।

परमात्मा के सामने न्यायालय में उपस्थित किया गया, स्वभावत: परमात्मा नाराज था, उसने कहा बड़े अजीब इंसान हो तुम। तुमने पृथ्वी पर मनुष्य जाति को बदनाम किया है, तुमने बहुत पाप किया है, तुम्हारे पास अपने किये पापों का उत्तर है ? उसने कहा मैंने कुछ भी अपनी मर्जी से नहीं किया । जैसे आपने संस्कार दिये, जैसा आपने बताया, जो आपने कराया मैंने वही किया। मैं किसी भी पाप के प्रति उत्तरदायी नहीं हूं। परमात्मा थोड़ा चौंका, उसने कहा, तुमने हिंसा की, खून किये, हत्या की ? उस आदमी ने कहा, निश्चित ही। तुमने धन के लिए गरीबों को सताया ? तुमने काम वासना की तृप्ति के लिए व्याभिचार किया, बलात्कार किया, दुराचार किया, नारियों की अस्मते लूटी ? उस अपराधी ने कहा, निश्चित ही, जैसा आपने बताया, वैसा मैंने किया, क्योंकि संस्कार तो आपने ही दिये थे, इतना कहते हुए भी उस आदमी के चेहरे पर जरा भी शिकन नहीं आयी, और न अपराध का कोई भाव आया। न कोई चिन्ता। परमात्मा थोड़ा बैचेन होने लगा बहुत अपराधी आए थे, सब क्षमा मांगकर चले गये। लेकिन ये कुछ नये ढंग का ही आदमी हैं । परमात्मा ने कहा जानते हो तुम्हारा बार-बार यह कहना कि हाँ निश्चित ही मैं तुम्हें नर्क भेज दूगा, उस आदमी ने कहा, तुम न भेज सकोगे। क्योंकि मैं जहाँ भी रहा नर्क में ही रहा अब तुम मुझे कहां भेजोगे जहाँ नरक हो सकता है ?

अब तो परमात्मा को भी पसीना आ गया। उसे कुछ न सूझा, उसकी सारी धमकियाँ, सारे निर्णय काम न आये, कोई बहीखाते, पुरानी फाइले काम न आयी, उसने कहा घबड़ाहट में-फिर मैं तुम्हें स्वर्ग भेज दूंगा उस अपराधी ने कहा यह भी असंभव है। परमात्मा ने कहा, तुम आखिर हो कौन ? मेरे ऊपर कौन हैं, जो तुम्हें स्वर्ग जाने से रोक सके, उस आदमी ने कहा वह मेरा निर्णय है, क्योंकि मैं सुख की कल्पना ही नहीं कर सकता बल्कि हर सुख को दुख में ढालने की कला में पारगत हो गया हूं। तुम मुझे स्वर्ग न भेज सकोगे, तुम भेजोगे मैं नर्क बना लूंगा मैंन सुख का नाम भी नहीं सुना, सुख की कल्पना भी नहीं कर सकता, तुम मुझे स्वर्ग भेजोगे कैसे ? और कहते हैं कि मामला वही अटका हुआ है, परमात्मा ने उसी दिन से सारा निर्णय सुख-दुख का मनुष्य के ऊपर ही छोड़ दिया, परमात्मा उसे नर्क भेज नहीं सकता क्योंकि नर्क में वह रहा हैं, और स्वर्ग भी भेज नहीं

सकता क्योंकि स्वर्ग को भी नर्क बना लेगा ।

यद्यपि यह काल्पनिक झूठी कहानी आपसे कही, लेकिन तथ्य बहुत हैं, अगर इसे ध्यान पूर्वक समझने की कोशिश करेंगे तो पायेंगे कि यह किसी और आदमी की कहानी नहीं, सभी इंसानों की कहानी है, आप वहीं भेजे जा सकते हैं, जहाँ आप जाना चाहते है, भले ही आप ऊपर से स्वर्ग की चर्चा करे माँग करे लेकिन अन्तस् तो कर्म नर्क के ही करता है। आदमी चर्चा पुण्य की करता हैं और काम नर्क के करता हैं । स्वर्ग कोई दान नहीं है। स्वर्ग . मोक्ष किसी के अनुग्रह से भी नहीं मिलता । पुण्य अर्जित करना पड़ता हैं। सम्यक आचरण करना पडता हैं ध्यान का अभ्यास सीखना पड़ता हैं। पहले सुख का स्वाद चखो उस पर आस्था रखो । भगवान महावीर कहते हैं कि सुख और दुख तो मन की कल्पनाये हैं । वही घटना सुख बन जाती है किसी के हाथ में वही घटना दुख बन जाती हैं कोई उस घटना को दुर्भाग्य बना लेता हैं, और कोई सौभाग्य बना लेता हैं। पार्श्वनाथ भगवान ने कमठ के द्वार किये गये गहन भीषण उपसर्ग को सौभाग्य बना लिया था तो केवल ज्ञान विभूति को पा गये । द्वीपायन मुनि ने यादवो द्वारा किये गये उपसर्गों को दुर्भाग्य बनाया तो स्वयं भस्म हो गये . राम ने वनवास को सौभाग्य बताया पूज्य हो गये। रावण ने राम के सानिध्य को भी अपना दुर्भाग्य समझा नर्क चला गया। विभीषण ने राम के सान्निध्य को अपना सौभाग्य समझ मोक्ष गया। उसी घटना को कोई सौभाग्य और कोई दुर्भाग्य बना लेता है । सारी बात स्वयं पर निर्भर है। सीता ने वनवास को सौभाग्य बनाया पूज्य हो गई चन्दनबाला ने काल कोठरी को सौभाग्य बनाया महावीर को आहारदान का अवसर पाया धन्य धन्य हो गई। मनुष्य स्वयं अपना आत्यतिक निर्णायक है कोई भी तुम्हे स्वग नर्क नही भेज सकता । तुम्हारे कृत्य,तुम्हारी भावना ही तुम्हे स्वर्ग नर्क भेजती हैं । तुम जहां होना चाहते हो वही हो और वही रहोगे तुम्हारी स्वतंत्रता अन्तिम है, तुम स्वय अपने मालिक हो, कोई, दुसरा तुम्हारा मालिक नही है। और न आज तक हुआ है और न कभी होगा ।

भगवान महावीर का इस बात पर गहनतम जोर है कि तुम स्वयं अपने मालिक हो और कोई मालिक नहीं है। इसलिए महावीर ने परमात्मा को कर्ता माना ही नहीं । परमात्मा के अस्तित्व को नकारा उसके कर्तापन को अस्वीकार किया है, परमात्मा को बीच में लाने से भ्रम बढ़ता है, कि कुछ भी करो हम थोड़े न कर रहे हैं जो वह करा रहा है, वही कर रहे हैं। पाप करने से सुविधा मिल जाती है। परमात्मा की आड़ में पाप करना आसान हो जाता है। स्वयं की जिम्मेदारी खतम हो जाती है।

महावीर ने कहा तुम स्वयं ही अपने निर्णायक, नियंता, मालिक हो क्योंकि तुम्हारे साथ जी घट रहा, बीत रहा उसके जिम्मेदार तुम स्वयं हो "स्वयं कृतम् कर्म यदात्मना पुरा" पूर्व में स्वयं के किये कर्म ही उदय में आकर फल देते है। इसलिए महावीर का सारा जोर मनुष्य के आचरण पर केन्द्रित है, उसमे किसी का जरा भी हस्तक्षेप नहीं है, यानि परमात्मा का भी नहीं है । महावीर के दर्शन में परमात्मा का अवतरण नही होता, परमात्मा कर्ता नहीं होता । परमात्मा कही दूर आकाश में सिंहासन पर नहीं बैठा है। मनुष्य के हृदय में ही शक्ति रूप से विद्यमान है और सम्यक् साधन से ही उसके हृदय में उसकी गध उठती है, सुवास पैदा होती है, और ऊपर को उठती हैं । इसीलिए तो महावीर कहते है कि परमात्मा ऊपर स नीचे नहीं उतरता, नीचे से ऊपर जाता है, ऊर्ध्वगमित होता है । नीचे से ऊपर जाता है ज्योति की तरह । तभी तो मन्दिर में आरती का दीपक जलाते हैं। वर्षा ऊपर से गिरती है, नालियों में बहती है, गन्दा हो जाती हैं । ऊपर से नीचे आने वाला गन्दा नहीं होगा तो और क्या होगा ? वेद का परमात्मा ऊपर से नीचे आता है रास रचाता है और महावीर का परमात्मा अग्नि की लपट की तरह नीचे से ऊपर जाता है । जब चैतन्य की ज्योति प्रगट होती है तो नीचे से ऊपर तरफ भागती है, जब बुरे कर्म जलकर भस्म हो जायेगे, सारा कूड़ा-कचरा जल जायेगा, खालिस कुन्दन शेष रह जायेगा, परम-शुद्ध ज्योति रह जायेगी, मात्र बोध शेष रह जायेगा, ज्ञान शेष रह जायेगा, तब तुम स्वयं परमात्मा हो जाओगे ।

अभी तो वर्तमान में तुम जो हो, उसके कारण तुम्ही हो "निजार्जित कर्म विहाय देहिनो, न कोपि कस्यापि ददाति किञ्चन ।" स्वयं के कर्म का फल भोग रहे हो, कोई दुसरा फल देने वाला नहो हैं। यानि अभी तुम जो हो कल जो थे और आगे जो होगे उसके कारण तुम ही हो ये आधार भूत हैं। स्वयं के पाप से बचने का, लुकन-छिपने का कोई उपाय नही है, भगवान महावीर न मनुष्य को बहने के लिए, छिपने के लिए कोई ओट नही छोड़ी इसलिए महावीर का साक्षात्कार आत्म साक्षात्कार हैं, महावीर का दर्शन आत्म-दर्शन हैं महावीर को समझ लेना स्वय को समझ लेना हैं, इसलिये यह आरोप मत लगाना कि परमात्मा ने हमारा भाग्य लिखा हैं परमात्मा ने नही, तुमने स्वय अपना भाग्य लिखा हैं।

महावीर ने परमात्मा के कर्तापन को हटा दिया और स्वयं के कर्तापन पर लाकर रख दिया । व्यक्ति स्वयं अपना कर्ता हैं अब सम्यक् पुरूषार्थ तुम्हे करना हैं सम्यक तप, त्याग तुम्हे करना है, सम्यक् ध्यान तुम्हें करना है, और

जो परमात्मा बन गये हैं तुम्हारा मार्ग प्रशस्त किया हैं उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापन तुम्हे करना हैं उनके प्रति अनुग्रह का भाव करना हैं उन्हे नमन करना हैं प्रणाम करना हैं अब यह आपके उपर निर्भर हैं कि आपको क्या चुनना हैं।

परमात्मा कभी भी किसी से नाराज-नही होता हैं अगर नाराज है तो समझना वह परमात्मा होने के योग्य नही है. परमात्मा होने के लायक नही है दुखी सुखी होना स्वयं पर निर्भर हैं हम किसी को सुखी-दुखी भी नही बना सकते कुछ लोग अपने आपको समाज सुधारक कहते हं तथा विधवाओं से विवाह करते है जैसे उनके विवाह के लिए किसी को विधवा होना आवश्यक है मेरे पास पत्र आते हैं और उसमे लिखते है कि हम समाज सुधारक है, विधवा विवाह के बारे में सब कुछ करने को तैयार है आप भी अपने उपदेशों में विधवा विवाह का समर्थन कीजिये और पत्र में निचे अपना नाम पता कुछ भी नही लिखते, ये डरपोक कायर ढ़ोंगी लोग हैं समाज सुधार और विधवा विवाह के नाम पर असहाय स्त्रियों को सहानुभूति जताकर उनकी बची कुची अस्मत लुटना चाहते हैं लोग विधवा विवाह का समर्थन करके अपनी वासना की महत्वाकाँक्षा की तृप्ति करना चाहते, हैं बेचारी स्त्री एक विवाह करके तो रो रही हैं अब उसके सिर पर दुसरा विवाह कराकर दुसरी झझट लादना क्यो चाहते हैं विवाह और विधवा का उद्धार ये पुण्य नही, पाप काम है इसमें उद्धार नहीं पतन है, विधवा से विवाह करने का भी रस है, किसी का विधवा से प्रेम हो और उस प्रेम को समाज सुधार,विधवा उद्धार का रुप देना चाहता है, तभी तो विधवा विवाह का समर्थन करना चाहता है. और प्रेम तो अन्धा होता है, प्रेम स्त्री से होता है उस समय वो विधवा है या नही हैं ये बात गोण हो जाती, जैसे कोई स्त्री डाक्टर है शिक्षक है, या नर्स है इससे क्या लेना देना, वैसे ही कोई विधवा है या नही इससे क्या लेना देना है ? वो तो अपनी वासना से विवाह कर रहा है, और जो आदमी विधवा से विवाह कर रहा है, वो विधवा से विवाह नही कर रहा ध्यान रखना, शादी के बाद विधवा विधवा नही रह जायेगी, रस समाप्त हो जायेगा, प्रेम समाप्त हो जायेगा, बेचारी पहले विधवा थी, समाज में सम्मानित थी थोडी बहुत सहानुभूति पा लेती थी लेकिन शादी के बाद ज्यादा अपमानित होगी, ज्यादा कष्ट झेलना पडेगे उसे, अब सहानुभूति नही विषयानु भूति, होगी निन्दानुभूति होगी ।

भूलकर भी विधवा— विवाह का समर्थन मत करना, तथा ऐसे समाज सुधारकों की मुढ़ता में भी मत पड़ना, वे समाज विदारक हैं, विधवा विवाह तो मुढ़ता की बात हैं, अनर्गल प्रलाप है, तुमने एक विधवा विवाह कर

लिया, सोचा एक दुखी को दुख से उभार लिया, लेकिन बिवाह तो एक ही से होगा अगर दुसरी विधवा है तो उससे विवाह कैसे करोगे? उसे कैसे उभारोगे उससे तुम और ज्यादा दुखी हो जाओगे, सुख का शादी से क्या सम्बन्ध ? जिसे आनन्दित होना है, सुखी होना है, वह तो बिना शादी के भी आनन्दित और सुखी हो जायेगा और। जिसे दुखी होना है, विवाद से भरना है तो शादी के बाद भी दुखी हो जायेगा, विषाद से भर जायेगा। इतना याद रखो सुख का बाह्य परिस्थितियों से कोई सम्बन्ध नहीं, और शादी ब्याह बाह्य परिस्थिति है। इससे अन्तस् चेतना का कोई भी सम्बन्ध नही है आदमी सुखी और दुखी अपने कारण होता है।

स्वयं का पाप स्वयं को रूलाता है और स्वयं का पुण्य स्वयं को ऊपर उठाता है। पुण्य और पाप स्वयं के परिणामों का फल है अगर आप सोचते है, कि सभी कृत्य परमात्मा कर रहा है तो फिर तुम्हारे कृत्यों का फल परमात्मा को भोगना पड़ेगा। तुम पीड़ित होगे तो परमात्मा भी पीड़ित हो जायेगा जैसे पप्पू पीड़ित होता है तो मम्मी–पापा भी दुखी हो जाते है। अगर आपके सिर मे दर्द होगा, तो पापा को पीड़ा होनी चाहिए, पप्पू पापा की सन्तान है। लौकिक न्याय ऐसा है कि अगर सन्तान अपराध करती है तो उसके पापा को पकड़ा जाता है। इसी प्रकार अगर हम परमात्मा की सन्तान है, गलत काम कर रहे है तो परमात्मा पकड़ा ,जायेगा, परमात्मा दोषी कहलायेगा। जैसे एक मूर्तिकार मूर्ति बनाता है और मूर्ति में कोई दोष रह जाता है तो मूर्तिकार ही पकड़ा जाता है। इसी प्रकार हमारे अन्दर अगर दोष है तो उसका जिम्मेदार परमात्मा है, परमात्मा को सजा मिलनी चाहिए, भगवान महावीर कहते है कि व्यर्थ मे परमात्मा को दोषी मत ठहराना, दोषी स्वय हो तुम्हारे भीतर बैठा तुम्हारा परमात्मा ही तुमसे गलत काम करा रहा है। वह मोह से ग्रसित है। तुम संसार मैं कोई नये नही हो, कोई पहली बार तुम्हारा जन्म नही हुआ ह।

एक व्यक्ति बम्बई गया, राह से गुजर रहा था एक होटल के साईन बोर्ड पर नजर पड़ी, लिखा, चिन्ता मत करो, अगर भूख लगी हो तो खाना खा लों, बिल तुम्हारे नाती चुका देगे, उसने बोर्ड पढ़ा मन ही मन बहुत खश हुआ भूखा तो था ही, होटल में गया, पेट भर भोजन किया, होटल से बाहर निकलने लगा तो बेरा ने १२० रूपये का बिल पेश किया, उसने कहा आपके यहाँ बोर्ड पर लिखा है चिन्ता न करे आपका बिल नाती चुका देगे, इसलिए मैंने खाना खाया हैं, होटल मेनेजर ने कहा ये बिल तो तुम्हारे

दादा का बिल है, तुम्हारा नही इसे चुकाओ। खाया हैं बिल तो चुकाना ही पड़ेगा अगर पाप आपने किया है तो प्रायश्चित भी आपको ही करना होगा स्वयं की गंदगी स्वयं को धोना पड़ेगी। कई लोग गंगा स्नान करने जाते हैं सोचते है गंगा में स्नान करने से पाप धुल जायेगे । पाप तुमने किया हैं धोयेगी गंगा तुम किसे धोखा दे रहे हो ? गंगा को तीर्थ को ?अपने को ही धोखा दे रहे हो अगर पाप तुमने किया हैं तो गंगा कैसे धोयेगी ? तुम्ही को धोना पड़ेगा सिर में दर्द हैं तो दवाई कौन खायेगा ? क्या मम्मी पापा के दवाई खाने से तुम्हारा सिर दर्द ठीक हो जायेगा ? अगर दर्द तुम्हारा है, तो दवा भी तुम्हें ही खानी पड़ेगी। अगर पाप पक से आत्मा गन्दी हो गई है तो ये गन्दगी तुम्हे ही साफ करनी पड़ेगी, कोई और धोने वाला नही हैं। और जब तक ये कहोगे कि गन्दगी कोई और साफ करदे तो समझना गन्दगी और बढ़ेगी। आखिर परिणाम क्या होता है ? गंगा स्नान करके आते हैं पाप तो बन्द नही हो जाते । स्वच्छ मन से पुनः पाप करने मे लग जाते हो। जैसे गंगा ने यह कहकर लौटा दिया हो कि जाओ चिन्ता मत करो, जितने पाप कर सको कर लो, फिर लौट कर धो लेना। ईसाई पादरी के पास जाकर कन्फेशन कर आते आते है, पाप को स्वीकार कर आते हैं और सोचते है, कि हम पवित्र हो गये। कह दिया बता दिया,माफी पादरी से मांग ली पाप कही और किया और माफी किसी और से मांगली, घाव कही और था मलहम कही और लगाली।

एक व्यक्ति के हाथ में बहुत गहरा घाव हो गया, गांव का बड़ा आदमी था, धनपति था, उसने डाक्टर को हाथ दिखाया, उसने मलहम लगाने को दी, उसने सोचा यदि हाथ में मलहम लगाऊंगा तो बाहर देखने मे आयेगी, अच्छा नही लगेगा उसने मलहम को पीठ में लगा लिया और कपड़े पहन लिये, घाव में कोई फर्क न पडा, बलिक घाव और बढ गया तीन दिन बाद पुनः डाक्टर से मिला और शिकायत करते हुए कहा कि दवाई ने जरा भी काम नही किया, बल्कि पहले की अपेक्षा दर्द और बढ़ गया है। डाक्टर ने घाव देखा, उसे लगा कि इसमें मलहम वगैरह तो कुछ लगी नही हैं। मरीज से पुछा क्या घाव पर मलहम लगाई थी ? उसने कहा हां लगाई तो थी, लेकिन घाव पर नही, पीठ में लगाई थी, डाक्टर ने कहा, अरे पागल घाव कहाँ पीठ में था या हाथ में?हाथ में, दवाई हाथ में लगाते तो घाव मिट जाता। पाप करते तो मन में और स्नान करते हो गंगा में कहो कैसे मिटेगे पाप। करते तो मन में और चर्च में जाकर कनफेक्शन कर आते हो, मंदिर में जाकर प्रार्थना कर आते हो, मस्जिद मे जाकर तोबा कर आते हो।

जिनके साथ पाप हुए है उनसे क्षमा मांगो और तपश्चरण करो, जिन कारणो से पाप हुआ है, उन कारणों का त्याग करो । साधु बनो, एकान्त में खड़े होकर अपने पापों का स्मरण करो और ध्यान-सामायिक के नीर से उनको धोओ ! नियतिवाद का भाग्य का , चोला मत पहनो पुरुषार्थ करो ।

भगवान महावीर कहते है, कही तुम्हारा स्वाध्याय त्याग से बचने का उपाय तो नही है ? प्रार्थना करके, स्वाध्याय करके, सुलझ गये, पुण्य कमा लिया, धर्म कर लिया । ऐसी सरल बातों से मात्र पुण्य कमा सकते हो, पाप नही धो सकते । प्रार्थना करके, स्वाध्याय करके बिना तप-त्याग को अपनाये इसमें सस्ते में मोक्ष पाना चाहते हो । जिनपे घाव छोड़े है, जिनके दिल दुखाये हैं जरा उनसे जाकर क्षमा मांगों । दूसरो के साथ किया गया पाप, उसे स्वयं के साथ किया गया पाप समझो । इस गहरी बात को समझो । इसका स्वाद लो ।

तुमने अब तक जो कृत्य किये है वही तो लौट-कर आया है । "स्वयं कृतं कर्म यदात्मना पुरा" कभी किसी की निन्दा की होगी इसलिए वर्तमान मे तुम्हारी निन्दा हो रही है। कभी किसी से घृणा की होगी, लोग तुमसे घृणा कर रहे है । कभी किसी का बुरा किया होगा, इसलिए तुम्हारा भी बुरा हो रहा है । तुम जो-जो दुसरो के साथ कर रहे हो वही वही तुम्हारे पास लौटकर आ रहा हैं । तुमने जो दुसरो के नाम पत्र लिखे है इस पर तुम्हारा भी पता लिखा है इसलिए लौटकर वापस आ रहे हैं । जाओ पोस्ट-ऑफीस में चिट्ठी लिखकर डाल आओ, सील-मोहर लगकर वापस आ जायेगी, पोस्ट-ऑफीस का डाकिया तुम्हारे ही घर लौटा जायेगा । इन पर पीछे तुम्हारा ही पता है । यह संसार तो एक प्रतिध्वनि हैं । जैसा तुम गाते हो वैसी आवाज लौट आती है । हंसों तो सारा जग हंसता नजर आता हैं, रोओ तो सारा जग रोता नजर आता है । उदास होकर चांद तारो को देखोगे रोते नजर आयेंगे, आनन्दित होकर देखोगे आकाश से फूल झरते नजर आएगे । सारा जगत तुम्हारे ही मन का फैलाव है ।

भगवान महावीर कहते है कि स्वयं ही जन्म होता है, पाप का और स्वयं से ही जन्म होता है पुण्य का। दोनों स्वयं के सहारे ही जीते है । तुम ही हो पुण्य-पाप के पिता । तुम्ही शक्ति देते हो, तुम्ही ऊर्जा देते हो, तुम ही साथ देते हो । दुसरो के बहाने आप जो कर रहे है वो घुम फिरकर आप पर ही लौट आयेगा । किसी को गाली दो तो थोडी वजनी होकर लौट आती है, रिफाइन्ड होकर लौट आती है । थोडी निखर कर लोंट आती है । थोडी नुकीली होकर लौट आती है । थोडा जहर ले

कर लौट आती है। और किसी कि प्रशंसा करो तो प्रेम की वर्षा हो जाती हैं। दान करो, त्याग करो तो पुण्य की वर्षा हो जाती हैं।

दुसरो के साथ किया पाप स्वयं के साथ अन्याय हैं। और दुसरो के साथ किया गया सद्व्यवहार स्वयं के लिये अमृत है। भगवान महावीर कहते हैं ध्यान सामायिक में गहरे उतरो। एकाग्रचित्त होकर सोचो, मात्र एक बार ही इतना ख्याल आ जाए कि मैं स्वयं अपना जिम्मेदार हूं। ये बात हर क्षरण दिमाग में घूमती रहे कि मैं पुण्य पाप का जिम्मेदार हूं सोते जागते हरक्षरण हरपल यही विचार उठे कि मैं जिम्मेवार हूं। इनका फल मुझे ही भोगना है। तुम्हारा मन जलता हुआ दिया बन जाय कि मैं जिम्मेवार हूं, उसके प्रकाश में स्वयं के पाप देखो। तो क्या फिर इतनी आसानी से पाप कर सकोगे, जितनी आसानी से अब तक किये। मैं जिम्मेवार हूं तो फूंक-फूंक कर कदम रखने लगोगे, अपने आप ही ईर्या समिति का पालन करने लगोगे। दूध का जला छाछः फूंक-फूंक कर पीने लगता है।

अगर एक बार इतना ही स्मरण आ जाये कि पाप मैंने किये हैं और मैं उनका ही फल भोग रहा हूं। अब कौन मुझे मुक्त कराने आयेगा? मैं व्यर्थ किसकी राह देख रहा हूं? कोई भी आने वाला नहीं है, न कभी कोई आया है और न कभी कोई आयेगा। अगर मिर्ची मैंने खाई हैं तो उसकी जलन मुझे ही सहन करनी पड़ेगी, मैं ही उसका जिम्मेवार हूं। अब मुझे ही औषधि खानी हैं, मेरे पाप को भोगने में दूसरा कोई भागीदार नहीं है। अब किसी दूसरे के कन्धे पर रखकर बन्दूक मत चलाओ, दूसरों की आड में पाप मत करा।

भगवान महावीर कहते है कि मनुष्य ही एकाँत रुप से उत्तरदायी हैं। किसी और के प्रति नहीं अपने ही प्रति, पाप हो तो मनुष्य जिम्मेवार हैं, पुण्य हो तो मनुष्य जिम्मेवार हैं, मनुष्य यह नहीं कह सकता कि मेरी नियति यही थी, मेरी काललब्धि ऐसी ही थी, परमात्मा ने ऐसा ही करवाया स्वय का निर्णय ही नियति है, स्वयं का कर्म ही कल का भाग्य है, अच्छा बुरा कराने वाला भगवान तुम्हारे भीतर ही छुपा है, उसकी मर्जी के बिना कुछ भी नहीं होता। अब दूसरों पर टालने की कोशिश मत करो। इसी भ्राँति में तो कई जन्म से भटकते आये हो, क्या अब और भटकना चाहते हो? अब जिम्मेवारी स्वय पर लो।

निजार्जितम् कर्म विहाय देहिनो
न कोऽपि कस्यापि ददाति किंचन।

महावीर कह रहे हैं कि कर्म तुम पर लौटता है, कोई दूसरा फल नहीं देता। कर्म के लौटने में, फल देने में देर अदेर हो सकती हैं। जितना स्थित-अनुभाग डाला होगा, उतने समय बाद उतना फल देगा, कभी-कभी तो कर्म का फल आने में कई जन्म लग जाते है, बहुत समय बीतने के बाद फल देने आते है। लेकिन लौटकर जरुर आते हैं इस गति में नहीं आ पाये तो दूसरी गति में आयेगे। इसीलिए तो कई बार आप चौकते है कि हमने तो किसी का बुरा नहीं किया, किन्तु हमारा बुरा क्यों हो रहा है ? पूर्व जन्म में निश्चित ही बुरा किया होगा, यहां अकारण कुछ भी नहीं है।

महावीर की दृष्टि तो परम-वैज्ञानिक की तर्क सारणी की हैं जो वर्तमान में पा रहे हो, वो तुम्ही ने आमन्त्रित किया होगा। जो वर्तमान में मिल रहा है वो अतीत में दिया होगा, जो वर्तमान में काट रहे हो, पहले बोया होगा। सब अपने ही बनाये घरों में रहते है, संसार में रहते हुए अनन्त काल हो गया इसलिए ऐसा महसूस ही नहीं होता कि हम ससार के मेहमान है, यहाँ के अतिथि हैं।

किसी पति-पत्नी में लड़ाई हो गई। विवाद हद से ज्यादा गुजर गया। रात का समय था। दोनों काफी जोरों से चिल्ला-चिल्लाकर लड़ रहे थे। मोहल्ले वालों की नींद हराम हो गई। उनको लड़ते-लड़ते तीन-चार घण्टे हो गये। सारा मोहल्ला जागा, लोग घर से बाहर निकल आये। ऐसे दृश्य देखने नहीं आयेंगे तो कब आयेंगे ? लड़ाई झगड़े में लोगों का काफी रस हैं। मोहल्ले के लोग उनके पास आ गये। पति से पूछा, क्यों क्या हो गया है ? आराम से सोओ क्यों सब की नींद खराब करते हो ? सारे मोहल्ले में अशांति फैलाते हो ? पति ने कहा पत्नी से पूछो, क्या हुआ ? पत्नी से पूछा क्या हुआ ? क्यों लड़ती हो ? पत्नी ने कहा लड़ाई शुरू हुए तीन-चार घण्टे हो गये हैं। मैं भी भूल गई कि किस बात पर झगड़ा शुरू हुआ था। इस शरीर में, इस संसार में अनादिकाल से रहते आ रहे हैं हम भी भूल गये हैं कि हमने कब और कितने, कैसे पाप किये हैं। यह भी भूल गये हैं कि यह देह का मकान खाली करना पड़ेगा।

दो पप्पू आपस में बैठे-बैठे बात कर रहे हैं कि एक बोला मेरी मम्मी को जरा सी भी बात मिल जाय तो तीन-तीन घण्टे तक लड़ती है। दूसरा बोला चल-चल रहने दे, मेरी मां तो बिना बात के ही लड़ना शुरू कर देती हैं। कल की ही बात है पापा चुपचाप बैठे थे, मम्मी आई और उनसे कहने लगी क्यों चुपचाप बैठे हो, क्या दिन भर घूग्गू मशान से मौन बठे रहते हो। मुंह नहीं बोलते ? क्या गूंगे हो, मेरी बात का जबाब क्यों

नहीं देते हो ? संसार की स्थिति ऐसी ही है । पति महोदय ने पूर्व में अगर पुण्य किया होता तो सीता जैसी आदर्श पति परायण पत्नी मिलती । पापोदय में रावण की बहन सुरपणखा जैसी पत्नी मिलती है । यह स्वयं के कर्म की ही देन है स्वयं का कर्म ही मजा चखा रहा है "न कोऽपि कस्यापि ददाति किंचन !" कोई भी किंचित भी किसी को सुखी, दुःखी नहीं बना सकता । सुख–दुःख में पर पदार्थ तो निमित्त है, उपादान तो स्वयं का ही है । जिसके पास जो होता है, वह वही देता है दूसरों को । अतीत में जो किया है वही तो दुःखी बना देता है। घट जहर से भरा है अमृत का स्वाद कहां से मिलेगा बीज बबूल के बोये थे, फसल आम की कैसे आयेगी ? आप भी दुःख के अलावा क्या दे सकते हैं । जहां भी आप भला करने जाते हैं वहीं पर बुरा हो जाता है । अतीत की छाप पड़ी है तुम्हारे साथ-साथ । कई लोग मुझसे आकर कहते है कि हमारे साथ बड़ा अन्याय हो रहा है, हम भला भी करने जाते हैं तो बुरा हो जाता है । हम सोना भी छुते है तो मिट्टी हो जाती है हम उपकार भी करते हैं अपकार हो जाता है । तुम्हारे हाथों ने अनादिकाल से सोने को मिट्टी बनाया है, उपकार को अपकार घोषित किया है, अच्छाई को बुराई में बदला है इसलिए पुराने संस्कार सामने आ रहे है, पुरानी कला आड़े आ रही है ।

आप लोगों को सुख के नाम पर दुख दे रहे है क्योंकि आप स्वयं भीतर से दुखी हैं । और यह सिद्धान्त है कि दुख दोगे, दुख आयेगा, जो बांटोगे वही पाओगे । दुख दोगे दुख आयेगा । दुख का पर्वत निर्मित होता जायेगा । और ध्यान सामायिक, तप, त्याग दुख तोड़ने की कला है ।

क्या है कला? भगवान महावीर कहते है कि जब भी दुख आये तो समता पूर्वक भोग लो । उसे बाँटो मत । दुसरो के दरवाजे खट–खटाओं मत, छाती मत पीटो, रोओ मत । समता–अग्नि जलाओ और भस्म कर दो । दुख का विज्ञापन मत करो । दुख दुसरो को बांटो मत । कितना ही गहन दुख क्यो न हो. दुख का पहाड़ भले टुट पड़े, टुटने दो गर्दन कटे कटने दो, मगर दुख को पी जाओ । झेल लो । दुख से बचो मत । जो कर्ज लदा है उसे अदा कर दो । जो ऋण हैं उसे चुका दो । वो तुम्हे ही चुकाना पड़ेगा । क्योंकि ऋण भी तो तुमने ही लिया था । दुख को समता पूर्वक एकांत में झेल लो इसलिए तो साधु एकांत में तपस्या करते हैं । आप कभी ख्याल किया कि साधु एकांत में ध्यान सामायिक क्यों करते हैं ?

साधु एकान्त में चले जाते हैं, किसी पर्वत के शिखर पर धूप में खड़े हो जाते है । शीत ऋतु में नदी के तट पर ध्यानस्थ हो जाते है । वर्षा ऋतु में वृक्ष के नीचे खड़े हो जाते हैं । इसलिए कि मैंने अतीत में किसी को सताया होगा, धूप में खड़ा किया होगा, बेघर किया होगा, घर से निकाला होगा, जलाया होगा, दौड़ाया होगा, जेष्ठ मास कीं गर्मीं में ! गर्मीं में खेती करके बैलो को कष्ट दिया होगा । गर्मी में वृक्षों से पक्षियों को उड़ाया होगा । गर्मियों में भूखा-प्यासा रखा होगा । आज मैं अपने को धूप में रतखा हूं जिसका जो ऋण हो आकर ले जाए । धूप की पीड़ा से स्वयं को सताऊंगा सूर्य की तीव्र किरणें मेरे भीतर पहूंच कर अतीत के जमे कलमष को पिघलाकर बाहर निकाल देगी । इसलिए साधु एकान्त में धूप में खड़े हो जाते हैं। मैं यहाँ से भागूंगा नहीं जिसे आना है, आओ और अपना कर्जा ले जाओ आज मैं सबका भुगतान करने ही एक स्थान पर खड़ा हूं। वर्षा-ऋतु में वृक्ष के नीचे खड़े हैं साधु-सिर्फ इसलिए कि मैंने अतींत में कितनो पर पानी डाला होगा, भिगोया होगा बरसात में घर से निकाला होगा। घर में कोई पशु-पक्षी या भिखारी भिगने से बचने आया होगा, तो उसे भगा दिया होगा । आज मैं उन पापों की उन सबसे क्षमा मांगता हूं। पता नहीं कितनों के मैंने छप्पर तोड़े होगे, उन्हें तड़फाया होगा । आज मैं भी खुले-नंगे आसमान के नीचे खड़ा हूं । गिरने दो पानी और धुलने दो पाप। बहुत तड़फाया आत्मा को, अब शीतल होने दो आत्मा को। कर्म-मल रहने दो, आत्मा को स्वच्छ—पवित्र होने दो। साधु नेअपने को सताया है, दुसरों को नहीं। आप दुसरों को सताते हैं अपने को नहीं। दुसरे को कटु वचन बोलकर, मार-पीट कर ही दुखी नहीं बनाया जाता है । अपना दुख सुनाकर। उदास चेहरा दिखाकर भी दुखी बनाया जा सकता है । इसलिए अपना दुख कभी किसी को नहीं सुनाते, वे तो समता पूर्वक उसे झेल जाते हैं।

एक साधु अपने शिष्यों को विद्याध्यन करा रहा था । एक दुष्ट-अज्ञानी आया और उसने थूक दिया साधु पर । पास में ही उसके शिष्य जो विद्या अध्ययन कर रहे थे। उसे मारने के लिए दोडे। साधु की आंख में आँसू भर आये । शिष्यों ने पुछा, गुरूवर! आपकी आँखों में आंसू कैसे? क्या उसके थूकने से आपको पीड़ा हुई हैं। आपको आत्मा दुखित हुई हैं। आप चिन्ता न करे, हम नगर के सम्राट से कहकर उसे अवश्य ही दण्डित करायेंगे । इन शब्दों को सुनते ही साधु सिसक-सिसक कर रोने लगा । आंखों से आँसू झर-झर गिरने लगे । शिष्यों ने कहा, आप घबड़ाये नही

हम आपके सच्चे शिष्य हैं, उससे निश्चित ही बदला लेंगे । साधु ने कहा मैं उसके कारण दुखी नही हुआ, तुम्हारी इस दुष्प्रवृत्ति, गलत आचरण से दुखित हुआ हूं । उसने जब थूका तो मैंने सोचा ऋण चूक गया. निपटारा हुआ, भार उतर गया । इसी प्रतीक्षा में रत था । उपसर्ग के बिना कर्ज चुकाये बिना केवल ज्ञानी होना असंभव हैं, कभी मैंने थूका था, इस आदमी पर उसकी ही राह देखता यहाँ बैठा था, आ जाये थूक ले और बात समाप्त हो जाए। शिष्यो ने कहा नही ये तो हमारे बर्दाश्त के बाहर है । हम तो आपके कारण रूक गये अन्यथा हम इस आदमी को अभी और यही ठीक कर देते ।

पुराने समय की बात है सभी शिष्य क्षत्रिय थे । तलवारो को पकडने की, दादागिरी करने की पुरानी आदत थी, इतनी जल्दी थोडी छूट जाती है । कई भवो तक पुरूषार्थ करना पडता है । शिष्य क्रोध से भर गये । गुरु ने कहा उसने मेरे उपर थूका इसमें मुझे आश्चर्य नही हुआ आश्चर्य तो मुझे तुम सब पर होता है । इससे तो मेरा पुराना लेना देना है । जो दिया था, लौटा गया । ये तो बडा भला आदमी है । लेकिन तुम सब नाहक क्यो क्रोध कर रहे हो । तुम सबको देख कर मुझे रोना आ रहा है कि मैं तो अपना कचरा बाहर निकाल रहा हूं और तुम बाहर के कचरे को भीतर डाल रहे हो । जैसा निपटारा मैं कर रहा हू एक-एक का बिल चुका रहा हूं भविष्य में तुम्हें भी चुकाना पड़ेगा । मैं तो ऋण चुका रहा हूं । पुराने सम्बन्धों को तोड़ रहा हूं और तुम कर्मों को बांध रहे हो । मैं जाल से बाहर निकल रहा हूं और तुम जाल मे फंस रहे हो । इसलिए मुझे रोना आ गया । उसने तो मेरे ऊपर थूका था, तुम सबके ऊपर तो नही थूका था । तुम सब क्यों परेशान होते हो ? जब मैं ही परेशान नही । मेरे चरणों में आकर क्या तुम सबने यही सीखा है ? उपसर्ग का प्रतिकार करना, कर्जदार हिसाब करने आऐ तो उसे भगा देना अभी सबके अन्दर समता का जागरण नही हुआ, समत्व नही उतरा, सत्य कि प्रतीति नही हुई । सिद्धान्तों के प्रति, भगवन्तों के प्रति सच्ची आस्था पैदा नहीं हुई। शरीर के प्रति ममत्व भाव है, दृष्टि बाहर की ओर है, वह तो अपना ऋण वापस लेकर जा रहा है । और उसने थूका किसके ऊपर है ? इस पुद्गल के ऊपर, शरीर के ऊपर, मल के ऊपर मल डालकर गया, कचरा घर में कचरा डाल गया है । शरीर तो मल का भण्डार है । उसने आत्मा के ऊपर तो नही थूका । आत्मा के ऊपर तो हम स्वयं थूक सकते है जब मन में कोई पाप विचार उठता हैं पाप करते है तो अपनी आत्मा पर थूक लेते हैं गन्दा काम करते हो तो

अपनी आत्मा पर थूक देते हो। स्वयं अपनी आत्मा को गन्दा बनाते हो, वह क्या तुम्हारी आत्मा को गन्दा कर सकता है ? शुद्ध सोने को किचड़ में डाल दो तो भी उसकी शुद्धता में कोई फर्क नहीं पड़ता मैं तो शुद्ध सोना हूँ, तपाग्नि से गुजर रहा हूँ। कल्मष जल रहा है, सोना नहीं जो जल जाय वो सोना नहीं हो सकता। अग्नि तो सोने को निखारती है, शुद्ध करती हें। वह भी तो मुझे निखारने शुद्ध करने आया था, और तुम सब उस पर टूट पड़े कर्मो से बन्धने लगे यही तो सबसे बड़ा तप है कि कैसा भी उपसर्ग आये रोना नहीं, दुख बांटना नहीं, याचना नहीं करना, अन्यथा तप व्यर्थ हो जायेगा।

तप का अर्थ है कि दुख आये, उपसर्ग आये, संकट आये तो एकांत में समता पूर्वक झेल लो, उसका प्रतिकार मत करो, उसे भगाओ मत, प्रतिकार करने से दुख दुगुना हो जाता है, और फैल जाता है। इसलिए साधु एकांत में तप करने चले जाते है, ताकि दुःख को समता पूर्वक भोग सके, उसके दर्शन कर सके, किसी को देना न पड़े, बांटना न पड़े। पास न कोई होगा न किसी को देगे। चुपचाप सहन कर लेगे, झेल लेंगे जैसे सागर में कुछ भी फेंको झेल लेता हैं और अपने भीतर समाहित कर लेता है। उस झेलने मे ही साधक कुन्दन बनकर बाहर आता है, जब परम-सौन्दर्य मुखरित हो जाता है तो सभी साधक भीड़ में लौट आते हैं, सुख बांटने, अमृत लूटाने हमारे बीच लौट आते है। इसिलिये तो सुख बांटने तीर्थकरों का समवशरण लगता था और लाखो-करोड़ो के बीच ज्ञान अमृत-वर्षा होती थी। यही भगवान महावीर कहते है कि जब दुख आये तो अन्धेरे में खिसक जाओ, एकांत में चले जाओ, मौन हो जाओ क्योंकि दुख दुसरों को सुनाने, सांत्वना एकत्र करने से बढ़ता हैं दुख बाटोगे, दुख मिलेगा। दुख छिपाओगे-आत्मा निखरेगी सुख बरसेगा। सुख को छिपाओं मत, दुःख को छिपाओ मत सुख को प्रगट करो। इसलिए सुख बांटों, फैलेगा, अमृत बरसेगा, रत्नों की वर्षा होगी, चारों चारों तरफ सुगन्ध फैलेगी। जैसे तीर्थकरों के चारों तरफ सुगन्धित वायु चलती हैं, फूलों की वर्षा होती है, रत्नों की वर्षा होती हैं। यह सब सुख बांटने का फल हैं, पुरुस्कार हैं।

तप का अर्थ हैं अतीत का दुख आ रहा हैं मैं समता पूर्वक भोगूंगा मैं समता पूर्वक सहन करूंगा। मैंने किया था अपराध, अब अब सजा भी मैं ही भोगूंगा' किसी दूसरों पर टालूं भी क्यों ? साधू अपने दुख को भोगता हैं, जलता हैं उस आग में, यही है उसकी धूप, यही है उसका उपवास। मैंने

अतीत में पता नहीं किस - किस को भूखा मारा, खाने को नहीं दिया। आज मैं सबका कर्ज चुकाऊंगा, अब मैं भी भोजन ग्रहण नहीं करुंगा। शांत एकाग्रचित्त होकर स्वयं के पास बैठूंगा।

क्या साधु को सबके सामने तपस्या करने में शर्म आती है, इसलिए एकान्त में चले जाते हैं ?

आपने ठीक सोचा है। आदमी दूसरे के बारे में कुछ भी सोचने के लिए स्वतंत्र है। सम्यक् दृष्टि तप का सन्यास का विज्ञापन नहीं करता है। जब आत्मा जगती है तो चुपचाप भीड़ मे हट जाती है, भोग से दूर सरक जाता है। साधक सोचता है कि सबके सामने तपस्या करूंगा, उपसर्ग आयेंगे तो लोग सहानुभूति प्रगट करने आ जायेंगे तो तप में विघ्न आ जायेगा। दूसरी बात कर्मों से मलीन चेहरा क्या किसी को दिखाना, ये बड़ा बीभत्स, है, ये बड़ा कुरूप है, जब सम्यग्दर्शन ज्ञान - चरण बोधि के ओज मे भर जायेगा, शरीर में परमात्मा का तेज उतर आयेगा, आत्मा पर ज्ञान से सुसज्जित हो जायेगी चारो तरफ सुगन्ध फैलने लगेगी, शरीर परमौदारिक हो जायेगा तब लौट आयेंगे। सर्वांग से दिव्य—ध्वनि खिरने लगेगी तब लौट आयेंगे। हृदय की वीणा परमात्मा संगीत से बजने लगती, लोगो को कुछ देने को बांटने को पास होगा तब लौट आयेंगे। अपना दुःख लोगों को क्या दिखाये, क्या दुखियों की सहानुभूति बटोरे, वैसे भी लोग काफी दुःखी है। अपना दुःख उनको दिखाने में क्या सार ? सार तो स्वय का दुःख भोगने में है। इसलिए भी साधु एकान्त में चले जाते हैं। आपका प्रश्न हो सकता है कि वर्तमान साधु जंगल में क्यों नही जाते ?

वर्तमान में जंगल ही बचे कहाँ है ? और पहले कर्जा वापस लेने वाले खोजते हुए जगलों में आ जाते थे। लेकिन वर्तमान में सब यही शहरों में कर्जा मांगने आ जाते हैं। यहाँ उपसर्ग करने लगते है, यही निन्दा-आलोचना करने लगते हैं। जंगल के शेरों से ज्यादा खतरनाक शहर के शेर है इसलिए शहरों में ही एकान्त में गाँव मन्दिर में, धर्मशाला में रहकर साधना रत है। कर्जा वापस लेने को आपको जगलों में न भटकना पड़े इसलिए साधु शहरों में ही साधना रत हो गये है। मंदिर के एकान्त कमरे के किसी कोने में बैठकर अपने दुःख को उपसर्ग को क्षमता पूर्वक झेल रहे हैं। क्षमता पूर्वक दुःख को झेल लेने से सहन करने से मन हल्का हो जाता है, स्वच्छ हो जाता है। और यह स्वच्छता गंगा में नहाने की स्वच्छता नहीं है, मस्जिद में जाकर तोबा करने वाली स्वच्छता नहीं है, ये मदिर जाकर प्रार्थना करने वाली भी स्वच्छता नहीं है, पुस्तक लेकर स्वाध्याय करने वाली स्वच्छता नहीं है। वास्तविक स्वच्छता

है, समीचीन स्वच्छता है, पवित्रता है, इसमें ही केवल ज्ञान उतरेगा. आविर्भूत होगा, परमात्मा उतरेगा। भक्ति से, पूजा से, स्वाध्याय से मात्र पुण्य बन्ध होता है और तप से परमात्मा का जागरण होता है। नियतिवादी का, भाग्यवादी का, बनकर मत बैठो खाली पूजा-भक्ति, स्वाध्याय से मोक्ष नहीं मिल सकता। मोक्ष मिलता है तप-त्याग को स्वीकार करने से परमात्मा मिलता है। समता पुर्वक, दुःख उपसर्ग सहन करने से, इसलिए आचार्य देव ने कहा—संयम को अंगीकार करके ध्यान-सामयिक में गहरे उतरो और स्वय से क्षमा मांगो। आत्मा बहुत गन्दी हो चुकी है। उसको ध्यान-समायिक के नीर से धोले; साफ करलो, पवित्र कर लो एकान्त में जाकर तपस्या करो। याद करो अतीत के बारे में अतीत के बिगड़े सम्बन्धो के बारे में।

आओ जीवन पृष्ठों पर
अंकित पुराने सम्बन्धों पर
कर्म बन्धन पर विचार करें
थोडा सुख। थोड़ा दुःख।
कभी सम्मुख। कभी विमुख।
कभी प्रेम। कभी बैर
कभी मिलन, कभी बिछोह का
हिसाब करें, आओ पुराने सम्बन्धों पर....
किसी को क्या पता
अच्छे है या बुरे
खोटे हैं या खरे
छोटे हैं या बड़े
औरो की तरह हम भी
संसार की वीथियों में
भटके, अटके, लटके
हिले—डुले
पले हुए बड़े
अहम् भाव में पड़े
सड़े—गले
फिर भी न अहंकार मरे
आओ उसे सड़ाये—गलाये
ज्ञान—ध्यान में

सामायिक से गहरे उतरे
बोधि—सुमन खिलाये
आओ प्रियवर !
मन के आवरण उठाये
दर्पण स्वच्छ करें
और निकट आये
अपना प्रतिबिम्ब निहारे
निज में विहारे
थोड़ा सहन करें
धैर्य धरें
चुप्पी साधे
ताकि सन्तों की भी सुन पाये
हरदम अपनी—अपनी न चलाये
फूलों को ही क्यों
शूलों को भी चाहे
आओ अपनी राह स्वयं बनाये
आओ व्यर्थ मान्यता की
सपनों की आँख मिचौली में
पर्दा उठाये
बिगड़े परमात्मा - आत्मा सम्बन्धों को
नया बनाये
नया रूप दे
नया उपवन बसाये
नाचे - गाये, मुस्काये
कल्प काल के कलह कूट दे
बैर - कलह भूल
गले मिल जाये
आओ ध्यान सामायिक में उतरे
बोधि - सुमन खिलाये
थोड़ी साँसे
देह जर - जर
इच्छाये पतझर
योग बहार की सम्हार करें

व्यर्थ क्यो भोग में समय बिताये
एक–दूसरे को क्यों दोष लगाये
क्यों दूसरे को जिम्मेवार ठहराये
अपने ही दोषों पर ध्यान धरे
जो उदास हुए है क्षरण
उन्हें मधुमास करे
भोग आश को त्याग
समाधि-सिन्धु में स्नान करे
आओ अपने गलत चरणों को
सम्यक राह पर लाये
पतझड़ को
मधुयास करे
मन के कमलष धोने
संयम साधे
निजको अराधे
संयम की भूमि को
ध्यान–सामायिक हल से जोते
समता के बीज बो
बोधि सुमन खिलाये
आओ जीवन पृष्ठों पर
नया इतिहास रचाये..............

आओ जीवन के काले इतिहास को संदिग्ध इतिहास को धोकर नया इतिहास लिखे। क्यों कि इतिहास तो स्वयं को ही लिखना है, स्वयं के ही हस्ताक्षर काम आते है। परमात्मा से, आत्मा से चो सम्बन्ध टूट गये है, सत्य से जो दूर खिसक गये है, जो सम्बन्ध विच्छेद हो गया है। सन्तों से, मुनियों से जो सम्बन्ध टूट गये है, आओ उन्हें पुनः बनाये। ये यौवन, ये मदमाती जवानी शाश्वत नही है इनकी विसात भी कितनी है ?

आंगन भर धूप में यौवन के रूप में
मुट्ठी भर साँस की विशात क्या ?
अन्तस् में काम के बाहर है रुप पले
कामना के झुरमुट में मन का ये हिरन बसे
कल्पना के जंगल में आयु की विशात क्या
ढहता तन हाथ मले, काल के अघात सहे

भावी सुख-सपने मौत के हाथ बिके
भौतिकी ज्वार में—कागजी नाव की बिशात क्या-
विशात क्या—विशात क्या ?
पुण्य के कपाट हिले—आयु के विषेक झरे
आँसू फिर टपक पड़े – सम्बन्ध सब दरक पड़े
काल के तूफान में क्षणिक पांव की विशात क्या
विशात क्या—विशात क्या ?

कितनी धूप है आपके पास ? क्या उसे मुठ्ठी में बन्द कर सकते है ? मन के सागर में प्रतिक्षण कामना की लहरें हिलोरे मार रही है । काम का नाग जीवन को डस रहा है और बाहर रूपसी अप्सरायें अपना जाल फैलाये बैठी है । विश्वामित्र को तिलोत्तमा ने जंगल में भी नही छोड़ा । काम का शमन करने शकर को कैलाश पर्वत से उतर कर नीचे आना पड़ा और ऋषि- पत्नियों के साथ राश रचाना पडा । मन का हिरण कामना के वासना के जंगल मे फंस गया है । और इस उम्र का क्या भरोसा है, पानी का बुलबुला है पता नही कब फूट जाये, कब बिखर जाये । आप स्वयं सोचे आपके अस्थिर हाथ शाश्वत वस्तु का सृजन कैसे कर सकते हैं । जीवन में दुख ही दुख है । जीवन में दो प्रकार दुख के है-एक वस्तु को पाने के पहले और दूसरा वस्तु को पाने के बाद । पाने के पहले दुख कटुक है और पाने के बाद दुख मधुर है, मीठा है । क्योकि उसमें अहंकार की विजय का रस है । लेकिन इन दोनों के निर्माता स्वयं ही हैं । यह मत सोचना कि कोई परमात्मा तुम्हे दुखी बना रहा है न परमात्मा जन्माता है, न परमात्मा मारता है न परमात्मा लिला करता है । लिला तो तुम्ही करते हो । अगर आप कहत है कि परमात्मा सता रहा है तो समस्त शास्त्रों की इस परिभाषा का क्या होगा "पाप परपीडनम्" दुसरो को सताना पाप है । अगर परमात्मा को कारण मानते हो सताने में दुख में तो ऐसा सताने वाला परमात्मा संसार का सबसे बड़ा पापी ठहरेगा । लेकिन ऐसा तो असभव है, वह तो पाप - पुण्य से परे है, ऊपर है, परम वितरागी है । और आप स्वयं सोचिये कि अगर जगत के सब प्राणी परमात्मा की सन्तान है तो फिर वे इतने दुखी नही हो सकते, क्योंकि परमात्मा परम सुखी है, परम आनन्दित है । लोग सड़ रहे हैं, गल रहें है, चीख रहे, नाना तरह के कष्ट झेल रहे है, संताप से भरे हे और परमात्मा आनन्द में डूबा है, परम सुख में डूबा हैं । नहीं यह बात नही है और न कभी किसी-किसी भी काल में सच हो सकती है ।

भगवान महावीर ने कितना सच कहा है कि प्रत्येक प्राणी अपने-अपने कर्मों का फल भोग रहा है स्वयं के कर्मों की फसल काट रहा है। मां रो रही है, पति पीट रहा है, बेटे चिल्ला रहे है, बेटिया रो रही है, पति रो रहा है, संम्बन्धि रो रहे है, सब तरफ रोना मचा है, हाहाकार हो रहा है युद्ध है लाखो लोग मारे जा रहे है। सब तरफ संघर्ष है, खून-पात है, सब तरफ छीना झपटी है। क्या यह परमात्मा की लीला है? नही-नही ऐसा मत कहो, ऐसा कहकर अपराध मत करो। सब अपने-अपने कर्मो का फल भोग रहे हैं। कोई भी तुम्हे बना और मिटा नही रहा है। तुम स्वयं ही अपने ब्रह्म, विष्णु और महेश हो। भगवान महावीर अपने पैरों पर खड़े होने की बात कही हैं, आदमी को अकेला छोड दिया और कह दिया अब तुम्हे अपने ही पांव सम्भालने है। इससे मानव मे होश की संभावना पैदा हुई जागरुकता की संभवना पैदा हुई। जब कोई सहारा नही होता तो व्यक्ति ज्यादा सावधान होता हैं। कोई भी तुम्हे जन्म नही दे रहा, तुम स्वयं अपने राग-द्वेष के कारण जन्म रहे हो। सुख-दुख के निर्माता तुम स्वयं हो। बीज स्वयं अपनी योग्यता के अनुसार फूल-फल मे ढ़ल रहा है। पत्थर क्यों नही फूल बन जाता? लेकिन पत्थर के पास ऐसी योग्यता नहीं है। पत्थर तो प्रतिमा रुप ले सकता है फूल का नहीं। आत्मा-परमात्मा बन सकती है। बन्धनों-मुक्त होना, सुख-दुःख का अर्जन करना आत्म-आश्रित है। स्वयं चाहे तो बोधि-सुमन बन सकते है और चाहे तो बेशरम के फूल बन सकते हैं। दोनों का सृजन स्वयं पर आश्रित हैं, एक बहन वेश्या बनी और एक बहन रानी बनी। दोनों ने त्याग अपनाया, बोधि सुमन खिलाया, स्वर्ग में पैदा हुई, हम स्वयं अपने मालिक हैं कोई दूसरा हमारा मालिक नही है, अगर हमारा कोई मालिक होगा तो हम उसके हाथ के कठपुतली सिद्ध होंगे।

बस आज इतना ही।

आदिनाथ दिगम्बर जैन नया मन्दिर — दिनांक २-९-९१

प्रतापगढ़ — सोमवार

३२

वर्णमाला के अक्षर अ-ब-स

आंखों में जिज्ञासा प्राणों में प्यास
मनांगन पर फैल रहा प्रेम का प्रकाश
बातों के जंगल में शब्द खड़ा मौन
देह के निलय में जी रहा कौन
शास्त्र के पठन का ये बर्फीला ज्ञान
पल-पल है पिघल रहा बन करके मान ।।
कामना के पंख बने, पंख में उड़ान
जन्म-मरण सह के भी चेतना अजान
ध्यान के निकुञ्जों से पुण्य को बटोर
खेल रहा चेतन निज को है ठौर
एकाग्र हो ताप रहा ध्यान की वो आग
धीरे-धीरे भाग रहा विषयानुराग ।।
ध्यान की घड़ियों में सब कुछ प्रशान्त
आत्मा की थाती है एकदम सुखान्त
अनादि से आत्मा देह में कैद है
सुप्त हुआ कब से जीवन संगीत है ।

मूल पद्य :- यैः परमात्माऽमितगति-वन्द्यः ।
सर्वं विविक्तो भृशमनवद्यः ॥
शश्वदधीते मनसि लभन्ते ।
मुक्ति-निकेतं विभव वरं ते ॥३२॥

हिन्दी पद्य :- जो श्रेष्ठ आतम अमित गति से हैं वन्दित ।
सर्वेषु भिन्न दोषादिक है विवर्जित ॥
जो भव्य जीव उनका नितध्यान लाये ।
वह श्रेष्ठ लक्ष्मी निकेतम मुक्ति पावे ॥३२॥

अन्वयार्थ – यैः – जिन पुरुषो द्वारा
अमित गति वन्द्यः – अपरिमित ज्ञान वाले होने से अथवा अमितगति द्वारा वन्दनीय है
सर्व विविक्त – जो सर्व कर्म विमुक्त
भृशम् अनवद्यः – अत्यन्त निर्दोष है
परमात्मा – ऐसा परमात्मा
मनसि – मन में
शश्वत् – निरन्तर
अधीते – चिन्तन किया जाता है
ते – वे
विभव वरम् – परम वैभव वाले
मुक्ति निकेतम् – मुक्तिरुपी महल को
लभन्ते – प्राप्त होते है

भावार्थ :- जो परमात्मा अपरिमित ज्ञानी होने से अथवा अमितगति (आचार्य) के द्वारा वन्दनीय हैं सर्व पदार्थों से भिन्न है और पूर्ण निर्दोष है उसका जो निरन्तर मन में चिन्तन करते है । वे पुरूष सर्वश्रेष्ठ वैभव वाले मोक्ष महल को प्राप्त करते हैं ।

३२

वर्णमाला के अक्षर अ–ब–स

ओम नमः सिन्द्धेभ्यः ३
धर्म प्रेमी भव्यात्याओं !

आज सामायिक पाठ के अन्तिम स्वर्ण सूत्रों पर चर्चा करुंगा । आत्म गहराई में जाने के चार द्वार हैं, चार आयाम है, चार घाटियां है, चार सीढ़िया हैं । सत्य को देखने के चार दर्पण हैं । स्वयं को कसने की चार कसौटियां है प्रथम कसौटी भावना । परमात्मा बनना चाहते हो तो सन्तों के प्रति प्रेम-भाव से, श्रद्धा-भाव से भरो ताकि सम्यग्दर्शन प्राप्त हो सके । सम्यग्दर्शन की भावना से भरो । और सम्यग्दर्शन के आठ अंगो का पालन करों दूसरी कसौटी हैं । आत्म-शुद्धि यदि सम्यदर्शन के देवता को बुलाना चाहते हो, तो आत्म शुद्धि करो । आठ मदों को छोड़ो कषायों को छोड़ो । ये आठ मद और कषाये ही आत्मा को अशुद्ध बनाती है। तीसरी कसौटी है उपासना से । कषाये मन्द होती है आत्मा की उपासना करने से । आत्म उपासना से सिद्धत्व के आठ गुणों की उपलब्धि होगी । अन्तिम कसौटी है आत्म–साधना करो, यानि ध्यान करो तो अष्ट–कर्म से मुक्त हो जाओगे, अष्ट-कर्म के बन्धन बच से जाओगे ।

सामायिक पाठ में बत्तीस काव्य है । बत्तीस का अंक बडा महत्वपूर्ण हैं । भावनायें चार है-भावना-आत्म–शुद्धि–उपासना-आत्म–साधना

यदि इनका आठ से गुणा कर दिया जाए सम्यग्दर्शन के आठ अंग आठ मद सिद्धों के आठ गुण और कर्म के आठ भेद हैं सब मिलकर बत्तीस हो जाते हैं। आठ कर्म कैसे आते है, चार कषायों के माध्यम से। क्रोध-मान माया-लोभ ये चार कषाये ही अष्ट कर्मो को आमंत्रित करती हैं। इनसे मुक्त होने के लिए चार भावनाये प्रथम काव्य में कही गई थी।

ये: परमात्माऽमित गति वन्द्य:
सर्व विविक्तो भृशमनवद्य: ।
शश्वदधीते मनसि लभन्ते,
मुक्ति निकेतं विभव वरं ते ॥

अगाध ज्ञानी, परम ज्ञानी अमितगति - गणधरों द्वारा वन्दनीय, अमितगति आचार्य द्वारा वन्दनीय हैं समस्त कर्म - उपाधि से रहित हैं, राग-द्वेष से रहित हैं, परम निखद्य: विशुद्ध परमात्मा का अपने मन में निरन्तर ध्यान करते हैं। वे मुक्ति धाम - सिद्धगति श्रेष्ठ - वैभव का वरदान पाते हैं।

आचार्य देव कहना चाहते हैं कि परमात्मा अपरिमित ज्ञान के धारी होने से अमित हैं अ यानि नही, मित यानि व्यय जिसका कभी भी व्यय न हो जिनका सुख, जिनका ज्ञान कभी भी नष्ट न हो, उनकी मैं वन्दना करता हूं। जिस सिद्ध गति को प्राप्त किया हैं उसका कभी भी नाश नही होगा, इसलिए भी अमित गति हैं। जो ऐसे परमात्मा का निरन्तर ध्यान करता हैं जो ऐसे निर्दोष परमात्मा को एकाग्रचित्त हो ध्याता हैं वह शीघ्र मुक्ति धाम को, सिद्धों के वैभव को पाता हैं। एक घटना आपसे कहता हूं-

गुरु और शिष्य विहार करते हुए एक देश से दूसरे देश को जा रहे थे। रास्ता लम्बा था। जगल का मार्ग था, भटक गये। जगल का मामला था पगडंडिया बहुत थी, मार्ग भूल गये। गुरु ने शिष्य से कहा लगता हैं शैतान ने मुझे भटका दिया हैं। मैं सब कुछ भूलता जा रहा हूं। मेरी स्मृति खोती जा रही हैं। मै जो भी जानता था भूलत, जा रहा हूं। मेरे सब शास्त्र खोते जा रहे हैं। मेरी शक्ति छिनती जा रही हैं। मने तुमको पढ़ाया है। तुमने मुझे सुना है कुछ याद हो तो सुनाओ।

शिष्य ने कहा अगर मैंरे पास कान होते तो मैं तुम्हारी प्रार्थना भी सुनता। मेरे पास कान होते तो तुम्हारी आध्यात्मिक चर्चा भी सुनता। मैंने सुनी है प्रार्थनाये लेकिन वह तो मैंने अपने तरीके से सुनी है। वह ठीक नही हो सकती। जब तुम्हारी सम्यक प्रार्थनाये भटक गई तो मेरी असम्यक प्रार्थनाये क्या काम कर सकती है। वंसे मैं भी भुलता जा रहा हूं

आपको देखकर तो मैं भी घबड़ा गया हूं। जब आप जैसे ज्ञानियों का ये हाल है तो मुझ जैसे अज्ञानि का क्या हाल होगा ?

गुरु ने कहा तुझे कुछ तो याद होगा मेरे सुने हुवे में से उसने कहा सिर्फ अ-ब-स वर्ण याद हैं। कोई हर्जा नहीं वही सुना। पाठ शुरू किया वर्ण माला का।

गुरू उसके पाठ को दोहराने लगा। पाठ दोहराते—दोहराते उसमें डूब गया। आत्मा की गहराई में उतर गया। शैतान भाग खड़ा हुआ। क्योंकि ऐसे तन्मय चित्त के सामने शैतान कैसे ठहर सकता हैं। उसका ज्ञान वापस लौट आया।

शिष्य ने कहा, यह तो चमत्कार हो गया, सिर्फ वर्णमाला के अ-ब-स के उच्चारण से, पाठ से। गुरु ने कहा, सभी शास्त्रों में, धर्म ग्रन्थों में जो है वह वर्णमाला से बाहर नही है। वर्णमाला में संसार के सभी शास्त्र आ जाते है, वर्णमाला में संसार के सभी मन्त्र समाहित हैं। वर्णमाला में संसार के सभी संगीत समाये हुए हैं। वर्णमाला में सभी कुछ आ जाता है, कुछ बचता नहीं है। ध्यान-सामायिक भी वर्णमाला के अ-ब-स के समान है, संसार के सभी धर्म इसमें ही समाहित है। वर्णमाला के बिना शास्त्र रचना नहीं हो सकती और ध्यान—सामायिक के बिना परमात्म दर्शन नहीं हो सकता, गुरु ने कहा, मैंने वर्णमाला दोहरा दी और परमात्मा से कहा, अब आप ही ठीक से अक्षरों को जमा ले, प्रार्थना तो मेरी तुम्हें ज्ञात हैं ही, वर्णमाला यह रही अब आप ही जमा लो, और उसने जमा लिया। प्रार्थना पूरा हो गई।

एक भी शास्त्र वर्णमाला से बाहर नहीं हैं, ध्यान के बाहर कुछ भी नहीं है, ध्याम में भक्ति-पूजा – उपासना सब आ जाते है। ध्यान - सामायिक वर्णमाला हैं। अगर भाव हो तो वर्णमाला समयसार हो जाती हैं। निर्विचार चित्त को मन्त्रों की जरूरत नहीं हैं, निर्विचार चित्त में अ-ब-स का पाठ भी कर लिया जाए तो मन्त्र बन जाते है। और विचारों से भरे चित्त मे कितने ही मन्त्र दोहराओ सब व्यर्थ ही जाते है।

गुरु अपनी गहराई में गया तो सत्य प्रगट हो गया और पुलकित हो नाचने लगा। ज्ञान प्रगट हो गया, शैतान भाग गया, मोह भाग गया, अज्ञान के, मोह के जंगल में भटक गये थे। स्वयं की गहराई के प्रकाश में मार्ग मिल गया, जो अपने हृदय की गहराई में उतरने के लिए इन बत्तीस काव्यों की सीढ़ी बना लेता है। इनकी गहराई में चला जाता है तो परम सत्य ले आता है। शिष्य ने कहा मुझे आपकी प्रार्थनायें याद नही है, मै काव्य और कविता का जानकार नहीं हूं। मुझे तो मात्र वर्णमाला के अक्षर अ-ब-स याद है।

श्रौर मैं भी श्रापसे कहता हूं कि संसार के जितने भी शास्त्र है चाहे गीता हो, वेद हो, पुराण हो, बाईबिल हो, कुरान शरीफ हो, समयसार-नियमसार-प्रवचनसार-पंचास्तिकाय द्रव्य संग्रह, धवला-जयधवला-महाधवला कोई भी ग्रन्थ हो इन वर्णमाला के अक्षरों के बाहर नहीं है। समस्त शास्त्रों का निचौड़ श्र-ब-स है। इसलिए नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती ने द्रव्य संग्रह ग्रन्थ में लिखा हैं—

जं किंचिवि चिंतंतो विरीहवित्ती हवे जदा साहू
लद्धूणय एयत्तं तदाहु तं तस्स णिच्छयं ज्झाण ॥५५॥

श्राचार्य देव कह रहे हैं कि ध्याता एकाग्रचित्त होकर किसी भी पदार्थ का ध्यान करे, तो भी वह श्रात्म ध्यान है। क्योंकि ध्याता समस्त प्रकार की इच्छाश्रों से रहित है।

मा मुज्झह मा रज्जह मा दूसह इट्ठणिट्ठ मुट्ठेसु।
थिर मिच्छहि जई चित्तं विचित्त झाणप्प सिद्धिए॥

हे भव्य श्रात्मन्! नाना प्रकार की ध्यान की सिद्धि के लिए, तथा चित्त को स्थिर करना चाहते हो तो राग-द्वेष मत करो, विषयों के प्रति इष्ट-श्रनिष्ट की कल्पना मत करो। इन्द्रिय-विषयों के चिन्तन से चित्त चंचल होता है। इन्द्रिय-विषयों से बचो, तभी ध्यान को उपलब्ध हो सकोगे, स्वयं को पा सकोगे। अगर चित्त निर्मल है, विषयों से परे है तो वर्णमाला के श्रक्षर श्र-ब-स श्रक्षय तक पहुंचाने में, श्रक्षय ज्ञान जगाने में कारण बन जायेंगे श्रौर चित्त कलुषित है तो संसार के समस्त शास्त्र श्रौर समस्त प्रार्थनायें निष्फल हैं।

संसार के सभी शास्त्र वर्णमाला के श्र-ब-स के जोड़ है। उनका एक ही ध्येय है एकाग्रचित्त हो जाए साधक। श्रौर ध्यान रखना जैसे ही साधक विषयों से, भोगों से ऊपर उठकर परमात्म प्यास से भरकर एकाग्रचित्त होता है, तो स्वयं में श्रन्तर् मुहूर्त ठहर जाता है तो स्वयं के परमात्मा को, परम-ज्ञान को पा जाता है।

ध्यान का श्रर्थ है वासना का पूर्ण श्रभाव हो जाना। ध्यान का श्रर्थ है समस्त श्राकांक्षाश्रों का श्रभाव हो जाना। ध्यान का श्रर्थ है मन समस्त दौड़ो से मुक्त हो जाए। जहां चित्त शून्य होता है, निर्मल होता है, उस ठहराव में, उस शून्यता में परमात्मा उतरता है, स्वयं का दर्शन होता है। वही कर्मों से मुक्त होता है। जो इन बत्तीस श्लोकों की माला से श्रपने कण्ठ को सुशोभित कर लेता है, श्रपने कण्ठ को सजा लेता है। बत्तीस श्लोकों की सुवास से

स्वयं सुवासित कर लेता है, बत्तीस श्लोकों के आभूषणों से स्वयं सुसज्जित कर लेता है। जो इन बत्तीस पुष्पों की गन्ध में डूब जाता है, जो इन बत्तीस श्लोकों के सुन्दर वस्त्रों को पहन लेता है तो मोक्ष-लक्ष्मी, शिव का वैभव स्वयं उसका वरण करने आता है, स्वय परमात्मा उसका स्वागत करता है। वह त्रिलोक पूज्य हो जाता है, वन्दनीय हो जाता है, संसार से मुक्त हो जाता है। इसका अर्थ हुआ कि हमारी आत्मा अभी बन्धन में है, परतंत्र है।

"मुक्ति निकेत विभाव वरं ते" वह मुक्ति को प्राप्त कर लेता है या मुक्ति उसको चुन लेती हैं, अपना बना लेती हैं। लेकिन किसको ? जो समस्त परिग्रह से रहित होकर निरन्तर परमात्मा का ध्यान करना है उसको। आप जैसे भोगियों को नहीं, विषय-कषाय में डुबने वालों को नहीं, तप-त्याग को जड़ की क्रिया कहने वाले को नहीं, असंयमियों को नहीं, ग्रहस्थों को नहीं। ज्ञानी मुनियों का वरण करती है, जो ध्यान में डूबे हैं उन मुनियों को मुक्ति श्री शीघ्र वरने आ जाती है।

किसी ने पूछा था, हमारी आत्मा तो परम-स्वतंत्र है फिर ये संसार कैसे ? मैंने कहा, आत्मा स्वतंत्र भी है और परतंत्र भी है। कर्म-बन्धन है तब तक आत्मा परतन्त्र है और कर्मबन्धन से रहित हैं तब स्वतंत्र हैं, पुरुषार्थ करने की अपेक्षा आत्मा स्वतंत्र हैं। मनुष्य भव में कभी भी पुरूषार्थ कर संयम ले सकते है, भोगों का त्याग कर सकते हैं इस अपेक्षा से भी आत्मा स्वतंत्र है लेकिन फल की प्राप्ति में समय लग सकता है इस अपेक्षा से परतंत्र भी हैं। इसे यू समझे——आप बम्बई जाने के लिए स्वतन्त्र हैं, आपने टिकट खरीद ली, गाड़ी में बैठ गये लेकिन बैठते ही तो बम्बई पहुंच नहीं जायेगे। यहाँ से बम्बई तक जाने में १२ घण्टे लगेगे इतनी देर इतजार करना पडेगा, लेकिन घर में बैठे बैठे नहीं, गाड़ी में बैठे बैठे। इस अपेक्षा परतंत्र भी है क्योंकि मंजिल पाने में समय लगेगा। गाड़ी में बैठे बैठे यात्रा करेगे तब बारह घण्टे में पहुंच सकेंगे।

मुक्ति दो प्रकार से होती है जीवन मुक्ति और द्रव्य मुक्ति। वर्तमान में जीवन मुक्ति यानि भाव मुक्ति संभव हैं इसलिए आत्मा स्वतन्त्र हैं और पंचमकाल में द्रव्य मुक्ति का अभाव हैं इस अपेक्षा से परतंत्र भी हैं। काव्य में परमात्मा के लिए एक विशेषण आया है "सर्व विविक्तो भृशमनवद्यः" जो समस्त कर्मों से, समस्त दोषों से रहित हैं उसको मैं अमितगति आचार्य प्रणाम करता हूं, परमात्मा दोषों से रहित हैं, इसका अर्थ हुआ कि हम सब दोष सहित है, कर्म सहित है। इसलिए तत्वार्थ-सूत्र के अन्तिम अध्याय में

उमास्वामी आचार्य बन्ध--मोक्ष के सम्बन्ध में लिखते हैं कि-

"बन्ध हेत्व भाव-निर्जराभ्यां कृत्स्न कर्म विप्र मोक्षो-मोक्षः" बन्ध के हेतुओं व समस्त कर्मों का अभाव होने से मोक्ष होता हैं।

बात स्पष्ट है, आत्मा कर्मों से बन्धी है. पापों से लिप्त है, अशुद्ध है शुद्ध होने की साधना करनी पड़ेगी। भोगों से विराम लेना होगा, और निरन्तर लगातार-अविरल-कन्टीन्यू-अहर्निश मन में ध्याता है, परमात्मा का स्मरण करता है वह परमात्मा को पा लेता है। परमात्मा को कौन प्राप्त कर सकता हैं ? जो लगातार परमात्मा की सुरति में डूबा है, परमात्मा कहीं बाहर तो है नहीं, वह तो स्वयं में ही छिपा हुआ है, मात्र अन्तदृष्टि करना है।

"शश्वदधीते मनसि लभन्ते" जो लगातार मन में ध्याता है वही परमात्मा को पाता है। शब्द बड़ा रहस्यपूर्ण है, परमात्मा को पाना यानि स्वयं को मिटाना है। स्वयं को मिटाये बिना मिलना नहीं हो सकता है, यहां मिलने का अर्थ दो का मिलन नहीं है। नहीं तो बुद्धि स्वभावतः पूछेगी कि जब मिलना है, किसी से तो स्वयं को मिटाकर कैसे मिलेंगे ? स्वयं होंगे तभी तो किसी से मिल सकेंगे। अगर दर्पण ही टूट जायेगा तो प्रतिबिम्ब किसका बनेगा ? जब हम ही न रहे तो मिलेगा कौन ? तर्क तो यही कहेगा कि मिलन तो तभी संभव है जब दो हों : दो चाहिए ही चहिए मिलने को। और भगवान महावीर कहते है कि बाह्य मिलन के लिए दो की आवश्यकता पड़ती है लेकिन अन्तरंग का मिलन तो तभी होता है जब एक ही बचता है। क्योंकि एक में ही मिलन हैं जब दो खो जाते हैं तब एक रह जाता है, तब मिलन का स्वाद है. आत्मा का स्वाद है। स्वयं में स्वयं का दर्शन बचता हैं।

परमात्मा को पाना नहीं है, स्वयं को परमात्मा होना है। पाने की भाषा तो अहंकार की भाषा हैं। पाने का अर्थ है मैं रहूं और परिग्रह बढ़े। धन भी, पद भी हो, यश भी हो, परमात्मा भी हो। तिजोरी में सब बन्द हो जाए। मेरी मुठ्ठी में सब हो परमात्मा भी मेरी मुठ्ठी में कैद हो जाए। ताकि लोग मेरी विजय पताका को देखले। लेकिन अध्यात्म के जगत में स्वयं को, अपने अन्तरंग बहिरंग परिग्रह को मिटाकर ही स्वयं को परमात्मा बनाया जा सकता हैं। परमात्मा कोई वस्तु थोड़े न है जो पदार्थ की तरह पा लें। परमात्मा बना जा सकता हैं। इसलिए परमात्मा को पानें की बात असभव हैं। हम मिटें तो परमात्मा फलित होता 'मुक्ति निकेत विभव वरं ते'' हम निर्दोष हो जाये तो मुक्ति हमारा वरण कर लेती है। यानि परमात्मा हमें पा लेता हैं। जैसे लड़की जवान होती हैं, तो

युवक उसे पाने को, वरने को स्वयं आ जाता हैं। ज्योति जलती है तो परवाने पतंगे स्वयं उसके पास आ जाते हैं। आत्मा पूर्णतया निर्दोष होती हैं। मुक्ति-रमा स्वयं वरण करने आती है. फसल पक जाती है तो किसान स्वयं उसे काटने आ जाता हैं। फूल सुगन्ध से भरता है तो भौरां उसका रस लेने आ जाते हैं जब हम ध्यान-समाधि के सागर में गहरे उतर कर पवित्र होते हैं तो परमात्मा हमें पा लेता हैं यह कहना उचित हैं। और आचार्य भी यही कहना चाहते हैं।

भीतर तो कलमष ही कलमष भरा है, अन्धकार ही अन्धकार भरा है बाहर के प्रकाश से भीतर का अन्धकार नही भागेगा। बाहर के गगा जल से भीतर का मेल नही धुलेगा। भीतर का मेल ध्यान के नीर से धुलेगा, बाहर के स्नान से नहीं। समाधि से धुलेगा पानी से नही। अगर ध्यान— समाधि को पाना चाहते है, तो इस सामायिक पाठ के बत्तीस श्लोकों का निरन्तर स्मरण करो।

"मुक्ति निकेतं विभव वर ते" वह मुक्ति धाम को पा लेता है, क्या घर में रह कर मुक्ति को नही पा सकते ? आपका घर मुक्ति का स्थान नही भुक्ति का स्थान है. घर योग का स्थान नही भोग का स्थान है गृहस्थ को निर्वाण नही हो सकता उसका तो मरण होता है। एक होता है निर्माण और एक होता है निर्वाण. गृहस्थ संसार का निर्माण करता है और मुनि निर्वाण को प्राप्त होते हैं, घर राग का स्थान है, अपवित्र है, इसलिए वहाँ पर परिणामों की निर्मलता असभव है. गृहस्थाश्रम में परिणामों में निर्मलता नही विकलता आती है. वितरागता नही सरागता आती है, विरक्ति नहीं आसक्ति पैदा होती हैं, किसी ने एक दिन पूछा था - जब हम स्वयं भगवान हैं, हमारे भीतर भगवान विद्यमान हैं तब मन्दिर जाने की क्या जरूरत है ?

आपका कहना सच हैं मन्दिर में परमात्मा नही हैं, परमात्मा तो स्वयं के भीतर हैं। लेकिन क्या यह कहीं ज्यादा सच नही हैं कि मन्दिर के बिना भी तो परमात्मा नही है। मन्दिर की प्रतिमा को देखकर स्वय की प्रतिमा का ज्ञान होता हैं। मन्दिर के परमात्मा को देखकर स्वयं के परमात्मा का स्मरण हो आता हैं। क्या यह सच नही हैं जब हम किसी चीज को कही भूल आते है और किसी व्यक्ति के पास वैसी ही वस्तु देखते हैं तो अपनी वस्तु का स्मरण आ जाता है। मंदिर में परमात्मा की मूर्ति देखते ही स्वयं के परमात्मा का स्मरण हो जाता है,। मंदिर तो परमात्मा का स्मरण दिलाने के लिए है। जैसे सत देखकर सम्यक आचरण का ख्याल आता है, वीर भगवन्तो को देखते ही स्वयं के भगवान का ख्याल आ

जाता है मोक्ष का ख्याल पैदा हो जाता है ।

जो इन श्लोको को निरन्तर ध्याता है वो मुक्ति-धाम को पा लेता है, निर्वाण को पा लेता है एक ऐसे निकेतन को पा लेता है जो आध्यात्मिक सम्पत्ति से सराबोर है, परिपूर्ण है भरा हुआ है । वह सम्पत्ति है अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्तवीर्य अनन्त-सुख ।

परमात्म-सम्पदा को कौन पाता है? जो सतत् निरन्तर ध्याता है । एक क्षण को भी नहीं भूलता । ऐसा नहीं कि आज परमात्मा का स्मरण कर लिया और कल भूल गये । आज ध्यान कर लिया और कल छोड़ दिया जैसे रोज दुकान खोलते हो, रोज दुकान पर जमकर बैठते है, तब दुकान चलती है, ग्राहक आता है । ऐसे ही सतत् ध्यान की दुकान खोलो और जमकर आसन लगाकर बैठो, एक क्षण को भी प्रमाद नहीं करना, हर पल, हर क्षण सावचेत रहना, पता नहीं कब मुक्ति श्री वरमाला लेकर वरण करने आ जाये अगर मूच्छित हो गये, सो गये, परमात्मा-स्मरण से विस्मृत हो गये तो सब किये कराये पर पानी फिर जायेगा, साधना व्यर्थ हो जायेगी सतत् ध्यान करो तो मुक्ति धाम को पा जाओगे ।

बस जरा सा योग साधना में, जरा देह सध जाए, पप्पू की तरह चचल न हो पाए, तन सवेदनशील हो मन मृदुल हो, निश्छल हो आसन अचल हो, चित्त– परमात्म चिन्तन जमा हो, जरा सा काम करना है मन अपना बांधना है और परमात्म-सगीत, परमात्म-भाव पैदा करना है बस इतना होते ही फिर देखना अपूर्व घटना घटनी शुरू हो जायेगी । योग को तो धन्यभागी होकर जाना जा सकता है, धन्यभागी होकर अपन भीतर स्वय के निकेतन में जा सकते हो । बस ध्यान धर्म का मर्म सीख लो साधना का सार एक मात्र ध्यान है, ध्यान एक मात्र सम्पदा है क्योंकि उसी से मिलता है भगवान । अन्यथा शेष सब सपना है, अगर ध्यान को साथ लिया तो धन्यभागी हो अन्यथा तुम अभागी हो ।

आचार्य कहते है एक ही पाने योग्य है जगत में, वह है निर्वाण वह है परमात्म-धाम, वह है परमात्मा-वैभव, वह है ध्यान का मर्म, ध्यान का आनन्द, ध्यान में डूबकर ही स्वयं का रस जाना जा सकता है । ध्यान में गहरे उतरो और थोड़ा सार्थक की तरफ आँख उठाओ, चखो उसका स्वाद, आकाश के चांद–तारों को देखो; सूरज से नाता जोड़ो । जीवन की सारी चमक उपर है, नीचे नहीं । जो निर्मल हो गये है, आकाश के समान ऊपर उठ गये है तो करो उनका सत्संग, करो उपवास, उपदेश सुनों और अपने भीतर समयसार को प्रगट करो, बस इतना याद रखो मोह

माया, परिग्रह के साथ धर्म का मर्म हाथ नहीं लगेगा।

देखो नहीं तुमने ......'जान बूझ कर अन्ध बने हैं आंखन बांधी पाटी" जानकर अजान बन गये लोग, भरम छूटा नहीं माया का, ममता का, मोह का, महत्वकांक्षा का और समयसार की चर्चा में उतर गये। भोग छोड़ा नहीं, योग की चर्चा करने लगे ऐसे लोग जाग कर सो गये। सोये को जगाना आसान है लेकिन जो जागकर सो रहे हैं उन्हें जगाना कठिन हैं। इसलिए आंख ऊपर उठाओ और देखो कोटि-कोटि सूर्य से भी अधिक प्रकाश तुम्हारे भीतर है लेकिन उसे सतत् ध्यान के अभ्यास से देखा जा सकता हैं। जब आत्मा की उपलब्धि होती है तो एक अपूर्व आनन्द बरसता है, अद्भुत प्रेम की कलियाँ खिलने लगती हैं। जसे

भेड़ चराने वाला चरावाह भेड़ चराने जगल चला जाता है। और साँझ उन्हें लेकर लौटने लगता हैं. गिनती करता है तो एक भेड़ कम पाता है, चिंतित हो जंगल में भेड़ खोजने चला जाता है। बाकी समस्त भेड़ छोड़ जाता है. और जैसे ही भेड़ मिल जाती है तो उसे कन्धे पर लेकर लौटता है। उस समय उसका आनन्द अद्भुत होता है, इसी प्रकार ज्ञानी पुरुष को जब अपनी आत्मा का ख्याल आता है तो समस्त परिग्रह का त्याग कर ध्यान के विजन में डूब जाते है। और जैसे ही आत्म दर्शन की भेड़ मिलती है उसे कन्धे पर बैठाकर जगत के सामने लौटते है। उस समय उनका ओज, उनकी आभा, अद्भत होती है, उनका आनन्द आलोकित होता हैं। क्योंकि उसे उसकी निधि मिल गई, उसे उसका सत्य मिल गया, वही एकाग्रचित्त हो सकता हैं जो सन्त आस्था से जुड़ गया है। गुरु के सान्निध्य में ही उसकी याद आती हैं, उसकी झलक मिलती हैं उसकी भनक जगा देती हैं। क्योंकि गुरू ने जान लिया हैं उन्हें देखकर तुम्हें भी अपनी भूली बिसरी यादे आने लगती हैं। ध्यान की पावन घड़ी में ही ज्ञान की वर्षा होती हैं, परमात्म- दर्शन होता हैं। गुरु के निकट जाकर, स्वयं के निकट जाकर सतत् स्मरण करो, बार-बार स्मरण करो, अहर्निश स्मरण करो, ऐसे स्मरण करो जैसे जानते थे हम कभी और भूल गये। जैसे बात जबान पर रखी है और हमें याद न आ रही हो। बस परमात्मा भी जबान पर रखी बात के समान अति निकट हैं करीब हैं। सन्तों को देखते ही उसकी याद आ जाती है, कभी कभी ऐसा होता है, राह स गुजर रहे हैं और किसी को देखा, तो लगता है यह तो पहचानी शक्ल है, जबान पर नाम रखा हुआ मालूम पड़ता है, पूर्ण आत्म विश्वास रहता कि यह आदमी जाना-पहचाना है, जरा भी संदेह नहीं है लकिन फिर भी नाम जबान से बाहर नही निकल रहा है, कही अटक

गया है। कही दूर अज्ञात में भटक गया हूँ, कही चित्त उलझ गया है, अचेतन के नीचे दब गया है, किसी परिग्रह की, मोह-माया की चट्टान के नीचे दब गया हूँ। गुरू को देखते ही, मन्दिर में परमात्मा की मूरत देखते ही उसका ख्याल आ जाता है। जिनवाणी–तो प्रेम—पत्र के समान हैं, ये बत्तीस श्लोक मुक्ति श्री के प्रेम – पत्र के वर्णाक्षर है जरा इन अ-ब-स को समझो। इन अक्षरो को अ – ब – स समझ, साधारण समझ छोड़ मत देना। जैसे प्रेमी या प्रेयसी के प्रेम–पत्र के एक–एक अक्षर को ध्यान से पढ़ते हो, अति स्नेह से पढ़ते हो। एक–दो बार पढ़ने के बाद भी मन नही भरता, बार–बार पढ़ते हो। जब भी उसकी याद आती है पत्र खोलकर पढ़ने लगते हो रात अपने सिरहाने रखकर सोते हो, ऐसे ही इन बत्तीस श्लोकों को सदा अपने पास रखो, अपने सिराने रखो अपने हृदय के निकट रखो। बड़ा महत्वपूर्ण पत्र हैं आलौकिक रस से भरा हुआ है, परमात्मा वैभव का अधिकार सौंपने वाला पत्र हैं। परमात्मा का पत्र हैं तुम्हारे नाम आया हैं. बहुत रहस्य पूर्ण है। सन्तों के माध्यम से आया है। सन्त पोस्टमेन के समान हैं, महत्वपूर्ण पत्र लाये है जरा उनका आदर करो, अगर डाकीया तुम्हारा-प्रेम-पत्र लेकर आता है तो उसका कितना सम्मान करते हो, उससे भी कई गुना ज्यादा सन्तों का सम्मान करो, तभी आलोकिक-पत्र हाथ में आयेगा और उसकी भाषा के अ-ब-स समझ मे आयेगे।

एक सम्राट था, बड़ा तत्व ज्ञानी, विचारक था, चिन्तन-मनन साहित्य प्रेमी था, उसे खबर मिली की दूर किसी गांव में एक बहुत अच्छा दर्शनिक, तत्वविद् रहता है, बड़ा तर्किक है, बड़ा बुद्धिमान है। तो उसने अपना एक संदेश वाहक भेजा अपने हाथ से एक पत्र लिखा मोहर लगाई, लिफाफा बन्द किया सन्देश वाहक को दिया और कहा कि जाओ उसे यह पत्र दे देना।

सन्देशवाहक पत्र लेकर उसके घर पहुंचा द्वार पर दस्तक दी, हाथ मे पत्र दिया और कहा, सम्राट ने पत्र भेजा है, दार्शनिक ने बिना पढे ही पत्र टेबिल पर रख दिया और कहा कि पहले तो यह सिद्ध करो की पत्र सम्राट ने ही भेजा हैं या किसी और ने? और तुम्हारे पास प्रमाण है कि तुम सम्राट के संदेशवाहक हो ?

उस आदमी ने कहा, इसमें भी प्रमाण की जरूरत है? मेरे राजकीय वस्त्र देखे, राजकर्मचारी हूं और सम्राट का विशेष संदेशवाहक हूं।

दार्शनिक ने कहा, वस्त्रों से क्या होगा ? वस्त्र तो कोई भी पहन सकता है, कोई भी धोखा दे सकता है। क्या सम्राट ने स्वयं तुम्हे अपने हाथ पत्र दिया हैं।

सन्देश वाहक भी थोड़ा संदिग्ध हुआ, उसने कहा मैं तो सम्राट से काफी दूर हूं. मुझे जहां तक ख्याल है सम्राट ने पत्र प्रधान वजीर को दिया और वजीर ने प्रधान अधिकारी को और अधिकारी ने अपने से छोटे अधिकारी को दिया होगा। यह पत्र मैंने छोटे अधिकारी से पाया है। वह दार्शनिक हँसा और उसने कहा, क्या तुमने कभी सम्राट को देखा है ?

सन्देशवाहक ने कहा, मैं सम्राट का बहुत छोटा नौकर हूं। सम्राट को देखने का अवसर आज तक नहीं आया है।

उस दार्शनिक ने कहा बड़े पागल हो तुम ! जिसे तुमने कभी देखा नहीं और न उसने तुम्हें संदेश दिया, तो तुम कैसे कह सकते हो कि यह पत्र सम्राट का ही है। संदेशवाहक दार्शनिक के तर्कों से संदिग्ध हो गया और पत्र की बाबत भूल गया। दार्शनिक ने उससे कहा, चलो दोनों सम्राट की खोज करें। और वे दोनों सम्राट की खोज में निकल पड़े। जब तक प्रमाणित न हो जाए तब तक पत्र खोलने की क्या जरूरत है ? दोनों खोजने लगे। अनेक लोगों से पूछा। मार्ग में एक सिपाही मिल गया। पूछा, तुम कौन हो? मैं सम्राट का सैनिक हूँ। क्या तुम्हें मेरे वस्त्रों से पता नहीं चलता कि मैं कौन हूं। दार्शनिक ने कहा, मेरे साथ का आदमी भी वस्त्रों के धोखे में था। क्या वस्त्रों से कोई पहचाना जाता है ? क्या वस्त्र पहनने मात्र से मैं भी सम्राट का सिपाही हो जाऊंगा ? खैर छोड़ो, यह बताओ ! क्या तुमने सम्राट को देखा है ?

वह सैनिक भी थोड़ा डगमगाया। नहीं, नहीं मैंने तो सम्राट को नहीं देखा, लेकिन मेरे सेनापति ने सम्राट को देखा। दार्शनिक ने कहा, फिर चलो, मेरे साथ सम्राट की खोज करें, और उनसे मिले। जब यह सिद्ध न हो जाए कि सम्राट है, तब तक यह सब माया है।

सम्राट को खोजते-खोजते वे तीनों महल के द्वार तक आये। द्वार पर एक चौकीदार मिल गया वे महल में घुसने लगे, चौकीदार ने रोक दिया। उन्होंने पूछा-तुम कौन हो ? मैं सम्राट का सिपाही हूं। क्या तुमने कभी सम्राट को देखा है ? नहीं। यदि नहीं देखा तो आओ हमारे साथ सम्राट की खोज करें। और चौकीदार को लेकर वापस लौट गये। महल के द्वार तक आये और लौट गये। वे सन्देह की बेड़िया पहने आज तक भटक रहे उन्हें आज तक सम्राट नहीं मिला।

जिनके मन में सन्देह है सन्तों के प्रति, जिनवाणी के प्रति, परमात्मा के प्रति जो ये वचन पत्र में बन्द पड़े रह जायेगे। वे खोलेंगे ही नहीं। क्योंकि पहले तो यह सिद्ध होना चाहिए कि ये मुनिराज सम्यग्दर्शन प्राप्त

हुए या नहीं, भाव लिंग को प्राप्त हुए या नहीं। यह कैसे सिद्ध होगा, कि आत्मा में परमात्मा है या नहीं? जिनवाणी के ये पत्र कभी खोले नही गये अर्थात हमने वैसा आचरण नहीं किया। लिफाफे बन्द पड़े है, इसलिए आचरण भी बन्द पड़ा है। लिफाफे खोलने की विधियां साथ थी, लेकिन संदेह से भरा चित्त उन्हें कहां देख पाता है।

सम्राट द्वार तक आकर लौट गया और आप मनुष्य भव को जैन कुल के द्वार आकर लौट रहे हैं बड़े आश्चर्य की बात तो यह है कि यह सिद्ध हो सकता था, बड़ी आसनी से क्योंकि सम्राट ने स्वयं निमंत्रण दिया था कि तुम आओ और मेरे राज्य के उत्तराधिकारी बनो। लेकिन उस पत्र को पढ़ा नहीं गया। किसी से पुछने की जरुरत न थी, सीधा सम्राट का निमंत्रण था, महल के द्वार खुले थे, स्वागत था। मात्र पत्र खोलकर पढ़ना था। लेकिन सन्देह ने मति भ्रष्ट कर दी। श्रद्धा से सिर्फ भरोसा पैदा होता है।

ध्यान भी मात्र भरोसा पैदा करता है ताकि स्वयं का स्मरण आ जाए जो भूला है उसका ख्याल आ जाए। अगर तुम सम्यक भक्त हो श्रावक हो तो तुम परमात्मा से सम्बन्ध जोड़ सकोगे, सन्तों से सम्बन्ध जोड़ सकते हो। फिर खुले हृदय से की गई भक्ति ही ध्यान हैं, सामायिक है, स्तुति, है प्रार्थना है।

"शश्वदधीते मनसि लभन्ते" जो इन बत्तीस श्लोको को निरन्तर जपता है, अपने भीतर ध्याता है वह परमात्मा बन जाता है, सम्राट ने मात्र दार्शनिक के नाम एक संदेश पहुंचाया था कि महल में आ जाओ तुम्हें राज्य का महागुरु बना देगे। और आचार्य देव कह रहे हैं कि सामायिक पाठ का संदेशवाहक खबर लाया है कि यदि इन काव्यों के नेह-निमंत्रण को आत्मसात् कर लिया तो परमात्मा के राज्य के उत्तराधिकारी हो जाओगे। हम शंका करते है, सन्देह करते हैं, इसलिए बढ़ते कदम रूक जाते है। आदमी सब पर शंका करता है लेकिन स्वयं पर कभी भी शंका नहीं करता। सन्तों पर शका करता है लेकिन स्वयं के बाप पर कभी शका नहीं करता। जिनवाणी पर शंका करता हैं लेकिन स्वयं की मां पर कभी शंका नहीं करता। माँ ने पप्पू से कह दिया कि ये तेरे पापा है तो विश्वास आ जाता है, उसको होश भी नहीं था जब जन्म हुआ था, कि असली बाप कौन हैं? सिर्फ माँ के कहने पर पिता को स्वीकार कर लेता हैं। जब आपको सन्त बार-बार समझाते है, बताते है कि तुम्हारा मार्ग ये है, तुम्हारा स्वभाव यह है, तुम्हारी नियति यह है, तुम परमात्मा बन सकते हो तो आपको विश्वास नहीं होता, आपको दशा उस दार्शनिक के समान हैं जो सम्राट का पत्र पाकर भी सम्राट पर

सन्देह कर रहा था, सन्देशवाहक पर सन्देह कर रहा था, जैन कुल, जैन धर्म वीतरागी मुनियों को पाकर भी शंका से भरे हो । यही तो अभागी का लक्षण हैं । महल के द्वार खुले हैं, निमन्त्रण सामने हैं, मात्र पत्र खोलकर पढ़ना हैं और कुछ नहीं करना है । मात्र आचरण करना हैं जीवन-पुस्तक के पृष्ठों को खोलकर पढ़ना हैं, बत्तीस श्लोकों की माला से स्वयं को सुशोभित करो । अब जीओ तो परमात्मा के लिए, मरो तो परमात्मा के लिए, हँसो तो परमात्मा के लिए, रोओ तो परमात्मा के लिए, चलो तो परमात्मा के लिए, रुको तो परमात्मा के लिए, आँखे बन्द हो तो परमात्मा के लिए, आँख खुले तो परमात्मा के लिए । सतत् उसका स्मरण बना रहें, देह दीपक में उसकी ज्योति जलती रहे, देह के उपवन में उसके फूल खिलते रहे, देह के आसमान में उसके चांद-तारे चमकते रहे ।

आंखों में जिज्ञासा प्राणों में प्यास
मनांगन पर फैल रहा प्रेम का प्रकाश
बातों के जंगल में शब्द खड़ा मौन
देह के निलय में रहा कौन
शास्त्र के पठन का ये बर्फीला ज्ञान
पल-पल हैं पिघल रहा बन करके मान ।।

कामना के पंख बने, पंख में उड़ान
जन्म-मरण सह के भी चेतना अजान
ध्यान के निकुञ्जों से पुण्य को बटोर
खेल रहा चेतन निज की है ठौर
एकाग्र हो ताप रहा ध्यान की वो आग
धीरे - धीरे भाग रहा विषयानुराग

ध्यान की घड़ियों में सब कुछ प्रशान्त
आत्मा की थाती है एकदम सुखान्त
अनादि से आत्मा देह में कैद है
सुप्त हुआ कब से जीवन संगीत हैं ।
ढूंढ रही मीन बन कब से जलधार को
मोह ने छिपा-लिया आत्म प्रीति प्यार को ।।

प्रस्तर से फूट पड़ा अमृत का स्त्रोत
भोग के बगानों में विराग का उद्योत ।।

साधक परमात्म-प्यास से भरता है तो आँखों में जिज्ञासा और प्राणों में एक अद्भूत प्यास पैदा हो जाती है, और जब वह ध्यान में उतरता है तो उसके चारों तरफ एक आभा मण्डल बनने लगता है, उसके चारों ओर प्रेम की वर्षा होने लगती है, उसके चारों तरफ मधुर सुवास उड़ने लगती है, जब भगवान महावीर को दिव्य ज्ञान की परम-ज्ञान की, केवल ज्ञान की प्राप्ति हुई तो उनका पूरा अस्तित्व अमृत से नहा उठा, पूरा अस्तित्व खिल उठा, चारों ओर सुवासित वायु बहने लगी, दिग-दिगन्त महक उठे, एक अपूर्व ऊर्जा का विस्फोट हुआ, उड़ गया सब धूल-धवांस, बिखर गया सब जरा-जीर्ण, नित-नूतन से मिलन, खो गई मृत्यु, चला गया वह जीवन जहां मृत्यु घटती थी, मिट गये जन्म-मरण के चक्कर, अमृत को पा गये, जगत पूज्य केवल ज्ञानी हो गये, अब वह उपलब्धि कभीं भी नष्ट न होगी, यह सब ध्यान से घटा, सतत् आत्म-स्मरण से घटा, तभी तो शेर और गाय एक तट पर पानी पीते थे, यह सब आत्म-प्रेम का प्रभाव था।

अनादि से आत्मा देह में कैद है
सुप्त हुआ कब से जीवन संगीत है
ढूंढ रही मीन बन कब से जलधार को
मोह ने छिपा लिया आत्म-प्रीति प्यार को॥

स्वयं के भीतर संगीत सोया है, वीणा यूं ही पड़ी हुई है। स्वयं के मधुर संगीत का ख्याल भी नहीं आता कि परमात्मा का संगीत बज सकता है, हमें ख्याल भी नही आता कि यह पक्षी अनन्त आकाश की यात्रा पर निकल सकता है, पता नहीं यह पक्षी कब से देह के पिंजड़े में कैद है, साधारण से पक्षी भी यदि कहीं दाना चुगने जाते हैं तो थोड़ी—थोड़ी देर में अपने पंख फड़फड़ाकर देख लेते है, उन्हें लगता है कि कहीं हमारे पंख बेकाम तो नहीं हो गये हैं, मनुष्य को भी पूजा -भक्ति, तप-त्याग के माध्यम से स्वयं के पख को हिलाकर देखते रहना, तुम्हें भी अपने पंखों का स्मरण करना चाहिए, आपको भी किसी नें बन्द नही किया हैं, आप स्वयं अपनी विस्मृति के कारण बन्द हैं. पता नही कितने जन्म हो गये है तब से हम उड़े नही है, पख नहीं फड़फड़ाये, कितना समय हो गया, देह को ही अपना घर समझ रखा है, व्यक्ति जिस अंग का उपयोग नहीं करता वह अग निष्क्रिय हो जाता है, उसकी क्षमता खो जाती है, अगर आप चलना बन्द कर दे तो आपके पैरों की क्षमता खतम हो जायेगी, अगर आप हाथ का उपयोग करना बन्द कर दे तो हाथ काम करना बन्द कर देगा, आप

अन्धेरे में रहने लगे और आंखो का उपयोग न करे तो आँखे अन्धी हो जायेंगी, अगर आप शब्द सुनना बन्द कर दे, कानों को ध्वनि तरंगीत न करे तो बहरे हो जायेंगे, आप जिस इन्द्रिय का उपयोग नहीं करेंगे उसकी कार्य क्षमता नष्ट हो जायेगी, ध्यान का अर्थ है कि सतत् स्मरण करो और अपनी क्षमता को जगाओ।

ध्यान फड़फड़ाहट है उन पंखों की जो उड़ने को व्याकुल हैं, अनन्त आकाश की यात्रा के प्यासे हैं, अगर प्यास गहरी है तो एक क्षण में घटना घट जाती है, एक क्षण में सारे कर्म भस्म हो सकते है, लकिन जिन्हें ध्यान को उपलब्ध होता है उन्हें बाहर की दौड़ छोड़नी पड़ेगी। फिर अपने आप में वैसे ही लीन होना पड़ेगा जैसे पानी का योग पाकर नमक विलीन हो जाता है। वैसे चित्त निर्विकल्प समाधि में लीन हो गया तो समस्त शुभाशुभ कर्मो से मुक्त हो जाता हैं।

"योऽनन्य-गत-चेतस्को" यो एकाग्रचित्त होकर परमात्मा को ध्याता है, शिव पद को पाता है। परमात्मा को पाने में चित्त बाधक है। आपका प्रश्न हो सकता है कि चित्त ही तो प्रवचन सुनने की, धर्म - ध्यान करने की प्रेरणा देता है, और आप कह रहे है, वह ध्यान में बाधक है ?

यह बात सच है कि चित्त की धर्म की प्रेरणा देता है और चित्त बाधा उत्पन्न करेगा। आपका मन आपको मेरे पास ले आया और आप आ गये, लेकिन फिर भी आप मुझे नही सुन पायेगे, हमारा आपका मिलन न हो पायेगा। पास तो आ जाओगे पर एक न हो पाओगे। शरीर यहां आ जायेगा पर आत्मा दूर ही दूर रहेगी यहां पर भौतिक देह के मिलन की बात होती तो मन बाधक नही था। मन तो बड़ा स्वार्थी है दो शरीरो को तो निकट ले आयेगा, लेकिन आत्मा को दुर छोड़ आयेगा। जब तक मन उपस्थित रहेगा तब तक आत्मा का आत्मा से मिलन न हो सकेगा। जो कामना के तल पर, वासना के तल पर, स्वार्थ के तल पर, निचे निम्न तल पर जोड़ता मालुम पड़ता है, वही उच्च तल पर आत्मिक तल पर, श्रेष्ठ तल पर तोड़ भी देता है। आप भौतिक रुप से बाह्य रूप से मेरे निकट आ सकते है लेकिन आत्मिक स्वर पर मिलन कठिन है। क्योंकि यहाँ पर मन कौतुकवश भी आ सकता है, स्वार्थवश भी आ सकता है जिज्ञासावश भी आ सकता है दोष-दर्शन को भी आ सकता है और अवसर ऐसा होता है कि चित्त दोष-दर्शन, स्वार्थ-दर्शन को ज्यादा आता है। क्योंकि अनादि के संस्कार अच्छे नही है। मन जब परमात्मा दर्शन, आत्म-जागरण की प्यास को लेकर आता है तब अन्तस् से अन्तस् का मिलन अपने आप हो

हो जाता है । फिर ऐसा चित्त अपने को नही सुनता, मात्र गुरु को ही सुनता है । तो जो स्वार्थ के तल पर मिलतें हुए दिखतें है वे ही परमार्थ कें तल पर टुटतें हुए भी दिखतें है ।

इसे जरा गहराई से समझें....... । जो पहले चरण में साधन हैं वही अन्तिम में बाधक बन जाता हैं । जैसे नदी पार करने नाव में बैठें, नाव उस पार ले गई और किनारा सामने आ गया और उससें न उतरे तो वही नाव बाधा बन जायेगी । नाव को पकड़ना भी पड़ेगा, चढ़ना भी पड़ेगा और छोड़ना भी पड़ेंगा, उतरना भी पडेंगा । अगर आपने नाव से मोह किया कि नाव तो बहुत अच्छी है, फिर कभी भविष्य में काम आयेगी इसका बड़ा उपकार है अब इसें कैसें छोड़ें ? अगर यह नाव न होती तो हम नदी कैसे पार करते ? नदी पार करने से वंचित रह जाते । पथिक को इस बात का ज्ञान होना जरूरी हैं कि नाव में चढ़ना भी पड़ता हैं और उतरना भी पड़ता हैं । नाव पकड़नी भी पड़ती है, और नाव छोड़नी भी पड़ती हैं । इसलिए प्रथम अवस्था में जो साधन है, साधक है अन्तिम अवस्था में वही बाधक भी है । आपका मन आपको यहां लेकर आया, इसमे जरा भी शंका की गुजांइश नही है । और यह भी सच है कि अगर मन नही होता तो अध्यात्म का प्रवचन सुनने कैसे आते ? मैंरे बारे मे कैसे सुनते ? मन की नाव से चलकर ही तो यहां तक आये हो। मन की नाव पर ही चढ़कर यहां तक आये लेकिन क्या अब मन की नाव से नीचे नही उतरोगे, मन की नाव पर ही बैठे रहोगे । यदि तट का आनन्द लेना है, प्रवचन का आनन्द लेना है सन्त समागम का आनन्द लेना हैं तो पूर्व मान्यता कि पूर्वाग्रह कि, पूर्व विचारो की नाव से नीचे उतरो । नाव को धन्यवाद दो, उसके प्रति कृतज्ञता प्रगट करो लेकिन उसे सिर पर रखकर चलो मत । इसलिए कहा कि चित्त से भी मुक्त हो जाओ यानि पूर्वाग्रह से पूर्व-विचारो से भी मुक्त हो जाओ ।

पूर्ण उपलब्धि के समय समस्त साधन छुट जाते है, मंजिल मिलते ही पथ छुट जाता है। यद्यपि मार्ग पर चलते हैं, सही मार्ग पर सही दिशा में चलते हैं तब मंजिल मिलती है। मंजिल सामने होती है तब मार्ग को छोड़ना भी पड़ता है। अगर मार्ग को पकड़े रहें नहीं छोड़ा तो मंजिल पीछे छुट जायेगी और तुम आगे निकल जाओगे। मंजिल सामने हो मार्ग छोड़ने का भाव नही है तो इसका अर्थ हुआ मंजिल से प्रेम नहीं है। तुम मार्ग के गुलाम हो, मार्ग तुम्हारा मालिक है। ठीक मार्ग ने मंजिल के द्वार तक पहूंचा दिया, तब भी उससे क्या मंजिल का स्वाद मिल गया ? पुरुषार्थ

करने और न करने से क्या फर्क पड़ा ? गुरू से हजार मील दूर रहे कि गुरू के द्वार के पास खड़े रहें, गुरू के करीब, मंजिल के भीतर नहीं हो। मंजिल के बाहर ही हो। अगर साधन को अपनाया है तो उपादान में समा जाओ। क्योंकि मंजिल के पास आने से कुछ नहीं होता मंजिल के भीतर आने से सब कुछ होता है। स्वयं को पाना हैं, स्वयं में प्रवेश पाना है तो चित्त का सहारा भी लेना होगा और चित्त को छोड़ना भी होगा। विचारों से चित्त आत्मा का दर्शन नहीं कर सकता।

विचार और ध्यान दोनों एक दूसरे के विरोधी है। विचार का अर्थ है मन के सागर में उठने वाली तरंगे और ध्यान का अर्थ है निस्तरंग हो जाना। विचार का अर्थ है सोचना और ध्यान का अर्थ है मात्र शुद्ध होने में डुब जाना। जैसे सागर सो गया हो, कोई लहर नहीं, कोई कम्पन्न नहीं हवा का झौंका भी नही आता। सागर दपरावत् हो गया। उसमें चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब झलकने लगा। विचारों की हवा चली की सागर कंपा, कम्पन्न हुआ और प्रतिबिम्ब टूटा। जितनी लहरें होती हैं उतने प्रतिबिम्ब नजर आते हैं। विचार भी तरंगे है। जब तक विचार चलेगें आत्म-दर्शन असंभव रहेगा। क्योंकि तरंगों के परमात्मा का प्रतिबिम्ब नहीं बन पायेगा। संसार को चलाने के लिए विचार अनिवार्य है। निहायत जरूरी हैं। और आत्म दर्शन के लिए निर्विचार होना जरूरी है। विचार संसार के लिए साधन है। अगर संसार में विचार करके कदम न उठाया तो लुट लिये जाओगे और ध्यान में विचार को साथ लेकर चले तो आत्म-वंचना ही पाओगे। आपके सभी स्कूल-कॉलेज विद्यालय विचार करना सिखाते है कि जगत में कसे रहना चाहिए और कैसे संदेह करना चाहिए लेकिन आध्यात्मिक कॉलेज में सिखाया जाता है कि कसे संदेह रहित होना और निर्विचार को उपलब्ध होना है। अगर ध्यान कि गुफा में प्रवेश करना चाहते हो तो निर्विचार होकर आना. अपने विचारो के चित्त को छोड़कर आना तभी धर्म में, आत्मा में, स्वयं में, प्रवेश पा सकोगे।

भगवान महावीर कहते है कि हटाओ अपनी बुद्धि को और थोड़ा निर्बुद्धि होकर देखो, स्वयं पर प्रयोग करके देखो विचार करके बहुत देख लिया। उससे जो भौतिक धन मिल सकता था मिला पर पाकर भी तो निर्धन के निर्धन रहे। शरीर मिला शरीरों का आलिंगन मिला, लेकिन तृप्ति तो नही मिली, बल्कि स्वयं की शक्ति का अपव्यय जरुर हुआ। घर बना लिए, भवन खड़े कर लिए फिर भी मौत आई और उठाकर ले गई। जो विचार से मिलता है उसे मौत छिनकर ले जाती है और जो

ध्यान से निर्विकल्प समाधि से मिलता है मौत उसे प्रणाम करने आती है क्योंकि विचार से बाहर की सम्पदा मिलती है जिस पर मौत का अधिकार है और ध्यान से अन्तस् की सम्पदा मिलती है जिस पर मुक्ति का शासन है। इसलिए ज्ञानी-ध्यानी अमर हुए, प्रजापति कहलाए, जगत पिता बने परमात्मा-सज्ञा को उपलब्ध हुए, शिव-रमापति कहलाये। और आचार्य कह रहे है एकाग्रचित्त होकर इन बत्तीस श्लोकों का ध्यान करके शाश्वत सुख को पाओ।

ढ़ढ़ रही मीन बन कबसे जलधार को
मोह ने छिपा लिया आत्म-प्रीति प्यार को
प्रस्तर स फूट पड़ा अमृत का स्रोत
भोग के बागानों में विराग का उद्योत॥

एक मछली की बाबत सुना है-एक पथिक पानी पीने गया सागर के किनारे तो एक मछली ने उससे पूछा, भैया मैं काफी प्यासी हू मैंने आज तक पानी का स्वाद भी नही चखा है। पानी का स्वाद भी नही मालुम कि कैसा होता है, सागर कहां पर है मुझे पानी पीने जाना है? मुझे बहुत कसके प्यास लगी है। पथिक बहुत जोर से हसा। मछली ने कहा हंसते क्यों हो ? तेरी नादानी पर हस रहा हू। अरी पागल! तू तो स्वय पानी में ही है। मछली ने कहा मैं पागल नहीं, पागल तो तुम हो जो बाह्य जल से अपनी प्यास बुझाने की कोशिश कर रहे हो। दूसरो के कुओं सुख की तलाश कर रहे हो सुख तो तुम्हारे भीतर है चारो ओर से तुम घिरे हुए हो। आत्म मछली परमात्मा के सागर में रहकर भी प्यासी है। और पता नहीं कौनसे पानी की तलाश में दर-दर भटक रही है। मोह ने आँखों पर पर्दा डाल रखा है इसलिए सागर दिखाई नही पड़ रहा है। भोग वासना के बादलों की ओट में परमात्मा का सुरज छिप गया है।

अगर किसी तोते का जन्म पिंजड़े में ही हुआ हो तो वह स्वतत्र आकाश का आनन्द क्या जाने ? आकाश में पक्षियों को देखकर हंसता होगा कि ये कैसे पागल पक्षी है, जो व्यर्थ का श्रम कर रहे हैं, जिन लोगों ने त्याग की महिमा नहीं जानी, तप का आनन्द नहीं जाना, वे त्याग को जड़ की क्रिया कहकर टाल देते हैं, सन्तों को पागल समझते हैं। सन्त क्या होते हैं, भोगी क्या जाने ? वासना-कामना के पिंजड़े में कैद रहने वाला पक्षी त्याग की महिमा, सन्तों की महिमा नहीं जान सकता।

प्रस्तर से फूट पड़ा अमृत का स्रोत
भोग के बगानों में विराग का उद्योत

संसार के सभी झरने पर्वतों से फूटे हैं, सागर से एक भी सरिता का, निर्झर का जन्म नहीं हुआ, सागर में नदियां समाहित हुई हैं लेकिन पैदा नही हुई, पर्वतों ने नदियों को जन्म दिया हैं। जो ऊपर से कठोर दिखाई पड़ते हैं, सूखे दिखाई पड़ते हैं, उन्हीं पर्वतों से नदियां निकलती हैं, दिगम्बर मुनि भी ऊपर से सूखे दिखाई पड़ते हैं, शरीर गन्दा दिखाई पड़ता है, नग्नता आपको पसन्द नहीं आयी है लेकिन इसी नग्न पर्वत से दिगम्बर की ऊंचाई स ज्ञान की, अमृत की सरिता जन्मती हैं, फूटती हैं, पंचम काल, विषमकाल, इंसान भोग का कोड़ा बना हुआ है, इस भोग के रेगिस्तान में आज भी सन्यास के फूल जुही-चम्पा-चमेली, कतकी, गुलाब के फूल खिल रहे है, यही तो हैं इस काल का आश्चर्य की भोग की रेतीली भूमि में गुलाब के फूल खिल आये, कमल कीचड़ में ही खिलता है, कमल खिलने के लिए कोचड़ चाहिए और मुक्ति पाने के लिए संसार चाहिए, साधना करने के लिए, परमात्मा बनने के लिए मनुष्य देह चाहिए, सन्यास ग्रहण करने से शरीर मिटता नहीं बल्कि उसकी और कीमत बढ़ जाती है, बुन्द सागर में खो जाए तो वह कुछ खोती नहीं हैं, और व्यापक हो जाती है, लोहा पारस को छूकर घाटे में नहीं रहता उसका स्पर्श, सम्मान और ओज के मूल्य को बढ़ा देता हैं। पानी दूध में खोकर मिटता नही हैं, रूप रंग बदल जाता हैं मूल्य बढ़ जाता है, यही बून्द जब ध्यान में उतरती है, परमात्म चरण का परस करती है, भक्ति का स्पर्श करती है पावन हो जाती हैं, विराट् हो जाती हैं, परिपूर्णता को उपलब्ध हो जाती है। यही तो ध्यान की विशेषता है। लेकिन अभी आपके पास सम्यक् ध्यान नहीं हैं, कुध्यान हैं, अपध्यान हैं, अशुभ हैं।

बस इतना विशेष ख्याल रखना कि भगवान महावीर इस धरती पर ऐसे चिंतक-विचारक है, सिद्धान्त प्रणेता है, जिन्होने ध्यान को धर्म और अधर्म, शुभ और अशुभ दो खण्डों में, दो भागों में बाँटा है, अकेले! पूरे मनुष्य जाति के इतिहास में उनकी यह अद्भूत घोषणा है। पतंजलि ने ऐसा नहीं किया, बुद्ध ने ऐसा नहीं किया, कृष्ण ने ऐसा नहीं किया अकेले महावीर ने ध्यान को धर्म और अधर्म, दो में बांटा, और यह उनकी परम वैज्ञानिकता का प्रतीक है, उनके ज्ञान की मूल्यता है।

अधर्म ध्यान ? ध्यान से तो सम्बन्ध धर्म की ही जोड़ते है लेकिन

भगवान महावीर का चिन्तन गहरा है, वे कहते है कि साधक के मन में कभी कदाचित ऐसी घड़िया भी आ जाती है जो अधर्म की होती है। मन के सागर में कुछ ऐसी भी लहरे होती है जो अधर्म के कारण उठती है, लेकिन ध्यान बध जाता है, मन उनमें भी एकाग्र हो जाता है, और कभी-कभी तो योगी से भी ज्यादा एकाग्र हो जाता है, एक जुआरी जब जुआ खेलने बैठता है ताश के पत्ते हाथ में होते है उसके चित्त में बड़ी एकाग्र हता हैं और ऐसा भी हो सकता है जो मंदिर में बैठकर माला जप रहा है उससे ज्यादा एकाग्रचित्त जुआरी हो सकता है। लोभ का माया का मजा भी यही है कि जुआरी भी ध्यान से बन्ध जाता है, क्रोधी आदमी भी क्रोध के समय सब भूल जाता है, इसलिए क्रोध के उपरान्त व्यक्ति कहने लगता है कि मैं अपने आपको भूल गया था, मैं करना नहीं चाहता था और हो गया, लेकिन ये भी कुध्यान है, अपध्यान हैं संसार के कारण हैं, दुख के कारण हैं।

आपने देखा होगा कामातुर आदमी को भी कुछ दिखाई नहीं पड़ता काम वासना के समय भी आदमी कुध्यान में डूब जाता हैं, अपने आपको भूल जाता हैं, रामायण के रचियिता तुलसीदास की कथा हैं कि जब उनके अन्दर काम भड़का तो एक मुर्दे की लाश का सहारा लेकर नदी पार कर गए, पत्नी से मिलने गये, उनके अन्दर निश्चित ही गहरा कामान्ध भाव रहा होगा, इतना भी दिखाई न पड़ा कि यह लाश हैं, समझा कि कोई लकड़ी का ठूंठ बह कर जा रहा है, ऊपर चढ़कर नदी पार हो गये, पत्नी के घर पहुंचे द्वार बन्द था, अर्द्ध रात्रि का समय, कौन द्वार खुले छोड़ेगा ? लटके सांप को रस्सी समझ पकड़कर ऊपर चढ़ गये, पत्नी ने कहा, जितना ध्यान मेरा किया अगर उतना ध्यान राम का लगा लेते तो परम-आनन्द को, मुक्ति को पा जाते। जितना ध्यान तुमने काम पर लगाया, राम पर लगा लेते, काम पर ध्यान कुध्यान, राम पर ध्यान सुध्यान।

जैन दर्शन ने ध्यान के दो भेद किये अधर्म ध्यान और धर्म ध्यान तो दोनों हैं। लेकिन एक संसार का कारण हैं जिसमें श्रम तो होता हैं, ध्यान तो हैं होता लेकिन मिलता कुछ नहीं। हां इतना अवश्य है कि कष्ट मिलता हैं दुख मिलता हैं पीड़ा मिलती हैं कुध्यान, ध्यान तो हैं लेकिन गलत दिशा में उसकी गति हैं और धर्म ध्यान का अर्थ हैं जो उपयोग की धारा बाहर की ओर जा रही थी, उसे अन्दर की ओर मोड़ देना, पर से उठाकर स्व की ओर मोड़ देना धर्म-ध्यान हैं, धन से हटा धर्म की ओर लगा देना सु-ध्यान हैं, क्रोध से हटा करुणा पर लगा देना धर्म-ध्यान हैं।

मोक्षार्थी पहले अधर्म ध्यान से मुक्त हो और धर्म ध्यान से जुड़े।

पहले मन को उन-उन विषयों से मुक्त करे जिनके सिवाय दुख के, पीड़ा के कुछ न मिला, आश्वासन फूल के मिले और कांटे हाथ में आये, दूर से द्वार नजर आया, पास आये तो सिर दीवाल से टकरा। दूर से सब स्वर्णिम नजर आये पास आये तो मिट्टी को पाया, इसलिए पहले अपनी ऊर्जा को कुध्यान से मुक्त करो। क्योंकि यही ऊर्जा तो धर्म-ध्यान में लगेगी, परमात्मा को जगाने में काम आयेगी। जो ऊर्जा शैतान बनने में लगी है उसी उर्जा को भगवान बनाने में लगाना हैं इसलिए कुध्यान को त्यागना अनिवार्य हैं।

भगवान महावीर कहते है पहले धर्म-ध्यान को अपनाना जरूरी है, अधर्म से, विषयों से चित्त को मुक्त करना और धर्म में लगाना जरुरी है। अधर्म-ध्यान के विषय अधार्मिक है और धर्म-ध्यान के विषय धार्मिक हैं। ध्यान तो वही हैं मात्र विषयों को बदलना हैं पदार्थ से आत्मा पर आना हैं, इसके बाद हैं तीसरी अवस्था समाधि की, निर्विकल्प ध्यान की उसमें सहज आना हैं, समाना हैं, दूर जाना हैं।

अधर्म ध्यान को गलत विषयों से छुड़ाओं, धर्म-ध्यान को सम्यक् तत्व से लगाओं और इतने गहरे चले जाओ कि धीरे-से स्वयं में सरक आओ और फिर अब ऐसी घड़ी आती हैं, प्रतिक्रमण करता हैं कि उससे भी ऊपर की स्थिति में समाधि में पहुंच जाता हैं। कर्ता क्षीण हो जाता हैं और जैसे कर्तापन क्षीण होता हैं कर्म भी क्षीण होने लगते हैं। क्योंकि कर्म द्वार हैं संसार का और अकर्म द्वार हैं मोक्ष का, ध्यान का अर्थ हैं अकर्म की दशा समत्व की दशा, ध्यान का अर्थ हैं साक्षी की दशा, ध्यान की अग्नि कर्म ईन्धन को क्षण भर में भस्म कर डालती हैं, कर्म-कालिमा हटते ही परमात्म वैभव उपलब्ध हो जाता है।

बातों के जंगल में शब्द खड़ा मौन
देह के निलय में ये जी रहा है कौन ?

बातो के जंगल में बेचारे शब्द फंस गये हैं, वे भी मौन खड़े होकर देख रहे है, कि स्वाध्याय के नाम पर कैसी आत्म—वंचना में लगे हैं, मात्र शब्दोच्चारण से क्या होता है, कल्पनाओं की नाव तैराने से क्या होता है, अब तो शब्द भी ऐसे नकली स्वाध्याय प्रेमियों से मुख चुराने लगे है। उन्हें अभी तक यही नहीं मालुम की देह के मंदिर में कौन जी रहा हैं? उससे इनका जरा भी परिचय नहीं है, इनका शास्त्रीय ज्ञान मान बनकर बर्फ सा पिघल रहा है, अहंकार ही तो ध्यान में बाधा उत्पन्न करता है।

अहंकार आत्मा में प्रवेश करने ही नहीं देता है। ज्यादा ज्ञान भी खतरनाक है, इसलिए वर्णमाला के अ-ब-स अक्षर का ज्ञान ही बहुत है, इनमें ही सारे शास्त्र समाये हुए हैं, शेख चिल्ली जैसा जीवन जी रहे हैं।

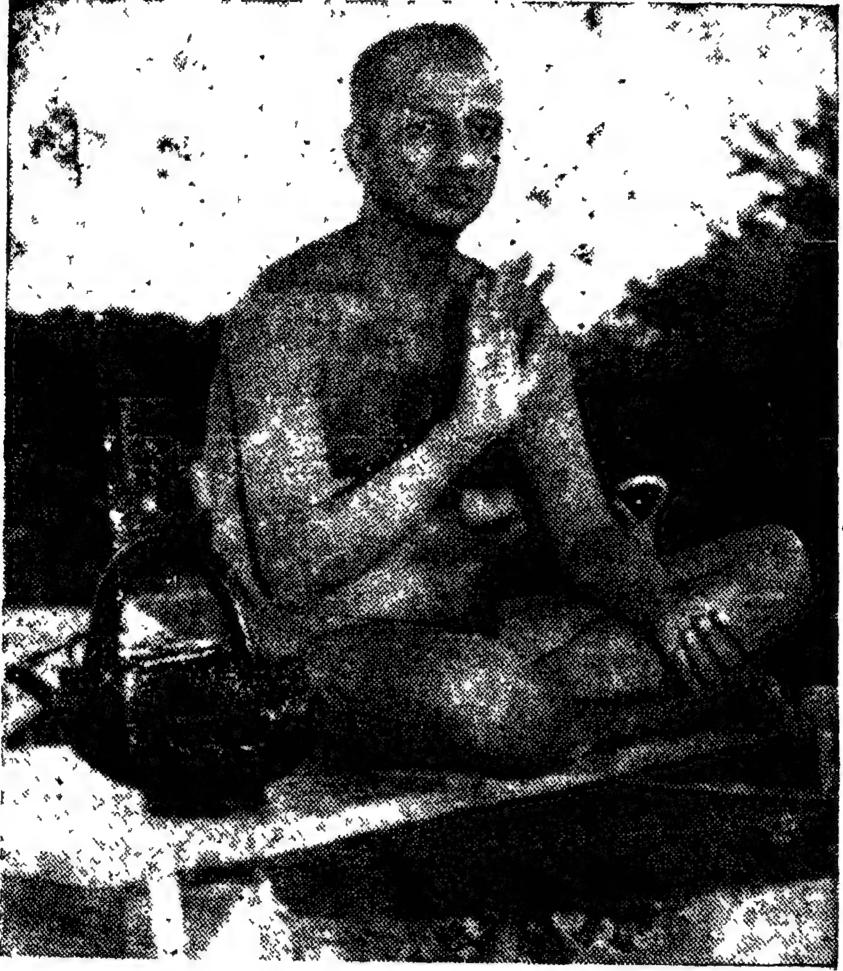
तीन गप्पी कहीं जा रहे थे। आगरा के ताजमहल के सामने से गुजर रहे थे। एक गप्पी की नीयत खराब हो गई। उसने कहा, कितना प्यारा महल है। मैं तो इसे अभी खरीद लूंगा। दूसरे ने कहा बेटा खरीदोगे कैसे जब मैं बेचूंगा ही नहीं ? तीसरे गप्पी से चुप न रहा गया तो उसने कहा मैं खाली ही नहीं करूंगा तो तुम बेचोगे कैसे ? ताजमहल अपने स्थान पर है। कल्पना करने में क्या बुराई है ? मात्र कल्पना करने से मोक्ष मिल जाता तो साधना करने की क्या जरुरत थी। परमात्म प्रकाश ग्रन्थ में योगिन्द्र देवाचार्य कहते हैं कि अहो आश्चर्य - जिनकी आत्मा वर्तमान में अशुद्ध हैं वे अपने आपको परम शुद्ध कहते हैं और जो बन्धन में हैं वे अपने आपको कर्मों से मुक्त बताते हैं। और आचार्य अमितगति सामायिक पाठ के श्लोकों के माध्यम से कह रहें हैं कि आत्मा बन्धन में हैं, जो इनको हृदय में धारण करेगा, तदनुरूप आचरण करेगा वह हमेशा-हमेशा के लिए मुक्त हो जायेगा।

पूर्व के श्लोक में कहा था पर वस्तु का संयोग दुख में कारण है क्योंकि आंख बाहर खुलती है तो पदार्थ को देखती हैं, कान बाहर खुलते हैं बाहर सुनते हैं, हाथ बाहर की ओर फैलते हैं तो पदार्थ को पकड़ते हैं। भीतर की ओर न आंखे खुलती है, न हाथ खुलते है, न कान खुलते है। एक भी इन्द्रिय नहीं जाती इसलिए हमें भीतर की याद नहीं आती। मन को अनिन्द्रिय कहा हैं-वह भीतर प्रवेश कर सकता है यदी बाह्या-पदार्थ से उसका सम्बन्ध तोड़ दिया जाये तो। ध्यान भीतर प्रवेश कर सकता हैं' आंख नहीं। शब्द भीतर जाकर परमात्मा को जगा सकते है लेकिन भीतर नही जा सकते। सिर्फ ध्यान भीतर जा सकता हैं। और ये सामायिक पाठ के सूत्र भीतर जाने के उपाय है। इसलिए एकाग्रचित्त हो जो इनको ध्याता है, सातत् निरन्तर व्यस्तताओं के बीच भी स्वयं का स्मरण नहीं मिटता, बोध का दीया नहीं बुझता तो वर्णमाला के अ-ब-स का दीया जगमगाता रहता है तो परमात्म-ज्ञान का जागरण हो जाता हैं। परम-वैभव को, आत्मिक सम्पदा को, मुक्ति-धाम को वह पा लेता है। आप सभी समता को साक्षी भाव को, समाधि को पाये।

रात सबकी नींद है पर जागरण तो मेरा है
अथिरता से डरे सभी, थिरता का चरण मेरा है

तम-विशाल चीरने को नन्ही किरण काफी है
यामिनी को जीतने यम-नियम ही काफी है ।।
यम-नियम ही काफी है
उषा ने बिखेर दी गगन के थाल रोली है ।
भर गई आलोक से विश्व की आज झोली है ।
हृदय-मजुषा भरने को आई सन्त-टोली है
सन्त सत्कार के लिए काफी मीठी बोली है ।।
काफी मीठी बोली है
तुम भी भरो मांग अपनी, त्याग की ये रोली है
रंगने सबको आ रही ध्यान-पर्व होली है ।
काल-कराल जीतने को समाधि-ध्यान काफी है
यम-नियम के सामने, यामिनी भी रोती है
यामिनी भी रोती है ।।

बस आज इतना ही । दिनांक ४-९-९१
आदिनाथ दिगम्बर जैन नया मन्दिर बुधवार
प्रतापगढ़ (राज.)



आचार्य पुष्पदन्त सागरजी महाराज

श्रावक प्रतिक्रमण

हे जिनेन्द्र ! हे देवाधिदेव ! हे करुणानिधान ! हे दया के सागर ! हे वीतरागी ! हे सर्वज्ञ ! हे पतितोद्धारक मैं अपना तीस मिनिट तक का समय पापों के प्रक्षालनं के लिये, पापों को समाप्त करने के लिये, आत्म उत्थान के लिये, आत्म जागरण के लिए व्यतीत करूंगा।

(इस प्रकार प्रतिज्ञाकर प्रतिक्रमण प्रारम्भ करे)

हे जिनेन्द्र ! हे परमेश्वर ! हे परमपिता ! हे परमात्मा मैं पापी हूं, पामर हूँ, दुष्ट हूं, अधम हूँ पतित हूं, क्रोधी हूं, मानी हूं, मायावी हूं, लोभी हूं, सर्वदुगुणों सम्पन्न हूं पतितात्मा हूं। मैंने मन, वचन, काय की दुष्टता से न जाने किनने पाप किये। किनने दुष्कर्म किये। कितने दुष्कर्म किये। ओह ! आप तो केवलज्ञानी हो, घट-घट के अन्तर्यामी हैं। क्या मैं आपसे अपने पापों को छुपाना चाहूँ तो क्या छुपा सकता हूं ? नहीं, नहीं ········ कदापि नहीं। आपके श्री चरणों में पापों को छुपाना तो वैसे ही है, जैसे रुई के बीच में अंगारे को छुपाना। क्योंकि आप तो अन्तरयामी है ! हे प्रभो इन जन्म जन्मान्तरों के पापों के प्रक्षालन हेतु प्रतिक्रमण करता हूँ। आलोचना करता हूँ। अपने आप की निन्दा की ओर गर्हा करता हूँ।

मैं सभी जीवों को क्षमा करता हूं, सब जीव मुझे क्षमा करें। इस संसार में प्राणी मात्र से मेरी मित्रता है, किसी भी जीव से दुश्मनी नहीं है, मेरा कोई भी शत्रु नहीं है, सभी जीव मेरे मित्र हैं, मैं बार-बार सभी जीवों से क्षमा मांगता हूं और सबको क्षमा करता हूं।

हाय–हाय ! मैंने दुष्ट कर्म किये । हाय–हाय मैंने पाप कर्मो का हमेशा चिन्तवन किया । हाय - हाय मैंने दुष्ट मर्म भेदक कुत्सिक वचन कहें इस प्रकार से मैंने मन-वचन-काय की दुष्टता से न जाने कितने पाप किये, कितने अपराध किये ।

हे प्रभु ! हे विभु यदि मुझ हृदयस्थ के द्वारा, मुझ अज्ञानी के द्वारा मुझ अबोध के द्वारा, कषाय के वशीभूत होकर, प्रमाद से, अज्ञान से, उठने में बैठने में, चलने में, खाने में, खांसने में, छींकने में, जम्हाई लेने में, बोलने में, श्वांसों श्वास से, आंगोपांग के हलन-चलन से, एकेन्द्रिय, द्विइन्द्रिय, त्रयेन्द्रिय, चोइन्द्रिय, पञ्चेन्द्रिय, पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक, त्रसकायिक जीवों को स्वयं ने कष्ट दिया हो अन्य से दिलवाया हो, देने वाले को अच्छा कहा हो तो हे प्रभु मुझे अबोध बालक समझकर क्षमा करना - क्षमा करना । इस प्रकार क्षमा याचना करते हुये परमपिता परमात्मा, पञ्चपरमेष्ठी भगवान के चरणों में बारम्बार नमस्कार नमस्कार । (नौ बार नमोकार)

(इसके वाद पञ्च परमेष्ठी का स्तवन करें)

ॐ णमो अरिहंतणं, ॐ णमो श्री सिद्धाणं, ॐ णमो आयरियाणं, ॐ णमो उवज्झायाणं, णमो लोये सव्वसाहूणं ।

णमो अरिहंताणं :

अरिहन्तों को नमस्कार हो। कैसे है वे अरिहन्त ? क्या है उनका स्वरूप ? जो पंचकल्याणको से सुशोभित है । चौतीस अतिशयों से युक्त है । अनन्त चतुष्टय के धनी । वीतरागी । सर्वज्ञ । हितोपदेशी । रत्नात्रय से मण्डित । धातियाचतुष्क नाशक । ज्ञानी । भेदज्ञानी । परमज्ञानी । लोकोद्धारक भी तो आप ही है । कहाँ तक कहूं आप की महिमा ? अब तो कहीं नहीं जाती । अरे ! अरे ! मैं तो क्या ? स्वर्ग के देव भी, साक्षात बृहस्पति भी आपकी सम्पूर्ण महिमा को नगा सका ।

हे प्रभु ! हे विभो ! राजा ! महाराजा ! अधिराजा ! नारायण ! प्रतिनारायण ! बलभद्र ! चक्रवर्ती ! इन्द्र ! ऋषि ! मुनि ! यति ! अनगार देव मानवोस वन्दित लोकाधिनायक वृषभादि महावीर पर्यन्त समस्त तीर्थंकरों, अरिहन्तों को बारम्बार नमस्कार—३ (नौ बार नमोकार)

णमो सिद्धाणं :

सिद्धों को नमस्कार हो ! कैसे है वे सिद्ध ? क्या है उनका स्वरूप ? जो अनन्त स्वरूपी है। अतीन्द्रिय है। अनुपम है। आत्मस्थ है। अनवद्ध है। तिष्ठित है। कृत्य-कृत्य है। सिद्ध साध्य है। लोकाग्रस्थित है। शून्य है। जिन्होंने सब कुछ पा लिया है, जिन्हें कुछ पाना शेष नहीं है। जो अपने आप में पूर्ण है। जिनमें अधूरापन नहीं रहा। जो तप से सिद्ध है, सयम से सिद्ध है, चारित्र से सिद्ध है, ज्ञान से सिद्ध है, स्वभाव अर्थ पर्याय और स्वभाव व्यंजन पर्याय से युक्त हैं, जो सूर्य के समान तेजस्वी है, चन्द्रमा के समान शीतल है, पंचलब्धी से युक्त है। ऐसे सिद्धों के समूह को त्रियोग से बारम्बार नमस्कार-३

(नौ बार नमोकार ।।)

णमो आयरियाणं :

आचार्यो को नमस्कार हो। कैसे है वे आचार्य ? क्या है उनका स्वरूप ? जो द्वादशांगमय सूत्ररूपी समुन्द्र के पारगामी, ज्ञान, ध्यान और तप में लवलीन, बाह्याभ्यन्तर परिग्रह से रहित जिनेन्द्रय, शुद्ध चारित्र व छत्तीस गुणों से युक्त, पंचाचार को स्वयं पालने वाले व शिष्यों से उनका आचरण करने वाले, स्वसमय और पर समय में पारंग मेरू के समान निश्चल, पृथ्वी के समान सहनशील, समुन्द्र के समान गम्भीर, निर्मल बुद्धि वाले, निर्दोष षट् आवश्यकों को पालने वाले, सिंह के समान निर्भय सोम्यमूर्ति, आकाश के समान निर्लेप, नभ के समान विशाल, देश-कुल जाति से शुद्ध संघ को, शिक्षा प्रायश्चित देने में कुशल ऐसे आचार्यों चरणों में भक्ति भाव पूर्वक नमस्कार-३

(नौ बार नमोकार ।।)

णमो उवज्झायाणं :

उपाध्यायों को नमस्कार हो ! कैसे है वे उपाध्याय ? क्या है उनका स्वरूप ? जो पच्चीस मूलगुणों से युक्त है, मोक्ष मार्ग में स्थित हैं। मोक्ष के इच्छुक मुनीश्वरो को उपदेश देने में कुशल व व्रतो की रक्षा करने में तत्पर द्वादशांग रूप समुन्द्र में अवगाहन करने वाले, सम्पूर्ण शास्त्रों के पाठी, ज्ञान के भण्डार, ज्ञान दिवाकर, ज्ञानार्जन में आनन्द मनाने वाले, ज्ञान के इच्छुक ज्ञान के दाता, परम तपोनिधि उपाध्याय परमेष्ठी के चरणों में बारम्बार नमस्कार-३

(नौ बार नमोकार)

णमो लोएसव्वसाहूणं :-

लोक के समस्त समकित साधुओं को नमस्कार हो ! कैसे हैं वे साधु? क्या है उनका स्वरूप ? जो व्रत, तप व ध्यान रुपी अग्नि में कर्मों को नाश करने में प्रवीण, षट् आवश्यक कर्मों में सावधान अनन्त ज्ञानादि रुप शुद्ध, आत्मा के स्वरुप की साधना करने वाले, मन को जीतने वाले, शील रुपी कवच को धारण करने वाले, गुण रुपी अस्त्र से सहित, सिंह के समान पराक्रमी, गज के समान स्वाभिमानी, मृग के समान निस्संग, सूर्य के समान तेजस्वी, चन्द्रमा के समान निर्मल, सागर के समान गम्भीर, सुमेरू के समान अकम्प, सुमेरू के समान अडोल आकाश के समान निरालम्ब नभ के समान निर्लेप, परिषह और उपसर्गों को सहन करने वाले, अठ्ठाइस मूलगुणों का निरविचार पालन करने वाले मोक्ष के साधक परम पूज्य मुनीश्वरों के चरणों में बारम्बार नमस्कार-३ (नौ बार नमोकार)

(इसके पश्चात दो मिनिट तक ॐकार की ध्वनि लगाये । फिर विचार करे, कुछ इस प्रकार से, अपने अतीत के बारे में)

हे प्रभु मेरी इस आत्मा ने तीनों लोकों में चौरासी लाख योनियों में न जाने कहाँ-कहाँ कितने-कितने जन्मों में कैसे-कैसे कष्टों को सहन किया । वहां की पीड़ाओं को अपने कन्धो में भार सदृश उठाया । इन योनियों में भटकते हुये मैंने न जाने कितने कितने पाप किये । इन छोटे-छोटे से पापों के कारण यह आत्मा अनादिकाल से संसार के बियावान जंगल में भटक रही है । इस अन्धकार मय संसार में मुझ रोशनी दिखा, मार्ग दिखाने वाला कोई न मिल सका । मुझे किसी ने "तमसो मा ज्योतिर्गमय" का सूत्र नही दिया । यदि किसी ने रोशनी दिखाई भी तो हमारी आंख फोड़ने के लिए । जो हमारी आँख फोड़ते है, उन्हे ही हम अपना मानते है । हमारी इसी अज्ञानता के कारण इस आत्मा नें चौरासी लाख योनियों में भ्रमण किया । और वहां की पीड़ाओं को सहन किया ।

हे प्रभु मैंने अपना अनन्त काल निगोद की पर्याय में व्यतीत कर दिया । उस पर्याय में रहकर मैंने न जाने कितने कष्ट सहे । एक श्वांस में १८ बार जन्म मरण किया । इस निगोद की पर्याय में मुझे सुख नाम मात्र भी ना मिला ।

हे दीनानाथ इस पर्याय से मुक्त होने बाद मैंने पृथ्वीकायिक की पर्याय में जन्म लेकर हजारो वर्ष तक एक ही स्थान पर पड़े-पड़े दुखों को सहन करता रहा । लोगो के द्वारा मुझे खोदा गया, मुझ पर मकान

दुकान बनाये गये, घर बार बसाये गये । इस योनि में मैंने दुख ही दुख उठाये । यहाँ से छूटने के बाद में जलकायिक की योनि में पहुँच गया । जहां पर सदा ही बहता रहा, लोगों के द्वारा बहाया गया, फैंका गया, पीया गया । मैं गंदी नालियों में भी बहता रहा । कभी पुण्यवशात् गंगा जल बन गया प्रभु चरण का गन्धोधक बन गया, इस प्रकार इस पर्याय में कभी सुख तो कभी अत्यधिक दुख को सहन करना पड़ा । इसके पश्चात मैंने अग्निकायिक जीव की पर्याय को धारण किया, जहां पर मैंने स्वयं जलकर दूसरों को जलाया, जिसके कारण मैंने व्यर्थ का पाप बन्ध किया । इस पाप बन्ध के कारण मैं दुख रुपी सागर में डूबा रहा । उस पर्याय से निकला तो वायु-कायिक जीव बना । जहाँ पर अहर्निश तिर्यग गमन करता रहा । यहां पर मुझे पंखो के द्वारा हिलाया डुलाया गया । जिसके कारण मुझे अनेक प्रकार के कष्ट सहन करना पड़े । यहां से मुक्त हुआ तो वनस्पतिकायिक जीव बना । जहां पर मुझे एक स्थान पर खड़े-खड़े हवा के थपेड़ो को सहन करना पडा । सर्दि, गर्मी, और वर्षा की तकलीफो को उठाना पड़ा लोगो के द्वारा काटे जाने पर, तोड़े जाने पर भी कुछ न बोल सका, चुपचाप मुक बना सहता रहा । इस एकेन्द्रिय की पर्याय में मैंने न जाने कितने कष्ट उठाये । कैसे-कैसे दुख सहे । इस स्थावरकाय की पर्याय में ।

हे स्वामिन ! मैं स्थावर काय से मुक्त होने के बाद, त्रसयोनि में दो इन्द्रिय की पर्याय में उत्पन्न हुआ, जहां पर शंख, सीप, लट, जोंक, कंचूआ आदि का शरीर धारण कर अनेक प्रकार के दुख उठाता रहा दो इन्द्रिय से त्रयेन्द्रिय की पर्याय में गया, जहां पर चिटी, खटमल, बिच्छु आदि बना । लोंगों, को अन्य छोटे मोटे जानवरो को काटकर पाप उपार्जन करता रहा । जिसके कारण मुझे दुख ही दुख सहन करना पड़े । त्रयेन्द्रिय से चौइन्द्रिय की पर्याय ग्रहण किया, जहाँ मक्खी, मच्छर, मधु-मक्खी, भौंरा, पतंगा बन अनेक प्रकार से पाप का संचय कर कष्टों को सहन करता रहा । इस प्रकार इस विकलेन्द्रि की पर्याय में अनन्त दुख सहे । इस आत्मा ने ।

हे प्रतितोद्धारक ! इसके बाद मैंने असैनी पंञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च की पर्याय को प्राप्त किया । जहां पर मन के बिना दुःखी रहा । क्योंकि मैं कुछ भी सोच-समझ न सका । कुछ विचार ना सका । मुझे क्या करना चाहिये ? यह जान न सका हेय उपादेय क्या है, मुझे कुछ भी पता नहीं चला । जो मिलता उसे ही खा लेता । इस प्रकार मन के बिना मैंने असैनी की पर्याय में अनेक कष्ट सहे असैनी पंञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च की पर्याय से मुक्त

होने के बाद मैं सैनीपंञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च बना। जहां पर सिंहादिक शक्तिशाली के जानवरों के द्वारा मारा गया उनके द्वारा खाया गया। लोगों के द्वारा मैं छेदा गया, भेदा गया। समय पर मुझे भोजन-पानी ना मिला। मुझ पर अत्यधिक वजन लादा गया। मैं इस भार को सहन करता रहा। सर्दी, गर्मी और बरसात की तकलीफों को सहन करता रहा। लोगों के बन्धन में अपनी स्वतन्त्रता को खो मैं परतन्त्र हो गया। इस प्रकार इस तिर्यञ्च की पर्याय में मैंने अनेक दुःख उठाये।

हे परमात्मा! तिर्यञ्च योनि के दुःख से मुक्त हुआ ही था कि घोर दुःख के सागर नरक में जा पड़ा जहां की भूमि का स्पर्श होते ही मुझे ऐसा महसूस हुआ जैसे कि हजारो बिच्छु एक साथ डस रहे हो। जहां की वैतरणी नदी दुर्गंध और रक्तपीप से भरी हुई है। जो देह को शीतलाता की जगह दाह उत्पन्न करनें वाली है जिससे बड़ें-बड़ें मगरमच्छ मुह बाये किये हुए है। ऐसी उस नदी में मैं दाह उपशान्ति हेतु कुदा ही था कि मुझे शान्ति की जगह अशान्ति मिली। मैं वहां से निकलकर भागा सोचा थोड़ा वृक्ष के नीचे बैठकर आराम करलूं। यह सोच बैठा ही था कि उस वृक्ष के तलवार के धार के समान तीक्ष्ण पत्ते मेरी देह को विदारित कर गये। वहाँ पर अत्यधिक सर्दी और गर्मी को सहन किया इतना ही दुख नहीं, वहाँ पर असुर कुमार देवो के द्वारा लडाया गया। मुझे उस नरक में एक बुंद पानी भी प्यास बुझाने के लिए ना मिला। खाने के लिए एक कण भी ना मिला। इस प्रकार से अनेक अनेक कष्ट मैंने उस नरक योनि में सहन किये। कई सागर तक मैंने अनेक दुख उठाये।

हे परम पिता! भाग्यवशात कुछ पुण्य कर्मानुसार, उस दुख के सागर नरक से निकल कर मैंने मनुष्य गति प्राप्त की। मनुष्य योनि में आते ही मुझे माता के गर्भ में ९ माह तक अपने हाथ-पैर को सकुचित करके उलटा लटकना पड़ा। माता के गर्भ में उच्छिष्ठ सेवन करता रहा। जो माता खाती, वही झुठा मैं खाता। इस प्रकार ९माह मैंने किसी प्रकार व्यतीत किये जन्म के समय मुझे जो पीड़ा हुई, उसका कथन मेरी ये जिह्वा नही कर पाती जिसका कोई वर्णन नही किया जा सकता। तकलीफ होने के कारण ही तो जन्म लेते समय सभी रोते हुये जन्म लेते है।

हे प्रभु! जन्म के बाद मैं धीरे-धीरे बढ़ने लगा। मेरी बाल अवस्था मुझे प्राप्त हुई। उस बाल अवस्था को अज्ञानता में ही व्यतीत कर दिया। यू ही खेल-कूद में अपने बचपन को समाप्त कर दिया। जब यौवन की दहलीज पर मैंने पैर रखा तो मैं अपने यौवन को पा उनमत्त सा हो गया

मैंने अपने यौवन को स्त्रियों के लिये ही समर्पित कर दिया। स्त्रियों के प्रेम में पागल हुआ मैं उन्हें ही अपलक दृष्टि से निहारता रहा। उनके लिये तन मन-धन से समर्पित रहा। उनकी ही जी हजूरी करता रहा। दिन रात स्त्रियों के पीछे ही भागता रहा। उन्हें ही देखता, उनकी ही चर्चाएँ करता उनके बारे में ही सुनता, उनके अंग, उपांगो के बारे में सुनता। विकथा करता यानि कि मेरे जीवन की सारी क्रियाये उन्ही के लिये करता। इस प्रकार से पागल की तरह मैंने अपने यौवन को बर्बाद कर दिया। नष्ट नाबूत कर दिया।

हे योगीश्वर! मैंने अपने यौवन को भोगों में समाप्त कर दिया, मैंने अपने यौवन में योग -साधना नहीं की। यौवन यू ही व्यतीत हो गया और धीरे-धीरे बुढ़ापा आ ही गया। बुढापा, हाय! बुढ़ापा, बुढ़ापा नहीं अब तो मेरा बुलावा आ गया मेरा निमन्त्रण आ गया। मौत अब ना जाने कब दस्तक दे, दे मेरे द्वार पर। अब मेरी स्थिति अधमरे के समान हो गई। हाथ पैर चलते नहीं है। व्रत नियम भी कुछ होते नहीं, रोटी चबती नहीं, खिचड़ी पचती नहीं। हाय! कितना दर्दनाक है ये बुढ़ापा। इस समय मेरे सगे सम्बन्धी, मेरे परिवार वाले, मेरे बेटे, मेरे बच्चे, मेरे नाती, मेरे पोते, मेरी बहुएँ ही मेरा साथ नहीं देती। बेटे पीटते है, नाती घसीटते हैं, पत्नी जो मेरी जीवन साथी थी, वही अब टोंचती है। बहुएँ मुझे कोसा करती है। कहती हैं ये बुढ्ढा कब मरेगा, पड़ा पड़ा खाता है, मर क्यों नहीं जाता। कब तक खिलाये इस बुढ्ढे को, जब तक ये जिन्दा है, तब तक तो हमारी नाक में दम है। हे प्रभु ये बुढ़ापा किसी को ना देना प्रभु किसी को ना देना। क्योंकि मैंने देख लिया इस बुढ़ापे के दुःख को। इस प्रकार बचपन, यौवन व बुढ़ापा इन तीनों अवस्थाओं में मैंने अनेक कष्ट सहन किये। सुख के नाम पर तो मुझे सुखाभास हुआ। वास्तविक सुख तो मुझे मिल ही ना सका। इसी प्रकार सुखाभास की मृग मारिचिका में भटककर मैंने अपने मनुष्य जन्म को खो दिया।

हे देवाधिदेव! मैंने थोड़ी बहुत अकाम निर्जरा के फलस्वरूप देवगति में। भवनत्रिक में जन्म लिया। ज्योतिषक, व्यन्तर और भवन वासी देव बना। मिथ्यादृष्टि होने के कारण मैंने परम वितरागी अरहन्त देव की वन्दना नहीं की। मैं देव गति के भोगों को देखकर भोगों में आसक्त हो गया। उन भोगों में आपाद कण्ठ डूब गया। मुझे अपने आपका भी कुछ भान न रहा विषय चाह की अग्नि में जलता रहा। भोगों में ही मेरा सारा का सारा समय समाप्त हो गया। जब मेरे मरण के छः माह शेष

रहे तो मेरी गले में पड़ी माला मुरझाने लगी, जिससे मुझे भान हुआ कि अब मेरा मरण काल आ गया है। तो मैं रोया, चिल्लाया, चीखा, कि हे इन्द्र देव मेरी रक्षा करो, मुझे जीवन दान दे दो। मुझे कुछ दिनों के लिये बचा लो, परन्तु मृत्यु के मुंह से मुझे कोई भी ना खींच सका। मैंने इस भवनत्रिक की पर्याय में भोगों में आसक्त हो, न जाने कितने पाप किये। व्यन्तरादि देव आदि बन लोगों को परेशान कर कर्माश्रव किया। कभी विमानवासी देव बना तो वहां भी सम्यकदर्शन के बिना दुःखी रहा। मुझे स्वर्ग में शारीरिक सुख तो सभी प्रकार के मिले, परन्तु वहाँ मुझे मानसिक वेदनाओं को सहन करना पड़ा। स्वर्ग में भी कभी नीच योनि का देव बना, जिसके कारण मुझे अन्य देवों के द्वारा अपमानित किया गया। मुझे इन्द्र का वाहन बनना पड़ा। आदि-२ कितनी पीड़ाएँ यहा मैंने उस स्वर्ग में, वहाँ से मिथ्यात्व के साथ मरा तो पुनः एकेन्द्रिय वृक्ष आदि की पर्याय में उत्पन्न हुआ। इस प्रकार से मैंने ससार में पंच पर वर्तन कर अनेक दुःख उठाये।

हे प्रभु ! हे विमलात्मा ! हे शुद्धात्मा ! हे परमज्ञानी ! हे हितोपदेशी मैंने देख लिये ये चर्तुगति संसार के दुख। अब मुझसे यह दुःख सहन नहीं होंगे। अतः मुझसे ये पीड़ाये सही नहीं जाती, अब मुझसे ये कर्मों का बोझ ढोया नहीं जाता मुझसे ये पापों का नजारा देखा नहीं जाता। इस पाप के भार से मेरी ये आत्मा दबी जा रही है। झुकी जा रही हैं। ये कर्मों का समूह, ये भीड़ मुझे अपने साथ गर्त की ओर लिये जा रही है। हे प्रभू मेरी रक्षा करो, मैं अब आपकी शरण में आ गया हूं। देर सवेर आया लेकिन आ गया प्रभु। मुझ पर रहम करो दीनानाथ। ये क्यों नही सोचते सुबह का भूला शाम घर आये, भूला ना कहाये। हे प्रभु मैं मान गया। मैं मान गया कि मुझसे भूल हुई। मुझसे अपराध हुये जो कि मैं अभी तक आपकी शरण में ना आ सका। परन्तु हे प्रभु मैं देर से आया, लेकिन दुरस्त आया हूं। हे नाथ अब मैं आपकी शरण को छोड़कर अन्यत्र कहीं नहीं जाना चाहता, नहीं भटकना चाहता। अब तो मुझे आपके चरणों का सानिध्य प्राप्त हो गया। अब मैं इस ससार-सागर से मुक्त हो जाऊंगा। हो जाऊंगा ना प्रभु। बोलो तो नाथ, कुछ तो बोलो। इस अनाथ पर कृपा करो। मेरे परमात्मा मुझ पर नजर दो प्रभु। मेरी ओर एक बार तो निहारो। बस मुझे और कुछ नहीं, आपकी कृपा चाहिये। मुझे आपकी मौन करुणा का सहारा चाहिये। इसके अलावा मुझे और कुछ नही चाहिये, मैंने आपको पा लिया, यानि मैंने सब कुछ पा लिया।

हे दया के सागर । ये मन तन-मन यौवन और जीवन की हर एक श्वाँस आपके लिये समर्पित हैं । ये मेरे चरण आपके दर के अलावा कहीं नहीं जाना चाहते । ये मेरे हाथ आपके सिवा किसी का स्पर्श नहीं करना चाहते ये मेरे कान आपकी वाणी के सिवा और कुछ सुनना नहीं चाहते मेरा ये सिर मस्तिष्क और कहीं झुकना नही चाहता । ये मेरी आंखे आपके रुप के सिवा और कुछ देखना नहीं चाहती । मेरी ये जिव्हा आपके गुणानुवाद के अलावा कुछ और कहना नहीं चाहती । हे प्रभ और क्या-क्या कहूं । शरीर का रोम-रोम आपके गुणानुवाद के लिये पुलकित रहता है ।।

हे करूणानिधान । अब तो करुणा करो । इस दुखिया के दुःखो को समाप्त करो । इतने ठोस हृदय न बनो । अपने भक्त पर थोड़ा नरमाओ नाथ । नही तो मैं कैसे मानु ंगा की भक्त कि भक्ति से पाषाण पिघल जाता है । आप पाषाण तो नही है आप तो हमारे इष्ट आराध्य परमदेव परमात्मा है भगवान है । हे भगवन् अपने भक्त की रक्षा करो। हमें अपना सा बना लो तभी तो मैं मानू ंगा कि आप में बड़प्पन की भावना नहीं है । जब आप मुझ पर करुणा नहीं करेंगे तो मैं कैसे मानू ंगा कि आपका नाम करूणा सागर है आप करूणानिधान है आप करुणाकार है । हे प्रभु मुझ पर करुणा कर अपना बनालो । मुझे विश्वास नहीं है कि मैं आपकी जाप जपता रहूं । आपका नाम लेता रहूं । और आप भूल जाओ । नहीं नहीं आप तो दया के सागर हैं । अवश्य हो मुझ पर दया करेंगे । मुझे निराश नहीं करोगे । ना, दया के सागर । इस प्रकार अपनी निन्दा गर्हा और आलोचना करते हुए परम पिता परमेश्वर के चरणों में बारम्बार नमस्कार-३ नो बार नमोकार ।।

(तत्पश्चात प्रतिक्रमण में लगे दोषो की क्षमा याचना करे, हाथ जोड़कर)

हे प्रभु । हे विभु यदि इस प्रतिक्रमण में मुझ हृदमस्थ के द्वारा, अज्ञानता वश, प्रमाद से प्रतिक्रमण के उच्चारण में, मन की चञ्चलता से इधर-उधर, दाये, बांये देखने से, शरीर हलन-चलन से, श्वांसोश्वास से, जम्हाई लेने में, छींकने खांसने में, यदि मेरे द्वारा कोई गलतियाँ हुई हो, अपराध हुए हो तो हे प्रभु मुझे अबोध बालक समझकर, अज्ञानी समझकर माफ कर देना । इस प्रकार क्षमा याचना के साथ पुनः बारम्बार नमस्कार-३ नौ बार नमोकार ।।

(अब अपने स्थान पर खड़े होकर क्रम से चारो दिशाओ में इस प्रकार बोले)

पूर्व दिशा में जितने भी अरिहन्त सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, सर्व साधु, जिन धर्म, जिमागम, जिनचैत्य, जिन चैत्यालय हो, उन्हे मेरा बारम्बार

नमस्कार-३ (नौ बार नमोकार)

दक्षिण दिशा में जितने भी अरिहन्त, सिद्ध, आचाय, उपाध्याय सर्व साधु जिन धर्म, जिनागम, जिनचैत्य, जिन चैत्यालय हो उन्हें बारम्बार नमस्कार-३, (नौ बार नमोकार)

पश्चिम दिशा में जितने भी अरिहन्त सिद्ध, आचाय, उपाध्याय, सर्वसाधु, जिन धर्म, जिनागम, जिनचैत्य, जिन चैत्यालय हो उन्हें बारम्बार नमस्कार-३, (नौ बार नमोकार)

उत्तर दिशा में जितने भी अरिहन्त सिद्ध आचार्य, उपाध्याय सर्वसाधु, जिनागम, जिनचैत्य जिन चैत्यालय हो उन्हें बारम्बार नमस्कार, -३

(नौ बार नमोकार)

[इसके बाद बैठकर नीचे लिखी क्षमा प्रार्थना पढ़े ।]

卐 क्षमा प्रार्थना 卐

किया अपराध जो मैंने, तुम्हारे जाने - अनजाने ।
क्षमा करना सभी मुझको, क्षमा करना सभी जनको ।।
सभी संग मित्रता मेरे, किसी से बेर न क्षण को ।
यही है भावना मेरी, जिनेश्वर हो कृपा तेरी ।।

किया अययोग से छेदन, रहा हो भाव में भेदन ।
उन्ही को त्यागता हूं मैं, रहे जो भाव मुझमें ।।
नेक भव बैर जो तुमसे, रहा हो भाव दुषित से ।
उदय बिन नाश हो जावे, दयामय भाव मम होवे ।।

क्षमा करना, क्षमा करना, न दिल में रोष को धरना ।
शुद्ध दिल से क्षमाता हूं, क्षमा भावो से झुकता हूं ।।
क्षमा का स्त्रोत बरसाओ, वीर का धर्म बरशाओ ।
क्षमा भूषण गुणीजन का, कहे गुरुवर धरम निजका ।।

—: इति श्री श्रावक प्रतिक्रमण :—